श्रुत-भीनी आँखों में बिजली चमके

संकलन - विजय दोशी

।। श्री आदिनाथाय नमः ।।

श्रुत–भीनी आँखों में बिजली चमके

संकलन
'श्रद्धांध'
विजय दोशी
शार्लोट, नार्थ केरोलीना (यू.एस.ए.)
Email : nalvij@yahoo.com

संकलन : विजय दोशी

आवृत्ति :

मूल्य : नि:शुल्क

प्राप्ति स्थान :
पद्मजी धाकड़
2530, हार्वटन कोर्ट, शार्लेट,
नाथ कैरोलिना 28270 यू.एस.ए.
704-542-1765
(ऑ.) 704-543-6200, फैक्स - 866-466-7130
Email : padam@dhakad.biz

वीर संवत् : 2043

विक्रम संवत् : 2074

सन् 2017

मुद्रक :
श्री गणेश प्रिन्टिंग प्रेस
121, डॉ. काटजू मार्ग, जावरा,
जिला रतलाम (म.प्र.)
फोन - 07414-220714
मोबाइल - 09425490644, 09425329844

पूज्य पिताजी !

आपने पितृ वात्सल्य दिया, आपने धर्मभाव से पालन किया

आपने नर से नारायण बनने की प्रेरणा दी,

आपके चरणों में इस ग्रंथ को

अर्पण कर धन्य बनता हूँ ।

पूज्य मातुश्री !

जननी जैसा कोई दूजा नहीं मिले । कारण,

आपने संस्कारों का सिंचन किया इस उपकार के कारण

यह ग्रंथ ज्ञानपिपासुओं को

आपके नाम से

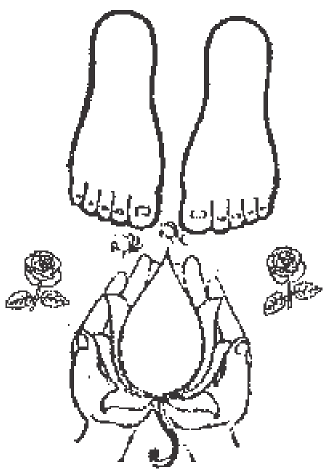

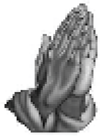

अर्पण

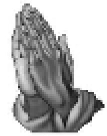

करते कृतघ्नता अनुभव करता हूँ ।

– विजय

।। ॐ ह्रीं ऐं श्री सरस्वत्यै नमः ।।

कुंदिंदु गोक्खीर तुसार वन्ना

सरोज हत्था कमले निसन्ना

वाएसिरि पुत्थय वग्ग हत्था

सुहाय सा अम्ह सया पसत्था ... !

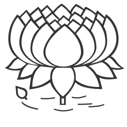

।। ॐ ह्रीँ श्रीं आदिनाथाय नमः ।।

अंतर एवं आँखों से, नमन करूँ मैं भाव से

विद्वता सर्व साधु भगवंत, ज्ञानी भविक सह पंडितजन

अभ्यास सभर और क्षीरवंत, जहां विचारों का जिन–वृंदावन

सात क्षेत्र, उत्तमोत्तम मही

आगम क्षेत्र का यहाँ करे स्तवन

अति आनंद, हर्ष एवं उल्लास में

''श्रुत–भीनी आंखों में बिजली चमके'' का

अवतरण है

यह

संकलन

अनंत नी गुलझारमां ...

(राग - होठों से झूलो तुम)

एक पल पण तारा विना,
रहेवाय ना, रहेवाय ना,
ऊर्मि ऊनी अंतर की,
पांपण में सचवाय ना । एक पल ...
'अंतर अने आंखों मां' थी
भीनी असर नु जल जाय ना,
पंखी चहेरा नुं ऊड़ी जतां,
मालो खली ए सहेवाय ना,
'पण' लीधा छे भवो भवनां,
गुणीजनना, सगपण ना । एक पल ...
'श्रुत-भीनी आंखों में,
बिजली चमके', जगाड़े मन,
प्रतिबिंब की आभा मां,
ऊभराये मन का गगन,
'श्रद्धांध' चहे अंत ने,
अनंत नी गुलझार मां । एक पल ...

'श्रद्धांध'

श्रुत–भीनी आँखों में बिजली चमके

प्रकाशकीय निवेदन

चरम तीर्थाधिपति भगवान महावीर स्वामी देशना में समझा रहे हैं ''आप घोर अंधेरे में बैठे हो, आकाश में विद्युत की चमक होवे मात्र यही संभावना है । थोड़े से समय में ही, इस विद्युत की चमक में सुई में धागा पिरोना पड़े तो ... ? यह अति कठिन एवं विशेष शक्तिमय अनन्य पुरुषार्थ से भी दुष्कर है । इससे भी दुष्कर जिन प्रज्ञप्त 'सम्यक दर्शन' प्राप्त करना है ।

द्वादशांगी श्रुत के अध्ययन, श्रवण या उसकी सीख प्राप्त करते मानो कि आध्यात्म की बिजली का चमकारा, भव्यात्मा की आंखों को भीनी–भीनी किए बिना ना रहे, तब अगम्य अनुभव के आश्चर्य में मन पुकार उठे, 'श्रुत–भीनी आँखों में बिजली चमके...।'

दुष्कर ऐसे सम्यग्‌दर्शन को पाने की चाहना में, जैन धर्म के गहन रहस्यों का समाधान, स्वाध्याय, श्रद्धा एवं समर्पण भाव के सिवाय प्राप्त नहीं किया जा सकता । वीतराग की वाणी का प्रभाव अचिंत्य है । जैसे–जैसे हृदय में यह वासित हो जाता है, वैसे–वैसे उसके श्रुत में आँखें भीनी होती जाती हैं और धीरे–धीरे अंत:प्रकाश फैलने लगता है, तब जो 'सम्यग्‌दर्शन' ही बिजली की चमक के रुप में श्रुत भीनी आंखों में चमके तो यह पल कैसा होगा ? यह अनुभव कैसा होगा ? कुछ आध्यात्म पूर्ण इस अनुप्रेक्षा में प्रस्तुत संकलन को नाम मिला, 'श्रुत–भीनी आँखों में बिजली चमके' ।

1967 में अमेरिका आने के बाद अभ्यास आदि क्षेत्र में इंजीनियरिंग डिग्री प्राप्त की । 1970 में विवाह, 1973 में पुत्री जन्म एवं 1976 में पुत्र जन्म हुआ । सांसारिक जवाबदारी बढ़ती गई, साथ ही दोनों संतानों के धर्म संस्कारों की चाह को वेग भी देना था । 1982 में जैन संघ के समस्त बड़े तथा बालकों को भी जैन धर्म के शिक्षण का वेग मिले इस हेतु से

जैन स्टडी ग्रुप का निर्माण किया । धार्मिक शिक्षण का स्वप्न साकार होने में मदद रूप होवे इसलिए 1984 से नियमित स्वाध्याय आदि शुरु हो गया । इस निमित्त स्वाध्याय, वांचन, लेखन, स्तवन, स्तुतियाँ आदि को विविध रंगों में रचने आदि से लेकर अनेक ज्ञानियों के व्याख्यानों, मुनि भगवंतों की श्रुत वाणी का संकलन करने की भूख जगी । देव, गुरु, धर्म के आशीष से ई. सं. 1996 से 2001 के दरम्यान जैन ग्रुप सह 'तत्वार्थधिगम सूत्र' के स्वाध्याय बाद 'स्वाध्याय अध्ययन संग्रह' का संकलन प्रकाशित हुआ । उसके पश्चात् दो वर्ष उसका पुनरावर्तन एवं 'प्रथम कर्मग्रंथ' का स्वाध्याय एक वर्ष तक हुआ । जैन ग्रुप में सदस्यों के इस उपादेय लक्ष्य का आदर कैसे भूलें ?

2005 में 'आरोह, अवरोह एवं अरिहंत' कृति का संग्रह प्रकाशित हुआ । इस सर्जन में आध्यात्म के आत्मसातमय पवित्र एहसास, चंदन के लेप की तरह 'उपशम' और 'क्षयोपशम' भाव द्वारा अंतर को आनंद से भरता रहा । देह के रोम–रोम को रंगता रहा । नवम्बर 2011 में 'अंतर एवं आंखों में' स्व लिखित कृति का संग्रह कर प्रकाशन करने के आनन्द द्वारा, जीवन के संध्या काल में मानों कि युवानी मिली हो। तीन विभाग में प्रसंगोपात्त बदलते भावों के सर्जन में तृतीय विभाग : 'अप्पाणं वोसिरामि' आध्यात्म के अमृत झरना रुप अध्यवसाय के स्वाद को, जागृत रखने में एक अचिंत्य बल देता रहा है ।

प्रस्तुत संग्रह 'श्रुत भीनी आंखों में बिजली चमके' का प्रकाशन प्रस्तुत करते अंतर के शुभ अध्यवसायों का मेघ जीवन के अंत तक आत्मा को भीगाता रहे ऐसी प्रभु चरणे प्रार्थना ....

– विजय दोशी

आभार-धन्यवाद

हमारी जीवन यात्रा अनगिनत उपकारों से भरी है। इन उपकारों का शब्दों में धन्यवाद और आभार व्यक्त करना और मानना असंभव है। सिंहावलोकन के दर्पण में सरलता के नेत्रों में भूतकाल एवं वर्तमान के उपकारी स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं ... इनकी शुरूआत हमारे पूज्य माताजी-पिताजी और परिवार से है। शिक्षा, दीक्षा, धर्म एवं संस्कारों के दाता और मार्गदर्शक आदरणीय गुरुभगवंत हैं। इस क्रम में अपने करीब के अनेक शुभचिंतक और हितेषी भी हैं, जो आवास प्रवास और कई निवासों के भ्रमण में सम्पर्क में रहे हैं। इन सभी को शत्-शत् नमन।

जन्मभूमि भारत से कर्मभूमि अमेरिका में हमारे संसार की शुरुआत हुई। पिछले 23 बरस से शार्लोट (अमेरिका) के निवासी हैं। इस प्रवास में जीवन के सभी पहलु-व्यवसाय, धर्म और संस्कृति विकसित हुई और हम निरन्तर जैन धर्म से जुड़े रहे, स्वाध्याय की जागरूकता रही और इस (श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके) का हिन्दी अनुवाद की प्रेरणा स्वाध्याय की ही देन है। 1993 से शार्लोट आने के पश्चात् परम आदरणीय श्री विजय भाई दोशी का स्वाध्याय जैन स्टडी ग्रुप में सुनने को मिला और इस ज्ञान गंगा का सतत् प्रवाह कायम है। श्री विजय भाई तो अनेक दशकों से स्वाध्याय की प्रभावना बांट रहे हैं और इन्होंने कई पुस्तकें प्रकाशित की है। इसी श्रृंखला क्रम का अनमोल मोती ''श्रुत भीनी आंखों में बिजली चमके'' है।

मधु और मेरी विनम्र विनती स्वीकार कर विजय भाई ने हमें हिन्दी अनुवाद करने की अनुमति दी, यह हमारा सौभाग्य है। जिसके लिये हम चिरऋणी हैं और रहेंगे। स्वाध्याय की आनंद भरी ऊर्जा और विचार दृष्टि में सरलता की दिशा का आव्हान किया है, यह अनुभव अवर्णनीय है। हमारी सविनय उम्मीद है कि जिनवाणी के लालसी इस अमृत का श्रवण पान करते रहेंगे।

''श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके'' का हिन्दी अनुवाद को साकार करने वाले अनेक धर्मानुरागी प्रिय जन हैं जिनका बहुत-बहुत आभार एवं धन्यवाद ! विशेषकर प्रिय रवि नाहर जिनका निःस्वार्थ सतत् प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। रविजी बहुत बहुत धन्यवाद और प्रशंसा के पात्र हैं। श्री सुमितजी नाहर ने भी संशोधन में जो योगदान दिया है इसका बहुत बहुत धन्यवाद और आभार ....। धन्यवाद के नामों में श्री निकित मेहता अनुवादक एवं श्री गणेश प्रिन्टिंग प्रेस, जावरा, जि. रतलाम के श्री अशोकजी अर्पितजी सेठिया हैं।

अनुवाद का अनेकार संशोधन श्री विजय भाई ने किया, उनके इस अमूल्य समय और सहयोग के लिये हम सब हिन्दी भाषी बहुत-बहुत शुक्रगुजार हैं और रहेंगे। आदरणीय श्री विजय भाई को हमारा शत्-शत् प्रणाम। और अन्त में कोई भी त्रुटि अथवा अविनय के लिये हम सविनय क्षमा प्रार्थी हैं।

सविनय

मधु - पद्म धाकड़

U.S.A.

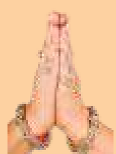

~ समर्पण ~

स्व. श्रीमती सम्पतबाईजी धाकड़

स्व. श्री तेजमलजी धाकड़

स्व. श्रीमती कंचनबाईजी नाहर

स्व. श्री समरथमलजी नाहर

जीवन और संस्कारों की नींव के दाता
परम् पूज्य माताजी और पिताजी को
सादर सविनय समर्पण ....

मधु - पद्म धाकड़

महुआ निवासी

स्व. श्री फतेहचंद भाई प्रागजीभाई दोशी

स्व. श्रीमती कंचनबेन फतेहचंद भाई दोशी

मातृ-पितृ देवेभ्यो नमः

- *माँ संस्कार की सरिता और गुणों की खान है ।*
- *माँ खुद सहकर पुत्रों को बड़ा करती है ।*
- *माँ तो माँ है, इसके तुल्य और कोई नहीं है ।*
- *माँ को जितनी उपमा दी जाए कम है ।*
- *पिता संस्कार और धन अर्पण करते हैं ।*
- *पिता-माँ का हुक्म मानना बच्चों का कर्तव्य है ।*
- *परिवार में, समाज में, कुल को बढ़ाने में माँ-पिता का बहुत योगदान रहता है ।*

॥ तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

पूज्य आचार्यश्री दानसूरीश्वरजी म.सा.

आपकी निश्रा में पौषध व्रत किया
देना आशीष, सही दिशा मिल सके ॥

प्रवर्तक, साहित्योपासक

पूज्य मुनिराज श्री हरीशभद्रविजयजी म.सा.

गुरुजी हमारे अन्तरनाद
हमने आपो आशीर्वाद

प. पू. गच्छाधिपति,
आचार्यदेवेश, ज्योतिष सम्राट
श्रीमद्विजय ऋषभचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

श्री मोहनखेड़ा तीर्थ

शुभकामना संदेश

धर्म प्रभावना की बहुविध पद्धतियाँ हैं। श्रुतवाणी व ज्ञान का प्रचार-प्रसार इनमें सर्वाधिक महत्व रखता है। श्री विजय दोशी धन्यवाद के पात्र हैं कि विदेश में रहकर व सांसारिक जवाबदारी निभाते हुए भी न केवल स्वयं स्वाध्याय किया वरन् स्टडी ग्रुप व प्रकाशनों के माध्यम से जिनवाणी को जन-जन तक पहुँचाया।

''श्रुत-भीनी आँखों में बिजली चमके'' अलग-अलग विषयों पर श्रुत ज्ञान का संकलन है। इनका चयन व संकलन निश्चित ही सूक्ष्म दृष्टि से किया गया श्रम साध्य कार्य रहा होगा।

इस प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ। मुझे विश्वास है कि यह संकलन जिनवाणी के सुधी पाठकों की ज्ञान वृद्धि में सहायक होगा व जैन जगत में इसका स्वागत किया जावेगा।

- आचार्य ऋषभचन्द्रसूरि

शासन प्रभावक, मालव केसरी, महाराष्ट्र विभूषण, प्रसिद्ध वक्ता परमश्रद्धेय
पूज्य गुरुदेव **श्री सौभाग्यमलजी म.सा.** के सुशिष्य
श्रमण संघीय प्रवर्तक, सौभाग्यकुल दिवाकर, जिनशासन रत्नाकर,
मालवा शिरोमणी, पूज्य गुरुदेव

श्री प्रकाशमुनिजी म.सा. 'निर्भय'

अभिमत अनुमोदना

'श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके' श्रुत-ग्रंथ देखा। प्रस्तुत ग्रंथ में श्रुताराधक श्री विजय भाई दोशी की स्वाध्याय रूचि अनुप्रेक्षा का गहराई एवं संकलन की विशिष्टता स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। भौतिक समृद्धि के बीच रहकर भी आध्यात्मिक लगन होना, वह भी जिनदेव व जिनवाणी के प्रति, यह निश्चित ही सम्यक् दर्शन की अनुभूति करा रही है। इसे मैं 'श्रद्धांध' न कहकर 'श्रद्धालोक' कहूँगा। क्योंकि जब सम्यक्‌दर्शन की बिजली चमकती है अन्तरनैनों में तब अहोभाव से वे भर जाते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ 'जिनवाणी' को गहराई से समझने के लिए एक सुदृढ़ आधारभूत है। इसमें जिनागमों की वाणी के साथ अन्यान्य विशेष श्रुत ग्रंथों से न केवल विशेष प्रसंगों का संकलन किया गया है अपितु विजयभाई दोशी के नवचिन्तन का नवसर्जन भी है, जिसे सरल व सहज रूप में समझा जा सकता है। और सम्यक् ज्ञान का परिबोध पाया जा सकेगा।

हमारे संघ की विशिष्ट साध्वी श्री चन्दनबालाजी म.सा. की बहन सौ. मधुजी एवं श्री पद्मजी धाकड़ हिन्दी संस्करण प्रकाशन के प्रमुख लाभार्थी बनकर 'श्रुतसेवी' बन रहे हैं, उन्हें साधुवाद !

श्री दोशीजी के प्रति यही भावना कि विशेष अनुप्रेक्षी बनकर, श्रुताराधक होकर कर्मक्षयी बनें। सम्यक्‌त्रयाराधक बनें।

बदनावर के दृढ़धर्मी श्री समरथमलजी नाहर के सुपौत्र श्री रवि नाहर ने मुझे यह 'अभिमत-अनुमोदना' लिखने को प्रेरित किया, साधुवाद !

- मुनि प्रकाशचन्द 'निर्भय'

शुभ भाव

श्रीमती मधु पद्मजी धाकड़ का यह प्रयास श्रुत प्रेमियों के लिए मार्गदर्शक बने यही सत्कामना मंगल कामना करती हूँ।

पुस्तक का नाम बड़ा सुन्दर है । ''श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके'' बड़ा सुन्दर और अर्थ वाला नाम है । श्रुत से भीगी आँखों में सदा चमक जैसी होती है ।

भगवान महावीर फरमाते हैं–'सामत्त हंसी न फरेई पावे' सम्यक् दृष्टा आत्मा कभी पाप कर्म नहीं करता है।

सम्यक् दर्शन–ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग: ।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मोक्ष का मार्ग है ।

पाँच ज्ञान में श्रुत ज्ञान महान व परम उपकारी है ।

सोच्चा जाणइं कल्लाणं, सोच्चाजाणइ पावंग ।
उभयं पि जाणई सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ।।

सुनकर ही प्राणी कल्याण मार्ग को जानता है और सुनकर ही प्राणी पाप मार्ग को जानता है । दोनों मार्ग सुनकर ही जानता है फिर आत्मा के लिए श्रेयस्कर मार्ग का समाचरण–आचरण करता है। यह है श्रुत ज्ञान का महत्व ।

दूसरी बात अनपढ़ और शिक्षित दोनों ही इन ज्ञान का पूरा लाभ उठा सकते हैं । सम्यक् दर्शन जिन शासन की नींव है । दर्शन शुद्ध होने पर ज्ञान और चारित्र भी शुद्ध और शुद्धतर होते हैं, जिससे मोक्ष का दरवाजा सहज रूप से खुल जाता है ।

आपके द्वारा छपाई गई यह पुस्तक ''श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके'' सभी के लिए मोक्ष का द्वार खोले इसी शुभेच्छा के साथ – ॐ शांति ....

इसी भाव के साथ

साध्वी चन्दनबाला

विशेष निवेदन

हिन्दी अनुवाद करने का प्रयास किया है,
किन्तु गलतियाँ होना स्वाभाविक हैं।
अगर आपको इसमें कोई भी त्रुटि/अशुद्धि दिखे,
कृपाकर जरूर बताने की मेहरबानी करें,
ताकि सुधार किया जा सके।

* सविनय *

Madhu & Padam Dhakad
dhakad@aol.com
704-542-1765
2530 Howerton Court,
Charlotte, NC 28270 USA

दो शब्द प्रस्तुत संग्रह के विषय में ...

आगम के अंग बारह कहे गये हैं। इन बारह के अंक के साथ प्रस्तुत संग्रह के विभाग भी अनायास बारह ही अस्तित्व में आए। यह भी मेरे लिए एक शुभ प्रसंग, प्रसादी रूप बन गया। 'परिशिष्ट' पूर्ति के बिना ग्रंथ की पूर्णाहुति कैसे हो सकती है ? इस विचार से अंत में व्याख्याएं, विशेष सूचना आदि को देकर संतोष का अनुभव किया।

'श्रुत भीनी आंखों में बिजली चमके' के अंग को प्रारंभ से इति तक, 'श्रुत' प्रक्षालन एवं तारक ऐसी जिनवाणी की उद्योतमय 'चमक' प्रदान कर सके, इस हेतु को सफल करने, भगवती 'ऐं' देवी सरस्वती की 'अर्चना' सह भावभीनी वंदना की। 'सुज्ञ' वाचक वर्ग को इस विशाल ग्रंथ का शुभ अनुभव हो एवं साथ ही इसके द्वारा 'शुभानुबंध' हो जाए ऐसी अंतर की अभ्यर्थना ...।

संग्रह में अलग-अलग विषयों के हेतुपूर्वक ही खूब 'संक्षिप्त' स्वरुप में संकलन करने का प्रयत्न किया है, जिससे वाचक वर्ग को रस तथा विषय के प्रति एकाग्रता, सरलता, सहज भाव बना रहे।

कल-कल बहती 'श्रुत सरिता' का अगाध वक्तव्य, सब कुछ करके भी इस संकलन में सर्व गुण संपन्नतापूर्वक एकत्रित नहीं हो सकता है। परंतु आज के व्यस्त एवं दौड़भाग भरे जीवन में थोड़ा तो थोड़ा लेकिन सात्विक तत्व, एक नया एहसास हो सके ऐसी आशा जरूर रखी जा सकती है ना ? वाचक वर्ग के प्रतिसाद, क्षतियाँ सुधारनें में खूब उपयोगी सिद्ध होंगे। अग्रिम साभार प्रणाम।

विविध विषयों में, जैन-शासन, चिंतामण रत्न के समान, इसके अचिंत्य प्रभाव के कारण शाश्वत, चमकता एवं जयवंत रहेगा। इस हेतु ही प्रस्तुत संकलन में ''जैनम् जयति शासनम्' के हार्द को निरन्तर ध्यान में रखने का प्रयत्न प्रारंभ से अंत तक किया है। मानव से तीर्थंकर परमात्मा किस प्रकार बनते हैं ? उसका संक्षिप्त परंतु सचोट विवेचन से, जिनशासन के प्रति अपना मस्तक अति शुभ भाव से सहज ही झुक जाता है। विभाग के अंत में, सुवाक्य एवं आत्मज्ञान मानो कि यह सबकी साक्षी दे रहे हों।

नवकार महामंत्र का शाश्वत प्रभाव मन को आनंद विभोर कर हमेशा मार्गदर्शन प्रदान करता है। तीर्थंकर प्रणित तीन मुख्य बातें, जीवन जीने की पद्धति (Art of Living) एक अति उजागर मार्ग पर आत्म कल्याण का संदेश देती है। सारभूत धूत (कर्म निर्जरा का हेतु), उसकी मधुरी बात में विशिष्ट महत्व रखता है।

जैन क्रियाओं में विज्ञान का विवेचन 'जयणा' एवं जीवदया के सिद्धांतों को जीवंत कर दे ऐसा है। ज्ञानी भगवंतों का 'निशान' आत्म कल्याण सिद्ध करने, बाल जीवों के प्रति प्रशस्त भाव का दर्शन करा देता है।

'उत्तराध्ययन सूत्र' में प. पू. आचार्य श्री विशालसेन सूरीश्वरजी म.सा. ने 'अंतिम देशना' ग्रंथ में तत्वज्ञान सभर हुबहु दृष्टांतों से, मानव जीवन को धन्य बनाने की प्रेरणा प्रदान की है। इस विभाग में संकलन मार्गदर्शक बने हैं, जो रत्नत्रयी की ओर का एक मार्ग बता रहे हैं।

विद्वता साधु भगवन्त, अति उपकारी तम धर्म कवन
अभ्यास, सभर ने क्षीर वंत, विचारों का जिन–वृंदावन।

कल्याण यात्रा की शुरुआत जीवन को सार्थक करने हेतु अति उपकारी जिन प्रणित मार्गदर्शन से ही हो सकती है ना ? योग दृष्टि एवं भाव श्रावकता के द्वारा, अगाध श्रुतज्ञान के विशाल गगन में विहार करने मिले तो आनंद आए बिना नहीं रहे।

पांच समवाय का रहस्य, आश्रव एवं अनुबंध का संधान, खामेमि 'त्रिक' की गहरी असर आत्मा की प्रतीति भी करवा दे तो आश्चर्य नहीं ....।

'कर्म निवारण–सत्य समझ' का हार्द जैन शासन के पारितोषिक समान कर्मवाद को प्रस्तुत संकलन में 8 का अंक मिला। 8 उर्ध्वगति का सूचक है। सर्व कर्म निवारण होते जीव भी उर्ध्वगति को पाता है। कर्मवाद कणिकाएं वास्तव में मानव जीवन को सजाने हेतु आध्यात्म की मोती माला है। कर्म रज को दूर करने की जानकारी भगवान महावीर के सिवाय कौन समझ सकता है ? यह रहस्य जैन धर्म की देन है।

प. पू. युगभूषण विजयजी महाराज लिखित 'मनोविजय एवं आत्मशुद्धि' ग्रंथ में इस ''छोटे पंडित'' महाराज ने मनोविजय की 5 सीढ़ियाँ, आत्मशुद्धि के बाद ही समकित की प्राप्ति, वैराग्य बिना सकाम निर्जरा नहीं एवं सकाम निर्जरा बिना मोक्ष नहीं आदि आत्मस्पर्शी एवं दिलचस्प विवेचनों को संक्षिप्त रुप से विभागों में संकलित करते हृदय खूब ही अहोभाव का अनुभव करता है यह तो स्वाभाविक ही है ना ?

जैन धर्म पाया और मोक्ष के स्वरूप को ही समझा नहीं तो हमारा अवतार बेकार गया ना ? विभाग 10 में उपसंहार सह मोक्ष स्वरुप को समझे, मुक्ति की तात्विक जिज्ञासा ऐसी प्रगट हो कि मोक्ष के लिए एक अनोखी प्यास जगे। **ज्ञानी कहते हैं : दिशा बदलो, दशा बदलेगी कैसी अनुपम बात है।**

जैन धर्म का साहित्य चार अनुयोगों में विभक्त है। द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरण करणानुयोग, एवं कथानुयोग। इस विभाग को कथानुयोग के विविध शास्त्रोक्त दृष्टांतों से श्रृंगारित करने की कोशिश की है। दर्जनों दृष्टांतों को, संकलन की अवधि को ध्यान में रखकर, अधिक दृष्टांतों के साथ न्याय नहीं दे सके तो क्षमा करने की विनंती। एक बात तो कही जा सकती है कि कथानुयोग से वस्तु सरल बनती है।

12वें विभाग में 12 अंगों के विषय में अति संक्षिप्त विवेचन जिन आगम के नमस्कार रुप प्रस्तुत है एवं ''जैनम् जयति शासनम्'' का नाद आप सर्व के दिलों में भव्य भाव जगाए ऐसी अभिलाषा की चाह रखने का मन हो जाता है। ज्ञानियों ने उत्तम सात क्षेत्रों में जिन आगम का स्थान, जिनालय एवं जिनमूर्ति के बाद दर्शाकर उसकी विशेष प्रतिष्ठा की है।

45 जिन आगम के मुख्य 12 'अंगों' के विषय में संक्षिप्त विगत, 12 अंगों में से पाँचवा अंग (भगवती सूत्र) अति प्रचलित है, उसमें से विविध आध्यात्म का स्वाध्याय, मन प्रसन्न कर दे ऐसा है।

आगम का आध्यात्म आत्मा की ओर प्रयाण कराता है,

करने वाला तिरता है और अन्य को तिराता है।

इस संकलन को जन्म मिला उसमें वर्षों से मेरी धर्मपत्नी नलिनी, मेरी पुत्री मोना एवं पुत्र मालव का सहकार प्राप्त हुआ जिसे कैसे भूला जा सकता है।

सर्वप्रथम प. पू. श्री हरिभद्र विजयजी म.सा. की असीम कृपा एवं प्रीति सह आशीष से कार्य की सफलता सरल एवं सहज प्राप्त हुई। उनका मैं ऋणी हूँ, गुरुदेव को 'मत्थेण वंदामि'

पद्मश्री कुमारपाल भाई, सुज्ञधर्म प्रभावक स्नेही माननीय श्री नौतमभाई वकील, भारत से अमेरिका आकर वर्षों से स्वाध्याय प्रदान कर अनेक जीवों को धर्म प्रदान करने में निमित्त बनने वाले तरलाबेन दोशी तथा श्री भरत भाई शाह जो कि वर्षों से अनेक जीवों में धर्म प्रभावना कर रहे, उन सबका अंतःकरणपूर्वक आभार।

श्री पद्मभाई तथा मधुबेन धाकड़ ने विशाल गुजराती ग्रंथ के पृष्ठों का स्केनिंग निष्ठापूर्वक किया इस हेतु आभार व्यक्त करता हूँ।

भरतभाई चित्रोड़ा का प्रिन्टिंग एवं सूज़ सूचना द्वारा प्रारंभ से ही गुजराती ग्रंथ को समझने में, सहकार हेतु आभार।

मंदमति, अज्ञान या मंदबुद्धि के कारण अविनय, अविवेक या जिन-आज्ञा विरुद्ध कुछ भी लिखा हो तो त्रिविधि-त्रिविधि अंतःकरणपूर्वक मन, वचन एवं काया के योग से मिच्छामि दुक्कड़म्।''

जैनम् जयति शासनम्

-विजय दोशी

अंतर ना आ कोडीए, एक दीप बले छे झांखो
जीवन ना ज्योतिर्धर, ऐने निशदिन जलतो राखो
ऊँचे-ऊँचे उड़वा माटे, प्राण चहे छे पांखो
तमने ओलखु नाथ निरंजन, एवी आंखो आपो ।।

THE LIGHT IS SIMMERING
WITHIN ME,
OH THE ENLIGHTENED ONE,
LET IT BE LIT, LET IT BE
I LONG FOR THE WINGS,
TO FATHOM THE HEIGHTS,
GIVE ME .....
THE EYES OH "JINESHVAR"
WHICH CAN FEEL
YOU IN ME !!!

श्रद्धा में अटल रहकर
अंतर ज्योति के प्रकाश में
विहार करता हूँ
तब बाहर से अंध वह तु
श्रद्धांध

शिवमस्तु सर्व जगत:
परहित निरता भवंतु
भूत गणा:
दोषा: प्रयान्तु नाशम्
सर्वत्र सुखी भवतु लोक:

''दो शब्द अनुमोदना के''

आपकी अनुमोदना, शोभे जैसे मोती की माला,
श्रृंगारती शुभ भाव से, इस ग्रंथ के श्रुत कंठ को,
कृतघ्नता के साथ रहकर, करूँ मैं भीने भाव से,
आभार दर्शन ऊर्जा सभर, प्रसन्न मनपूर्वक आपको ।

कल्पना....

श्रुतानुरागी विजयभाई

''श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके' पुस्तक का संकलन आपने किया वह अत्यन्त ही आनंद की बात है । पुस्तक के पृष्ठों में क्या होगा ? उसका विचार न करते उसके नाम की चर्चा करेंगे तो वह गलत नहीं माना जाएगा ।

श्रुत - अर्थात् सम्यग्ज्ञान । मोक्ष मार्ग का परिचय ।

भीनी आंखें - ज्ञान का अध्ययन करने वाले के नेत्र, जन्म–मरण सुधारने के लिए भीनी हो ऐसा ही आवश्यक है ।

बिजली चमके - मेघ – वर्षा का आगमन बिजली की चमक से समझ सकते हैं, उसी प्रकार ज्ञान के अनुभव से, मनन, चिंतन से जीवन में जागृति आती है । आत्मा परमात्मा पद का अधिकारी बनती है यह, निश्चित है ।

विजयभाई आपकी अदृश्य भावना पूर्ण होवे, शासन देव आपको यश प्रदान करे, यही भावना ....

प्रवर्तक मुनिराज
श्री हरीशभद्रविजयजी
धर्मलाभ

मागसर सुद – 13
कल्याण

'स्वाध्याय तप का परमानंद'

हंस मोती का भोजन करता है, उसी प्रकार देव , गुरु एवं धर्म की अविरत कृपा के परिणाम स्वरुप भी विजय भाई दोशी द्वारा किया गया 'श्रुत भीनी आंखों में बिजली चमके' का संकलन जैन धर्म के विराट आकाश की पहचान करवाता है । धर्म के शाश्वत सिद्धांतों की त्रिकाल–स्पर्शिता का हृदयंगम अनुभव विजयभाई के इस अनुपम सर्जन में होता है ।

जैन धर्म के महासागर में श्रावक एक बार गहरी डुबकी लगाए और एक पानीदार मोती प्राप्त करे, फिर जीवन भर महासागर के तल में जाकर उसके उत्तम मोती को खोजता और पाता रहता है । ऐसे विरल धर्म स्पर्श एवं प्रबल आध्यात्म भाव का सुंदर मिलन आपके इस संग्रह में देखने को मिलता है ।

जहाँ कहीं भी श्रुतज्ञान का प्रकाश मिला, उसे एकत्र करने का आपने यहां सुप्रयत्न किया है । तेरह विभाग में हुए विविध विषयों का यह संकलन प्रत्येक विषय की एक दिशा बताता है और दर्शाता है कि इस दिशा में जाते हैं तो विशाल आकाश और अवर्णनीय आनंद का अनुभव पाते हैं । ऐसी श्रुतज्ञान की धारा इस ग्रंथ के तेरह विभागों में एवं विविध विषयों में प्राप्त होता है ।

इस चयन एवं संकलन के पीछे विजयभाई की सूक्ष्म दृष्टि प्रगट होती है । ऐसे संकलन श्रुत ज्ञान के विराट आकाश की हमें झांकी कराता है । इसकी रचना इसके संकलनकर्ता के हृदय को तो आनंद देता ही है, परंतु साथ ही साथ यह रचना जीवन के आचरण में प्रगट होते परम आध्यात्मिकता की अनुभूति प्राप्त कराती है । यह उत्कृष्ट कार्य करते समय विजयभाई ने श्रुतज्ञान का कितना पुरुषार्थ किया होगा, इस विषय में एकांत स्वाध्याय किया होगा । श्रुत भीनी आंखों में कितनी बार आनंद की बिजली की चमक उठी होगी वह विचारणीय है ।

ऐसे सुंदर संकलन के लिए उन्हें धन्यवाद देता हूं एवं श्रुत ज्ञान की धारा अधिक पुष्ट बनते हुए उनके लेखन को और उसके द्वारा हमारी आत्मा को परिप्लावित करती रहे, ऐसी अभ्यर्थना रखता हूँ ।

– पद्मश्री डॉ. कुमारपाल देसाई

'गागर में सागर'

गागर में सागर की तरह आगम के अनेक पकवानों का आस्वाद सुश्रावक विजयभाई दोशी ने इस पुस्तक में कराया है। मनुष्य जीवन अधिक सुख संपन्न बने ऐसा भागीरथ प्रयास किया है।

'श्रुत भीनी आंखों में बिजली चमके' ऐसा शीर्षक देकर, विजयभाई कैसे नैसर्गिक कवि हैं उसकी एक झांकी दिखती है। मैं जब शार्लोट में स्वाध्यायी रुप में प्रवचन देने गया था तब प्रवचन श्रेणि के अंतिम दिन आपने वहाँ बैठे-बैठे ही एक मौलिक कविता मेरे प्रवचनों के ऊपर बनाई एवं संगीत के साथ सकल संघ को श्रवण कराई। तब ही से आपके कवित्व हृदय का तथा शास्त्रीय संगीत के गहरे ज्ञान का मुझे परिचय हुआ था। आपकी धर्मपत्नी तपस्वी नलिनी बेन भी इस भागीरथ कार्य में विशिष्ट योगदान प्रदान करते हैं।

इस पुस्तक की शुरूआत जैनम् जयति शासनम् द्वारा करके विजयभाई ने उनका सम्यग्दर्शन कितना मजबूत है उसकी साक्षी दी है। तेरह विभागों की दमदार पुस्तक एक ग्रंथ समान है। उत्तराध्ययन सूत्र की बात विभाग-4 में, समकित की बात विभाग-6 में, कर्म निवारण की बात विभाग-8 में तथा कथानुयोग विभाग-11 में मुझे अत्यन्त आकर्षित कर गई। खूब ही मनन एव चिंतन द्वारा लिखित यह पुस्तक वाचक वर्ग के लिए भी पुरुषार्थ मांगती है। विभाग-11 के शीर्षक से वास्तव में कथानुयोग से तत्व सरल लगता है।

विभाग-1 में परम पूज्य आचार्य श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी की बात की गई है। वह एक युगप्रधान सम आचार्य थे। शास्त्रीय मर्यादा में रहकर श्री विजयभाई द्वारा किया गया यह भागीरथ प्रयास लघुकर्मी आत्माओं की आत्मा की प्रतीति करावे तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं।

श्री विजयभाई के प्रयास से वाचक वर्ग को एक नई दिशा मिलेगी एवं लघुकर्मी आत्माओं की दशा बदलेगी अर्थात् कि आत्मा का उत्थान हो, आत्मा का कल्याण हो, आत्मा-गुणस्थानक में आगे बढ़े तो कोई आश्चर्य नहीं।

अमेरिका जैसे भौतिक सामग्री के ऐश-आराम के बीच रहने वाली प्रजा को इस पुस्तक के वांचन से जीवन चर्चा में श्रावकत्व लाने का मन बने, इस प्रकार इस पुस्तक का सृजन हुआ है।

प्रभु आपको स्वस्थता पूर्वक का दीर्घ आयुष्य प्रदान करे जिससे अभी ऐसी अनेक तात्विक पुस्तकें समाज को मिलें।

- प्रो. नौतमभाई वकील

(चार्टर्ड एकाउन्टेंट)

धर्मतत्व चिंतक

भूरि भूरि अनुमोदना

परम आराधक, आत्मप्रिय एवं वीर वाणी के उपासक

भाई श्री विजयभाई, प्रणाम ..... जय जिनेन्द्र ....

शार्लोट नोर्थ केरोलीना संघ तीर्थ की सेवा में आपका तथा आपकी धर्मचारिणी नलिनीबेन का पुरुषार्थ अनुपम है। वर्षों से आप शार्लोट जैन संघ को स्वाध्याय कराते हो। आप स्तवनों एवं काव्यों की रचना करते हो। आपके अनेक काव्य एवं स्तवन पुस्तकारूढ़ प्रकाशित भी हुए हैं।

2005 में आपने शार्लोट जैन स्टडी ग्रुप को कराए 1996–2001 तक के स्वाध्याय को 'स्वाध्याय अध्ययन संग्रह' पुस्तक में संग्रहित कर अनेक श्रावक–श्राविकाओं को धर्मलाभ करवाया। मैं आपकी खूब–खूब अनुमोदना करता हूँ।

अब आप 'श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके' पुस्तक को श्रावक–श्राविकाओं के करकमल में प्रस्तुत कर रहे हैं। यह पुस्तक जरूर अनेकों के जीवन में विकास के कुमकुम पगले करेगी। इस पुस्तक में आपके द्वारा तेरह (13) विभाग के नाम पढ़कर बहुत ही धर्म उल्लास हुआ। आपके उदार योगदान की मैं भूरि–भूरि अनुमोदना करता हूँ।

आप हमेशा समय का अत्यन्त सदुपयोग करने वाले हो। श्रावक रत्न के योग्य आराधक हो। आप प्रमाद का त्याग कर स्वाध्याय में लीन रहने वाले होने से परिणामस्वरूप सभी स्वाध्याय प्रेमी को उत्तम सामग्री प्राप्त होती रहती है।

आप के भी इस सत्कार्य की हम अनुमोदना करते हैं। यह पुस्तक सभी के जीवन में शाश्वतता दर्शाने वाली एवं आध्यात्मिकता का प्रकाश प्रगटाने वाली बनी रहे ऐसी अभिलाषा।

प्रभु कृपा से आपका शारीरिक स्वास्थ्य संरक्षित रहे, स्वास्थ्य दीर्घायु मिले एवं संघ के उत्तम कार्य करते रहें ऐसी अभ्यर्थना के साथ ....

– भरत शाह

संकलन–सर्जन की संधि रुप साहित्य के विषय में दो शब्द

अनुमोदना - अभिवंदना

'श्रुत भीनी आंखों में बिजली चमके' प्रस्तुत संकलित ग्रंथ का नामाभिधान कर्ण पटल पर पड़ते ही अथवा शब्द संकलन पर नजर पड़ते ही भाव जगत में एक दृश्य उपस्थित होता है । वर्षाकाल की कोई एक संध्या हो, समग्र गगन मेघ धनुष से छा गया हो । सूर्य का प्रचंड ताप एवं प्रकाश प्रगट न हो तब अचानक धीमी धीमी बारिश से संतृप्त भीनाश वाले बादलों के बीच अचानक प्रकाश होता है, बिजली चमक जाती है, गगन भर जाता है, साथ ही गड़गड़ाहट से वातावरण भी विक्षिप्त हो जाता है । परंतु यह अनुभव रोमांच करने वाला जरूर बनता है ।

ऐसा ही रोमांच अनुभव करने वाले श्री विजयभाई दोशी की सम्पूर्ण स्वाध्याय यात्रा के अंतिम कितने ही वर्षों की मैं प्रत्यक्ष–परोक्ष साक्षी हूँ । वर्षों पहले मैं शार्लोट स्वाध्याय के लिए आई थी । फिर पर्युषण पर्व आराधना शार्लोट जैन सेंटर के जिज्ञासु एवं भावुक आराधकों के साथ की ।

श्री विजयभाई दोशी द्वारा रोपित स्वाध्याय के खेत की खेती एवं ऊपज को प्रत्यक्ष देखते, कृषिकार की अथाह मेहनत का अनुभव हुआ था । इस विकास की श्रृंखला के प्रत्येक पगले के अनुभव की अनुभूतियों एवं वैविध्यपूर्ण प्रवास की झलक हमें भी अनुभव करनी है, 'श्रुत भीनी आंखों में बिजली चमके' के साथ ।

''तत्वार्थाधिगम'' जैसे नींव रुप ग्रंथ के गहरे अभ्यास के बाद तत्काल, प्रतिमान रुप 'स्वाध्याय अध्ययन संग्रह' के मुद्रण के बाद श्रुत भीनी के भाव जगत को चलो मनाएं ।

संकलन एवं सर्जन की उभय साधना का जिसमें समन्वय है ऐसे इस प्रकाशन में 'प्रकाशकिय निवेदन' द्वारा वाचक को सम्पूर्ण ग्रंथ का मानो कि आधार मिल जाए । लेखक नहीं, चित्रकार की तरह सम्पूर्ण निवेदन श्री विजयभाई ने प्रस्तुत किया है । इसलिये वाचक मनपसंद विषय पर मोहर लगाकर वहां से शुरुआत करते हैं, कर सकते हैं ।

ज्वेलर्स की दुकान में ज्वेलरी की खरीदी, उसकी सुंदरता से अधिक ग्राहक की, खरीदने की शक्ति पर निर्भर रहती है । बाकी प्रत्येक ज्वेलरी मूल्यवान होती है ।

अनुक्रमणिका में दर्शाए अनुसार विभाग 1–2 में प्रथम विभाग जैनम् जयति शासनम् द्वारा प्रस्तुतकर्ता जिनशासन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर कलम को आगे चलाते–चलाते अंत में डंका

बजाकर जगत को मानो कह रहे हों इन समस्त तलस्पर्शी अभ्यासों का साररुप या इतने वर्षों के मंथन द्वारा प्राप्त नवनीत रुप भाव है, वह यह है कि 'जिन आगम ही तारे' तो इन 12 अंग का योगानुयोग आयोजन रुप 12 विभागों का पूर्ण अध्ययन ही जिज्ञासु के लिये अनिवार्य रुप बनता है।

एक-एक विभाग में बहुत संकलन रूप तो बहुत सर्जन रुप भी है। आधारभूत माहिती तथा उसके समस्त आधार ग्रंथों की भी विगत द्वारा जिज्ञासु उसका भी लाभ ले सके यह लक्ष्य बहुत ही प्रेरक बन जाएगा।

12 विभाग की विषय सूचि, विषयों की भिन्नता के साथ गहरा अनुभव कराती है। निखालसतापूर्वक कर्ता की प्रसिद्ध रहित सर्जनशक्ति का कौशल्य रखने वाले श्री विजयभाई दोशी को जितना धन्यवाद दें उतना कम है। श्री विजय भाई मूल से प्रकृति से भावुक एवं कविहृदय होने से उनकी शैली काव्यमय प्रवाहिता से संपूरित है और फिर भी योग्य शब्द पसंदगी एवं अर्थगाभीर्य का भी उपयोग हुआ है। आध्यात्म जगत के भाव तर्कबुद्धि एवं तथ्य के साथ जुड़े हुए होने से वहां शब्द की पसंदगी काव्यात्मक से अधिक प्रमाणभूत होना चाहिए इसकी भी सावधानी यहां आवश्यक है, यही सर्जक की श्रेष्ठ जागृति है।

किसी भी सर्जक की सफलता में पर्दे के पीछे का सहयोग बहुत बड़ा परिबल होता है। उसी प्रकार यहां भी आपके जीवन संगिनी नलिनी बेन का अद्भुत सहयोग, समर्पण एवं समयदान को याद किए बिना प्रस्तावना, अधूरी ही मानी जाएगी।

श्री विजयभाई दोशी के इस उपक्रम के बाद भी अभी उनके सुदीर्घ आयुकाल की प्रत्येक पल के सफल रुप में अधिकाधिक ग्रंथों की प्राप्ति हो ऐसे हृदयोद्गार के साथ मैं उनके प्रयत्न की पूर्ण अनुमोदना करती हूँ तथा अदृश्य के आशीर्वाद की अपेक्षा कर विराम लेती हूँ।

विदेश में रहने के पश्चात् भी 'वीतराग को नहीं भूले और वतन छोड़ने के बावजूद भी संस्कार नहीं छूटे' ऐसे जिज्ञासु जैन समाज की अपेक्षा में से उद्भवित ऐसे मोतियों का मरजीवा के समान श्रुतसागर के अथाग प्रयत्नशील पुरुषार्थ को करने वाले सर्जकों को अभिनंदन पूर्वक की अभिवंदना के साथ ...

– तरलाबेन दोशी का जय जिनेन्द्र

आधार ग्रंथ तथा लेख : References

- सकलार्हत स्तोत्र
- अरिहंत वंदनावली
- प्रबुद्ध जीवन सामायिक
- डॉ. प्रीति शाह लिखित लेख
- पंडिवर्य श्री पन्नालाल ज. गांधी
- पू. धीरूभाई पंडित
- बाबूभाई संघवी कड़ीवाला
- जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 3
- स्थानांग – समवायांग सूत्र (आगमिक व्याख्याएँ)
- आचारांग सूत्र
- प्रेरणा पत्र सामायिक प्रतो
- 'प्रबुद्ध जीवन' 2012 अक्टू.सितम्बर
- सामायिक आगम सूत्र परिचय
- यशोविजयजी जैन संस्कृत पाठशाला मेहसाणा
- नव तत्व प्रकरण।

प. पू. साधु भगवंतों की वाणी

- प. पू. आ. विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी म.सा.
- प. पू. हरीशभद्र विजयजी महाराजा सा.
- प. पू. राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा सा.
- प. पू. युगभूषण विजयजी म.सा. (छोटे पंडित म.सा.)
- प. पू. नंदीघोष विजयजी म.सा. लिखित 'जैन दर्शन के वैज्ञानिक रहस्य'
- प. पू. हेमरत्न सूरीश्वरजी म.सा. लिखित लेख
- प. पू. हेमचन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा.
- प. पू. आचार्य भुवनभानु सूरीश्वरजी म.सा.
- प. पू. आचार्य गुरुवर्य विशालसेन सूरिजी म.सा.
- प. पू. गणिवर्य नयवर्धन विजयजी म.सा.
- प. पू. विद्या विजयजी म.सा.
- प. पू. पुण्यविजयजी क्षमाश्रमण म.सा. लिखित 'भगवती सूत्र सार भाग–1'
- प. पू. आचार्य श्री राजशेखर सूरीश्वरजी म.सा. लिखित 'तत्वार्थाधिगम सूत्र'
- प. पू. आचार्य श्री जयसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.

* प. पू. चित्रभानुजी लिखित विवेचन
* प. पू. आ. श्री विजय लक्ष्मीसूरीश्वरजी म.सा. लिखित ''तत्वार्थाधिगम सूत्र'
* प. पू. मेघदर्शन विजयजी म.सा. लिखित 'तत्व झरना', 'कर्म का कम्प्यूटर
* प. पू. न्याय विजयजी म.सा. लिखित 'जैन दर्शन' ग्रंथ
* प. पू. आचार्य विजय लक्ष्मण सूरीश्वरजी म.सा. लिखित 'आत्म तत्व विचार'
* प. पू. आचार्य महाप्रज्ञजी लिखित 'महावीर का पुनर्जन्म'
* प. पू. नम्रमुनि लिखित एक लेख : 'आगम मोक्ष मार्ग का निर्देश करता है।'
* प. पू. रत्नभानु विजयजी महाराज
* प. पू. जयघोष सूरीश्वरजी म.सा. लिखित लेख : 'चित्रशुद्धि'
* प. पू. कीर्तियश सूरीश्वरजी म.सा. लिखित 'आगम जानिए' भाग 1-3, 'उचित आचरण ग्रंथ' भाग 1-8
* प. पू. युगभूषण विजयजी (छोटे पंडित म.सा.) लिखित ग्रंथों : 'धर्म तीर्थ' भाग 1-2, 'मनोविजय एवं आत्मशुद्धि', 'आश्रव एवं अनुबंध', 'कर्मवाद कणिका'।
* बा. ब्र. पू. श्री नम्रमुनि म.सा. लिखित 'आगम के मोती (आश्चर्यों की अवधि)
* प. पू. युगभूषण विजयजी म.सा. (छोटे पंडित म.सा.) लिखित 'मोक्ष का स्वरुप समझिए'।

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पेज नं.
विभाग 1	जिनशासन है आनंदधन	1
विभाग 2	नवकार ज्ञान व तत्वज्ञान	17
विभाग 3	जयणा से दर्शनाचार तक	41
विभाग 4	'अंतिम देशना' के कुछ अध्ययने	72
विभाग 5	कल्याण यात्रा	133
विभाग 6	गीत समकित का, लक्ष्य मोक्ष का	153
विभाग 7	तत्व झरणा	207
विभाग 8	कर्म निवारण	247
विभाग 9	मन का मारना	281
विभाग 10	मोक्ष, ध्यान, केवलज्ञान	305
विभाग 11	धर्म कथानुयोग	321
विभाग 12	जिन आगम तारे, भव पार उतारे	359
विभाग 13	परिशिष्ट	418

सर्व मंगल मांगल्यम्

सर्व कल्याण कारणम्

प्रधानम् सर्व धर्माणाम्

जैनम् जयति शासनम्

जैनम् जयति शासनम्

विभाग – १

- ‘श्रद्धांध’ के अंतर का नाद, 3 स्तुतियाँ 02
- पांच जिनराज की स्तुति 04
- अरिहंत वंदनावली 05
- जैन धर्म की संक्षिप्त पाट परम्परा 06
- भारतीय जगत के विविध मुख्य दर्शन 07
- शासन सेवा 08
- शासन प्रभावना 09
- ‘इसे ध्यान से विचारें’ 10

  प.पू. आचार्य श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.
- आत्मा किस प्रकार तीर्थंकर आत्मा बनती है ? 11
- सुवाक्य एवं आत्मज्ञान। 14
- आध्यात्मिक मंथन - सुवाक्यों 15

सवि जीव करूँ

हे प्रभु ! मुझे ...
विचारों का औदार्य,
शांतिमय शक्ति का संचार
भक्तिमय प्रेम की प्रेरणा एवं
समता गुण की शीतलता के अंकूरों
को खिलाने की सतत विचारधारा प्रदान करें ...
मुझे अभी भी कितने ही जीवों को
खूब-खूब प्रेम करना बाकी है ।

अप्रैल - 89

प्रतिक्रमण

दृष्टि अंतर्मुख करी त्यां
मारुं अनशन क्लोवायुं
सुषुप्त मनना अतीत नी केडी पर
ऊगी चूक्यांतां पुष्पो अति, विष्यनां !
झरतुं हतुं मांहे थी
अप्रशस्त 'राग'नुं मीण
जे नीतरतुं रह्यु नयनेथी,
खारूं पीण ....
गर्हानी राखणी कर्युं पारणुं
चही दृष्टिमां उद्योत अने
पा... पा... पगली, समकिन कने .... !!

सितम्बर - 99

अप्पाणं वोसिरामि .....

जिनाज्ञानुसार आराधना कर,

सर्व कर्मों का क्षय कर, मैं मोक्षसुख प्राप्त करूँ

तथा सर्वजीवों को भी मोक्ष सुख प्राप्त हो ...

पूर्व के अनंत भवों में अनंत शरीर धारण किए,

अनंत संबंध बनाए, अनंत उपधियाँ-

साधन-सामग्री एकत्रित की,

परंतु वोसिराई नहीं ...

इस भव में भी आज तक,

शरीर में से अनंत पुद्गलों, दीर्घनीति, लघुनीति,

मल, श्लेष्म आदि निकले, नकामी वस्तुओं, घर का कचरा,

सब्जी-भाजी आदि का कचरा पड़ा रहे,

और संमुच्छिम जीव उत्पन्न हों उसमें भागीदार बना ...

पुद्गलों को वोसिराया नहीं, उन समस्त

पुद्गलों को अब वोसिराता हूँ

अरिहंत-सिद्ध-गुरुदेव की साक्षी से

त्रिविधि-त्रिविधि वोसिरामि, वोसिरामी

पच्चक्खाण पडिक्कमामि निंदामि,

गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ....

पाँच जिनराज की स्तुतियाँ ....

आदिनाथजी

आदिमं पृथ्वीनाथम्, आदिमं निष्परिग्रहम्
आदिमं तीर्थनाथम् च, ऋषभः स्वामिनं स्तुमः ।

शांतिनाथजी

सुधा सोदर वाग् ज्योत्सना, निर्मलीकृतदिङ्ग मुखः,
मृगलक्ष्मा तम शांत्यै, शांतिनाथ जिनोऽस्तुवः ।

नेमिनाथजी

यदुवंश समुन्द्रेन्दुः कर्मकक्ष हुताशनः,
अरिष्टनेमिर्भगवान्, भूयाद्धेऽरिष्ट नाशनः ।

पार्श्वनाथजी

कमठे धरणेन्द्रे च, स्वोचितं कर्म कुर्वति
प्रभुस्तुल्य मनोवृत्तिः, पार्श्वनाथ श्रियेस्तु वः ।

महावीर स्वामीजी

श्रीमते वीरनाथाय, सनाथायाद् भूतश्रिया,
महानन्द सरोराज, मरालायार्हते नमः ।।

अरिहंत वंदनावली

(छंद हरिगीतिका)

बहुश्रूत चिंतानाचार्य कृत प्राकृत स्तोत्र के गुजराती अनुवाद में से स्वाध्याय : रविवार, 10 अगस्त 2008

दीक्षा कल्याणक

निर्मल विपुलमति मन:पर्यव ज्ञान सहेजे दीपतां,
जे पांच समिति गुप्ति त्रयनी रयणमाला धारतां,
दस भेद थी जे श्रमण सुंदर धर्म नुं पालन करे,
एवां प्रभु अरिहंत ने पंचांग भावे हुँ नमुं ।

लोकोपकार

जे बीज भूत गणाय छे, त्रण पद चतुर्दश पूर्वना,
उपन्नेई वा विगमेई वा ध्रुवेई ना महातत्व ना ।
ए दान सु-श्रुतज्ञान नुं देनार त्रण जगन्नाथ जे,
एवां प्रभु अरिहंत ने पंचांग भावे हुँ नमुं ।

तीर्थ स्थापना

जेना गुणों ना सिंधु ना बे बिंदु पण जाणु नहीं,
पण एक श्रद्धा दिलमहीं के नाथ सम को छे नहीं ।
जेना सहारे क्रोड़ तरीया, मुक्ति मुज निश्चय सही,
एवां प्रभु अरिहंत ने पंचांग भावे हुं नमुं ।

जीवन के समस्त प्रपंचों को वास्तविक स्वरूप में देखना और वास्तविक सत्यों को स्वीकारने की अवस्था ही वैराग्य है ।

अग्नि होने के पश्चात् भी अग्नि को न मानोगे तो जलोगे ही ।

संसार छोड़ने जैसा है, संयम लेना जैसा है और मोक्ष पाने जैसा है, इस बात को मानना-स्वीकारना ही वैराग्य है ।

जैन धर्म की संक्षिप्त पाट परम्परा

महावीर स्वामी

सुधर्मा स्वामी

जंबू स्वामी

प्रभव स्वामी

शय्यंभव सूरि

यशोभद्रसूरि

संभूति विजयजी

भद्रबाहु स्वामी

स्थूलीभद्र मुनि

आर्य महागिरि

आर्य सुहस्तिगिरि

शास्त्र सर्जनकार प्रभावकों :-

सिद्धसेन दिवाकरजी	-	सम्मति तर्क
वादिदेव सूरिजी	-	तर्क शिरोमणी
जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण	-	वल्लभीपुर में आगमो को लिपीबद्ध करवाये
उमास्वातिजी	-	तत्वार्थ सूत्रादि ग्रंथों के रचयिता
हेमचंद्राचार्यजी	-	सिद्ध हेम व्याकरण रचयिता
हरिभद्रसूरिजी	-	1444 ग्रंथ रचयिता
यशोविजयजी उपाध्याय	-	आध्यात्मसार आदि .....
मलयगिरि म.सा.	-	उत्कृष्ट क्षयोपशमधारी
विनयविजयजी	-	नाम जैसे गुण के धारक
राजेन्द्रसूरिजी	-	प्राकृत शब्दकोष आदि .....
कुंदकुंदाचार्य	-	समयसार, प्रवचनसार आदि .....
पूज्यपाद स्वामी	-	जैन शासन की अनुपम सेवा की ।

विहंगावलोकन

भारतीय जगत के विविध मुख्य दर्शन

(अति संक्षिप्त)

1. बौद्ध
2. नैयायिक, 3. वैशेषिक दर्शन, 4. सांख्य, 5. योग दर्शन
   (2 से 5 तक के दर्शन समान अभिप्राय वाले हैं)
6. जैन
7. पूर्व मीमांसा अथवा जेमिनी दर्शन
8. उत्तर मीमांसा अथवा वेदांत दर्शन
9. चावार्क - यह दर्शन आत्म को स्वीकारता नहीं है।

✻ जैन दर्शन एवं बौद्ध दर्शन को छोड़कर अन्य सभी दर्शन वेद को मुख्य रूप से प्रवर्तित करते हैं।

✻ बौद्ध एवं जैन दर्शन स्वतंत्र दर्शन हैं, वेदाश्रित नहीं हैं।

✻ बौद्ध दर्शन के मुख्य 4 भेद हैं :-
(1) सौतांत्रिक (2) माध्यमिक (3) शून्यवादी (4) विज्ञानवादी

✻ जैन दर्शन के सहज रूप से दो भेद हैं :- (1) श्वेताम्बर (2) दिगम्बर

✻ चावार्क सिवाय सभी आस्तिक दर्शन है। जगत को अनादि मानते हैं।

सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं है - बौद्ध, सांख्य, जैन
तटस्थ रूप से ईश्वर कर्ता एवं सर्व व्यापक है - नैयायिक दर्शन
कल्पित रूप से ईश्वर कर्ता है - वेदांत दर्शन
नियंता रूप से ईश्वर पुरुष विशेष है - नैयायिक दर्शन
त्रिकाल वस्तु रूप आत्मा नहीं है, क्षणिक है - बौद्ध दर्शन
अनंत द्रव्य आत्मता, प्रत्येक भिन्न है - जैन दर्शन
सर्व व्यापक असंख्य आत्मा है, वह नित्य अपरिणामी है - सांख्य दर्शन
जीव असंख्य है, चेतन है - पूर्व मीमांसा
एक ही आत्मा सर्वव्यापक सत्चिदानन्दमय त्रिकाल बाध्य है-वेदांत दर्शन

शासन सेवा

इय संपत्तिअभावे, जत्ता पूयाइ जणमणोस्सणं ।

जिणजइविसयं सयलं, पभावणा सुद्धभावेणं ।। स. स. 39

जैन शासन को प्राप्त कर जिस आत्मा के पास जैसी शक्ति हो, उस प्रकार की शक्ति द्वारा यत्किंचित् भी उस आत्मा को जैन शासन की प्रभावना करनी चाहिए ।

परमात्मा महावीर ने संयमी जीवों के कल्याणार्थ 'जैन शासन' रूप दीपक प्रगटाया है । इस दीपक में अपनी शक्ति अनुसार एक-दो-तीन चम्मच घी डालने का शुभ कार्य अवश्य करना चाहिए । इससे यह दीपक पाँचवे आरे के अंत तक प्रकाशमान रहे । जगत के जीवों को तारने का, प्रकाश देने का कार्य होता रहे । यही मनुष्य जीवन का सार है ।

जीवन में संप्राप्त रिद्धि-सिद्धि, लब्धि, मान-पान, प्रतिष्ठा का उपयोग संसार के लिए या स्व प्रशंसा के लिए अपने विद्यामय जैन आचार्यों, उपाध्यायों, मुनि भगवंतों एवं श्रेष्ठियों करते नहीं, परंतु शासन प्रभावना के लिए ही करते हैं ।

हम भी इसी दृष्टि से जीवन यापन कर अपना योगदान शासन प्रभावना के तारणहारी कार्य में देकर अपना उत्साह एवं उमंग बताएँ ।

शासन प्रभावना

* अमेरिका में जीवन यापन कर रहे बालकों को पाठशाला में धेर्मक्षैत्र के लिए तैयार करने में योगदान।

* Jain Scholar Visitation में रसपूर्वक अग्रणी रहकर भाग लेना, उनको घर पर सम्मान स्वागतपूर्वक रखकर सार संभाल में मदद करना।

* संघ में उत्सूत्र प्ररूपणा रूप आचरण, 'मैं करूँ वह सत्य' की हठ में दृढ़ ऐसे जीवों की अनुमोदना से दूर रहना। जिन शासन की निंदा न हो इसकी संपूर्ण सावधानी रखकर हमेशा जागृत रहना।

* शक्ति के अनुसार स्वाध्याय, सामायिक, प्रतिक्रमण, आयम्बिल, एकासना, उपवास आदि धर्म अनुष्ठानों में उत्साह एवं उमंग से जुड़ना। पूजा-प्रक्षालन आदि विधि-विधान में मदद करना।

* संघ की 'प्रशस्त' प्रवृत्तियों में तन-मन-धन से योगदान देना, जिससे मन प्रसन्न रहे।

धर्म प्रभावना के मुख्य रूप से दो फल होते हैं, एक तात्विक तथा दूसरा आनुषांगिक। चित्त की प्रसन्नता, प्रसन्नता का फल चित्त की समाधि एवं समाधि का फल केवलज्ञान और अंत में मोक्ष। तात्विक फलस्वरूप सभी की आत्मा को आकर्षित करे तथा शासन सेवा जीवन को विकसित करती रहे यही अभ्यर्थना ....

इसे ध्यान से विचारें ....

(पू. आचार्यदेव श्री विजय रामचन्द्रसूरिजी म.सा. के प्रवचनों में से उद्धृत)

* भगवान का संघ जगत का ज्वाजल्यमान हीरा है । बनियों का टोला एकत्र होकर संघ बन जाए और स्वयं को पच्चीसवाँ तीर्थंकर कहे, ऐसा पच्चीसवाँ तीर्थंकर तो चौबीस तीर्थंकरों की आज्ञा का उल्लंघन करते हैं । ऐसे आज्ञाविहीन टोले से कभी संघ नहीं बनता है ।

* कम खाना यह अच्छा, गम खाना यह भी अच्छा, परंतु सत्य का साथ छोड़ना यह खराब । असत्य को स्वीकारना यह तो इससे भी खराब । सत्य और असत्य के मध्य समाधान न हो । पैसों की लेन-देन में समाधान हो । कारण यह है कि यह छोड़ने जैसी वस्तु है ।

* सत्य छोड़ने जैसी वस्तु नहीं है । सत्य छोड़ने में नाश है । भगवान के समवसरण में विराजते 363 पाखंडीयो में से एक के भी साथ भगवान ने समाधान नहीं किया । उनके साथ एकता के प्रयास भी नहीं किए। दो और दो चार होते हैं, इसे जो स्वीकारे उसके साथ ही समाधान हो सकता है । पांच या तीन बोले उसके साथ कभी नहीं होता ।

ऐसी श्री जिनेश्वर प्रभु की वाणी

प. पू. श्री विजय रामचन्द्रसूरिजी म.सा. के दिल में आणी ।

मानव से
महामानव (तीर्थंकर प्रभु) कैसे बनते हैं ?

महावीर का संदेश - शाश्वत वाणी .....

समस्त प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है इस हेतु सूक्ष्मातिसूक्ष्म से लेकर लघु बृहद चेतनावंत किसी भी जीव की हत्या ना ही करना चाहिए ना ही करवाना चाहिए। इसका यथार्थ रूपेण पालन हो सके इसके लिए सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह इन पांचों आदेशों को आचरण में लाना चाहिए।

शास्त्रोक्त वचन के आधार पर जीवन विकास की गति

मानव से महामानव बनने वाली आत्मा

तीर्थंकर परमात्मा रूप किस प्रकार बनती हैं ?

- अखिल विश्व के प्राणी मात्र में से अनेक आत्माएँ विशिष्ट कोटि की होती हैं, जो ईश्वरीय स्थिति तक पहुँचने की योग्यता रखती हैं।
- जड़ या चेतन का निमित्त मिलते, मनुष्य भव हो तब इस विशिष्ट आत्मा की विकास की गति बहुत ही शीघ्र होती है।
- एक ही जन्म में मैत्री भावना पराकाष्ठा पर पहुँचती है। उनकी आत्मा में सागर से भी विशाल मैत्री भाव का जन्म होता है। विश्व के समग्र आत्माओं को स्व-आत्मतुल्य समझती है। एक उत्कृष्ट भाव जागृत होता है कि इस आत्माओं को दु:ख में से मुक्त करने के लिए मैं शक्तिमान बनूँ ? NIAGARA के प्रवाह से भी अनेक गुना अधिक एवं वायु से भी अधिक वेगवान भावना का महास्त्रोत परमात्म दशा को प्राप्त कर सके इसी स्थिति का निर्माण करता है। ऐसी स्थिति के निर्माण होने का जन्म यह परमात्मा बनने वाले भव पहले का तीसरा भव होता है।

इसके पश्चात् के तीसरे भव में पूर्व में अहिंसा, सत्य, करुणा, देव-गुरु भक्ति, दया, सरलता आदि गुणों द्वारा जो साधना की थी उस साधना के फल रूप जन्म लेते है और परमात्मा बनते हैं। यह उसका चरम अंतिम भव होता है।

- जन्म के साथ ही अमुक कक्षा का मति-श्रुत-अवधि विशिष्ट ज्ञान लेकर ही जन्मते है। इस कारण ही वर्तमान, व्यतित, भविष्यमान की घटनाओं को अंशतः देख सकते हैं।

- गृहस्थ धर्म में होने के बाद भी आध्यात्मिक साधना प्रारंभ ही रहती है। स्वयं के प्राप्त ज्ञान से स्वयं के भोगावली कर्म अवशेष है ऐसा जाने तो कर्मक्षय हेतु लग्न स्वीकार करते हैं। यदि अनावश्यक हो तो अस्वीकार करते हैं।

- उसके पश्चात् चारित्र, दीक्षा/संयम के अवरोध आने वाले चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम होते ही एक महा उपयोग से, विश्व कल्याण के लिए योग्य समय आते है ही चारित्र ग्रहण करते हैं। स्वयं का यथार्थ मार्ग जानना ही चाहिए ऐसे उत्कृष्ट आचार के योग से संपूर्ण ज्ञान ऐसा केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाते हैं। सर्वथा मोह का क्षय किए बिना ऐसा ज्ञान प्रकटित नहीं होता है इसलिए भगवान साधना में प्रचण्ड रूप से तैयार रहते हैं। अति निर्मल संयम की साधना, विपुल एवं अग्रकोटि की तपस्या को कार्य सिद्धि का माध्यम बनाकर गाँव-गाँव, नगर-नगर, जंगल आदि में विचरते हैं। 'सर्वज्ञ' की पदवी प्राप्त होते ही, विश्व के तमाम द्रव्यों-पदार्थों उसके पर्यायों, त्रैकालिक भावों को संपूर्ण रुप से जानने वाले तथा देखने वाले बनते हैं।

- सर्वगुण सम्पन्न प्रभु हजारों आत्माओं को मंगल एवं श्रेयस्कारी उपदेश, सतत रुप से स्वयं की ३५ गुण सम्पन्न वाणी में प्रसारित करते हैं ।

- ऐसे अरिहंत प्रभु की आत्मा १८ दोषों से रहित है । परम पवित्र एवं परम उपकारी है, वीतराग है, प्रशम रस से पूर्ण है, पूर्णानन्दमय है ।

- प्रभु की मुक्ति मार्ग बताने की शैली अनोखी होती है । तत्व प्रतिपादन, हमेशा स्याद्वाद-अनेकांतवाद की मुद्रा से अंकित है । मन, वचन एवं काया के निग्रह में प्रभु अजोड़ है । सूर्य से अधिक तेजस्वी तथा चन्द्र से अधिक शीतल है । सागर से भी अधिक गंभीर है तो मेरु की तरह अडिग और अचल है । अनुपम रुप के स्वामी है । अरिहंत भगवान परम उपास्य है एवं इसी कारण नितान्त स्तुति के पात्र है ।

जैनम् जयति शासनम्

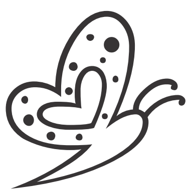

सुवाक्यों द्वारा आत्मज्ञान

- ❖ जैसा भाव वैसा भव, जैसी गति वैसी मति।
- ❖ सम्यक्त्व द्वारा आत्मा का आत्मिक सुख प्रगट होता है।
- ❖ वजन घटते हुए जैसे संवेदन होता है, वैसे ही कर्म घटते होते ही जीव को संवेदन होता है।
- ❖ कर्म का नाश शुभ ध्यान द्वारा होता है। ध्यान ग्यारहवाँ तप है। मृत्यु हो वहाँ सुख नहीं होता, इसीलिए अजन्मा बनना चाहिए।
- ❖ जब से धर्म भावना शुरू होती है, तब से उम्र की गिनती प्रारम्भ होती है।
- ❖ इस भव में कर्मक्षय करना हो तो ज्ञान-ध्यान-वैराग्य होना चाहिए। ऐसे धर्म मार्ग में प्रवेश करने के लिए, हम में भी रस-कस होना चाहिए।
- ❖ हमारा संपूर्ण मनोबल संसार में खत्म हो गया इसलिए वृद्धावस्था में धर्म करते समय रस-कस बहुत कम मात्रा में रह जाता है।
- ❖ चक्रवर्ती जैसे समृद्धिवंतों ने भी संसार में सुख समझा/देखा नहीं।
- ❖ स्वभाव से छूटे वह संसार में डूबे।
- ❖ प्रतिकूल संयोगों के व्यक्तियों के साथ समता भाव में स्वस्थता पूर्वक जीना सीखो।
- ❖ वस्तु के स्वरुप को समझो। फ्रीज में भी दही खट्टा ही होता है।
- ❖ आयुष्य पूर्ण होने पर स्वर्गीय लिखा जाता है। परन्तु स्वर्ग में भी सुख कहाँ है ? वहाँ से पुनः जन्म लेना पड़ता है। सम्यक्त्व रहित स्वर्ग के जीव अवश्य वनस्पतिकाय या अपकाय में जन्म लेता है।
- ❖ ऐश्वर्य तुझे छोड़े उसके पूर्व तू ऐश्वर्य को छोड़।

आध्यात्मिक मंथन – सुवाक्यों

- ❖ जीवन में चिंता नहीं, चिंतन करना चाहिए।
- ❖ साँप के साथ सो सकते हैं, पाप के साथ कभी नहीं।
- ❖ लक्ष्मी का व्यय तीन प्रकार से होता है ; दान से, भोग से, नाश से।
- ❖ काले वरसे तो मेघ नहीं तो मावठा।
- ❖ दृष्टि पड़े वहाँ दोष है, पद (पैर) पड़े वहाँ पाप है।
- ❖ दूसरों के अधिकारों को छिनना वह अदत्त है।
- ❖ धर्म पुरुषार्थाधिन है, लक्ष्मी भाग्याधिन है।
- ❖ खड़े-खड़े निकलो नहीं लेटा कर निकालेगें। संत खड़े-खड़े संसार छोड़ते हैं।
- ❖ चेतन काया को हमेशा साथ देता है, क्या काया चेतन को साथ देती है ? काया तो चेतन को नचाती है।
- ❖ आत्मा के शुद्ध पर्याय को धारण करे वह 'सत्य'।
- ❖ आराधना (स्वाध्याय) न करने से विराधक बन जाते हैं।
- ❖ ज्ञान के अथवा ज्ञानी के शरण में रहो।
- ❖ अहिंसा प्रत्येक धर्म का केन्द्र बिन्दु है। जीवन में अगर अहिंसा न रहे तो एक भी व्रत नहीं रहता।
- ❖ तप में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ एवं अभयदान दान में। मनुष्य भव में ही 'अवेदि' बना जा सकता है। याने कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद या नपुंसक वेद को टाला जा सकता है।
- ❖ विकार भाव में धिक्कार वचनों से आत्मा को बचाना चाहिए।
- ❖ महाआरंभ – महापरिग्रह।
- ❖ संसार में किसी द्रव्य की शक्ति नहीं है कि वह हमें पकड़ सके।
- ❖ लाहा लोहो पवड्ढई – लाभ से 'लोभ-कषाय' बढ़ते हैं।
- ❖ प्रतिक्रमण-भूतकाल का, संवर-वर्तमान का, प्रायश्चित-भविष्यकाल का। वीर क्षमा से हुए, बल से नहीं।
- ❖ भविष्य नहीं, वर्तमान को सुधारो।
- ❖ निमित्त को निमित्त समझो, कारण नहीं।

प्रतिक्रमण

दृष्टि अंतर्मुख करी त्यां
मारुं अनशन क्लोवायुं

सुषुप्त मनना अतीत नी केडी पर
ऊगी चूक्यांतां पुष्पो अति, विष्यनां !

झरतुं हतुं मांहे थी
अप्रशस्त 'राग'नु मीण

जे नीतरतुं रह्युं नयनेथी,
खारूं पीण ....
गर्हानी राखणी कर्युं पारणुं

चही दृष्टिमां उद्योत अने
पा... पा... पगली, समकिन कने .... !!

सितम्बर – 99

विभाग – २

- 'श्रद्धांध' की स्तुतियाँ 18
- नवकार महामंत्र 20
- प्रभु द्वारा प्रणीत तीन मुख्य बातें 24
- आत्मा को भावित करिए 27
- आणा ए धम्मो 28
- कामराग एवं स्नेहराग का वैचित्र्य 31
- मुनि भगवंतों की वाणी 32
- तत्वज्ञान चिंतन 39

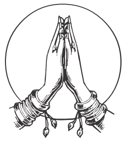

दशाएँ आत्मा की .....

अंतर आत्मदशा सुख माणवा माटे
बहिरात्मा ने मूल थी पीछाणवो पडशे
परम परमात्म पद ने पामवा माटे
महात्मा नी अवस्था साधवी पडशे ...

अंतर आत्मदशा ....

बहिरात्मा रहे आसक्त, पुद्गल ना प्रवाहो मां
करे ए क्षुद्रता, रति लाभ मां, दीनता अलाभो मां
भूल्यो तु मुर्ख थई, मत्सर बनी, भयमां ने शठतामां
अवस्था मूढतानी तो हवे बस नाथवी पडशे ....

अंतर आत्मदशा ....

बहिरात्मा रहे लपटाई ने मोहांध संसारी
रहे संसार मां, अंतर आत्मा, समकित आधारी
त्यजी संसार साधु महात्मा, मनथी छे अणगारी
दया मां हाथ आ 'श्रद्धांध' नो बस झालवो पडशे ....

अंतर आत्मदशा ....

''श्रद्धांध''
अप्रैल 2005

प. पू. पं. श्री नयवर्धन विजयजी म.सा. लिखित 'आत्मा थी परमात्मा' पुस्तक के आधार पर प्रेरणा द्वारा लिखा गया

संयम चारित्र ने भावतां भावतां

(राग भूपाली)

सरल शुद्धश्वर राग भूपाली, मध्धम निषाद वर्जित है
आत्म स्वरूप प्रगट करनको सुरवर मुनि भूप गावत है ।

लेवा जेवुं ना लीधुं मैं, संयम चारित्र आ भव मां
छोड़वा जेवो छोड़यो नहीं, खारो संसार मैं आ भव मां
लेवा जेवुं .....

शाश्वत सुख ने समझ्यो नहीं तुं राच्यो सहु सुख आभास मां
मेलववा जेवो क्यांथी मले तने मोक्ष दूषित आ मारग मां
लेवा जेवुं .....

दस दृष्टांते दुर्लभ एवो मानव भव एले जाय ना
'श्रद्धांध' चहे दोष निवारण, आत्म उजागर अंतर मां
लेवा जेवुं .....

'श्रद्धांध'

2010

दीप्ति बहिन की दीक्षा के पश्चात् अनुप्रेक्षा रुप विचारते हुए जो प्रेरणा प्राप्त हुई उसके फलस्वरूप लिखा गया

नमस्कार महामंत्र

❖ सर्वोपरि स्थान पर विराजित अति महत्व का पवित्रतम मंत्र है, शक्तिशाली श्रेष्ठ मंत्र है, शाश्वत मंत्र है ।

❖ <u>4 आगमिक नाम :-</u>

1. श्री नवकार महामंत्र
2. नमस्कार महामंत्र
3. श्री पंचपरमेष्ठिमहामंत्र
4. पंचमंगल महाश्रुतस्कंध

❖ 9 पद एवं 8 संपदा है ।

❖ 68 अक्षर 68 तीर्थ समान है ।

❖ 68 अक्षरों में 7 गुरु एवं 61 लघु अक्षर हैं ।

❖ प्रत्येक अक्षर पर 1008 विद्या देवियाँ निवास करती हैं ।+

❖ प्रथम पांच पद में पंच परमेष्ठि भगवंतों का समावेश है । जगत में इन पांच पदों से श्रेष्ठ कोई पद है ही नहीं । यह पांचों पद व्यक्तिवाचक पद नहीं है, गुणवाचक पद हैं, इसलिए सनातन हैं ।

\+ नवकार मंत्र का एक अक्षर सात सागरोपम के पापों का नाश करने में समर्थ है ।

धर्म का बीज

पूज्य हरिभद्रसूरिजी म.सा. ने कहा है कि जब तक जिनेश्वर प्रभु का वचन सत्य है, ऐसी श्रद्धा हृदयस्थ न हो जाए तब तक आत्मा आगे बढ़ नहीं सकती । इसे ही धर्म का बीज कहा है।

नवकार मंत्र कब फलता है ?

मन में किसी प्रकार की गांठ न हो तो ही नवकार मंत्र फलता है ।

मन में गांठ हो तो वह किस प्रकार जानकारी होती है ?

जब जब हमें अनुकूलता में रहना ही प्रिय लगे और प्रतिकूलता अप्रिय लगे अर्थात् कि मन में गांठ रह गई है । सहन शक्ति बढ़ाने से गांठ ढीली पड़ती है । इस हेतु जीवन में

सरलता की बुद्धि एवं स्त्री, सहज माया घटाने - नष्ट करने का बोध ज्ञानी भगवंत समझाते हैं।

जिन शासन का सार नवकार मंत्र है। नवकार मंत्र का सार सामायिक है। नवकार के पांचों परमेष्ठि को 'सामायिक' होती है। सामायिक करने से 1 आयंबिल का फल मिलता है।

नमस्कार महामंत्र

प्रबुद्ध जीवन सामायिक में से ....

1.	मंत्र संसार सारं	-	जीव का उद्भव स्थान निगोद, वहां से व्यवहार राशि में जितने भव किए ऐसे संसार का सारभूत नवकार है।
2.	त्रिजगत् अनुपम मंत्रं	-	तीनों जगत में जिसकी कोई उपमा नहीं।
3.	सर्वपाप अरि मंत्र	-	सर्व पापी शत्रुओं का विजेता।
4.	संसार उच्छेद मंत्र	-	संसार का उच्छेद करने वाला।
5.	विष : विषहर	-	मिथ्यात्व मोह रूपी विष को हरने वाला
6.	कर्म निर्मूल्यं मंत्रं	-	कर्म को निर्मूल करने वाला मंत्र
7.	मंत्रं सिद्ध प्रदानं	-	अनेक सिद्धियों को देने वाला
8.	शिव सुख जननं	-	शिव सुख का जनक
9.	केवलज्ञान मंत्रं	-	केवलज्ञान को प्रदान करने वाला
10.	मंत्रं श्री जैन जप जप जनितं	-	जीव इस मंत्र का तू सतत जाप करता रहे।
11.	जन्म निर्वाण मंत्र	-	जन्म करण का अंत करने वाला मंत्र

11 विशेषणों से विभूषित यह नवकार मंत्र अद्भुत मंगलकारी है।

<u>केवलज्ञान प्राप्ति :</u> तीर्थंकर भगवंतों सिद्धपद की ओर प्रयाण करते हैं। जगत के जीवों को मोक्ष प्राप्ति का उपदेश प्रदान करते हैं। समवसरण देव निर्मित होता है, गणधरों की स्थापना होती है, धर्म तीर्थ की स्थापना होती है, त्रिपदी :- उपन्नेई वा, विगमेईवा, धुवेई वा, के सुश्रुतदान अनेक अकल्प्य क्षपोपशम से आगमों की रचना होती है।

45 आगमों :- 12 अंगों + 11 उपांगों + 6 छेद सूत्रों + 10 पयन्ना + 4 मूल सूत्रों + 2 अनुयोग द्वार । छेद सूत्रों में महानिशीथ सूत्र मूख्य है । इसमें 10 पूर्वधर वज्रस्वामीजी ने (अंतिम 10 पूर्व धर) नमस्कार महामंत्र के अक्षरदेह को 'पंचमंगल महाश्रुत स्कंध' के नाम से प्रसिद्ध किया ।

1444 ग्रंथों के रचयिता हरिभद्रसूरिजी म.सा. ने 15 निर्जला उपवास करके शासनदेवी को प्रगट किया था । उनकी कृपा से आचार्य भगवंत ने नाश हो गए ऐसे नवकार के अध्ययनों को पुन: स्थापित किया था ।

भगवान् ने नवकार के साथ अनुसंधान (जुड़ने) के लिए कहा है । नवकार के 68 अक्षरों के साथ शब्दानुसंधान इतना पवित्र क्यों होता है ? परम स्तुतिवाद रूप पंच परमेष्ठि पदों पर परमेष्ठिओं ने भी आराधना की है, हो रही है और होगी ही । आत्मा का संबंध, भाष्य, उपांशु एवं मानस जाप द्वारा कर सकते हैं ।

भाष्य जाप : बोलकर होता है । 300 मीटर/सेकंड आंदोलनों में

उपांशु जाप : गणगणाट पूर्वक का जाप । 500 मीटर/सेकंड आंदोलनों ।

मानस जाप : मानसिक धारणामय जाप । 3 लाख मीटर/सेकंड आंदोलनों ।

आंदोलनों साधक के आसपास Circular Movement धारण कर उसकी में से अंदर प्रवेश कर औदारिक, तेजस, कार्मण शरीर को भेदकर आत्मप्रदेशों पर पहुँचते है और उसकी ऊर्जा कर्मों का क्षय करती है । यह एक वैज्ञानिक सत्य है । नवकार से कर्मक्षय में सहायता मिलती है । ऊर्जा तेजस में से कार्मण शरीर में प्रवेश कर कर्मक्षय कराती है । इसी कारण तप निर्जरा स्वरूप होता है ।

शब्दानुसंधान का उदाहरण :- देव, आयुष्य पूर्ण होने वाला वानर, देव रूप के अंतिम दिवसों में नवकार के अक्षरों को जंगल की शीलाओं पर अंकित कर देहांत होता वानर, उहापोह-जाति स्मरण ज्ञान, नवकार के अक्षरों में वानर मग्न बना । अनशन क्रिया, राजा के यहाँ पुत्र रूप में जन्मा, बाली नाम से पूजनीय बना ।

'णमो अरिहंताणं' पद में 'णमो' का अर्थ द्रव्य संकोच एवं भाव संकोच है ।

द्रव्य संकोच – पांचों अंगों को संकुचित कर विनयपूर्वक क्रिया जाने वाला नमन।

भाव संकोच – पांच इन्द्रियां को मन:पूर्वक समेटकर आमनस्क भाव द्वारा किया जाने वाला नमन।

प्रथम के 5 पदों में परमेष्ठि को याद कर वंदन किया जाता है।

चूलिका के 4 पदों में पाप प्रणाशन एवं मोक्ष मंगल प्राप्ति की चाहना की गई है।

CONTEMPLATE TO ACT AS IF THE SOUL IS TAKING A FORM OF 5 MAHATMAN : ARIHANT, SIDDH, ACHARYA, UPADHYAY, SADHU.

शब्दानुसंधान के पश्चात् अर्थानुसंधान, तत्वानुसंधान एवं स्वरूपानुसंधान का विचार करने से पंच परमेष्ठि तत्वों के स्पर्श का अनुभव होता है।

नमामि सव्व जिणाणं

खमामि सव्व जीवाणं। (खमामि – क्षमा मांगना)

इन दो मंत्रों से चौथे से चौदहवें गुणस्थानक पर रहे हुए सर्व जीवों को नमस्कार हो जाता है।

स्वरुपानुसंधान पराकाष्ठा पर पहुँचाता है। अनादिकाल से जीव देहाध्यास में जी रहा है। देह के साथ एकता की अनुभूति के पर्याय में भूल से खो गया है।

मेरा ऐश्वर्य तो अकाय जीव का है। देहाध्यास छोड़कर आत्मध्यास को प्राप्त करना है। आत्मा के साथ एकमेकता स्थापित करना है। इसकी अनुभूति, आत्मा के अनंत गुणों तथा चैतन्य शक्ति रुप परमात्मा के साथ का अभिन्न अनुभव करवाता है।

''अहो आत्मन् ! अहो आत्मन् !'' भाव को पुष्ट करते करते धाती कर्मों का नाश होता है। स्वरुपानुसंधान के अंतिम चरण में हरिभद्रसूरि महाराजा द्वारा प्रतिपादित आराधना क्रम के पाँच सोपान प्रणिधान प्रवृत्त विघ्नजय सिद्धि विनियोग होता है। ''सवि जीव करुं शासन रसी'' का उत्कृष्टतम परार्थभाव, निष्कंप विकास के शिखर पर पहुँचकर परमात्म पद को पाता है।

जिनराशन का सार नवकार है, नवकार का सार सामायिक है। नवकार के पाँचों परमेष्ठि को सामायिक होती है।

सामायिक कहाँ करना चाहिए ?

<u>साधु के समीप उपाश्रय में, पौषधशाला में, स्वगृह में। जिन मंदिर में नहीं।</u> सामायिक करने से एक आयंबिल का फल मिलता है।

चरवला : चारु, वालक, सुंदर रीत से जो मन को मोड़ता है

खण्डन-मंडन ग्रंथ: यशोविजयजी म.

शाष्टांग प्रणाम:-स्थान अधिक रोकता है तथा ज्यादा वायुकाय जीवों की हिंसा होती है।

पंचांग प्रणाम : किया जाता है।

भाव वीर्य - द्रव्य वीर्य उत्थान की ओर ले जाता है। अंगुली, चक्षु, पैर की अंगुलियों में से शक्ति का प्रवाह होता है।

<u>* विधि शुद्धि :</u>

1. सबसे कम से कम चक्षुओं से, शक्तियों का प्रवाह होता है। उससे अधिक हाथ की अंगुलियों में से शक्तियों का प्रवाह होता है। सबसे अधिक पैरों की 10 अंगुलियों में से शक्तियों का प्रवाह होता है। इसलिए पूजा पैर से शुरू की जाती है।
2. जिसके गुण प्राप्त करना हो उसके चक्षु एवं चरण का संधान (Cosmic Relation) होता है। इस हेतु भगवान के चरण के बाएँ पैर एवं बाएँ अंगूठे की प्रथम पूजा होती है।

प्रभु द्वारा प्रणीत 3 मुख्य बातें

1. परलोक है -
2. संसार दु:खरूप है -
3. मोक्ष प्राप्ति हेतु पाँच महाव्रतों एवं त्यागमय जीवन जीना चाहिए।

समस्त तीर्थंकर परमात्मा ने किसका मुख्य उपदेश दिया है ?

प्रथम (1) सर्वत्याग - सर्वविरति का। संसार के सुख भोगने के बाद भी आत्मा के लिए यह हितकारी नहीं है। (कंचन, कामिनी, काया, कुटुंब के सुख)

(2) जो सर्वविरति के लिये सामर्थ्य नहीं हो तो देशविरति लेना चाहिए।

द्वितीय 'त्रिपदी' जगत के समस्त पदार्थों

उत्पन्न होते है - उपन्नई वा

नाश होते है - विगमेई वा तथा

अवश्य ध्रुव रहते है - धुवेई वा

पदार्थ पूर्व अवस्था से व्यय होता है और

उत्तरावस्था से उत्पन्न होता है ।

द्रव्य अवस्था से ध्रुव ही रहता है ।

* जैसे-जैसे भोग भोगते रहेंगे, वैसे-वैसे अभिलाषा में वृद्धि होती रहेगी । भोग की अभिलाषा तृत्प ही नहीं होती है । जैसे खुजली के रोगी की खुजली करने पर ।

* जीवो की हिंसा के बिना भोग सुख संभव नहीं है । मानव भव अवश्य दुर्लभ है । परन्तु भोग सुख के लिए नहीं, धर्म करने के लिए है । तिर्यंच-देव आदि भवों में भी भोग उपलब्ध है ।

* मानव भव में धर्म प्राप्ति की सुलभता है वह अन्य भवों में नहीं है । इसलिए भोग सुख त्याज्य है ।

* सम्यग् दर्शन की प्राप्ति होते ही तत्काल समझ की जानकारी होती है ।

आत्मा को भावित करिए :-

ध्यान धरने के पूर्व आत्मा को भावित करना जरुरी है ।

1. <u>'णमो अरिहंताणं'</u> की पाँच माला गिनने के पूर्व आत्मा को भावित करिए ।

हे सीमंधर स्वामी, हे प्रभो ! मुझे आपका मार्गदर्शन मिलता रहे । आप तो सर्वज्ञ हो । अरिहंत पद का ध्यान धरते मुझे सम्यगदर्शन प्राप्त हो । प्राप्त हुआ सम्यग्दर्शन विशुद्ध बने । मुझे 'अभय स्थिति' मिले एवं प्राप्त मार्गदर्शन में स्थिर रहने की शक्ति मिले । णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं कहकर माला गिनना ।

2. <u>'णमो सिद्धाणं'</u> की माला गिनने के पूर्व आत्मा को भावित करिए ।

हे सिद्ध प्रभो ! आप जैसा निर्मल एवं अणिशुद्ध आरोग्य तन एवं मनका मुझे भी प्राप्त हो । आपका अनंत चतुष्ट्य आंशिक रुप से भी मुझे मिले । मेरे मन में स्थिरता में आपका प्रभाव सतत् बरसता रहे । णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं कहकर माला गिनना ।

3. <u>'ॐ ह्रीँ ऐं क्लीं सर्वरोग निवारीणी पद्मावत्यै नमः</u> मंत्र द्वारा पद्मावती माता की माला गिनने के पूर्व मेरे मन, वचन, काया के सर्व रोगों का क्षय हो, क्षय हो, क्षय हो कहकर माला गिनना ।

4. सामायिक करने के पूर्व सीमंधर स्वामी प्रभु को बारह खमासमणा अरिहंत प्रभु के बारह गुणों को याद करते देना चाहिए ।

पश्चात् तीन बार स्थापनाजी को सरस्वती माता के मंत्र द्वारा प्रदक्षिणा देना चाहिए ।

<u>ॐ ह्रीं ऐं श्री सरस्वत्यै नमः</u>

अरिहंत के 12 गुण

अशोक वृक्ष, सुरपुष्प वृष्टि,
दिव्य ध्वनि, चामर, आसन
भामंडल, दुंदुभी, छत्र,
प्रतिहार्यो वड़े शोभे अरिहंत .....
पूजा, वचना, ज्ञानातिराय
अपायापगमा अतिशय चार
ज्ञानी भगवंतों नी वाणी,
अरिहंतों ना मूल गुण छे बार .....

'श्रद्धांध'

आत्मा को भावित करिए ....

- 12 खमासमणा - अरिहंत प्रभु के 12 गुणों को याद कर सीमंधर स्वामी प्रभु के चरणों में नमन करें।
- प्रथम 4 अतिशयों के याद करने के पश्चात् 8 प्रतिहार्यों को याद करें।

1. अपायापगमातिशय : हे प्यारे सीमंधर स्वामी ! हमारे सर्व अपायो (दु:खों) का अपगम (नाश) हो जाए।
2. ज्ञानातिशय : पंचांग प्राणातिपात मुद्रा द्वारा सृजित यह मंगल कलश प्रभु, आपके ज्ञान से सतत् भरता रहे।
3. पूजातिशय : आपकी साक्षात् उपस्थिति हो एवं हमें बार-बार आपकी पूजा का लाभ प्राप्त होता रहे ...... होता रहे ..... ।
4. वचनातिशय : आपकी भाषा समिति भवोभव हमारे वचन में प्राप्त हो।
5. अशोक वृक्ष : हमारे सर्व भव अशोकमय हो।
6. सुरपुष्प वृष्टि : सुर पुष्प के समान आपका प्रणित आध्यात्म, आपकी जिनवाणी से सुगंधित भवोभव प्राप्त हो।
7. दिव्य ध्वनि : हे वीतराग प्रभु ! हमारी स्तुतियों में, स्तवनों में, राग-रागिनियों में आपकी दिव्य ध्वनि का रणकार प्राप्त हो।
8. चामर : आपकी साक्षात् उपस्थिति हो तथा चामर नृत्य का लाभ बार-बार मिले।
9. आसन : आसन नव वाँ खमासमणा है। 9 का अंक अप्रतिपाति है, उसी प्रकार आपका आशीर्वाद अप्रतिपाति रूप भवोभव बरसता रहे।
10. भामंडल : हमारे अज्ञान का अंधकार भामंडल की 'कांति' से दूर हो।
11. देवदुंदुभि : हे प्रभु ! हमें आपकी देवदुंदुभि श्रवण करने का लाभ मिले, ऐसा भाग्य प्रदान करो।
12. तीन छत्र : ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी तीनों छत्रों का प्रभाव भवोभव प्राप्त होता रहे।

आणा ए धम्मो

❖ भव्यात्माओं की सभा में वीतराग भगवंतों की पवित्र वाणी विक्रय करने का स्वर्णिम अवसर पुण्योदय हो तब ही प्राप्त होता है । इस हेतु सबका ऋण अपने पर लेकर इच्छा करें कि सभी आत्म कल्याण के मार्ग पर प्रगति करें .....

जिनाज्ञा:

जैसे तुझे तेरी आत्मा प्यारी है वैसे ही

समस्त जीवों को स्वयं की आत्मा प्यारी है,

इसलिए सर्वजीवों में समदृष्टि रख,

सर्व जीवों को तेरी तरह ही सुख प्यारा है ।

चार ध्यान में दो ध्यान शुभ है । उसमें भी धर्मध्यान तो सम्यग्दृष्टि आत्मा ही कर सकता है ।

जिसके चार प्रकार हैं, उसका पहला भेद

1. आज्ञा विचय 2. अपाय विचय 3. विपाक विचय 4. संस्थान विचय।

आज्ञा विजय : (जिनेश्वर की आज्ञा का चिंतन)

दयाधर्म आज्ञा में रहकर पालना चाहिए । प्रत्येक जीवों के प्रति दया । फ्रीज में दही खट्टा हो ही जाता है । काल आते ही रात्रि में तमस्काय के जीव उत्पन्न हो ही जाते हैं ।

दैनिक जीवन में व्यवहार लूखा नहीं रखना हो जिनाज्ञा में रहकर धर्म आचरण करना चाहिए ।

ध्यान से कर्मों का नाश होता है । श्रवण-मनन-चिंतन-ध्यान से कर्मबंध ढीले होते हैं ।

❖ धर्म का पालन करना हो तो सर्वप्रथम जिनाज्ञा में रहना प्रारंभ करे । पश्चात् नैतिक कर्तव्य अदा करो । दया, परोपकार, करुणा, मैत्री, नियम, भक्ति सर्व कर्तव्यों का पालन करो ।

उदाहरण – उत्तम शास्त्रों को कोई चोर चोरी कर गया हो तब नैतिकता की पूँछ पकड़कर बैठे रहे तो वह नहीं चलेगा। जिन शासन की पताका, शासन प्रभावना में अवरोध आए तो वह भी अनुचित ही कहा जाएगा।

❖ जो जिसके लिए हितकारी हो उसे ही जिनाज्ञा कहा गया है। उदाहरण – पुत्र रोग ग्रसित हो उसकी सेवा-सुश्रुषा करना कौटुम्बिक धर्म ही नहीं जिनाज्ञानुसार कर्तव्य है। शुद्ध स्वभाव की अपेक्षा से कौन पुत्र है और कौन पिता ? समस्त आत्मद्रव्य समान है इस प्रकार विचारते हुए निर्लेपता से बैठकर कुछ ना करो तब शुद्ध श्रेष्ठ धर्म भी हितकारी नहीं होता है।

❖ अभव्य – जातिभव्य जीवो जैन धर्म के प्रति श्रद्धान्वित होते हैं, श्रावकाचार अनुष्ठानों का पालन करते हैं, सम्पूर्ण जीवन महाव्रतों को पालते हैं फिर भी ऐसे जीव जिनाज्ञा से बहार है।

❖ जैनेत्तर हो परंतु जिनाज्ञा प्रमाणे वर्तन करता हो तो धर्म उसके आत्मकल्याण की ग्यारंटी देता है। वह पाप रूपी हिंसा नहीं करता हो तो वह जिनाज्ञा में है, ऐसा कह सकते हैं।

❖ किसी को दु:ख देने का मुझे अधिकार नहीं है। इस असार संसार में मेरे भौतिक सुख के लिए दूसरों को किसलिए दु:खी करूँ ? ऐसा मानने वाले जैनेत्तर जीव जिनाज्ञा में ही हैं।

❖ जिसका चिन्तन विवेक दृष्टि को खोल दे एवं आत्मकल्याण के लक्ष्य से दया भाव रखे, ऐसे जीव में निश्चित ही जिनाज्ञा का गुण है, इसलिए उसकी प्रवृत्ति धर्म ही है।

❖ जो आत्मन् जैन धर्म में जन्म लेने के पश्चात् भी 'मुझे मोक्ष जाना नहीं' मुझे तो यहाँ रहकर अनेक जीवों का उद्धार, जीवों पर परोपकार करना है। मैंने मानव दया को जीवन का ध्येय बनाना है, मुझे तो मात्र सत्कार्य में ही रस हैं। वास्तव में ही ऐसा कार्य किया परन्तु अध्यात्म तत्व की कोई खबर ना हो, जिनाज्ञा के साथ कोई संबंध नहीं रखता हो; यह तो अंतर के उपर की दया है, परमात्मा द्वारा प्रणीत दया नहीं। शुभभाव से पुण्य का बंध अवश्य होगा, लेकिन उसका आत्मकल्याण नहीं होगा।

❖ भगवान ने दया आत्मकल्याण के उद्देश्य से करने को कही है, जिसे संसार में रस है उसे स्थूल जीवों की दया करने के पश्चात् भी तत्व से हिंसा में ही रस है । ऐसी दया में जिनाज्ञा नहीं है । ऐसा धर्म तत्व से धर्म नहीं है ।

❖ भौतिक स्वार्थ याने स्वार्थ आध्यात्मिक स्वार्थ याने परमार्थ ।

❖ आपके आत्मीक सुख में, स्वकल्याण में ही जगत का कल्याण है एवं स्वार्थ एवं परपीड़ा की परम्परा है ।

❖ आपके आत्मा का कल्याण ना हो, हित ना हो ऐसे अहिंसा-सत्य का जैन धर्म आग्रह नहीं रखता । कोई भी धर्म अंत में आत्मा की उन्नति का ही लक्ष्य रखता है । अगर आत्म की अवनति होती हो तो वह धर्म, धर्म नहीं है ।

❖ जिनाज्ञा :

  ❖ 'जिन' यह व्यक्तिवाचक शब्द नहीं है अत: जिनाज्ञा मोक्ष मार्गानुसारित का लक्ष्य विकसित करता है और इसी से आत्मा तिरती है ।

  ❖ जिनाज्ञा त्याग-संयम धर्म की है । भगवान एवं सद्गुरु के अनुरागी बनो । मोह के क्षय से ही धर्म है ।

  ❖ मेघकुमार के जीव ने हाथी के भव में एक की दया पालकर मोक्ष साधक गुणों को प्राप्त किया ।

  ❖ जिस जीव जिस समय जो आत्महितकारी है वह ही उसके लिए मार्ग है, आज्ञा है ।

❖ साधु एवं श्रावक दोनों के लिए नियत जिनाज्ञा है । सूक्ष्म जयणा संपन्न आचार पालते समय साधु या श्रावक क्रमश: स्वाध्याय रूप प्रतिदिन सिद्धांत-शास्त्र का अभ्यास करना चाहिए ।

❖ प्रतिदिन अध्ययन/स्वाध्याय करो एवं नया-नया बोध प्राप्त करो ।

कामराग एवं स्नेहराग का वैचित्र्य

तत्व दृष्टि !

कर्म का सिद्धांत है कि, अतिशय स्नेह हो उसका योग (मिलाप) कराता है।

कपिल का, मरिची के भव में भगवान महावीर को प्रथम बार शिष्य रूप में योग मिला। भवोभव स्नेह में अभिवृद्धि होती गई और महावीर प्रभु के अंतिम भव में, गौतम गणधर बनकर अत्यन्त निकट का संबंध बांधा। गौतम का महावीर गुरु के प्रति स्नेह प्रबल होने के कारण निर्वाण पद की प्राप्ति मे ंबोध रुप बना और इसका ज्ञान होते ही, राग छूटा और मोक्ष पद के स्वामी बने।

प्रबल राग का पुण्य ऐसा होता है कि जो शुभ हो तो पुण्यानुबंधी बनकर, जीव का सफलता के शिखरों का आरोहण करवा देता है। परन्तु अंत में तो इस पुण्य का खजाना भी खाली हो ही जाएगा। शुभ स्नेहराग, जिसमें स्वार्थ एवं अशुभ भावों का अभाव होता है, वह प्रारंभ में जीवन को ज्योतिर्मय मार्ग पर अग्रेसित करने में, अंतर के आनंद तथा अगम्य आकर्षण की फलश्रूति बनकर अंत में यथार्थ फल प्रदान करने में सहायक हो सकता है। निर्दोषता तथा समर्पणता के गुणों द्वारा राग को श्रृंगारित करते रहना चाहिए।

अनुकूल पात्र में प्रारंभ में कामराग होता है, पश्चात् सानुकूल सहवास की वृद्धि होने से कामराग स्नेहराग में परिवर्तित हो जाता है, जिसकी श्रृंखला भवोभव चलती है। गुणयिल जीव पर स्नेह बंधन हो तो जोखिम कम होता है। भूलों का पश्चाताप आराधना के मार्ग की ओर जाता है तथा यथार्थ जागृति की अवस्था निर्मित करने वाला भी होता है। तीव्र कलुषित भाव का अभाव अत्यंत आवश्यक है।

इस स्नेहराग या कामराग को जारी करने का Excuse या उचित दृष्टांत को अनुचित तरीके से समाप्त करने का प्रयत्न नहीं होना चाहिए। आर्जव तथा मार्दव गुण के रसायन के साथ ही जीव के रोग समान राग को समाप्त करें। वर्तमान के आनंद को, पुरुषार्थ तथा दीर्घदृष्टि द्वारा सुवासित करीए .... किम् बहूना ?

मुनिभगवंतों की वाणी

जीवन – मृत्यु

प. पू. मुनिराज श्री हरीशभद्र विजयजी लिखित पुस्तक ''फूल अने फोरम'' में से

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक: ।

न चैनं कलेदयन्त्यापो, न शौषयति मारुत : ।।

भावार्थ – कोई भी शस्त्र आत्मा का विनाश नहीं कर सकता, अग्नि जला नहीं सकती, नीर भीगा नहीं सकता एवं वायु उसे सुखा नहीं सकती । आत्मा अमर है ।

(कर्म) बंध समये चित्त चेती ए रे, उदये शा संताप ?

आउर पच्चक्खाण, पयन्ना सूत्र में ध्यान के प्रकारों का अधिकार आता है । उसमें आर्तध्यान के 60 प्रभेद बताए गए हैं ।

आवश्यक सूत्रों में जय वीयराय, णमुत्थुणं सूत्र वीतराग परमात्मा का परिचय करवाने वाले तथा देवाधिदेव समक्ष प्रार्थना करने वाले सूत्र हैं । उसमें आराधक अपनी तेरह मांगों के साथ मात्र समाधिमरण की याचना करता है ।

1. भव के प्रति उदासीनता, 2. मार्गानुसारिता, 3. वांछित फल की प्राप्ति, 4. लोक विरुद्ध कार्यों का त्याग, 5. गुरुजनों की पूजा, 6. परोपकार, 7. सद्गुरु का मिलाप, 8. उनके वचनों की सेवा, 9. उनके चरणों की सेवा, 10. दु:ख का क्षय, 11. कर्म का क्षय, 12. समाधिमरण, 13. समकित का लाभ ।

ज्ञान प्राप्ति, संस्कारनिधि, समझ शक्ति, बुद्धि एवं संतोष की वृत्ति, रखने से जीवन सफल बनता है । संतोषी जीव का ज्ञानधन खूटता नहीं, आपत्ति नहीं आती, इससे कालांतर में घटती है और निश्चित ही मुक्ति मिलती है । इसीलिए कहा गया है कि 'संतोषी नर सदा सुखी' तृप्ति रखने से, इन्द्रियों की शिथिलता जीवन में अवरोध उत्पन्न नहीं कर सकती है। आहार संज्ञा को घटाना हो तो वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, उणोदरी आदि तप करने का आदेश है ।

✻ आहार के तीन प्रकार –

ओजाहार – माता के गर्भ में लिए जाने वाला आहार

लोमाहार – शरीर के छिद्रों द्वारा लिए जाने वाला आहार

कवलाहार – मुख द्वारा कवल से लिए जाने वाला आहार

28 कवल स्त्री के लिए, 32 कवल पुरुष के लिए, वृत्ति संक्षेप तप।

✻ इन्द्रियों में उपयोग रखिए –

स्पर्श से किए गए पाप, प्रभु की पूजा से भस्मीभूत होते हैं।

रसनेन्द्रिय से किए गए पाप, वीतराग की स्तवना से खंडित होते हैं।

घ्राणेन्द्रिय द्वारा किए गए पाप, सचित्त-अचित्त गंध में समभाव रखने से समाप्त होते हैं।

चक्षुरेन्द्रिय द्वारा किए गए पाप, प्रभु दर्शन से घटते हैं।

श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा किए गए पाप, वीतराग वाणी के श्रवण से दूर होते हैं।

अविरति द्वारा किए गए पाप, विरति की आराधना से मिटते हैं।

✻ पाँच द्रव्य के परिणाम जानने-समझने जैसे हैं :

पृथ्वी – पृथ्वी को समयानुसार पोषक तत्व मिलता है तो वनस्पति उत्पन्न होती है।

जल – जीव की जठराग्नि को पूर्ण करता है। (पानी से संतोष होता है), अग्नि को बुझा देता है, शरीर को भी पवित्र करता है।

अग्नि – अनुपयोगी द्रव्यों का दहन कर भस्म करती है।

वायु – शरीर में वायु (गैस) हो तो रोग को आमंत्रण देती है। जंगल की आग को वायु फैलाती है।

आकाश – व्यापक स्थान। प्रत्येक द्रव्य को स्वयं में स्थान देता है। समग्र सानुकूलता करे वह आकाश।

✻ जन्म-मरण की समाप्ति हो तब ही कहा जा सकता है कि जीवन सफल हुआ।

* तत्वार्थाधिगम सूत्र के नवमें अध्ययन में प्रायश्चित के 9 अधिकार कहे हैं।

1. आलोचना - दोषों को गुरु समक्ष प्रगट कर आलोचना लेना। (मृगावती-चंदनबाला)
2. प्रतिक्रमण - अईमुत्ता मुनि
3. तदुद्भय - उपरोक्त दोनों - आलोचना + प्रतिक्रमण। (विशेष शुद्धि - रहनेमि)
4. विवेक - अशुद्ध - अभक्ष्य का त्याग
5. व्युत्सर्ग - काउसग्ग में वचन-व्यापार का त्याग। (मेतारज मुनि)
6. तप - आत्मशुद्धि, कर्मक्षय, पाप शुद्धि की भावना (सुन्दरी स्त्री रत्न)
7. छेद - दीक्षा पर्याय के छेद से लगे पाप की शुद्धि।
8. परिहार - प्रायश्चित पूर्ण नहीं किया उसका पाप। (सफल करने के लिए चंडकौशिक ने प्रयत्न किया)
9. उपस्थान - पूर्व पर्याय का त्याग, नूतन पर्याय में प्रवेश। शुद्धि करण हेतु प्रयत्न करना सीखें।

प. पू. आ. श्री विजय भुवनभानु सूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न

प. पू. श्री राजेन्द्र सूरीश्वरजी म.सा.

अनन्त ज्ञानियों की वाणी है ; उत्तम नरभव की प्राप्ति एवं उत्तम कुल, धर्म सामग्री अनंत पुण्य राशि के योग से प्राप्त होता है।

जीवन में उत्तम सद्गुरु का योग मिलना अति दुर्लभ है।

जैन शासन वास्तव में अजोड़ है। जिससे सर्वनयो की सापेक्ष बातें, सप्तभंगी, स्याद्वाद-अनेकांतवाद, योगदृष्टि, ध्यान की सूक्ष्म बातें जानने को मिलती हैं।

कषायों की तीव्र मात्रा मंद होते ही आत्मा शांत स्वभावयुक्त हो जाती है। कदाग्रह-हठाग्रह को छोड़ देती है।

आत्मस्वरूप की पहचान कर सर्व जीव मेरे जैसे चेतन स्वरूप है। मुझे किसी के साथ संबंध बिगाड़ना नहीं है। समस्त जीव मेरे मित्र हैं। धर्म के बीज मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ, भाव में रहना है। वैर, विरोध, तिरस्कार, धिक्कार, अहंकार, निंदा के भाव, मैत्री आदि भावों का नाश करते हैं।

कषाय की मात्रा में वृद्धि होती रहेगी तो वैर की गांठ आत्मा में बंध जाएगी तथा उससे जीव बार-बार दुर्गति का अधिकारी बनता रहेगा। इस हेतु प्राण का भोग भी देना पड़े तो मैत्री भावना कभी भी खंडित नहीं करना चाहिए।

मोक्ष की पात्रता के विकास के लिए गुणानुरागी बनना आवश्यक है। आत्मा को परगुण दृष्टिगत कर आनंद की अनुभूति होना चाहिए। प्रमोद भावना को प्राप्त करना चाहिए।

समता योग को बलवान बनाना है ?

अरिहंत आदि चार शरण भाव से सहिष्णुता गुण प्राप्त करोगे तो समता योग बलवान बनेगा। समता योग मोक्ष के लिए असाधारण कारण है। समता में सामर्थ्य है कि, दो घड़ी मात्र में सकल कर्मों का नाश कर देती है।

समता को कैसे सिद्ध किया जा सकता है ? प्रत्येक आराधक को कषायों का निग्रह, इन्द्रियों, विषयों, मन का निग्रह बार-बार करते रहना चाहिए।

इन्द्रिय निग्रह रहित जीव - पौद्गलिक पदार्थ के अधीन रहता है।

मन के निग्रह रहित जीव - बार-बार दूषित भावों में रमण करता है।

विषय के निग्रह रहित जीव - पौद्गलिक पदार्थ के पीछे दौड़ता है।

कषाय के निग्रह रहित जीव - बार-बार क्रोध-मान-माया-लोभ के वश में रहता है।

यह चारों निग्रह आत्म जागृति के सेतु हैं।

❖ अरिहंत हृदयस्थ हो जाए याने सब कुछ मिल जाए । जीव ने नरक-निगोद के कष्टों को अनिच्छा से अनंत बार भोगा है ।

❖ संतोष द्वारा शाश्वत सुख की प्राप्ति सरल बन जाती है ।

❖ दुष्कृत गर्हा - प्रायश्चित द्वारा अनुबंध की परम्परा समाप्त हो जाती है । जैसे ही आत्मा के अध्यावसाय उज्ज्वल होंगे वैसे ही पुण्यानुबंधी पुण्य की प्राप्ति होने में सरलता होगी । इसलिए प्रत्येक क्षण आत्मा को शुभ परिणामों में ही रखना चाहिए । इस हेतु किसी के लिए अशुभ चिंतन करना नहीं, अशुभ बोलना नहीं । दु:ख अपमान हो वैसी प्रवृत्ति करना नहीं ।

❖ अगर सद्गुरु का योग मिल जाए तो कषायों की कालिमा दूर हो जाती है ।

अर्थ काम एवं पर की चिंता अनिष्ट फल को देने वाली है, यह सत्य समझ प्राप्त होते ही आत्मा स्वयं के शुद्ध स्वरूप का चिंतन करने वाली बन जाती है । पश्चात् भी चिंता हो तो विचार करना कि जगत के कार्य पांच समवाय कारणों से होते हैं । जिसमें जो कारण मुख्य हों वैसा विचारने से चित्त का समाधान होता है ।

उदाहरण - धन चला गया तो विचारना कि वस्तु का पुण्य समाप्त हो गया, जिससे उस वस्तु का नाश हो गया । इसमें शोक संताप करने की आवश्यकता नहीं है । जो हमारा नहीं है वह हमारा हो नहीं सकता । आत्मा से भिन्न है - चिन्ता किसलिए ?

❖ कषायों की कालिमा को दूर करने की रामबाण औषधि है - महामंत्र नवकार का जाप ।

❖ जीवन में योगानुयोग 'निमित्त' मिलने से, शुभ एवं कल्याण मित्र रूप निमित्त से एक उल्लास प्रसारित होता है । मुक्ति-सिद्धि का मार्ग प्रज्ज्वलित होता है । चखला, मुहपत्ती, कटासना, आसन, मंदिर, आदि जड़ निमित्त है । देव-गुरु-धर्म आदि चेतन निमित्त है ! चारित्र स्वीकारा है ।

पू. युगभूषणविजयजी म.सा.

संसार में तो नियम है कि स्नेह, स्नेह की अपेक्षा रखता है । राग उसका नाम है कि जिसमें अपेक्षा होती ही है । राग हुआ याने कि सामने से कुछ अभिलाषा होगी ही, ना हो तो राग होगा ही नहीं । समस्त राग में अपेक्षा होता ही है । अरे ! अंत में ऐसी भी इच्छा हो के वह सतत्

नि:स्वार्थ स्नेह में भी अपेक्षा होती ही है । मैं इसे चाहता हूँ और यह मुझे नहीं चाहे ऐसा राग संसार में होता नहीं । ऐसा राग धर्म में होता है । मात्र उचित कर्तव्य करके छूट जाने का भाव । धर्म के क्षेत्र में ही अपेक्षाशून्य भाव संभव है । संसार में एक पक्षी राग नहीं होता है।

मरुदेवी माता राग के भ्रम में रहे । ऋषभदेव को निर्लेप देखकर (केवलज्ञान के पश्चात् उनके समवसरण में) उनका राग टूटा । मुरुदेवी माता ने प्रभु की वाणी भी सुनी नहीं और मोक्ष में गए ।

पाँच लोकोत्तर भाव तीर्थों : गणधर (गीतार्थ गुरु), द्वादशांगी, चतुर्विध संघ जो इसको (द्वादशांगी का) अनुसरण करे, रत्नत्रयी एवं अनुबंध शुद्ध क्रिया कलाप (अनुष्ठान) । इन तीर्थों को लोकोत्तर कहा गया है, कारण कि पाँचों में ही जीव मात्र को संसार में से तारने की क्षमता है ।

श्रेयांसकुमार सह भरत चक्रवर्ती, बाहुबली, ब्राह्मी, सुंदरी के साथ पूर्व भव का संबंध भगवान ऋषभदेव का था । श्रेयांसकुमार के साथ 9 भवों का संबंध था । अनुराग के कारण दोनों अनेक भवों में मिले । दोनों योग्य जीव थे इसलिए अहित का कारण नहीं बने । शुरुआत के भवों में रागादि वश काम-भोग की प्रवृत्ति भी रहती, आगे बढ़ते हुए वह प्रवृत्ति घटने लगी। नवमें भव में छ: मित्र एकत्रित होते हैं, धर्म की बातें करते हैं, उदार भोगों का त्याग कर चारित्र स्वीकारते हैं ।

❖ अपेक्षा कारण एवं निमित्तकारण तक पहुँचने में सहायभूत हमारे शुभ कर्म हैं।

❖ निमित्तकारण रुप देव-गुरु-धर्म उपदान कारण में जाने के लिए प्रेरित करते हैं। अज्ञानी फल को चाटता है परंतु उसके मूल कारण को नहीं देखता है। वह श्वानवृत्ति है।

❖ ज्ञानी फल में कारण को-मूल को देखता है एवं कारण अर्थात् कर्मबंध के समय उसके कार्य याने फल का विचार करता है। यह सिंहवृत्ति है। अज्ञानी पुण्योदय में ही फल को चाटता है एवं पुण्य कर्मबंध के समय शुभभाव को भूल जाता है।

❖ भगवान ने जिसका निषेध कहा है उसके त्यागपूर्वक एवं जिसका विधान किया है उसके सेवनपूर्वक होने वाली क्रिया ही सामंजस्यपूर्वक की क्रिया कही है। इसके विपरीत क्रिया को असमंजस वृत्ति वाली क्रिया कही है। ऐसी वृत्ति से चाहे जितने जिन मंदिरों का निर्माण कराओ तो भी दर्शन शुद्धि नहीं होगी। कारण कि विधि प्रेतिषेध का सेवन किया ही नहीं, शुभ भावों का स्पर्श हुआ ही नहीं।

❖ दान देते समय भी दान में नहीं पर परिग्रह में रस अधिक होता है, उसका अनुबंध अशुभ ही होता है। वह मनस्वी रूप धर्म कर रहा है। धर्म अध्यवसायों द्वारा समझना चाहिए।

❖ रुचि एवं मनोवृत्ति

❖ आचरण में विनय विवेक भूलकर, राग द्वेष को महत्व देकर स्वयं के अहम् का पोषण करता है वह कर्मबंध करके दु:खी होता है। जो संयम रखता है वह संतोषी जीव शुभ कर्मबंध करता है।

चत्तारि परमंगणि, दुल्हानि हु जंतुणो, माणुसुत्तं सुई सद्धा, संयमंमिअ विरियं।

<u>भावार्थ</u> - 1. मनुष्यत्व - मनुष्य का जन्म, 2. सुई - श्रुति - सद्धर्म का श्रवण, 3. सद्धा - धर्म में श्रद्धा, 4. संयम - विरति का स्वीकार करने का अपूर्व उल्लास। यह चार वस्तु सामान्य मनुष्य को दुर्लभ हैं।

तत्वज्ञान चिंतन

❖ जहाँ विवेक ना हो परन्तु किंचित विचारों से धर्म करने की प्रेरणा मिले जब वह संज्ञा में चला गया है, ऐसा कहा जाता है। धर्म को वह निर्बल बनाता है।

❖ जीव जैसी लेश्या से मरता है वैसी ही लेश्या से उत्पन्न होता है। कर्मबंध के समय प्रदेश, स्थिति, रसबंध, स्वभाव का निर्णय होता है।

रसबंध का आधार लेश्या पर है, 'स्थितिबंध' का आधार कषाय पर है।

लेश्या की शुद्धि कषाय पर है। कषाय तीव्र - लेश्या अशुद्ध होती है

(Intensity of Passion) कषाय मंद - लेश्या शुद्ध होती है।

6ठे गुणस्थान तक समस्त छः लेश्याएँ होती हैं।

कृष्ण, नील, कापोत, पीत्त (तेजो), पद्म, शुक्ल।

शुक्ल को छोड़कर पाँचों लेश्या की स्थिति, जघन्य, उत्कृष्ट, अंतमुहूर्त।

7 से 13 गुण स्थानक तक शुक्ल लेश्या ही होती है।

ज. स्थिति अंतमुहूर्त - उ. स्थिति करोड़ पूर्व उण (Less) 9 वर्ष

14 गुणस्थानक पर जीव अलेशी होता है।

जो जीव सतत अशुभ लेश्याओं में रहता है वह यह तीव्र कक्षा की हो तो जीव की गति नरक, जो यह मंद कक्षा की हो तो, जीव की गति तिर्यंच

क्या करना ? राग द्वेष की परिणति के समय चतु:शरण स्वीकारने वाला साधक निमित्तो से दूर रहता है।

❖ जैन धर्म की समस्त क्रियाएँ चारित्र प्राप्ति हेतु ही होती है। लक्ष्य संयम का ही होना चाहिए।

❖ भवान्तर में जैन धर्म की प्राप्ति हो इस हेतु पंचाचार का पालन करो। तथा जो पंचाचार का पालन करें उसकी अनुमोदना करो।

❖ अनुबंध का मुख्य कारण मनोवृत्ति (Mentality) है। व्यवहारनय: मन-वचन-काया को अनुबंध का कारण मानते हैं। निश्चय नय : मन को अनुबंध का कारण मानते हैं।

❖ कायरूपी सेना, वचन रूपी तोपों (नौकादल) एवं मन रूपी हृदय दल का मुकाबला करने के लिए काय-वचन-मन गुप्ति द्वारा तैयार होकर इन पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

महावीर वाणी

भगवान महावीर कहते हैं :-

प्रीत, हेत या मैत्री करना । राग-आसक्ति या स्वार्थ होगा तो राग में से द्वेष-तिरस्कार एवं उसमें से वैर का सर्जन होगा । वेर का विसर्जन करने के लिए भगवान महावीर ने विश्व पर मैत्रीभाव एवं वात्सल्य वेग का विस्तार किया । उनके देह का रक्त माता के दूध के समान हो गया । स्वयं अचल, अमल एवं अखंड प्रभुता के स्वामी बन गए । वात्सल्य प्रेम की पराकाष्ठा का फल अचिंत्य एवं अद्भुत है, उसकी प्रतीति जगत को करवाई है ।

विभाग – ३

- श्रद्धांध की संवेदनाएँ 42
- जैन क्रियाओं में विज्ञान 43
- जैन दर्शन के वैज्ञानिक रहस्यों 46
- द्विदल का विज्ञान (संक्षिप्त) 49
- जाप के प्रकार एवं वैज्ञानिक मूल्य 50
- पच्चक्खाण आदि 52
- समझने जैसी सामायिक 54
- पांच समवाय : अनेकान्त दृष्टि 57
- मुक्ति प्राप्ति के चार साधाना कारण 62
- दर्शनाचार (OVERVIEW) 63

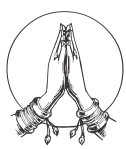

‘श्रद्धांध’ की संवेदनाएँ

तीर्थंकर के वर्ण ....

पद्मप्रभु, वासुपूज्य स्वामीजी, वर्णे बन्ने राता
मल्लिनाथ ने पार्श्वनाथजी नीला वर्ण नां त्राता
चंद्रप्रभु ने शीतलनाथजी, श्वेत वर्ण नां धाम
मुनिसुव्रत ने नेमिनाथ जी, बन्ने वर्णे श्याम
सुवर्णे रंगे सोल शोभतां बाकी ना भगवंत
चौबीस तीर्थंकर ना रंगे भीजातां अंगे अंग ।

***

जलपूजा, चंदनपूजा, पुष्पपूजा धूप दीप
अक्षत नैवेद्य, फल पूजा थाये निमित्त समकित ।

पण ‘पण’ न रहे ...

अगम्य छे रिश्ताओं जीवननां तुं कहे ...
क्यारे शुं आवे उदय मां अने ... क्यारे जीव शुं चहे ?
कया भव नुं क्यारे उभराय अने ... क्यारे आ दिल वहे ?
क्यारेक आत्मा नी स्थिरता पण चले ... अने ....
वली ध्रुव .... पण ‘पण’ ना रहे ....

प्रक्षाल प्रभु का

प्रक्षाल का आनंद, प्रभु स्पर्श का स्पंदन
प्रभाव में अजोड़, प्रभु रुप का अंजन
समाहित हुए ना रहे, इस दिल का रंजन
वहाँ निहारता रहूँ प्रभु के, इस मुख का खंजन !

जैन क्रियाओं में विज्ञान

प्रबुद्ध जीवन, १६ जनवरी २००७ – डॉ. प्रीति शाह

* लांछन : जैन तीर्थंकरों के लांछन अर्थात् प्रतीक रुप कोई न कोई प्रकृति, वनस्पति या पशु-पक्षी मिलते हैं । तीर्थंकरों को किसी न किसी चैत्य वृक्ष के नीचे केवलज्ञान हुआ है। प्राणी एवं प्रकृति के साथ कैसा प्रगाढ़ अनुबंध है ।

* पर्यावरण (ECOLOGY) : जैन धर्म जगत का सर्वोत्कृष्ट पर्यावरण धर्म है तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव जंतु की रक्षा की चिंता, विचारणा की जाती है । जैन धर्म का प्रथम मंदिर वृक्ष मंदिर है । प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान ने शत्रुंजय तीर्थ के रायण वृक्ष के नीचे बिराजित होकर विश्व को अहिंसा का प्रथम उपदेश प्रदान किया था ।

  नेमकुमार ने प्राणी रक्षा की उत्कृष्ट भावना भायी । भगवान महावीर ने तो समग्र सृष्टि के जीवों के साथ एकात्म भाव की भावना में रहने का उपदेश दिया है । तत्वार्थ सूत्र के पर्यावरण रुप परस्परोग्रहो जीवानाम् का सूत्र आज के नारे Save the Planet का ही पर्यायवाची है । कीड़ी का जीव हाथी पर तथा हाथी का जीव कीड़ी पर आधारित है । दुर्भाग्य से मानव हाथी ने कितने ही निर्दोष पशु-पक्षी का नाश किया है ।

* वनस्पति संवेदना – Polygraph Machine के तार छोड़ के साथ जोड़ने के बाद जैन धर्म की वनस्पतिकाय तरफ से सूक्ष्म तथा दीर्घ दृष्टि को विज्ञान ने ऐसा ही सिद्ध किया है–

  1. झाड़पान : विद्युत प्रवाह, अधिक-कम तापमान, तीव्र आघातों आदि प्रत्येक प्रतिक्रिया (Reaction) व्यक्त करता है ।
  2. संगीत का उस पर प्रभाव पड़ता है ।
  3. Infrared या Ultra Violet Rays को देख सकते हैं एवं झाड़पान TV की उच्च Frequency अनुभव करता है ।

4. मनुष्य एवं जंतु की गतिविधि भी अनुभव करता है।

5. वनस्पति जीवों में आहार (अमरबेल जो दूसरे छोड़ में जाकर स्वयोग्य आवश्यक आहार ले लेता है); लजामणी का छोड़ भय संज्ञा का अनुभव करता है। नागफणी कांटे से स्वयं की रक्षा करती है।

मैथुन : परिग्रह संज्ञा के उपरांत कषाय भी देखने को मिलती हैं।

क्रोध : डंख मारती वनस्पति।

मान : अहम् का विस्तार, बड़ के पेड़ में।

माया : कीटभक्षी।

लोभ : जमीन में से पेड़ भोजन प्राप्त कर पुष्ट बनता है। यूकेलीप्ट्स दूसरी आस-पास की वनस्पति के लिए नुकसानदायक है। पानी को शोषित कर लेता है। अशोक वृक्ष के नीचे बैठने से तनाव दूर होता है, बहेड़ा के पेड़ के नीचे बैठने से तनाव बढ़ता है।

विज्ञान भी अब पृथ्वी, पानी, वायु में जीव है, ऐसा स्वीकारता है। रासायनिक पदार्थों से जमीन उजड़ भी बनती देखी जा रही है।

* सूयगडांग सूत्र के अनुसार पानी वायु से बनता है, इस बात को Henry Quodinse ने H_2O से सिद्ध की है।
* मंदिर निर्माण के पूर्व भूमि खनन की क्रिया करते समय धरती से क्षमा याचना करने का नियम जैन धर्म पालन करता है। ''मंगलकार्य के लिये खनन कर रहे हैं, इसलिए धरती क्षमा करना''।
* आगम सूत्र कहता है : **तुमसि नाम सच्चेविं जंभ ईतव्य ति मनसि।**

जिसे तू मारता है, पीड़ा देता है, जिसे तू त्रास देता है इसे तू मारता नहीं है, पीड़ा नहीं देता है और ना ही त्रास देता है। परंतु तू स्वयं को ही मार रहा है, पीड़ा दे रहा है, त्रास दे रहा है।

* जैन साधु की प्रत्येक क्रिया पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति के आदर के साथ जुड़ी है -

  छ: आवश्यक : सामायिक का आधार तीर्थंकर भी लेते हैं। यह कर्म निर्जरा का अमोघ साधन है । जैन धर्म प्रक्रिया का एक आदर्श शिखर सामायिक है । 48 मिनिट की एकाग्रता आधि, व्याधि, उपाधि दूर करने में समर्थ है । Blood Pressure, Cholesterol Level, Depression आदि में लाभदायक, समायिक ही है । इसी विचारधारा में लोगस्स, वांदणा, प्रतिक्रमण आदि वैज्ञानिक जयणा के बिना नहीं रहता।

* खमासणां : समस्त प्रक्रिया देह के भिन्न-भिन्न केन्द्रों पर असर करती है ।

* जयणा : सूक्ष्म जीवों की जयणा, गैस को पूंजना, पानी छानन, पानी उबालकर पीना, सब्जी बनाते समय सूक्ष्म जंतुओं की सावधानी जैन आचार उच्च कक्षा में रखता है ।

* उपकरण : चरवला, कटासना आत्मा पर लगी हुई कर्मरज को जयणा के भाव से निर्मल करता है । कटासना सफेद रंग का ऊन का ही क्यों ? सामायिक दरम्यान जागृत शक्ति को शरीर में से बाहर निकलते अवरोध करता है । श्वेत रंग शांति एवं आध्यात्मिक परिणति प्रकट करता है । मुंहपत्ति वचन गुप्ति को संपोषित करती है । वायुकाय के सूक्ष्म जंतुओं की जयणा का पालन होता है । स्थापनाचार्य गुरु का महान योग अनुपस्थित होने के पश्चात् भी उपस्थित पूरी करते हैं ।

* आहार विज्ञान : अनाज अंकूरित होने से अनंतकाय आदि जीव उसमें उत्पन्न होते हैं, इसलिए इसका निषेध होकर जैन इसे खाते नहीं । आटा कुछ दिनों तक ही रखा जाता है। दही की मर्यादा 48 मिनिट, खिचड़ी-दाल-सब्जी-भाजी 6 घंटे, रोटी-चावल 12 घंटे, लड्डू-खाजे 24 घंटे विगिरे मर्यादा कही है । उबले हुए पानी की समय मर्यादा सामान्यत: 12 घंटे है ।

* मृत्यु को महोत्सव बनाती क्रियाविधि जैन धर्म ने बताई है । संलेखना द्वारा मृत्यु को किस प्रकार सुधारना, यह बात गौरव का अनुभव कराती है ।

जैन धर्म के वैज्ञानिक रहस्य

(Scientific Secrets of Jainsm) में से

– मुनि श्री नंदिघोष विजयजी

पर्व तिथियों में से हरी सब्जियों/फ्रूट आदि का त्याग क्यों ?

जैन धर्म का पालन करने वाला गृहस्थ प्रत्येक महीने 12 पूर्वतिथियों (2 बीज, 2 पंचमी, 2 अष्टमी 2 एकादशी, 2 चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं अमावस्या) अथवा पांच पर्वतिथि (सुदी पंचमी, 2 अष्टमी, 2 चतुर्दशी), चैत्र मास एवं आसो मास की सुदी 7 से पूर्णिमा (दो शाश्वती ओली)।

कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़ मास की सुदी 7 से पूर्णिमा, पर्युषण के दिनों में, जैन हरी वनस्पति खाते नहीं।

सर्वज्ञ तीर्थंकरों ने आगम शास्त्र में पर्व इस प्रकार कहे हैं।

महानिशिथ सूत्र के प्रमाण से

पर्युषण पर्व, तीनों चौमासी एवं दोनों शाश्वती ओली, कुल 6 अठ्ठाई, प्रत्येक महीने की 10 पर्वतिथि 2, 5, 8, 11, 14 सुदी एवं वदी की। इन दिवसों में मनुष्य प्रातः आयुष्य तथा शुभ कर्म का बंध करता है।

हरी वनस्पति सचित्त होने से त्याग करना चाहिए। हरी सब्जियों में हर प्रकार के समस्त जीव होते हैं। आटा, चावल दाल आदि सजीव नहीं होते हैं। गेहूँ, जऊँ, मूँग, मठ, उड़द, चना, तुअर आदि धान्य अजीव या निर्जीव फसल जाने के बाद धान्य, स्वयमेव समय होने के पश्चात् निर्जीव बन जाते हैं।

जऊँ, गेहूँ, डांगर, ज्वार, बाजरा धान्य कोठी में भरकर, पूर्ण रूप से ढंककर, छाण लीपकर बराबर बंद कर दे तो तीन वर्ष तक सचित रहते हैं। इसी प्रकार सावधानी से रखने पर तिल, मुँग, मसूर, उड़द, चावल काल से पांच वर्ष सजीव रहते हैं। अलसी, कपास, कंगु, कोदरा, शण, सफेद, सरसो सात वर्ष तक सजीव रहते हैं। यह 3,5,7 वर्ष उत्कृष्ट समय है।

सामान्य प्रकार से धान्य का दाना 48 मिनिट अंतमुहूर्त समय में निर्जीव बन जाता है। बाकी ज्ञानी गम्य।

धान्य निर्जीव होने की शक्यता अधिक होने से हरी वनस्पति त्याग हिंसा से बचाती है।

कर्मवाद के नियमानुसार जिन पदार्थों में हमारी आसक्ति होती है उन पदार्थों में हमारा जन्म होता है।

विगई - महाविगई

विगई - प्राकृत शब्द है। संस्कृत रूपांतर - विकृति

दूध, दही, घी, तेल, गुड़ एवं शक्कर, तला हुआ आदि।

महाविगई - मक्खन, मध, मद्य, अण्डा, मांस, मछली आदि।

दूध - गाय, भैंस, बकरी, ऊँटनी, घेटी का दूध का उपयोग जरूरत हो उतना ही करें अथवा न करें। दूध में 80 प्रतिशत केसीन (प्रोटिन) है जो सुपाच्य है।

दही - 4 प्रकार से। गाय, भैंस, बकरी एवं घेटी के दूध में से बने। ऊँटनी के दूध में से दही नहीं बनता है।

दूध बिगड़ जाए या उसमें खटास आ जाए तो यह जीवाणु उत्पन्न होने के कारण से होता है। दही के साथ बिगड़े हुए दूध की बराबरी करना अनुचित ही है।

दही में बैक्टेरिया (जो दूध में से दही बनाता है) होते हैं, वे विशिष्ट प्रकार के होते हैं। हमारे शरीर में भी इसी प्रकार के जीवाणु होते हैं, जो HCL की उपस्थिति में भी मरते नहीं। इस हेतु दही का जैन शास्त्रों में निषेध नही। वैज्ञानिक दृष्टि से सभी खाद्य पदार्थों में कम-अधिक अशं में जीवाणु-कीटाणु एवं बेक्टेरिया होते हैं। इसमें प्रत्येक खाद्य पदार्थ अभक्ष्य नहीं बन जाता। दही दो रात्रि जाने के बाद अभक्ष्य बनता है। कारण जीवोत्पत्ति की शक्यता खूब बढ़ जाती है।

घी – दूध में से दही, छाछ, घी, मक्खन बनता है। मक्खन 48 मिनिट तक सचित्त और उसके बाद अचित्त। ऐसे मक्खन का बना हुआ घी प्रासुक-अचित है इसलिए भक्ष्य है।

तेल – 4 प्रकार के तेल विगई में गिने जाते हैं। तिल का तेल, अलसी का तेल, सरसों का तेल, कुसुम्भ नामक घास का तेल।

गुड़-शक्कर – कामवासना उत्तेजन करने वाला हो सकता है। कच्चा गुड़ (नरम गुड़) इस कक्षा में आता है।

तला हुआ – पहले तीन धाण में तली हुई विगई की गिनती में आती है। चार, पाँच, छः धाण में तली हुई विगई नहीं।

कंदमूल – कंदमूल अनंतकाय वनस्पति होने से अभक्ष्य है। आलू, प्याज, लहसुन आदि वनस्पतियों के प्रत्येक कोष में अनंत जीवराशि होती है। कारण कि वह अनंतकाय है। कद्दू हरी वनस्पति होने से तब अनंतकाय होने से अभक्ष्य है। सूखने के बाद उसमें स्वयं Dehydration होता है।

जैन दर्शन एवं दो भिन्न विचार

1. ब्रह्म सत् जग मिथ्या : संसार के सर्व संबंध मिथ्या हैं। कोई किसी का नहीं। अकेला आए, अकेले ही जाना है।

जैन दर्शन अनुसार यह विचारधारा अनासक्त भाव की प्रेरणा देती है। अंत समय में यह भाव हमारा कल्याण कर देता है। बंधे हुए संबंध मृत्यु के बाद भी साथ रहते हैं। पूर्व भव के संबंधों से ही वर्तमान संबंध बनते हैं।

मरिचि एवं कपिल : महावीर एवं गौतम भवोभव साथ।

त्रिपृष्ठ वासुदेव एवं शय्यापालक – महावीर एवं कान में कीलें।

त्रिपृष्ट एवं सिंह – महावीर एवं गौतम का शिष्य होने को चाहता हुआ किसान।

2. <u>आत्मवत् सर्वभूतेषु</u> : सभी तेरे भाई हैं। सब तेरे हैं, तू सभी का है। जैसा तू, वैसे ही अन्य हैं।

वसुदैव कुटुम्बकम् की भावना

वीतराग दशा प्राप्त के पश्चात् प्रशस्त-अप्रशस्त राग, मोह का सर्वथा क्षय जरूरी है। सर्व जीवों का हित, मैत्री भावना। उसके आनंद से प्रमोद भावना, करुणा, माध्यस्थ भावनाओं आदि। समग्र जीव सृष्टि के साथ आत्मीयता-अहिंसा की नींव।

द्विदल का विज्ञान (संक्षिप्त)

(Research of Dining Table) से

<u>द्विदल :</u> जिसकी दाल बने वह सब द्विदल। मूंग, तुअर, उड़द, चना, मठ, वाल, चवला, वटाणा, मैथीदाना, मसूर, कलथी, लोंग की दाल।

इन सबके हरा पान, हरे दाने तथा उसका आटा सभी द्विदल गिने जाते हैं। 4 लक्षणों में सभी ही जिसमें घटे वही द्विदल।

(1) वृक्ष के फलरुप जो न हो। (2) जिससे तेल न निकले। (3) घट्टी में पीसने से जिसकी दाल बने। (4) जिसके दो भाग के बीच परदा न हो।

* द्विदल कठोल की वानगी + कच्चा दूध, दही, छाछ = बेइन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति (संयोगिक दोष)

<u>द्विदल के दोष लगने के संभव वाली वानगीयाँ :-</u>

* <u>दही बड़ा :</u> - बड़े + कच्चा दही = जीवोत्पत्ति
* <u>रायता एवं बूंदी</u> - कच्चा दही + बूंदी = जीवोत्पत्ति
* <u>मैथी के थपेले</u> - गेहूं बाजरे का आटा + मेथी की पत्ती + कच्ची छाछ = जीवोत्पत्ति
* <u>कढ़ी</u> - कच्ची छाछ + बेसन = जीवोत्पत्ति

- ✻ श्रीखंड + हरे सूखे कठोल की सब्जी, केलावड़ा, चने का खमण, मूंग की दाल, पापड़, चने की लोट वाली कढ़ी = जीवोत्पत्ति
- ✻ कढ़ी श्रीखंड का भोजन - कढ़ी में चावल के आटे का अटियामण वापरना ।
- ✻ ढोकला - कच्ची छाछ + कठोल का लोट = जीवोत्पत्ति
- ✻ दही एवं मेथी के मुठ्ठिये + कच्चा दही = जीवोत्पत्ति
- ✻ मेथीदाना डाला हुआ अचार + श्रीखंड का कच्चा दही = जीवोत्पत्ति
- ✻ छाछ - भोजन के बाद मुँह अच्छी तरह साफ न कर पीने से = जीवोत्पत्ति
- ✻ दही : दूध + जमावण = पैद्गलिक परावर्तन (जैन थ्यौरी)
- ✻ दही की काल मर्यादा

दूध में जमावण डालने के बाद (16 प्रहर - 48 घंटे)	-	2 रात रहे तो अभक्ष्य
दो रात्रि पूर्व छाछ बनाओ	-	अगले 2 दिन/रात
दो दिन पूर्व छाछ के थेपले	-	अगले 2 दिन
दो दिन पूर्व थेपले के सेक लेने पर	-	अगले 15 दिन
15 दिन पूर्व सेके हुए थेपले का चिवड़ा	-	अगले 15 दिन

दही की मर्यादा इस प्रकार कुल 36 दिन तक रहती है ।

जाप के प्रकार एवं वैज्ञानिक मूल्य

पूजा केटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्र कोटिसमो जपः ।
जप कोटिसमं ध्यानं, ध्यान कोटीसमो लयः ।।

वीतराग परमात्मा या अन्य देव-देवी की करोड़ बार पूजा करने के समान उनकी एक स्तुतिपाठ है । करोड़ बार स्तुति पाठ के बराबर एक जाप है । करोड़ बार जाप करने के बराबर ध्यान है एवं करोड़ बार ध्यान करने के बराबर एक लय है । परमात्म स्वरूप में रमणता अथवा ध्याता, ध्येय एवं ध्यान तीनों की एकरूपता है ।

<u>आठ वर्गणाओं जीवों के लिए ग्राह्य एवं उपयोगी है</u>

1. औदारिक 2. वैक्रिय 3. आहारक, 4. तेजस, 5. भाषा, 6. श्वांसोश्वास, 7 मनोवर्गणा, 8. कार्मण ।

इन सभी वर्गणाओं के प्रत्येक परमाणु एकम में अनंत परमाणुओं होते हैं । पश्चात् भी औदारिक वर्गणा के परमाणु एकम से अधिक वैक्रिय में अधिक परमाणु एवं वैक्रिय से अधिक आहारक आदि ।

आगम विक्रम संवंत की पांचवी छठी शताब्दी में लिपिबद्ध हुए तब तक जैन साधु-साध्वी भगवंतों में आगमों को कंठस्थ करने की परम्परा थी । Quantam Mechanics **की शोध विक्रम संवत् 20वीं सदी के अंत में हुई थी ।**

भाषा वर्गणा के परमाणु	**330 मीटर/सेकण्ड**
तेजस वर्गणा के परमाणु	**30 करोड़ मीटर/सेकण्ड**

(Electro Magnetic Waves)

भाषा वर्गणा में परमाणुओं अधिक परंतु शक्ति तेजस वर्गणा के परमाणुओं से कम । मनोवर्गणा के परमाणु में परमाणु भी अत्यन्त अधिक एवं गति भी अत्यन्त अधिक होने से अत्यन्त शक्तिशाली/अनंत शक्तिमय होते हैं ।

<u>आध्यात्मिक ऋषि मुनियों ने जाप के तीन प्रकार बताए हैं :-</u>

<u>भाष्य जाप</u> : भाषा वर्गणा - शक्ति कम

<u>उपांशु जाप</u> : इसमें भी भाषा वर्गणा का उपयोग । परन्तु अश्राव्य ध्वनि तरंगों होने से शक्ति अधिक (Ultra Sonic)

<u>मानस जाप श्रेष्ठ जाप</u> : मनोवर्गणा के परमाणु समूह का उपयोग Creates Very High Frequency Vibrations - **अनन्त शक्ति ।**

पच्चक्खाण आदि

✻ विनय किसके जैसा ?	गौतम स्वामी
✻ त्याग किसके जैसा ?	जंबू स्वामी
✻ ब्रह्मचर्य किसके जैसा ?	स्थूलिभद्र
✻ जिनोपासना किसके जैसी ?	श्रेणिक राजा
✻ स्तोत्र रचना किसके जैसी ?	मानतुंग सूरि
✻ साहित्य ज्ञान किसका ?	हरिभद्र सूरि
✻ प्रभावकता किसकी ?	नेमिसूरि
✻ चरित्र किसका ?	चंदनबाला
✻ जातिस्मरण ज्ञान किसका ?	आर्द्रकुमार

पच्चक्खाण (नियम) : कर्म आश्रव क्षय होवे, कर्मबंध का क्षय होवे।

मन की पाल याने पच्चक्खाण : संयम की सुवास, मन की दृढ़ता एवं जीवन की सार्थकता बढ़ती है। विकारो, तृष्णा का छेदन होता है इससे उपशम भाव प्रगट होता है और पच्चक्खाण शुद्धि होती है।

मूल संस्कृत शब्द : प्रत्याख्यान

प्रात: नवकारसी एवं सायं चौविहार करो - तीर्यंच-नरक गति नहीं मिलती है

सौ वर्ष में जितने कर्मों का नाश हो वह एक नवकारसी करने से होता है।

सूर्योदय के पश्चात् 48 मिनिट तक चार (असणं, पाणं, खाईमं, साईमं) प्रकार के आहार का त्याग।

पच्चक्खाण	कब	काल	फल
नवकासी	सूर्योदय पूर्व	सूर्योदय बाद 48 मिनिट	100 वर्ष की अकाम निर्जरा
पोरिसी	सूर्योदय पूर्व	सूर्योदय से 1 प्रहर	1000 वर्ष की अकाम निर्जरा
साड्डपोरिसी	सूर्योदय पूर्व	सूर्योदय से 1½ प्रहर	10000 वर्ष की अकाम निर्जरा
पुरिमड्ढ	सूर्योदय पूर्व	सूर्योदय से 2 प्रहर	1 लाख वर्ष प्रमाण के पापनाश

अवड्ढ	सूर्योदय पूर्व	सूर्योदय से 3 प्रहर	10 लाख वर्ष प्रमाण के पापनाश
बिआसणा	-	-	1 लाख वर्ष प्रमाण के पापनाश
एकासणा	-	-	10 लाख वर्ष प्रमाण के पापनाश
निवि	छः विगई रहित	द्विदल बाद न आवे	01 करोड़ वर्ष प्रमाण के पापनाश
आयम्बिल	(तिविहार करे, पोरिसी पश्चात्		1 हजार करोड़ वर्ष प्रमाण के पापनाश
उपवास	उबला हुआ पानी ही वापरना)		
पच्चक्खाण			10 हजार करोड़ वर्ष प्रमाण के पापनाश
छट्ठ			1 लाख करोड़ वर्ष प्रमाण के पापनाश
अट्ठम			10 लाख करोड़ वर्ष प्रमाण के पापनाश
पौषध	गृहस्थ जीवन का 1 दिन के लिए त्याग		27 अ, 27 क, 77 ह., 777 वर्ष का देवलोक का आयुष्य

नवकारसी एवं चउविहार का अपूर्व लाभ

मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण पारने का सूत्र

मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण फासिअं पालिअं सोहिअं
तिरिअ कीट्टिअं आराहिअं जं च न आरहिअं मिच्छामि दुक्कड़ं ।

मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण लेने का सूत्र

मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं
महत्तरागारेणं सव्वसमाहि वत्तियागारेणं वोसिरामि ।

नवकारसी एवं तिविहार सहित मुट्ठिटसाहिअं का पच्चक्खाण संपूर्ण दिवस करने से महिने में 25 से 28 दिवस के उपवास का लाभ मिलता है । ऐसा अकल्प्य लाभ लेने के लिए आज से ही पच्चक्खाण का उपयोग प्रारंभ कर दो ।

पू.आ. श्री रामचन्द्र सूरीश्वरजी म.सा. के प्रवचन प्रवाह में से प्रेरणा प्राप्त कर संकलित।

सूचना - मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण संपूर्ण दिवस करने वाले को बैठकर ही खाना-पीना चाहिए । चलते-फिरते या खड़े-खड़े खाना-पीना नहीं । खाने-पीने का काम पूर्ण हो तब दोनों हाथ जोड़कर मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण लेकर ही खड़ा होना चाहिए एवं खाने-पीने की शुरूआत करने के पूर्व बैठकर जमीन पर मुट्ठि बंद करके एक नवकार गिनकर मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण पारना चाहिए ।

समझने जैसी सामायिक

– पू. आ. श्री हेमचंद्रसागर सूरि

* सामायिक हो सके वहाँ तक उपाश्रय में ही करना चाहिए। संभव ना हो तो शुद्ध वातावरण मय एक खंड में घर पर कर सकते हैं (वातावरण शुद्धि)
* सामायिक संभव हो सके तो गुरु की निश्रा में ही करना चाहिए। गुरु की उपस्थिति न हो तो नवकार एवं पंचिद्रिय आलेखित हो ऐसे स्थापनाजी समक्ष कर सकते हैं।
* गुरु निश्रा छोड़ने से कब, कैसा अनर्थ तथा गैरलाभ होता है इस बात को समझाता एक दृष्टांत :-

महातपस्विनी एवं अखंड चारित्र पालिका सुकुमालिका

कठोर जीवन, कठोर साधना करने के पश्चात् अपनी गुरुवर्या की आज्ञा का उल्लंघन किया एवं भवभ्रमण बढ़ा लिया। वैराग्य प्रबल था। आत्मोद्धार के लिए शरीर का सत्व निचोड़ने में तत्पर थी। वाचना में जिन कल्पी की आचार संहित श्रवण कर मन में गांठ बांध ली कि मैं जिनकल्पी जैसा उच्च कक्षा का चारित्र पालन करूँ।

गुरुणीजी ने समझाया। स्त्री देह में ऐसी साधना नही हो सकती और वह भी जंगल में ? श्मशान, खण्डहरों में शून्य ग्रह में तो संभव ही नहीं है। गुरुणीजी की बात नहीं मानी। सुकुमालिका का आग्रह चालू ही रहा। श्मशान में काउसग्ग करने जाती।

एक दिन सामने से दूर संगीत के सुर सुने। उस ओर दृष्टि की और एक दृश्य दृष्टिगत हुआ। एक स्त्री के साथ पाँच पुरुष क्रीड़ा कर रहे थे। यह देखकर मन चालित हुआ। अंतर में विचारा कि मुझे भी आने वाले भव में ऐसा सुख मिले। दूसरे भव में द्रौपदी बनी, पाँच पाण्डव पति बने। अपने हाथों से मोक्ष गँवाया। पाँचवे देवलोक में समय पसार कर रही है।

यह है गुरु अवज्ञा का दुष्ट परिणाम।

* पेथड़शा 32 माईल घेरे वाली, 92 लाख गांवों की राजधानी माण्डवगढ़ के 500 मंत्रियों के नायक थे। राजकार्य में बहुत व्यस्त थे। गुरु महाराज 5 माईल दूर हो तो भी वह वहां जाकर नियमित प्रतिक्रमण करते। पक्खि प्रतिक्रमण के लिए 10 माईल जाना पड़े तो भी जाते। गुरु निश्रा का महत्व समझ जाए तो समय का भोग अल्प बन जाता है।

गोमती चक्र - सुधर्मास्वामी के चरण की उपासना

गुरुजी के समक्ष चार दांडी की ठवणी पर पोटली होती है उसे स्थापनाजी कहते हैं। 'प्रतिष्ठा कल्प' में बताई गई विधि से पू. आ. भगवंत अढार अभिषेक करवाकर सर्वदा स्थापित स्थापनाजी की रचना करते हैं।

पोटली में 'चंदगण' समुद्र के बेइन्द्रिय जीवों का मृत शरीर शंख सीप जैसा होता है। उसमें आवर्त-वर्तुल होने से उनका चयन किया गया है। स्थापनाजी में सुधर्मास्वामीजी के चरण में आवर्तों थे अतः उनके प्रतिकरूप में स्थापना की गई है। इसे गोमती चक्र भी कहा जाता है, जो अनेक रूप में लाभदायी है।

कटासना : 'कटासन' भी कहता है। ऊन का होना चाहिए। ऊन शुभ तत्व को ग्रहण करता है। अशुभ तत्व को त्यागता है। तेजस-विद्युत शरीर की बिजली को, धरती में प्रवाहित बिजली खीच न ले, इस कारण उपयोगी है, अवरोधक बनता है, इससे तेजस शरीर सक्रिय रहता है।

माप : बैठने वाले व्यक्ति के डेढ़ हाथ जितने माप का चोरस, सफेद ऊन का।

मुँहपत्ती (4 गति का प्रतिक है)

माप : 1 वैंत 4 अंगुली। (बृहत्त् कल्पभाष्य), (यति दिनचर्या)

बंधी हुई किनार - मनुष्य गति का प्रतीक

बाकी की तीन खुली किनारे :- तिर्यंच, देव, नरक गति के प्रतिक सफेद रंग की (आचार दिनकर ग्रंथ की टीका में है।)

ज्ञान के साधनों पर थूक न गिरे, आशातना से बचाती है। बोलो तब तुरंत मुँहपत्ती मुख के पास रखना चाहिए, बाकी मौन रहना। अगर बाँध कर रखे तो बोलने की प्रवृत्ति बार-बार होती है। मुँह की लार लगने से समुच्छिम जीवो की उत्पत्ति होती है।

साधुवेश का प्रतीक है इसलिए हमेशा मुँहपत्ती उनके साथ ही होती है।

चरवला

सामायिक में मन इधर-उधर होता है उसे चरवला हमें सावधान करता है। किस प्रकार?

चर-चरना, वलो-उसमें से निकलना।

वृत्ति अवरोधक वह चरवला। सामायिक में सतत् याद करवाता है कि मैं सामायिक में हूँ। भूमि प्रमार्जन में उपयोगी बनता है।

मुंहपत्ति के पचास बोल में अंतिम छः बोल चरवले के उपयोग के लिए सार्थक करने के होते हैं।

माप : 24 अंगूली डंडी -जीव 24 दंडक (मार्ग) से दंडित होने के कारण उसे दूर करने के लिए। आठ अंगूली की दिशीयाँ- आठ कर्म के बंध से जीव बंधा है उसे मुक्त करने के लिए।

चोरस दांडी : स्त्रियों हेतु - स्त्री 4 गतियों का कारण बन जाती है।

गोल दांडी : पुरुष हेतु - वासना की अधिकता स्त्री रूप माना जाता है।

(खेस उत्तरासंग)

उत्तर - नाभि के ऊपर का शरीर, आसंग - साथ रहा हुआ।

विनयसूचक वेश है (श्रावक की यूनिफार्म)

कंदोरा

जिन शासन का प्रतीक कहा गया है। कंदोरा बांधने से आत्मा में कौवत जागृत होता है। कमर पर बांधने से साधु भगवंत विहार करते हैं तो थकावट कम लगती है।

सामायिक समता की प्राप्ति की युद्ध क्रिया है। कंदोरा इस क्रिया में सहायक बनता है। कंदोरा सूत का होना चाहिए। सूत से मूलाधार चक्र सक्रिय बनता है। कारण कि, कंदोरा मेरुदंड के नीचे के भाग एवं नाभि के मध्यम संबंध बनाता है।

जैन दीक्षा अंगीकृत करें उस दिन कंदोरा बांधना होता है। वीर्यरक्षा, ब्रह्मचर्य पालन, वासना-विकारों को रोकता है। कंदोरे के किनारे पर ज्ञान एवं क्रिया को दर्शाती दो गांठ बांधी जाती है।

पाँच समवाय : अनेकांत दृष्टि

<u>काल</u> - बीज, आज, वृक्ष, कल, समय कर्ताहर्ता, कर्म उदय हुआ काल आने पर।

<u>स्वभाव</u> - मछली पानी में तैरती है। अमुक बीज उगता नहीं। स्वभाव ही मुख्य है।

<u>नियति</u> - भाग्य, भवितव्यता पूर्व से ही निर्णित है।

<u>कर्म</u> - जैसा कर्म, वैसा फल।

<u>पुरुषार्थ</u> - पुरुषार्थ नहीं तो कुछ नहीं।

*****

<u>काल :</u> शुभाशुभ कर्मी तत्काल में उदय में आते नहीं। परिपक्व होने के पश्चात् उदय में आते हैं। कर्म को भी फल बताने में काम की अपेक्षा है।

जहाँ कर्म की पहुँच नहीं है वहाँ उद्यम की ध्वजा फहरती है। कर्म का कार्य जीव को भवचक्र में घुमाना है। तब उद्यम-प्रयत्न-पुरुषार्थ कर्मों को ध्वस्त कर आत्मा को मुक्ति पूरी में ले जाता है। निरुधमी एवं मात्र कर्मवादी सफलता से वंचित रहते हैं।

पुरुषार्थ को काल, स्वभाव की अपेक्षा रहता ही है परन्तु वह विजय दिलाने में सक्षम है।

पांच समवाय एवं चार साधना

- पं. पन्नालाल जगजीवनदास गांधी

(1) स्वभाव, (2) काल, (3) कर्म, (4) पुरुषार्थ (5) नियति अथवा भवितव्यता अथवा प्रारब्ध।

* कर्म बनने में पांच कारण अहम् हैं। वह उपरोक्त पांच समवाय हैं।
* संसारी छद्मस्थ जीव उसके मूल शुद्धि स्वरुप में आए नहीं तब तक कार्य-कारण की परंपरा चालू रहती है।
* पांच आस्तिकाय (प्रदेश समूह) है।

धर्मास्तिकाय - गति सहायक - स्वभाव घटता ही है।

अधर्मास्तिकाय - स्थिति सहायक-स्वभाव घटता ही है।

आकाशास्तिकाय - अवगाहना दायित्व-स्वभाव घटता ही है। कारण तीनों जड़, अक्रिय, अरुपी है। परिवर्तन या परिभ्रमण नहीं।

पुद्गलास्तिकाय - स्वभाव, काल, भवितव्यता तीनों घटते हैं। कारण है।

जीवास्तिकाय - पाँचों समवाय घटते हैं। कारण कि छद्मस्थ जीवों के लिए पांच समवाय, सिद्ध जीवों के लिए मात्र स्वभाव घटना है। कर्मरहित होने से कर्म नहीं घटते। अक्रिय, अरुचि, स्थिर, अकाल, होने से काल, पुरुषार्थ एवं भवितव्यता घटते नहीं।

* जीव जब अव्यवहार राशि में से व्यवहार राशि में आते हैं तब निगोद में से निकलते हैं, तब भवितव्यता ही घटती है।

व्याख्याएँ

1. <u>स्वभाव</u> : जिसका अस्तित्व त्रिकाल हो, जिसे बनाया नहीं जा सके, जिसे मिटाया नहीं जा सके, जो अनादि, अनंत, अनुत्पन्न, अविनाशी, स्वयंभू हो उसे स्वभाव कहा जाता है । जो जिस द्रव्य में जो लक्षण रुप भाव वह उसका स्वभाव ।

   गति सहायकता - धर्मास्तिकाय का स्वभाव

   स्थिति सहायकता - अधर्मास्तिकाय का स्वभाव

   अवगाहन दायित्व - आकाशास्तिकाय का स्वभाव

   पूरण गलन, ग्रहण गुण - पुद्ग्लास्तिकाय का स्वभाव

   दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य, उपयोग यह जीवास्तिकाय का स्वभाव है ।

   कोई भी पदार्थ अस्तित्व रूप है उसका निश्चित स्वभाव एवं उसे अनुसरे उसका निश्चित कार्य भी है ।

   * हम जो हैं वह हमारा अस्तित्व है एवं हम जैसे हैं वह हमारा स्वभाव है ।

2. <u>काल</u> : पाँचो आस्तिकाय में होने वाली अर्थक्रिया, जिसे काल कहा जाता है । जीव-अजीव के पर्याय का नाम ही काल । जहां पर्यायांतरता, रुपरुपांतरता, क्षेत्रांतरता, परिवर्तन है वहाँ काल है । संसारी छद्मस्थ जीवों में कर्ता-भोक्ता के भाव है वह काल है। द्रव्य की अवस्थांतर का अंतर वह काल है । जहाँ-जहाँ क्रमिक अवस्था है वहाँ काल है। इसलिए संसारी जीव द्रव्य को काल है, सिद्ध जीव द्रव्य को काल नहीं ।

3. <u>कर्म</u> : कर्मवर्गणा (पुद्गल) जब आत्म प्रदेश के साथ बद्ध संबंध में आए तब कर्मरुप परिणाम प्राप्त करते हैं । जीव ने आत्मप्रदेश में एकत्रित किए स्वयं की शुभाशुभ मानसिक, वाचिक एवं कायिक क्रिया वह कर्म, जो जीव एवं पुद्गल का मिश्रण है ।

4. <u>पुरुषार्थ</u> : जिससे फेरफार किया जा सकता है उसमें फेरफार (उद्यम) करने की क्रिया को पुरुषार्थ कहते हैं । संज्ञा तथा बुद्धि के उपयोग से ईष्ट की प्राप्ति के लिए

किया गया परिश्रम पुरुषार्थ है । पुरुषार्थ याने वीर्यांतराय का क्षयोपशम । कर्म एवं भवितव्यता होने के पश्चात् भी उद्यम के बिना कार्य सिद्धि नहीं । जागृति ही उद्यम है ।

5. <u>भवितव्यता (नियति-प्रारब्ध)</u> : सर्वज्ञ जिस परिस्थिति को जिस प्रमाण में अपने ज्ञान में दृष्टिगत करते हैं । उसी प्रमाण में परिस्थिति का निश्चित बनना उसे भवितव्यता कहते हैं ।

   * भगवान देखे उस प्रमाण में घटना होवे वह भगवंत की सर्वज्ञता । भगवान जिस प्रमाण में होवे उस ही प्रमाण में देखे वह भगवान की वीतरागता है । निष्प्रयोजनता, निर्मोहिता, माध्यस्थ आदि । जिसमें फेरफार नहीं है जो टलने वाला नहीं है, वह भवितव्यता ।
   * स्वभाव अनादि अनंत है, स्वभाव अक्रम से है । भवितव्यता सादि-सानंत है। यह क्रम से है । परिस्थिति बने तब उत्पाद, पूर्ण हो तब व्यय ।
   * भवितव्यता अबाधाकाल होने से 'पर' वस्तु है 'भवितव्यता' वायदा का व्यापार है, उद्यम रोकड़े का''।

स्त्री के मातृत्व प्राप्ति में पांच कारण हैं

<u>स्वभाव</u> - स्त्री ही माता बन सकती है ।

<u>काल</u> - ऋतुवंती होने के बाद ही, गर्भ रहने के पश्चात्, गर्भकाल पूर्ण होने के बाद ही माता बन सकती है ।

<u>कर्म</u> - पूर्वकृत मातृत्व प्राप्ति का कर्म बांधा हो एवं कर्म उदय में आए तब ही माता बना जा सकता है ।

<u>पुरुषार्थ</u> - पुरुष के साथ क्रियात्मक संयोग द्वारा ही मातृत्व सुख मिलता है ।

<u>भवितव्यता</u> - योग्य प्रकार की भवितव्यता न हो तो स्त्री माता नहीं बन सकती है ।

* भवितव्यता में हम पराधीन हैं । परंतु भाव में स्वाधीन हैं । बाहर बनने वाली परिस्थिति हमारे वश में नहीं । परंतु घटित घटनाओं के ऊपर भाव में कैसे सावधान बने रहना वह हमारे हाथ में है।

✻ बाहर की संपत्ति तथा प्रकार के कर्म के विपाकोदयं से मिला वह प्रारब्ध है । जबकि आत्मा को कर्मरहित करना वह हमारा पुरुषार्थ है ।

ऐसा मिलना प्रारब्ध है वह अक्रिया है, प्रयत्नपूर्वक ईच्छा प्रमाण का मिलना वह पुरुषार्थ है ।

प्रारब्ध 'पर' वस्तु के संबंध से है वह पराधीन है, 'पर' वस्तु प्राप्त भी हो सकती है और नहीं भी । कर्म का उदय है वह प्रारब्ध है । भाव में परिवर्तन करना वह पुरुषार्थ है । क्रोध के संयोगों में क्षमाभाव धारण करना वह पुरुषार्थ है ।

✻ कर्म का उदय है परन्तु भाव का उदय नहीं ।

✻ पांच समवाय कारणों को साधन बनाकर, साधना करके साध्य अर्थात् सिद्धि प्राप्त करनी है ।

<u>काल</u> - जो वर्तमान है वह भूत बनता है एवं भविष्य वर्तमान बनकर आता है । वर्तमान का उपयोग कर भूत, भविष्य को समाप्त कर कालातीत अर्थात् अकाल बनने की साधना करनी है ।

<u>स्वभाव</u> - जीव को चिंतन, मनन, मंथन करके स्वभाव में आने की साधना करनी चाहिए ।

<u>कर्म</u> - जीव को विवेकपूर्ण होकर सत्कर्म की ओर जाना चाहिए ।

<u>उद्यम</u> - जीव को शुभ में प्रगतिशील बनना चाहिए । प्रमाद छोड़कर अप्रमत्त बनकर शुभ में जुड़कर शुद्ध होना चाहिए ।

<u>नियति</u> - जीव को रति-अरति, हर्ष-शोक से दूर रहकर समभाव में स्थिर रहने की साधना करनी चाहिए ।

✻ काल, कर्म, उद्यम, नियति, आत्मा के स्वरुप नहीं परन्तु परमात्मा पद प्राप्ति के साधन हैं ।

मुक्ति प्राप्ति के चार साधन कारण

1. अपेक्षा कारण, 2. निमित्त कारण, 3. असाधारण कारण, 4. उपादान कारण ।

1. **अपेक्षा – पूर्वगत कर्म आधारित** : मोक्ष प्राप्ति के लिए अनुकूल काल चतुर्थ आरा, आर्यक्षेत्र, आर्यजाति, उच्च गौत्र, संज्ञि पंचेन्द्रिय मनुष्य भव तथा वज्रऋषभनाराच संघयण अपेक्षित है । इस हेतु इन सभी को अपेक्षा कारक माना गया है ।

2. **निमित्त कारण** – योगानुयोग निमित्त मिलने से मुक्ति-सिद्धि कार्य संभव बनता है । जड़ निमित्त : चरवला, मुंहपत्ती, कटासना, आसन, मंदिर । चेतन निमित्त : देव, गुरु, धर्म।

3. **असाधारण कारण** – अपेक्षा एवं निमित्त कारण मिलते ही अंत:करण की शुद्धि होना असाधारण कारण कहा जाता है । जैसे कि मंदिर-मूर्ति, आगमग्रंथ-धर्म, देव-गुरु निमित्त । उनसे क्रोध-मान-माया-लोभ का शमन, उपशमन होना वह असाधारण कारण ।

4. **उपादान कारण** – उपादान कारण अर्थात् आत्मा । स्वयं ही आत्मा का मोक्ष हो सकता है और होता है ।

अपेक्षा एवं निमित्त की प्राप्ति क्रम से है । उसकी प्राप्ति के पश्चात् असाधारण कारण एवं उपादान कारण को पाने की शक्यता बन जाती है ।

गुणस्थानक क्रमारोह चतुर्थ गुणस्थानक से प्रारंभ कर – सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति आदि साधक अवस्थाएँ अर्थात् असाधारण कारण ।

केवल ज्ञान प्राप्त होन के पश्चात् असाधारण कारण एवं उपादान कारण एक हो जाते हैं । गुण एवं गुणी अभेद हो जाते हैं ।

दर्शनाचार

Overview-Synopsis

* नाणंमि - दंसणंमि - पंचाचार सूत्र में 'दर्शनाचार' आदि आचार।
* दर्शनाार आठ होते हैं - नि:शंक, निष्कांक्षा, निर्वितिगिच्छा, अमूढदृष्टि, उपबृहंणा, स्थिरिकरण, वात्यल्य, प्रभावना।
* जीव सद्धर्म के बीज को आत्मा में रोपित करता है, तब से उसकी आत्मा उर्ध्वगामी बनती है। भगवान एवं जिनाज्ञा में बहुमान (धर्म जितना मान अन्यत्र कहीं नहीं)
* श्रावक के जीवन में दर्शनाचार आवश्यक है। दर्शनाचार रहित श्रावक 'अंध' एवं देखे तो भी उल्टा दिखे ऐसा 'मिथ्यादृष्टि' कहा गया है।
* दर्शन गुण यानि कि धर्म जैसा है वैसा ही दृष्टिगत होता है।

1. <u>नि:शंक</u> :- देव, गुरु, धर्म के प्रति नि:शंकता नहीं की यह अतिचार दूर करना चाहिए। परमात्म तत्व में अविहड़ श्रद्धा। अभी तो गति-मति आलम्बन समस्त ही तत्वत्रयी है। वीतराग परमेश्वर तत्व उगमबिन्दु है। गुरु मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। धर्मतत्व से आत्मकल्याण की जा सकती है।
2. <u>निष्कांक्षा</u> :- 'मिथ्यात्व' में कांक्षा, कामना, ईच्छा नहीं होना चाहिए। समस्त धर्म अहिंसा-सत्य समझाते हैं, पेकिंग अलग है। ऐसा मानने से कांक्षा अतिचार दोष लगता है। समान ही हो तो मानने में कोई समस्या नहीं। समानता में कमी है, असमानता अधिक है। वीतराग भगवान ने जहाँ समानता है उसी ही स्वीकार किया है। नि:कांक्षा समर्पण मांगती है। इसमें दिमागी खेल प्रपंच नहीं चलता है।
3. <u>निर्विचिकित्सा</u> :- भव रोग के निवारण की औषधि याने चिकित्सा। उसके फल में संदेह नहीं वह निर्विचिकित्सा। 'लोगस्स' में आरुग्ग बोहिलाभं - भव आरोग्य की बात कही गई है। दान देते हैं तब संपत्ति जाती है या महालाभ दिखता है।

औषधि लेने से स्वस्थ होते हैं, फल मिलेगा ही इस भावना से आध्यात्म फल का विचार करना चाहिए। आत्मिक सुख के फल की इच्छा (कांक्षा) पुण्यानुबंधी पुण्य का कारण हैं। विश्वास हो तो दान करते समय बल मिलेगा, हाथ धूजेगें नहीं।

* जो वस्तु जिसके पास होती है उसे लेने के लिए उसके पास जाया जाता हैं। गुरु भगवंत के समक्ष उनके गुणों की प्राप्ति हेतु जाना चाहिए।

* जगत में सर्व पापों से छूटने के लिए ''जिन'' व्यवस्था के सिवाय दूसरी कोई और व्यवस्था नहीं है। सांसारिक सुख भोगने पर घटते हैं, आध्यात्मिक सुख भोगने पर वृद्धि होती है।

  अनामिका के भव में श्रेयांसनाथ प्रभु को सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ था।

* आराधना करते जाओ, समझते जाओ। ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः में ही स्याद्वाद है।

4. अमूढ़ दृष्टि :- मूढ़ता-मोह परिणाम। दृष्टि : धर्म में आस्था। श्रावक की अप्रमत अवस्था नहीं होती है इसलिए पूजा, दर्शन, सामायिक क्रियाएँ है। 'पुद्गल से न्यारो प्रभु मेरा' ऐसा हरिभद्रसूरि महाराज ने कहा है।

5. उपबृंहणा :- संस्कृत शब्द है। अर्थ :- प्रशंसा, प्रोत्साहन।

शक्ति होने पर भी गुणीजन की प्रशंसा न करें तो दोष लगता है।

* मात्र धार्मिक स्थान में ही नहीं परंतु जहाँ-जहाँ धर्मप्रवृत्ति या गुण सम्पन्न जीव देखें वहाँ सद्भाव-बहुमान होता ही है। उपबृंहणा दर्शनाचार प्रत्येक क्षेत्र में आता है।

* मन में शुभ भाव है इसका ज्ञान (तसल्ली) कैसे ? 'आचार' से इसकी तसल्ली की जा सकती है। याद रहे, शिथिलाचार या शिथिलाचारी के समर्थन से महादोष लगता है।

* 'सुमति' श्रावक इस कारण से परमाधामी देव हुआ एवं अनंत संसार बढ़ाया। संघ में कुछ अनिष्ट होता हो तो भी समर्थन नहीं देना। यह उपबृंहणा दर्शनाचार के पालन का ही रुप है।

6. <u>स्थिरीकरण</u> :- सामने वाले व्यक्ति को आपकी प्रवृत्ति द्वारा धर्म या अधर्म में स्थिर करना । अधर्म में स्थिर करने से अनाचार दोष लगता है । उपबृंहणा में प्रशंसा, समर्थन आता है, स्थिरीकरण में वर्तन आता है । वर्तन में रहना हमेशा अधिक कठिन आचार की मांग करता है । किसी जीव को सत्य धर्म में स्थिर करें तो उसका फल भवोभव प्राप्त होता है । सामने वाले को धर्म में स्थिर करने के लिए जैसा संभव हो वैसा प्रयत्न करना चाहिए । 'कोशा' ने 'सिंह गुफावासी' मुनि का आबेहुब स्थिरीकरण किया था ।

* श्रद्धा को धर्म समझने के पश्चात् भी धारण करके रखना दुष्कर है । श्रद्धा प्राप्ति के पश्चात् इसे <u>नि:शंक</u> रखना इससे भी दुष्कर, इससे अधिक <u>निष्कांक्षा</u> दुष्कर, इससे अधिक <u>निर्विचिकित्सा</u> दुष्कर और इससे भी अधिक <u>अमूढ़ दृष्टि</u> पश्चात् <u>उपबृहंणा,</u> पश्चात् <u>स्थिरीकरण,</u> इसके अधिक <u>वात्सल्य</u> और <u>सर्वाधिक दुष्कर प्रभावना दर्शनाचार है ।</u>
* दर्शनागुण - समकित प्राप्त करने के लिए यह आठ दर्शनाचार अमोघ साधन हैं । आठ दर्शनाचार यथाशक्ति पालने चाहिए । शक्ति होने पर भी न पाले तो दोष लगता है । जितनी शक्ति हो उतनी मात्रा तक ही पालें तो गुण स्फुरित होता है।
* स्थिरीकरण से ही शासन नवकार (दृढ़) बनता है । संघ में जितना स्थिरीकरण उतना ही शासन की दृढ़ता बढ़ती है ।
* आठ दर्शनाचार का मूल क्या ? 'गुणानुराग'
* दर्शनगुण का स्वरूप : तत्व संवेदनवाला हो । वृत्ति में भी सत्य और परिणाम भी सत्य ।
* धर्म प्रभावना का दान सार्वजनिक होता है । 'गुप्तदान' समस्त नहीं होता । संपत्ति हो, अधिक दान नहीं दे सको तो 'ममता' को वोसिराना चाहिए । वस्तु नहीं मूर्च्छा को वोसिराना चाहिए ।
* <u>वोसिराना अर्थात् राग-द्वेष के चक्रव्यूह को तीनो योग से खंडित करना ।</u>

7. <u>वात्सल्य दर्शनाचार</u> - दर्शन गुण के कारण जन्मा हुआ अनहद धर्मराग वात्सल्य का मूल स्तोत्र है।

वात्सल्य में रहने वाला व्यक्ति सामने वाले के हजार दोषों को पचा सकता है।

माँ के जैसा ! धर्मी, गुणियल, सम्यक्दृष्टि जीव को दृष्टियत करते अंतर में प्रगटित भाव ही वात्सल्य है।

जैन साधु संस्था की अजोड़ता वात्सल्य उत्पन्न करती है। भगवान की अंतिम अट्ठारह प्रहर की देशना में, सर्व श्रोता बैठे रहे थे। कैसे ? 'मयणा' का वात्सल्य भी अजोड़ था।

8. <u>प्रभावना दर्शनाचार</u> - अन्यों को उद्यम तत्व प्राप्त करवाने का श्रेष्ठ उपाय।

* तीर्थंकरों की देशना अनेक जीवों को भवसागर से तिरने का मार्ग दिखाती है। पात्रता चाहिए। छेद वाली बाल्टी या उल्टी बाल्टी नहीं भरी जा सकती तो इसमें वर्षा (बारिश) क्या करें ?

  चंडकौशिक महावीर के दो शब्द से समकित पा गया, प्रभावना उत्तम थी।

* अपरिचित व्यक्ति को देखते होने वाले भाव परलोक की तसल्ली देते हैं।
* जीवन दरम्यान परकाष्ठा स्तर का द्रव्य उपकार किसका ? माता पिता का। उन्होंने जीवन दिया। माता-पिता धर्म की प्राप्ति करवाते हैं तो भाव उपकारी भी हैं।
* धर्म की प्राप्ति करवाने, करने का उपाय प्रभावना, जिनाज्ञा ! सुलसा, चंपा श्राविका, दमयंति-मयणा गीतार्थ जीव थे।

  जिनाज्ञा का दैनिक जीवन में अर्थ क्या ?

  अगर धर्म को पाया हो और वह उच्च एवं यथार्थ लगा हो तो उसके प्रति वफादार बनकर उसके अनुरुप चलो। लायक व्यक्ति, गुरु से धर्म प्रभावना की प्राप्ति करता है और अन्य को तथा दूसरों लायक व्यक्ति को धर्म की प्राप्ति करवाता है।

* दर्शनाचार का पालन कब ? प्रतिदिन।

* धर्म के प्रति अनहद बहुमान होगा तो पैसा तुच्छ लगेगा ही।
* समकिती जीव आत्मा को (कर्म जनित) ठगती है। कर्मों को ठगती है। <u>हेय-उपादेय नो विवेक अनुबंध की आधारशीला है।</u>
* धर्म अर्थात् क्या ? आत्मा का स्वभाव ही धर्म।

  तीर्थंकर भी दर्शन गुण द्वारा ही (सम्यक्त्व से ही) उर्ध्वगामी बनते हैं। शासन की स्थापना भी दर्शनगुण द्वारा ही होती है।
* अंतिम चार उपबृंहणा, स्थिरिकरण, वात्सल्य, प्रभावना, वर्तन के साथ, प्रथम नि:शंका, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ़ दृष्टि श्रद्धा के साथ बंधे हुए हैं।
* सिद्ध जीवों में तत्व की प्रतीति एवं परिणति दोनों होती है।

***

छ: आवश्यक

1. सामायिक (चारित्राचार) : मुख्य चार प्रकार।

सम्यक्त्व सामायिक : मिथ्यात्व का मेल दूर होते जिनवचन में श्रद्दा।

श्रुत सामायिक : जिनोक्त तत्व का बोध - आत्म रमणता।

देशविरति सामायिक : आंशिक विरति द्वारा आत्म रमणता।

सर्वविरति सामायिक : सर्वांश विरति द्वारा आत्म रमणता।

2. चतुर्विंशति स्तव - दर्शनाचार : (चउविसत्थो)

द्रव्य स्तव : उव्य द्रव्यो - पुष्प, चंदन, फल आदि।

भाव स्तव : परमात्मा के गुणों की स्तवना।

3. वंदन (ज्ञानाचार) : गुणवान आत्माओं की भक्ति सत्कार, विनय आता है।

4. प्रतिक्रमण (पाँच आचार की शुद्धि) : प्रमाद में रहकर पर स्थान के प्राप्त जीव स्वस्थान के प्रति अशुभ योग में से शुभ योग के प्रति अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार द्वारा लगी हुई दोष की गर्हा।

5. कायोत्सर्ग (चारित्राचार) : मैं वह आत्मा, शरीर नहीं। ममत्व का त्याग।

6. पच्चक्खाण (प्रत्याख्यान) : वीर्याचार, तपाचार।

त्याग द्वारा किए अनुष्ठानों, आश्रव को रोककर संवर की वृद्धि करते हैं। आहार संज्ञा को शिथिल कर, अणाहारी स्वरुप का संचार करते हैं।

पांच आचार इस प्रकार हैं :- ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य।

* परस्पर संबंध :- करेमि-भंते-सामायिक - चउविसत्थो, तस्स भंते-वंदन, पडिक्कमामि निंदामि गर्हामि - प्रतिक्रमण, अप्पाणं वोसिरामि - कायोत्सर्ग, सावज्ज जोगम् पच्चक्खामि-पच्चक्खाण।

***

अद्‌भुत ध्यानयोगपूर्ण प्रभुदर्शन

प. पू. आचार्यश्री भुवनभानु सूरीश्वरजी म.सा.

आत्मा के चिकने मल को तोड़ने के लिए ध्यान की कठोर साधना बताई गई है। ध्यान जैसी कठोर साधना अन्य है ही नहीं। ध्यान उपयोग की धारा को सतेज करता है। विद्युत जैसी ताकत देता है।

अनेकानेक इन्द्रिय विषयों में उछलता मन, क्रोधादि कषायों में घूमता मन, तत्व में सहज रूप से स्थिर एवं शांत-स्वस्थ बनता नहीं तब तक इस मन को अंतिम आत्मा की स्थिरता के मार्ग पर कैसे वापस लाऊँ ?

1. नवकार मंत्र का जाप इस दिशा में महाउपयोगी है परन्तु वर्षों से जाप करते रहने के पश्चात् भी मन कहाँ से कहाँ भागता है। अन्य कोई उपाय है ? हाँ।

श्री जिनेश्वर देव के दर्शन का योग अद्‌भुत है। शनैः-शनैः मन को स्थिर, शांत, स्वस्थ बनाने का अभ्यास इसमें से मिल सकता है। शास्त्रीय विधि सहित दर्शन किए जाए तो उसमें अनेक तत्वों ऐसे हैं कि जीव के विषय-आकर्षण, विषयों का उन्माद, कषाय उकलाट एवं मानसिक चंचलता को कम करते हैं। विधि सहित जिन दर्शन की प्रक्रिया में अद्‌भुत ध्यान योग किया जा सकता है, जिसमें ऐसे रसायण भरे हुए हैं कि जो मन को 'प्रसन्न' करते हैं।

जिन दर्शन की प्रक्रिया विधि सहित शास्त्रानुसार :

मंदिर जाने का मन करे तो चउत्थतणुं फल होय। चउत्थ=चार, अभक्त = उपवास।

मंदिर जाने का मन करे वहीं पर उपवास द्वारा जो पापक्षय एवं पुण्य उपार्जन का लाभ हो, वह लाभ मिलता है।

शास्त्र यह भी कहते हैं कि एक नारकी का जीव 100 करोड़ वर्षों तक नरक की वेदनाएँ भोग कर जितने कर्म खपाता है उतने कर्म का नाश एक उपवास से होता है।

इतना बड़ा महालाभ करवाने वाला मंदिर जाने का मन कितने उल्लास, उमंग एवं विशुद्ध भावोल्लास से होना चाहिए उसे विचारें।

जीव की खाऊँ-खाऊँ की आहार संज्ञा को 'पच्चक्खाण' द्वारा दबाकर भावोल्लास में वृद्धि करो। उपवास नहीं तो दिन में चार-पांच बार खाने का नियम पालने के लिए भी मन तैयार नहीं होता। तब मन का भावोल्लास विशुद्ध हो इसलिए (1) अत्यंत कर्तव्य बुद्धि हो ऐसा विचारना, (2) आहारादि तथा क्रोध, लाभादि संज्ञाएँ जो पापमय है उन्हें रोकने का अभ्यास करना, (3) दुन्यवी ऐसे कोई भी फल की आशंसा नहीं करना।

इस प्रकार जिनदर्शन में जो चित्त स्थिर रहे तो अद्भुत ध्यान योग का निर्माण होता है। मन को ऐसा लगता है कि :

हे प्रभु ! दिवस-रात मोह साधनों के दर्शन में व्यतीत कर दिए। अब तो वीतराग प्रभु के दर्शन कर जीवन के इस कीमती समय को सफल करुँ। मोह दर्शन से लगे हुए पाप के भार को उतारुँ। दर्शनम् पाप नाशनम्। संसार का मूल कारण राग-पाप जो जिनदर्शन से दूर होगा, वीतराग के दर्शन से कुछ मंद होवे, इसलिए दर्शन करने जाऊँ।

पश्चात् दर्शनार्थे उठे, चले, मंदिर के समक्ष आकर बाहर से ही प्रभु के प्रभु के दर्शन होते ही अंजलि को ललाट पर लगाकर 'णमो जिणाणं' कहें तथा क्रमशः फल का आंकड़ा बढ़कर मासक्षमण के फल तक पहुँच जाता है। क्योंकि प्रभु के समक्ष आते ही भावोल्लास में वृद्धि हो जाती है। चित्त की प्रसन्नता अर्थात् ध्यानयोग यहाँ से जमने लगता है। अब मंदिर में 'निसीही' कहकर प्रवेश करते हुए संसार के समस्त व्यापार बंध होते हैं और चित्त शुद्ध दर्शन का अभिलाषी बनता है। पश्चात् प्रभु को तीन प्रदक्षिणा दी जाती है। यह प्रदक्षिणा भवभ्रमण को भस्म करने वाली है। इसमें अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र की संपन्न का सुर गूंजित होता है। हृदय में ज्ञानादि के त्रय बीज का रोपण होता है जो कालान्तर में रत्नत्रयी का मधुर फल प्रदान करता है। फिर प्रभु के समक्ष कमर से (अर्द्ध झुकते हुए) नमन कर हाथ जोड़कर 'णमो जिणाणं' कहकर दर्शन करते स्तुति बोलना। तथा स्तुति इस प्रकार करनी चाहिए कि जैसे हमारे हृदय की बात हम प्रभु को बता रहे हों।

विभाग – ४

अंतिम देशना के कुछ अध्ययन
उत्तराध्ययन सूत्र

- श्रद्धांध की तीन कृतियाँ

- प. पू. आ. श्री विशालसेन सूरीश्वरजी म.सा. के 'अंतिम देशना' ग्रंथ में से व्याख्याणों का संक्षिप्त संकलन।

- भगवान ने स्वयं प्रश्न उपस्थित कर उत्तर प्रदान किए, इन बिना पूछे प्रश्नों के उत्तरों को जिसमें समाविष्ट किया हैं वह 'उत्तराध्ययन सूत्र' कहा गया।

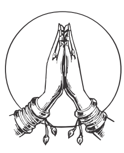

विभाग – ४

अंतिम देशना : उत्तराध्ययन सूत्र

- ‘श्रद्धांध’ की तीन कृतियां 73
- प्रणाम 75
- दुनिया देखती रहेगी, तुम किनारे पर.... 76
- धर्म के सिद्धांत एवं अनुप्रेक्षा 77
- चित्रकार की आँखों में दृष्टि थी 78
- अनाथ होने के सत्य स्वरुप 83
- ज्ञान की महिमा 85
- श्रेणिक ने समकित पाया : कथा 93
- श्री केशी गणधर एवं गौतम स्वामी 96
- अष्ट प्रवचन माता 98
- यज्ञीय अध्ययन : रोचक कथा 101
- मोक्ष मार्ग गति 103
- थोड़े में अधिक 107
- लेश्या 108
- रोचक कथा : अणगार मार्ग गति 111
- नागार्जुन एवं पादलिप्त सूरि की कथा 115
- आचरण : आंतरिक संपदा 116
- क्षमा 122
- दस धर्म 125
- जीव - अजीव को जान लो 129
- अंत में इतनी बात समझे 130

अहिंसा .... महावीर की ....

महावीर भगवान ने अहिंसा की व्याख्या
ऐसी ही कुछ की है ....
प्रत्येक आत्मा वह तू
तुझसे ना कोई जुदा
सब एक ही एक ....
तब भी
सब ही स्वतंत्र .....

किताब

कहने को शब्द ना मिले
लिख गई किताब
पूर्व जन्म के नाते-रिश्ते
प्रगटाते हैं अधूरे ख्वाब ।
मिले जहां साथ उदार दिल की
सुरीली सितार
अगम्य बनकर रह जाती
हमारे जीवन की पगथार ।।

'श्रद्धांध'

अनुप्रेक्षा

महावीर तमे तो तरी गया
अमे हजु ये भव -भव सरी रह्यां
महावीर तमे जे कही गया
अमे ना करवानुं करी रह्यां ..... महावीर

कषायों कर्या, ना सत्य पीछाण्युं
खोटा ने सांचु करी माण्युं
वक्र एवं जड़ प्रजा अमे प्रभु
आंकीए दान तणी किंमत विभु ...
उन्मार्ग ना पंथे विचरी रह्यां
अमे ना करवानुं करी रह्यां ..... महावीर

*'अनुप्रेक्षा' नुं अमूल्य एक तारण
सन्मति, ●अमूढ़ दृष्टि हजो धारण
वहीवट सहु जिनमति थी करिए
'सांचु ते मारुं' मंत्र अनुसरीए...
महावीर नी आ वाणी जो बिसरी रह्यां
अमे ना करवानुं करी रह्यां ..... महावीर

'श्रद्धांध'

फरवरी 2009

* अनुप्रेक्षा – Introspection, मनन

●अमूढ़ दृष्टि – विवेक बुद्धि, अच्छे बुरे की समझ

अंतिम देशना – भाग–२

प्रणाम - वंदन

सुधार्म स्वामी जंबू स्वामी को कहते हैं :

हे आयुष्यमान जंबू ! दोनों कोहनी पेट पर रखकर दोनों घुटने, दोनो हथेली एवं मस्तक इन पांचों अंगों को धरती पर जोड़कर (पंचांग प्रणिपात) प्रणाम करने से हमारे शरीर का आकार मंगल कलश जैसा होता है । मानो गुण के सागर में हम गागर बनकर झुके एवं झूमें अर्थात् कि भरे बिना रहना ही नहीं ।

'उत्तम ना गुण गावतां, गुण आवे निज अंग' हममें यह आलौकिक गुण निश्चित आने ही लगे । नमन करने की भी एक कला है । 'नमे ते सोने गमे' तुम थोड़ा झुकना, नमना तो बहुत अच्छे लगोगे । दिए हुए दान की फल प्राप्ति में शायद समय लगेगा भी, वरिष्ठों को दिया मान तुरंत फलता है । दुनिया के समस्त आश्चर्य हो ऐसी एक से एक शानदार वस्तु हैं परन्तु नमस्कार, प्रणाम, वंदन भारत के सिवाय कहीं और नहीं है ।

तुम्हारे आत्मा को - घट को, तुम्हारी गागर को थोड़ा झुकाना । जीव की नम्रता रहित की परिस्थित्ति, पणिहारी की नहीं झुकने वाली गागर के गले में रस्सी डालकर पानी के कुँए में घुमने जैसी, कूटाने जैसी, अंधेरे में से बाहर न निकल सके ऐसी परिस्थिति है । हमारे पास बहुत है । समर्थ भगवान है । परन्तु हमने हमारे अहंकार में अनेक अपनों को ठेस पहुंचाई है ।

पनिहारी जैसे गागर को अंधेर कुंए में से भरे हुए शीतल जल को, गागर के गले से डोरी निकाल कर पाती है उसी प्रकार भाव रुपी जल भरकर किए हुए प्रणाम, वंदन नमस्कार से गागर रूपी आत्मा, प्रभु के ज्ञान को पाता है ।

नम्या ते पाम्या ।

***

दुनिया देखती रहेगी, तुम किनारे पर पहुँच जाओगे

जैनों का गृहस्थाश्रम :-

सामान्य गृहस्थ धर्म के रूप में वीतराग प्रभु की पूजा, सद्गुरु की सेवा, द्वार पर आए को कुछ देना, साधर्मिक की आदरपूर्वक भक्ति करके, भोजन करवाकर, कुमकुम का तिलक कर श्रीफल-रूपये देना। दूसरी बार पधारने के लिए निमंत्रण देना। धर्म के मार्ग पर उदारता पूर्वक उपयोग करना। घर में समस्त रुपया-पैसा खर्च हो जाता है, मात्र सत्कार्य में उपयोग क्रिया धन ही बचता है। धन खर्च कर कभी अफसोस या उसकी पुनः मांग न करना। दान धर्म की महिमा घटती है। भाव कभी न बिगाड़ना तपस्वी बनना। भावना रखना कि सस्नेही प्यारा रे, संयम कब ही मिले ? संयम कब अंकृत (अंगीकार) करूँ ? राजकुमार कितने ही दीक्षा मार्ग पर गए हैं।

जिम तरु फुले भमरो बेसे, पीड़ा तरस न उपावे।
लेई रस आतम संतोषे, तिम मुनि गोचरी लावे।

भ्रमर जैसे पुष्प को हानि पहुँचाए बिना रस पीकर स्वयं तृप्त होता है, उसी प्रकार मुनि भी गृहस्थ की रसोई में से इस प्रकार और इतना लेते हैं कि गृहस्थ को दूसरी बार पुनः न बनाना पड़े। बिल्कुल लौलुपता बिना लावे।

दयालु बनकर श्रावक को पृथ्वी-पानी-अग्नि-वायु-वनस्पति की भी दया रखना चाहिए। पानी के उपयोग में सावधानी रखना। काम बिना पंखा (फेन) चलता हो, हवा के कारण खिड़की-दरवाजा खुलते-बंद होते हों आदि। यह समस्त कृत्य आत्मा को अपराधी बनाते हैं। यह अपराधी मनोवृत्ति का व्यापार है।

पांच समिति ईर्या, भाषा, एषणा, आदान एवं निक्षेप, परिष्ठापन तथा तीन गुप्ति मन-वचन-काया श्रावक जीवन में अति आवश्यक है।

मौन की आदत डालो। प्रतिदिन निरर्थक बोलने का टालो, एक आसन पर, एक स्थान पर ज्यादा समय बैठने की, सामायिक में स्थिर रहने की, पद्मासन में जाप करने का नियम बनाओ, आदत डालो। परमात्मा जैसा जीवन जीते सुखी बन जाओ। इससे

सर्वविरति साधु धर्म भी समझ में आएगा। सत्य जीवन जीने की कला हाथ में आ जाएगी। दुनिया देखती रह जाएगी और तुम साहिल किनारे पर पहुँच जाओगे। स्वयं पर विश्वास रखो। थोड़ा भी करोगे तो बहुत पा जाओगे।

लाखो करोड़ों वर्षों के पश्चात्, जैन कुल में संयोग हुआ है, सुन्दर अवसर मिला है। जीवन कल पूर्ण हो जाएगा। इस जीवन को खो देंगे तो पछताना ही पड़ेगा। जीवदया आत्मा के कोने-कोने में, प्रदेश-प्रदेश तक पहुंचा देना, बच जाओगे।

धर्म के सिद्धांतों एवं अनुप्रेक्षा

Reflections-Introspection

दुनिया में किसी के साथ हृदय का गाढ़ संबंध तब ही बंधता है कि जो मूल रूप में उस पर, अन्य किसी पर ना हो ऐसा अनन्य प्रेम, बहुमान एवं श्रद्धा होवे। इसलिए भगवान पर हम सभी को अथाग, अनन्य, प्रेम, बहुमान, श्रद्धा जगती है।

चाहे जैसे आज के कष्ट, दुःख, आपत्ति के समय भी मन मस्त रहे कि मुझे किस बात की परवाह या कमी है ? मेरे तेरे साथ का संबंध भवोभव का है। कष्ट यह तो मेरे पूर्व के पाप-कचरा साफ कर रहे हैं। सुख करते दुःख आशीर्वाद रुप बन जाए। तब ही तो मेरा अनन्य संबंध-श्रद्धा साथ देती है।

अल्प भी मन में कमी न रखते हुए हुए सहर्ष सहनशीलता द्वारा दुष्कृत गर्हा हो जाए, सुकृत नी अनुमोदना जीव को शांत रस का पान कराती है। कैसा सुन्दर मौका मिल गया। Opportunity at my Door Step। लक्ष्मी कुमकुम से तिलक करने हमारे द्वार पर आई हो तब मुख धोने कौन जाता है ? बस यही उत्कृष्ट भाव दुःख को हल्का करता है।

अनुमोदना शुद्ध हो तो उछलता भक्तिभाव एवं सहनशीलता का अनुभव हुए बिना नहीं रहता है। दोषों पर घृणा होगी तब ही गुणों की सच्ची अनुमोदना हो सकेगी। समर्पण भाव में अनुभव एवं गुणों का साक्षात्कार होते ही अनुमोदना स्व में ऐसे ही भावों की वृद्धि करती है।

दु:ख की अवस्थाएँ बदलती जाती हैं। अरे, दु:ख सभर नारकी जीवन भी एक दिन पूर्ण हो जाता है। इसलिए दु:ख की स्थिति में धैर्य, समता रखकर समय व्यतीत करना चाहिए। दु:ख को धिक्कारे बिना आत्मशक्ति बढ़े इस हेतु आचार, ज्ञान-क्रिया, व्रत पच्चक्खाण द्वारा शक्ति अनुसार आत्मा को भावित करना चाहिए। इससे अशुभ भाव टूटते हैं। अशुभ बंधन ढीले पड़ते हैं। बारह भावना, चार मैत्री आदि भावना का चिंतन जीव को एक अनोखे स्तर पर पहुँचा देता है। धीरे-धीरे ऐसे प्रयत्नों से जीवन में समभाव की वृद्धि हुए बिना नहीं रहती।

जीवन कल पूर्ण हो जाएगा। इस जीवन को खो देंगे तो पछताना ही पड़ेगा। जीवदया आत्मा के कोने-कोने में, प्रदेश-प्रदेश तक पहुंचा देना, बच जाओगे

शास्त्रानुसार धर्म दो प्रकार के होते हैं - 1. भाव धर्म, 2. प्रवृत्ति धर्म।

समझ आने के पश्चात् प्रवृत्ति एवं भाव धर्म दोनों प्राप्त होते हैं। जब शक्ति ना हो तब भाव धर्म अगत्य का कार्य करता है। प्रवृत्ति धर्म भाव धर्म का कारण है। रोग अवस्था में आत्मा को भावित किया हो तो भावधर्म स्थायी ही रहता है। **भाव धर्म होगा तो समाधि एवं सद्गति निश्चित है ऐसा शास्त्र विधान है।** कीमत शक्ति की ही नहीं, शक्ति की सार्थकता की एवं सद्व्यय की है। भाव हो तो भव पार हो सकता है। रोग अवस्था का समय बहुत आसानमय निकलता है। रोग अवस्था को गौण कर भावधर्म की सहायता लेकर स्वस्थता का अनुभव करें।

<u>ऐ मन ! तू कैसे बिगड़ जाता है ?</u>

कषायग्रस्त वासना मन बिगाड़ती है। दिमाग में क्या फिट कर रखा है वह दु:ख का कारण बन सकता है। आपको जिन-जिन कारणों से दु:ख होता है उसी प्रकार अन्य को भी उन्हीं कारणों से दु:ख हाता है। आपको जो रूचिकर ना हो शायद अन्य को भी वह पसन्द ना हो।

1. मन को बिगाड़ने वाला सबसे बड़ा शस्त्र 'अहंकार' माना जाता है। मान, झूठी मान्यताएँ, कल्पनाएँ, आग्रह है। इन्हें मन के विकार कहे हैं।

2. दूसरा कारण अनादि से झूठी वासना एवं संस्कारग्रस्त आत्मा। यह वासना, संस्कार बाहर आए (शास्त्रीय भाषा में जब कर्म का उदय होता है), निमित्त सहित सा निमित्त रहित, मन बिगड़ता है। कर्मधारा जीवन में उठती है, मन गलत राह पर जाता है और मन बिगड़ता है।

मन बिगड़े उसे सुधारने का शास्त्रीय उपाय है ; कर्मधारा के सामने उपयोग कर, मन को ज्ञानधारा से समझाकर कल्पना शून्य बनाओ । ज्ञानधारा अर्थात् समझ । अग्नि पर नीर डालने जैसे समझ ।

ज्ञानधारा - ज्ञानदृष्टि धीरे-धीरे अभ्यास से आती है और आधि-व्याधि-उपाधि से मुक्त करती है, करती है और करती ही है । जीवन में वात्सल्य एवं प्रेम के झरने प्रवाहित करती है । प्रसन्नता प्रदान करती है । शांति से परमार्थ रूप यह मार्ग सचोट एवं असरकारक है ।

भगवान महावीर की अंतिम देशना

चित्रकार की आँखों दृष्टि थी

अनादिकाल से संतों, सद्गति एवं सुकृत का मार्ग विद्यमान है । परन्तु हमने जाना नहीं, पहचाना नहीं । प्रभु की वाणी संसार की श्रेष्ठ वाणी है । यह कल्याणी है, निर्वाणी है ।

समुद्र किनारे प्रतिदिन सांयकाल एक चित्रकार कहीं से आता है । फलक पर पींछी से कोई चित्र बनाता है । नजदीक ही माछीमार के झोपड़े थे । उसमें रही एक महिला अत्यन्त ही कौतूहल-कौतूकपूर्वक इस चित्रकार को देखती । एकाग्रता से एवं किसी गजब के आत्मविश्वास से चित्रकार अपनी चित्रकारी करता है । प्रतिदिन संध्या होती है और वह अस्त होते सूर्य को देखता । स्वयं अंकित की रेखाओं को देखता, निहालता एवं मनोमन प्रसन्न होता रहता । सूर्यास्त होते चित्रकार चित्र पर वस्त्र ढंककर एक ओर रखकर चला जाता। उस महिला का आश्चर्य, अचंभा उसे चंचल कर देता । उसे उस चित्रकार पर हास्य आता । इसमें क्या है ? यह देखकर किसे हर्ष होगा ? उस महिला को चित्र पूर्ण रूप से दृष्टिगत नहीं होता । चित्रकार गया और वस्त्र ऊँचा किया तो देखकर .... विस्मय ।

सप्ताह दस दिन बीते ...

संध्या ने अद्भुत श्रृंगार किये थे । भाव भीना हो जाए ऐसा कुदरत का सौंदर्य सौलह कलाओं से खिला हुआ था । सूर्य पश्चिम आकाश की क्षितिज पर आकर खड़ा

था। संध्या सुवर्ण रथ में सफर करने निकली थी। बादलों ने गुलाल बिछाया हो। सूर्य की किरणें दूर-सुदूर तक फैले स्मित बैचेन मन को भीना कर देता। किरणों में समुन्दर का नीर सोनल वर्णमय था। चित्रकार ने समस्त लहर पंक्ति के समीपस्थ दूसरी-तीसरी अनेक लहेर पंक्तियाँ, हिलोले लेता समुद्र, स्वर्णमय आकाश, सूर्यनारायण सब कुछ वस्त्र पर सजीव चित्रण किया।

वह महिला तो यह सब कुछ देखकर विस्मित चकित रह गई, नाचने लगी। अरे ! ऐसा कभी कहीं देखा नहीं। यह परदेशी तो अजब का जादूगर है। क्या कमाल की है ? अवनि पर अमीरात भरा संपूर्ण अंबर उतार दिया। महिला चित्रकार के जाने के पश्चात् प्रतिदिन चित्र देखने आती। उसका अत्यंत ही गहरा अवलोकन हो गया था। चित्र में क्या उकेरा गया है वह तत्काल देख सकती थी। अब उसके नयनों के आनंद भरे सागर के सामने यह समुद्र ईर्ष्या से खारा हो गया।

एक दिन संध्या को चित्रकार स्वयं के चित्र फलक को लपेटकर, समस्त रंग-रूप-रेखा के साधन लेकर जाने को तैयार हुआ। महिला यह देखकर हाँफती-हाँफती दौड़ी आई। क्या तुम जाने वाले हो ? आसमान की रोशनी भी ले जाने वाले हो ? कैसे घाव देने वाले शब्द हैं यह ? आडम्बर एवं विद्धता रहित होने के बाद अंतःकरण में उतर जाए वैसे। उसकी तासीर असर करती ही है ! क्या आप जा रहे हो ?

हाँ बहिना ! तुम्हारी भूमि, सागर किनारा, यह लहरें, यह समन्दर, रेती में पड़े चरण, तैरते वाहन, सूरज की स्वर्णिमता, संध्या की लाली, यह आपका भद्र मनुष्यों का ग्राम ... क्षितिज को उसके आगोश में जाकर सफर कर पुनः निद्रामग्न होता सूर्य। हमारे गाँव में ऐसा कुछ नहीं था इस हेतु यह लेने आया था। बहुत दिन बीते, अब जाता हूँ।

रुको, मेरे वर को बुलाकर लाती हूँ। उन्हें तुम्हारा चित्र दिखाओ। अरे, उन्हें इसमें क्या देखना है ? तुम्हारी नजर समक्ष प्रतिदिन जीता-जागता एवं जीवंत है।

आपकी बात सत्य है। यह सब कुछ ही है और था। परन्तु हमारी दृष्टि वहाँ तक कभी पहुँची नहीं। हमें देखना नहीं आता। तुमने हमें देखना सिखाया। मैं उन्हें भी कहती हूँ और उन्हें दिखाती हूँ। वह महिला झोपड़ी की ओर दौड़ी।

ऐसा है अस्तित्व। सब कुछ है पर जैसा है वह वैसा तुम्हें दिखाई देता नहीं। तुमने देखा नहीं, जाना नहीं। तो क्या है ? कुछ नहीं। तो फिर, तुम भी क्या हो ?

मनुष्य को बहुत ही गहराई से जानना समझना चाहिए। ज्ञानियों की बातों, संतों की बातों, तीर्थंकरों की बातों में कहा गया सब कुछ करने जैसा है।

* सम्पूर्ण शरीर में सर्वाधिक महंगी दुर्लभ वस्तु आँखे हैं। परन्तु दृष्टिविहीन नेत्र किस काम के। दृष्टि हेतु भगवान ने समझाया है कि तुम्हारी दृष्टि को सम्यग् बनाना। आपको थोड़ा भी देखना आ जाए तो नयन सफल हो जाएंगे। जीवन सफल हो जाएगा। देखने की और समझने की एक कला है। **कला विहिना : पशुभिः समानाः** कला रहित मनुष्य पशु समान कहा गया है। साहित्य, विद्या, संगीत, नृत्य, पांडित्य जैसा जीवन में कुछ भी नहीं। ऐसे जीवों के समीप सदा अशांति, असंतोष, उपद्रव, क्लेश एवं हमेशा की बला है। <u>हम जैसे हैं वह, हम स्वयं के कारण हैं।</u>

* पैसे के पीछे खुवार (नष्ट) नहीं होते। रूपया (डॉलर) तुम्हारा पूर्ण रिक्त है। जिस दिन सत्कर्म में उपयोग होगा उस दिन ही वह भरेगा।

* अवतार नया मिलता है परन्तु धंधा तो पुराना ही होता है। इस भव में जो किया होगा वही परभव में भी प्रायः करोगे। यहां इकट्ठा ही किया होगा तो आने वाले भव में मूषक/मधुमक्खी या किसी धन भंडार के सर्प बनने में कोई बड़ी बात नहीं। आवश्यकता बिना भी दुःखी होकर पैसे के लिए दौड़धाम करते हो ? धर्म पर भरोसा रखो यह आपको सब कुछ देगा।

खुद अपनी कैद के बंध, आदमी तोड़े तो हम जाने,
पराई कैद से आजाद हो जाना तो आसाँ है।

✻ हमारा सत्य स्वरूप तो अंतसः में छुपा है। बाध्य दृष्टिगत रूप पूर्णतः जुदा होता है। आप अभ्यंतर-बाध्य अवस्था को देखो और उस अनुरूप स्वयं को ढालने की कोशिश करो। आपको अवश्य सफलता मिलेगी।

✻ धर्म रहित सब कुछ व्यर्थ है। प्राण एवं सुगंध बिना का है।

✻ दृष्टि रहित दृश्य कुछ भी नहीं, दृष्टि रहित नेत्र किस काम के।

✻ जिस पथिक के पास भाता (नाश्ता) न हो वह मार्ग में भूखा, प्यासा रहता है। धर्म रहित परलोक जाता जीव महापीड़ा का शिकार होता है।

✻ कोई एक फटा हुआ कपड़ा भी किसी को देता नहीं और दूसरा सम्पूर्ण राज्य छोड़ने की बात करता है। यह बहुत गहरी समझ की बात है। यह कोई आकस्मिक नहीं। कितने भवो पूर्व प्रारंभ किए कृत्यों का परिणाम है। उन्होंने एक मुनि को देखा, जाति स्मरण ज्ञान हुआ। तंत्र, राजमहल, ऐश, आरामी, ऐश्वर्य सब कुछ स्तंति हो गया।

✻ याद रहे, शनैः-शनैः बात बनती है और आयुष्य पूर्ण हो जाता एवं पुनः नव अवतार, नये दुःख। संयम लेवें सुखी होवें।

✻ ममता अनेक भवों की अभ्यासी होती है।

✻ धर्म के, साथ - सहकार बिना मानव अकेला हो जाता है। कारण, धर्म बिना सब कुछ व्यर्थ है। समय की बरबादी होती नहीं परंतु स्वयं की होती है।

✻ हमें उत्कृष्ट, उम्दा संयोग लाखों वर्ष पश्चात् प्राप्त हुए हैं। गवाँ मत देना। एक बार जीवन का अमृत सहारा के रेगिस्तान में खो गया तो पुनः हाथ में नहीं आएगा।

तेरी जुदा पसंद है, मेरी जुदा पसंद,

तुझको खुदी पसंद है, मुझको खुदा पसंद ।

* भगवान कहते हैं : अच्छी सुंदर पद्धति एवं प्रवृत्ति के चाहक बनना । गुणों के ग्राहक बनना । उत्तम करनी के आशिक बनना । मिली हुई वस्तु, क्षण, अवसर को सार्थक करना । सुखी होकर खुश होना ।

महावीर जन्म या निर्वाण निमित्त विचारने जैसा तत्व ज्ञान

अनाथता का सत्य स्वरूप

हमारी कीर्ति, सम्मान का महत्व, हमारा ठपका, रुआब, धन की ढगलियाँ एवं हमारी हुकूमतों सभी को कितना महत्व देते हैं ?

आखिर तो सब कुछ खोखली मुट्ठि के जैसा दम रहित है । हम कितना गलत और असमझता भरा करते हैं ? भगवान से अधिक आंगी महत्व की हो गई । ऐसा तो नहीं होना चाहिए, परन्तु हमने कर दिया । **माल महँगा हो गया और मालिक कोड़ियों के ।**

मूर्ख व्यक्ति खुश होकर बताते हैं, यह मेरा है, यह हमारा है । वाह वाह यह सब कुछ तेरा है तो तू किसका है ? इसकी इसे खबर नहीं । आपने धन-पद-सत्ता को स्वयं से भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान पर बैठा दिया है ।

अनाथी मुनि श्रेणिक को यह सब समझा रहे हैं । मुनि के पास कुछ भी नहीं है और राजा के पास बहुत कुछ है । **यह बहुत कुछ ही तुम्हारे दुश्मन पैदा करेगा, बहुतों को नाराज करेगा ।**

जबकि समग्र अस्तित्व मुनि से प्रसन्न है । वृक्ष-झरना, पशु-पक्षी, सरिता-सागर-पर्वत, चंद्र-सूर्य-तारे, फूल-कलियाँ अरे पवन और किरणें भी ।

अज्ञानी व्यक्ति मानभंग करके प्रसन्न होते हैं । श्रेणिक धारते तो मुनि को नीचा कर सकते थे परंतु उसमें धार्मिकता का उदय होने लगा था । धार्मिकता स्वयं का विषय है । उससे परम शांति तथा अद्भूत शक्ति मिलती है ।

धार्मिकता एक ऐसी गुणवत्ता है, जिसमें सच्चाई, प्रमाणिकता, स्वाभाविकता, साहजिकता, अस्तित्व के साथ एक गहन आत्मीयता का भाव, एक प्रेमाल हृदय एवं सबके साथ मैत्री की उर्मियाँ उत्पन्न होती है । एक आंतरिक भगवान का जन्म होता है । अनुभव आपको धर्म की असीम मिठास का एवं उसके सत्य का पूर्ण स्वाद प्रदान कर सकता है । सरलता का गुण असीम प्रगति करवा सकता है । इसलिए सरलता रखो ।

रंग-बहारे आलम है, क्या फिक्र है तुझको ऐ साकी ।
महफिल तो तेरी सुनी न हुई, दो उठ भी गए, दो आ भी गए ।

आपके होने ना होने से दुनिया को क्या फर्क पड़ता है ?

श्रेणिक राजा ने प्रथम बार स्वयं से अधिक बहुत ही बड़ा मनुष्य देखा । आज उन्हें चेल्लणा की बातों में दम था ऐसा लगा ।

यही बहसें रही सबमें, वो कैसे हैं ? वो कैसे थे ?
यही सुनते हुए गुजरी, वो ऐसे हैं, वो ऐसे थे ।।

यह ऐसे है और वह वैसे है । इसमें पूरी जिन्दगी पूर्ण कर दी । समझना चाहिए कि महान सम्राट, राजकुमार चक्रवर्ती एवं तीर्थंकर - भगवान को भीधर्म बिना नहीं चल सका । उन्होंने जगत को यही समझाया कि धर्म सिवाय किसी का आधार नहीं । समस्त प्रश्नों का एक ही उत्तर, समस्त रोगों का एक ही इलाज है । समस्त प्रश्नों का एक ही उत्तर, समस्त रोगों का एक ही इलाज है - धर्म ही मुक्ति देगा ।

कटे हुए जड़ वाला वृक्ष, युद्ध में मस्तक कटाया हुआ योद्धा, एवं धर्म रहित धनपति यह तीनों कितने समय टिकेंगे ? थोड़े समय पश्चात् गिर जाएंगे ।

खोने-गुमाने के पश्चात् तो ज्ञात होता है कि हमारे समीप यह था, अनाथी मुनि की बुलंदी, मगध के सम्राट को सूक्ष्म बना गई । श्रेणिक को चेल्लणा की बातें समझ में आने लगी। आपने आज मुझे अनाथता का सत्य स्वरूप समझाकर महाभाग्यशाली बना दिया । आपका बड़ा उपकार, मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ ।

राजा पूर्ण बदल गया था । परिवर्तन यह धार्मिकता की निशानी है । इससे हमारी आत्मा पूर्णरुपेण रुपांतरित हो जाती है ।

आप बहुत बचाकर संग्रह करो पर आप ही नहीं बचोगे तो बचे हुए का क्या ? आपने भले धन के ढगले किए पर आपके दोनों हाथ तो खाली ही रहे । मिले हुए धन का सुदपयोग ही धन एवं बुद्धि की सफलता है, अन्यथा यह धन बोझ है । भगवान महावीर की वीतरागता पर दृष्टि केन्द्रित करो फालतू सब कुछ छोड़ दो । थोड़ा अंतर्मुखी बनने से बहुत कुछ समझ में आने लगेगा ।

आप आपके अंतर को सरल, बुद्धि को निर्मल रखना । कितना जानते हो इसका महत्व नहीं, आपका इरादा क्या है इसका महत्व है । परलोक इसी इरादे पर उतिष्ठ है ।

ज्ञान नो महिमा

'अंतिम देशना' में भगवान महावीर कहते हैं :-

* जीव जन्मता और मरता है, खाता-पीता है और पुनः भूखा हो जाता है । हंसता है और पुनः रोता है । चढ़ता है और फिर गिरता है । राजा बनकर भिखारी भी बनता है । इन सबसे छूटने का एक मार्ग है - सम्यग्ज्ञान दर्शन - चारित्र रूपी मोक्ष मार्ग ।
* ज्ञान रहित जीवन मात्र है । इस हेतु विवेक बुद्धि चाहिए । मिट्टे के ढगले में स्वर्ण छुपा है वैसे कर्मरूपी बादल में सूर्य जैसी आत्मा छुपी है । पुरुषार्थ करो, बादल बिखर जायेगा । प्रतिदिन सूत्रों का अभ्यास/अध्ययन करोगे तो थोड़े समय में निहाल हो जाओगे । शरीर को संवारने में ही सब कुछ व्यय न कर देना, थोड़ा आत्म का चिंतन करो ।
* नान्नहा जंपंत्ति तित्थयरा । तीर्थंकर कभी भी अन्यथा ज्ञान बिना बोलते ही नहीं ।
* तमेव सच्चं निसंकं जं जिणेहिं पवेईयं । यही सत्य, निःशंक, निःसंदेह है जो जिनेश्वर प्रभु ने फरमाया है ।

* स्वाध्याय से ज्ञान पढ़ने से श्रुत धर्म की आराधना होती है। एक उत्तम अनुष्ठान होता है। जबरदस्त उत्तम क्षयोपशम होने से मति बहुत उत्तम एवं सतेज होती है और उससे अद्भुत ज्ञान संपदा प्राप्त होती है। याद है ना ? स्थूलिभद्र महाराज की सात बहनों को गजब का क्षयोपशम था। पहली एक बार, दूसरी दो बार सुने, और सब ही याद रह जाता, इस प्रकार सातवीं बहन सात बार सुने और सब कुछ याद।

* सामायिक कैसे लेना ? ज्ञानोपार्जन करना है ? द्वादशांगी के मूल रूप सूत्रों की पोथी, ग्रंथ सापड़ा (थमड़ी) पर रखकर तीन प्रदक्षिणा एवं पांच खमासमणा देकर सामायिक लेना।

* मति (बुद्धि) सही नहीं होगी तो श्रुत भी सही नहीं चढ़ेगा। कुमति से सब खराब ही लगेगा। खराब अच्छा लगेगा, सबको गलत कर देगा। जैसी मति वैसी गति।

* काल सतत परिवर्तन स्वभावी है। जीव एवं जड़ पर काल का परिवर्तन साफ दिखता है। हमारा चेहरा प्रतिदिन बदलता, देखने की कला होनी चाहिए।

* जो ज्ञान या ज्ञानी की अवहेलना - अवधारणा करता है वह परभव में गंदा, गरीब, बुद्धि रहित या दुष्ट बुद्धिवाला, तोतला, बोबड़ा, रोगी एवं अपंग होता है। श्रद्धाहीन को ज्ञान कभी फलता नहीं। मा रुष मा तुष (नाराज नहीं, प्रसन्न भी नहीं), अटल श्रद्धा में 'मासतुष' रटते रहे। सरलता के योग से केवलज्ञान पाया, ज्ञान की महिमा श्रद्धा से सजीव बनती है।

* परमात्मा का ज्ञान आपको पहले जैसा रहने नहीं देता है। तत्काल बदल देता है। आपको संयमी बना देता है। मानो कि दूध में से घी बन गया हो। अब घी का दूध-दही नहीं बनता। यह इसमें मिल ही नहीं सकता।

* जो सब कुछ यहाँ छोड़कर चले जाना है तो मजे से जाओ। पश्चात् ज्ञात होगा कि-

आवी रूड़ी भक्ति में पहेला न जाणी

संसार नी माया मा वलोव्यु में पाणी।

* चार लाख श्लोक प्रमाण साहित्य का मर्म एक ही श्लोक में : शरीरशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र एवं कामशास्त्र। चार शास्त्रों का सार :-
  * खाया हुआ हजम ना हो, पचे नहीं तब तक खाना नहीं।
  * जीवों पर दया करना, दयालु बनो।
  * राजनीति में किसी का विश्वास करना नहीं, सगे पुत्र या पिता का भी नहीं।
  * कामशास्त्र : स्त्री के साथ कठोर व्यवहार करना नहीं, जितनी मृदुता रखो उतनी ही वह वश में रहे। स्त्री को भी पुरुष के साथ इसी प्रकार वर्तन करना।
  * दुःख से छूटना इतना कठिन नहीं जितना सुख से छूटना कठिन है।
  * आपके पास छोड़ने के लिए कुछ भी नहीं, इतना बड़ा सौधर्मेन्द्र आपके यहां अवतरण हेतु (देव में से मानव भव पाने के लिए) 32 लाख विमान की संपदा छोड़ने के लिए तैयार है।
  * याद रहे, हमारा यह अवतार अत्यधिक कीमती है, बहुत सहन करने के पश्चात् मिला है।
  * जानने की जिज्ञासा, सम्यग् ज्ञान-जिज्ञासा की प्यास आपको वीतराग वाणी के सरोवर के समीप ले जाती है।
  * कमजोरी एवं कायरता अलग-अलग बाते हैं। आप कायर न बनना, प्रभु ने कैसे-कैसे तप किए ? तप के बिना मुक्ति नहीं। तप की आदत डालो।
  * वाह कैसी सुंदर बात ? असंख्य इन्द्र एकत्रित होकर जो नहीं कर सकते वह एक अदना आदमी कर सकता है। ऐसा तुम्हें परम सौभाग्य मिला है।
  * प्रायश्चित, विनय, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, ध्यान आदि कर आत्मा को निर्मल करना। तप को भूलना नहीं।
  * पैसा बढ़ने से क्लेश, रोग, अविश्वास और विवाद बढ़ते हैं। कोई न कोई चिंता अवश्य खड़ी होती है, अत: पैसे को कल्याण के मार्ग पर सदुपयोग करना।
  * परदोष देखना सरल है परन्तु स्वयं के दोषों को समझना कठिन है।

* संसार की व्यवस्था में कहीं भी अंधाधुंध या छीना-झपटी नहीं है। जितना और जैसा प्राप्त होना चाहिए था उतना और वैसा हमें मिला है। आखिर तो जैसा बोया है वैसा ही मिलेगा और जितना खर्च किया है उतना ही मिलेगा। इसमें कल्पांत करना या असंतोष रखना या किसी अन्य का दोष निकालना गलत है।
* तीर्थंकर परमात्मा संसार की सर्वश्रेष्ठ हस्ति एवं उत्तमोत्तम पात्र हैं। उनके नाम या निमित्त से जिस किसी द्रव्य की उपज होती है वह सब देवद्रव्य कहलाता है। यह द्रव्य मंदिर, मूर्ति या जीर्ण मंदिर के उद्धार में ही उपयोग किया जा सकता है और उसका अचिंत्य लाभ मिलता है।
* प्रेम एवं वात्सल्य आदि ऐसी वस्तु है जैसे-जैसे परिचय बढ़ता है, वैसे-वैसे सामीप्य बढ़ता है उसी प्रकार प्रीति-भक्ति एवं अनुराग भी बढ़ता है। आप अंतर से संपूर्णता प्राप्त करना। कभी ऐसा ना हो कि दूसरा सब कुछ पाने में अंतर से अपूर्णता रह जाए।
* भगवान कहते हैं लाखों वर्ष पश्चात् ऐसे सुंदर संयोग आपको मिले हैं, उन्हें आप अपव्यय ना करना।
* महाभाग मनुषतन पाई, बामे भी कछु करी न कमाई।
* मनुष्य को कितना मिलता है ? कुछ ही मिले हुए को सफल कर पाते हैं। उन्हें सबका सब कुछ समझ में आता है। मात्र स्वयं का समझ नहीं पाते।
* विनय तो आत्मा की विशाल संपदा है। विनयहीन आत्मा जैसा दुःखी, दरिद्र एवं रोगी अन्य कोई नहीं। विनय बिना विद्या रहती नहीं।
* जीवों के उपकार हेतु, काल का प्रभाव जानकर प्रभु महावीर ने वक्र एवं जड़ प्रजा को पांच व्रतों का उपदेश दिया है। प्रथम जिनेश्वर के समय की प्रजा को सरल एवं जड़ तथा मध्य बावीस जिनेश्वर की प्रजा को ऋजु एवं प्राज्ञ कहा गया है।
* पराधीनता घोर बन्धन है। ममत्व माया के बंधन कठिन एवं जटिल हैं।

समस्त बंधन स्नेह बंधन हैं । इस पाश-बंधन को छेदने वाला ही आनंद की जिन्दगी जीता है और अंत में कर्मों का बंधन भी तोड़कर शाश्वत सुख का स्वामी बनता है ।

* जीव को नम्र बनने की कला भगवान महावीर ने सिखाई है । नमस्कार अनेक विघ्नों एवं विपदाओं का नाश कर आत्मा में महान गुण का सर्जन करता है । जीव विनयवान बनता है ।
* प्रभु का एक शब्द भी अर्पण बन जाता है और उसमें सत्य प्रतिबिंबित होता है, जो अकल्पनीय परिवर्तन लाता है ।
* प्रत्येक शब्द में संगीत होता है । प्रत्येक जीवन में कविता एवं प्रत्येक आंखों में प्रकाश एवं गहनता का विस्तार होता है ।
* तीर्थ, प्रवचन, संघ, शासन यह एक ही वस्तु के नाम हैं ।
* मिला है वहां नजर पहुंचती नहीं, जो नहीं मिला वहीं हमारी नजर चिपकी हुई है । नहीं मिले हुए कि झंखना में मिला हुआ हाथ से छूट न जाए ।
* प्रणाम करने से (दोनों घुटने, दोनों हथेली और मस्तक इन पांचों को धरती पर जोड़कर किया गया पंचांग प्रणिपात) अपने शरीर का आकार मंगल कलश जैसा होता है । गुण के सागर गागर बनकर मानो छलके हों इसलिए भरे हुए बिना रहे ही नहीं ।
* दुनिया में नमस्कार, प्रणाम, वंदन, भारत के सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं है । तीर्थंकर प्रभु की देन अजोड़ ही होती है ।
* भगवान भी सिद्धों को नमस्कार करते हैं ।
* प्रभु के शब्द सीधे ही अंदर आत्मा में उतर जाते हैं । कारण कि उसकी तासीर ही ऐसी है कि वह असर करती ही है ।
* आस्तित्व का ऐसा है कि सब कुछ है परंतु जो जैसा है वह वैसा आपने समझा बताया नहीं, जाना ही नहीं, या आपने देखा ही नहीं तो क्या है? कुछ नहीं । तो

फिर आप भी क्या हो ? भगवान के यह शब्द अत्यन्त ही जानने समझने जैसे हैं। तो क्या ? (उपालंभ देते हैं)

* आशीष के सहारे क्लेश का सागर तिर जाना है, साथ ही पुरुषार्थ का हौंसला बुलंद करना है।

  जो स्वयं के अजर अमर एक आत्मा को जानते हैं, वह संसार के समस्त भाव को जान लेता है। जो एगं जाणई सो सव्व जाणई।

<u>भगवान ने कहा है :-</u>

* मनुष्य को मार्ग की जानकारी होना चाहिए। मार्ग एवं उन्मार्ग, ज्ञान से जाना जाता है। अज्ञानी या अर्ध विद्वानों द्वारा बताया हुआ उन्मार्ग ही है। अज्ञ जीव चलते तो बहुत हैं, परन्तु पहुँचते कहीं नहीं।
* जीव जब सतत घसीटता, खींचा जा रहा है तब शरण-आशरारुप द्वीप, <u>उत्तम धर्म द्वीप</u> ही है। इस सत्य रुपी द्वीप पर समुद्र या जलराशि का प्रवाह पहुंच नहीं सकता। जन्म-मरण का प्रवाह ऐसा ही है।
* 'आश्रव' रहित शरीर नाव है। जीव नाविक है। संसार भव सागर है, उससे पार उतरना है। जिनेश्वर रूपी सूर्य, जीवों को मोह रूपी अंधकार को दूर कर सर्व तत्व विषयक प्रकाश रूपी उजाला प्रदान करेगी ही।
* <u>मोक्ष के अन्य नाम</u> - निर्वाण, अबाध, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेत्र, शिव, अनाबाध, अचल, अनंत, अपुनरावर्त आदि।
* एक जैनों के अनेक-अनेक भेद आज प्रचलित हुए हैं - <u>उसमें मुख्य दो हैं -</u>

  <u>(1) श्वेताम्बर :</u> (1) मंदिर मार्गी (2) स्थानकवासी (3) तेरापंथी। इस के अलावा भी श्वेताम्बर मूर्तिपूजक में त्रिस्तुतिक गच्छ, तपागच्छा, पार्श्र्वचन्द्रगच्छ, खरतरगच्छ, अचलगच्छ, लोकागच्छ। इसमें भी छोटी-बड़ी बातों के भेद के कारण अलग-अलग शाखाएँ हैं।

  <u>(2) दिगम्बर : (1) तेरा पंथी (2) वीसपंथी।</u>

एक वर्ग श्री कानजी स्वामी का और एक ग्रुप श्रीमद् राजचंदजी का।

मत भेद से संघ कमजोर होता है - कलियुग में तो संघ ही बल है, जहां बल है वहाँ आवाज है और जहाँ आवाज है वहां सभी सहयोगी बन जाते हैं।

विचार सिर्फ एक ही करना है कि हम सब कहाँ खड़े हैं ? कहाँ पृथक (अलग) हो रहे हैं, इनके बजाय कहाँ जाकर मिलेंगे ? कहाँ एक होने की उमंग लेकर धर्मशासन को शक्तिशाली बनाएंगे ? हमारे विचार अच्छे होने चाहिए।

समस्त सौभाग्य के स्वामी सर्वसंपदा के दानी प्रभु महावीर देव, स्वयं के अंतिम समय में अपापा नगरी (पावापुरी) में पधारे। वहाँ अंतिम देशना में फरमा गए - 'हे जंबू ! मैं तुझे यही कह रहा हूँ, ऐसा सुधर्मास्वामी ने जंबूस्वामी को कहा - इसी में से आध्यात्म के मोती यहां पिराने का संकलन रूप प्रयास किया गया है।

- अपना संपूर्ण जैन धर्म जीवदया पर ही खड़ा है। भगवान ने मनुष्य मात्र को सलाह दी है कि तुम ऐसा जीवन जीना कि तुम्हारे जीने के लिए किसी भी जीव को पीड़ा न हो।
- मनुष्य को चलने मात्र से सृष्टि में एक भय खड़ा होता है।
- भगवान ने कहा कि "अपनी आत्मा को समिति से सीमित और गुप्ति से गुप्त करना।" 5 समिति और 3 गुप्ति है, ये आठ प्रवचन माता कहलाती है।
- बुद्धि की निर्मलता, हृदय की सरलता और विचारों की परिपक्वता के बिना सत्य जानने की उत्कंठा जागृत नहीं होती।
- तू तेरे घर में ही भूला हो गया है। जरा ढूंढो तो मार्ग मिले। याद रक्खो ! जीव भोगों से कभी तृप्त नहीं होता। विचारों का प्रभाव आत्मा पर तुरंत पड़ता है। संपन्न व्यक्ति को गरजी मनुष्य घेर लेता है, उससे वह फूला नहीं समाता और अहंकार आ जाता है।
- आचार्य महाराज हिन्दी में समझाते हैं :-

मस्जिद तो बना ली दम भर में, ईमान की हरारत वालों ने ।
दिल तो वो पुरानी पापी रहा, बरसों में नमाज़ी न बन सका ।।

* शांति समाधि का मूल्य समझ लीजिए तो मालूम पड़ेगी कि - ओह ! शांति तो पास में ही थी मैंने हाथ आगे बढ़ाने का प्रयास ही नहीं किया । यह ध्यान रखना । जीवन पूर्ण हो जाए और शांति हाथ ही न आए, ऐसा बनाव न बने !!
* घर हमारा अच्छा स्थान बन सकता है ... शांति चाहिए ।
* स्वयं में बसो, स्वयं में जीयो,सहन करना सीखो । सहयोग वहाँ करो जहाँ आत्म साधन का साध्य मिले । उन्मार्ग गामी न बनो । उससे कोसों दूर रहो ।
* तप करने से आत्मा एवं शरीर दोनों आनंदमय हो जाते हैं । सम्यग् तप हो तो ! ये तप जैन शासन की अद्‌भूत व्यवस्था है ।
* आचार्य महाराज समझाते हैं कि जिन्दगी का यह सफर तुम्हें ही पूरा करना है; जितने जल्दी चलोगे, उतने जल्दी पहुंचोगे ।

मगर बैठे रहने से चलना बेहतर, कि है अहले हिम्मत का मालिक यावर ।
जो ठंडक में चलना न आया मयस्सर, तो पहुँचेंगे हम धूप खा-खाकर सर पर ।।

अन्य की आशा छोड़ दो, कोई आने वाला नहीं, तुम्हें ही जाना है ।

* प्राण लेने वाली नाड़ी गले के निकट ही है; यदि उसे दबा दिया जय तो जीवन वही ठहर जाता है; किन्तु प्रभु उससे भी अधिक हमार पास है ।
* पूरे प्रतिक्रमण सार केवल तीन शब्दों में है - मन, वचन, काया की शक्ति ?

  सव्वस वि देवसीय, 'दुचिंतिय दुभासिय, दुचिट्ठिय' मिच्छामि दुक्कड़ं ।

  दिन भर में जो कुछ भी मैंने बुरा चिंतवन किया हो, बुरा कुछ कहा हो, बुरा किया हो (जो पूरी तरह पाप कर्म का काम था) यह सभी मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो, नाश को प्राप्त हो ।
* तीर्थ, प्रवचन, संघ, शासन, यह सब एक ही वस्तु का नाम है । जो तारे वह तीर्थ कहलाता है, शत्रुंजय आदि स्थावर तीर्थ है एवं चतुर्विध संघ वह जंगम तीर्थ कहलाता है।

* हैरानी (आश्चर्य) इस बात की है कि जो तुमको मिला - वहाँ तुम्हारी नज़र ही नहीं पहुंचती और जो नहीं मिला है उस पर तुम्हारी नजर लगी हुई है। नहीं मिली उस वस्तु की चाह में जो मिली हुई चीज है कहीं वह भी न चली जाए ? उसका ध्यान रखना। एक बात याद रहे - महावीर देव के शासन में हमने जन्म लिया और जैन कुल के प्रभाव से जन्म लेते ही दुनिया की उत्तम सामग्री अपने को मिल गई है।
* 'उत्तमनागुण गावतां, गुण आवे निज अंग' ये गुण प्राप्त करने की अलौकिक कला है, जो सभी को नहीं आती। नमे सो परमेश्वर ने गमे (नमे वे सोने गमे)

श्रेणिक ने समकित प्राप्त किया : कथा

20वाँ महानिर्ग्रंथ अध्ययन - उत्तराध्यय सूत्र

<u>श्रेणिक और अनाथी मुनि</u> - श्री सुधर्मास्वामी-जंबू स्वामी को समझा रहे थे :-

श्रेणिक - प्रसेनजित राजा के सौ पुत्रों में से सबसे छोटा राजकुमार था। वह जितना चंचल था उतना ही समझदार भी था। नम्र, साहसी और स्वाभिमानी था। चेल्लणा - वैशाली की सात राजकुमारियों में से सबसे छोटी थी। उसने श्रेणिक को मन ही मन वर लिया था। श्रेणिक ने उसका प्रकाशमय दिन में अपहरण किया था मगध की पट्टरानी बन गई। स्वयं को बहुत भाग्यशाली मानती थी।

संस्कारवान नारी के संसार में आत्मा की सुगंध से सब कुछ महकता रहता है। चेल्लणा रानी तो महावीर प्रभु की परम उपासिका थी। श्रेणिक के पास सब कुछ था वीतरागता का धर्म नहीं था।

एक दिन श्रेणिक 'मंडितकुक्षि' उद्यान में गया। वहाँ क्या देखा ? वृक्ष के नीचे एक गौरवर्ण, सुंदर, सुकोमल, अद्भुत रूप सहभर देहख स्नेहसिक्त बड़े नेत्रों वाले ऐसे परमात्मा रूप देखा। राजा ने करबद्ध होकर विनयपूर्वक पूछा - कहाँ तो यह दुर्लभ जवानी और कहाँ यह वनवास, इतना कठोर व्रत तुमने क्यों लिया ? तुमको क्या कोई तकलीफ थी ?

मुनि ने उत्तर दिया - वाह राजन् ! आपने यह अच्छा प्रश्न किया। क्या कहूँ ? मेरा कोई नहीं था, मैं बिलकुल अकेला था, मेरा अच्छा सच्चा मित्र भी कोई नहीं मिला। इसलिए ऐसी युवावस्था में मैंने व्रत ले लिया।

अरे ! अरे ! क्या कहते हो ? मैं तुमको सुख-भोग, संपत्ति-मित्र, ज्ञाति, परिवार, ममता-माया, और मस्ती भरे माहौल रूप महल में ले चलता हूँ। चलो मैं तुम्हारे सारे अरमान पूरे करूँगा।

राजा भद्रिक स्वभाव से बालमुनि के रूप-गुण से प्रभावित हो गया। मनुष्य दूसरे की संपत्ति, स्त्री, कपड़े, आभूषण आदि देखकर चकित हो जाता है। ज्ञानी कहते हैं कि किसी के उत्तम कार्य के आशिक बनो, गुण ग्राहक बनो।

योग के साधक ऐसे महामुनि श्रेणिक राजा की बाल चेष्टा सी बातें सुनकर हंसने लग गए। मुनि बोले 'हे भोलेभाले राजा ! तुमको गलत भ्रम है कि मैं समर्थ हूँ ! किन्तु तू स्वयं अनाथ है, तेरे पास तेरा अपना कुछ नहीं है, सत्य तो यह है कि तेरा रक्षक ही कोई नहीं है ?'

राजा एकदम चमक गया। क्या कहा ? मैं अनाथ हूँ ! मेरे को अनाथ कह रहे हो ? मुनि बोले - नहीं-नहीं राजा तुम अच्छे से काफी समझ गये हो लेकिन मेरी पीड़ा तुमको समझ नहीं आई। तुम जानते हो - कौशांबी नगरी परंपरा से कैसी महान रही है ? मेरे पिता वहां के यशस्वी एवं समर्थ राजा थे। मैं उनका एकमात्र युवराज पुत्र था। अनेक कन्याओं के साथ मेरी शादी हुई। एक दिन अकस्मात् आंख में दर्द उठा और वहां से पूरे शरीर में हो गया। तीखी सुई शरीर में चुभने पर दर्द होता है ऐसा रोम-रोम में असह्य दर्द होने लगा।

ज्ञानी कहते हैं - सहनशीलता सीखना, भूखे रहना, चलना, निभाना-सीख लेना। बहुत अच्छा रहेगा। दयालु और परोपकारी होना, जिसने भावांतर में तुमको पीड़ा सहने का अवसर न आवे। राजा ने फिर अपना ज्ञा बघारते कहा कि - मैं तुम्हें बीमार ही न पड़ने दूं। इतनी कायरता क्यों ?

मुनि का उत्तर - राजन् ! मैं जो कह रहा हूँ वह सत्य है। धन्वन्तरी वैद्य भी मुझे क्षण मात्र के लिए शांति नहीं दिला सका। यह मेरी प्रथम अनाथता। मेरे पिताजी सर्वस्व देने के लिए तैयार हो गए तो भी मुझे इस रोग से न छुड़ा सके। ये मेरी कैसी निर्नाथता ? मेरी माता भी मुझे इस दु:ख से नहीं छुड़ा सकी। यह कैसी अनाथता।

मेरे प्रिय भाई, बहन, पत्नियाँ कोई कुछ भी न कर सका, मेरे पास से कोई दूर नहीं होता

था। परन्तु दुःख दर्द कोई नहीं ले सका। यह मेरी परतंत्रता थी। मैं अनाथ था। मैं गौरव अनुभव करता था (यह सब मेरे हैं) किन्तु हम कौन हैं ? यह मुझे समझ में आ गया। कि अपना कोई नहीं। कपड़े, गहने, मान-सम्मान, इतना बड़ा खजाना, मनुष्य (जनता) कुककट पावों में नमन करते हैं लेकिन उसमें क्या विशेषता ? कुछ भी नहीं।

राजन ! विचार करते-करते मन में संकल्प उत्पन्न हुआ कि संसार, जन्म-मरण, जरा-दुःख विपदा कारण है। साधुता संसार का नाश करने वाली है, मुझे भी क्षमाशील, इन्द्रिय विजेता, निरारंभी होकर साधुता स्वीकार कर लूं तो फिर कभी भी वेदना सहन न करना पड़ेगी। आश्चर्य राजन् ! ये भाव मन में आते ही मेरी वेदना शमन होने लगी और कुछ ही समय आश्चर्यजनक रूप से मुझे निद्रा आ गई। सुख की नींद सो गया।

प्रातःकाल ! नेत्र खुले ! शरीर से पूरी तरह वेदना गायब ! बिस्तर से उठा एकदम तरोताजा स्फूर्तियुक्त बदन ! वस्तुतः जो धर्म की शरण में जाता है उसकी समस्त जीव पीड़ा नदारद हो जाती है। कौतुहल, प्रपंच, अविश्वास, दुर्बुद्धि, सम्पूर्ण विखवाद नष्ट हो जाता है। सही अर्थ में स्वयं के स्वामी बनकर अनाथता दूर की जा सकती है।

सभी मुझे उठा देखकर पूछने लगे कि - तू कैसा है ? रात को तो तू तड़प रहा था। बहनें कहने लगी - हमने कितनी मानता मानी थी।

मैंने कहा - मैं एकदम ठीक हूँ। तुम्हारी तरह मैंने भी परमात्मा से प्रार्थना करके मानता-मानी कि मुझे पूर्णतः स्वस्थ कर दो। मैं ठीक होते ही संयम स्वीकार करूँगा। मैंने माता-पिता-बहनें-पत्नियाँ सभी को समझाकर चारित्र ले लिया। धर्म की शरण में आनंद ही आनंद है।

अपनी आत्मा ही कमल का फूल है और यही बंबूल का शूल है। स्वयं ही स्वयं का शत्रु और मित्र है। अपन जैसे हैं वैसे अपने लिए ही हैं।

मांगे हुए माल से कभी सम्पन्न नहीं हुआ जा सकता। स्व या पर की सुरक्षा बचाने के लिए पूरी जिम्मेदारी ले तो ही नाथ है। तुम भी सारा कदाग्रह छोड़ दो। महानिर्ग्रंथों के मार्ग पर आना, तो ही तुम तुम्हारे नाथ बन सकेगे और तभी ही अन्य के नाथ बनने की योग्यता अपने में आएगी (आ सकती है)

राजा श्रेणिक तो महामुनि के शब्दों को सुनकर चकित सा उनका मुखड़ा ही निहारता रह गया। गहरे अर्थ युक्त शब्द रूप घुंघरु की आवाज उसके कानों में गूंजती रही। सात्विक - व्यक्तित्व और सहज सरलता। महात्मा के साम्राज्य के आगे मेरा तो कुछ भी नहीं - राजा के मन-मस्तिष्क में ये शब्द गुंजायमान हो गए। मन ही मन राजा मुनि का अभिनन्दन करता ही रह गया। अस्खलित प्रवाह की तरह मुनि के वचन जादू कर गए। राजा मुग्ध हो गया। यहाँ धर्म पर श्रद्धा उत्पन्न होने से राजा ने सम्यक्त्व प्राप्त किया।

समकित अर्थात् सच्ची श्रद्धा, वीतराग देव द्वारा बताए गए तत्वों पर अचल श्रद्धा। देव-गुरु-धर्म की तत्वत्रयी में दृढ़ श्रद्धा। यह है समकित .....

श्री केशीगणधर और गौतम स्वामी

उत्तराध्ययन सूत्र - अध्ययन 23वाँ

भगवान महावीर से पूर्व, 250 वर्ष पहले पार्श्वनाथ भगवान हुए। पार्श्व प्रभु की शिष्य परंपरा में श्री केशीकुमार मुनिप्रवर-महायशस्वी, मति,श्रुति और अवधिज्ञान के धारक थे। वे श्री केशीगणधर के नाम से विख्यात थे।

श्री केशी गणधर एवं गौतम स्वामी तिंदूक वन में मिले थे और धर्म तथा आचार व्यवहार के विषय में चर्चा हुई थी। उसका संक्षिप्त वृतांत यहां उद्धृत है :-

1. प्रथम तीर्थंकर के समय के जीव सरल और जड़ थे। अंतिम 24वें तीर्थंकर के समय के जीव वक्र एवं जड़ (हृदय से वक्र एवं बुद्धि से जड़)। बीच के 22 तीर्थंकरों के समय के जीव हृदय से सरल (ऋजु) और बुद्धि से समझदार थे।
2. परिग्रह की प्रतिज्ञा में, नियम में नारी का समावेश हो जाता है। परंतु ऐसी समझ 23वें तीर्थंकर के समय के जीवों में ही थी। इसलिए 4 ही महाव्रत कहे। 24वें तीर्थंकर के समय के जीवों में ऐसी समझ (ज्ञान) नहीं होने के कारण (5वां महाव्रत) पति एवं पत्नी के नियम के लिए अलग व्रत समझाया। उसमें मैथुन नामक व्रत अलग से बताया। इस प्रकार 5 महाव्रत समझाए। काल का प्रभाव जानकर 5 महाव्रत कहें ! वैसे कोई फर्क नहीं है।

3. प्रथम और अंतिम जिनेश्वर के समय के साधुओं को रंगीन वस्त्रों की छूट मिली तो वक्र और जड़ होने के कारण वस्त्र परिधान से शोभा आदि करने लगे। कपड़े स्वयं ही रंगने लगे। बीच (मध्य के) के जिनवर के साधु समयानुसार जैसे कपड़े मिले उन्हें अनाशक्त भाव से शरीर को ढंकने के लिए धारण करने लगे। इस कारण रंगीन वस्त्रों की छूट थी।

4. एक आत्मा को जीत लेने से सभी शत्रुओं को जीता जा सकता है।

5. पाश यानि बंधन, पराधीनता भयंकर बंधन है। माया-ममता का बंधन मुश्किल एवं जटिल बंधन है। सभी स्नेह बंधन है। इस पाश को जो काट डालता है वह कर्म बंधन को तोड़कर आनंदमय जीवन जीता है।

6. तृष्णा की बेल खतरनाक है। फैलती ही रहती है। उसको तो जड़ से उखाड़ना पड़ता है।

7. कषाय अग्नि की ज्वाला के समान है। अग्नि से भी तीव्रता के साथ जलाकर राख करने वाली क्रोधग्नि है। उसको ठंडा करने वाला भगवान भगवान की वाणी रूप जल है। जो शांति देने वाली और जल जैसी शीतल है। तप एवं शील का महाजल इस आग को ठंडा कर देता है।

8. मन दुष्ट घोड़े के समान है - मे अविचार (कुविचार) खड्डे में डाल देता है। आगम के अभ्यास रुप लगा मन के घोड़े को कन्ट्रोलमें कर सकता है। निग्रह किया हुआ दुष्ट घोड़ा भी इच्छित स्थान पर पहुंचा देता है।

9. मार्ग और उन्मार्ग ज्ञान से समझा जाता है - अनंतज्ञानी सर्वज्ञ देव द्वारा बताया हुआ मार्ग ही सन्मार्ग है। अज्ञानी जीव चलता तो बहुत है (घाणी के बेल जैसा) परन्तु कहीं भी गंतव्य पर नहीं पहुंच पाता।

10. संसार रूप महासागर में डूबते जीव को उत्तम धर्मरूपी द्वीप ही आश्रय देता है। कितना ही तूफानी प्रवाह भी धर्मद्वीप पर पहुँच जाने वाले जीव की तकलीफ नहीं दे सकता।

11. निराश्रवी - आश्रम बिना का शरीर नाव रूप है, जीव नाविक है। नाव आराधना का मुख्य साधन होने से संसार सागर से तिराने वाला होना चाहिए।

12. सदा उद्यमशील, क्षीणकर्मी सर्वज्ञदेव प्रभु रूप भास्कर (सूर्य) सर्वलोक में जीवों का मोह रूप अंधकार दूर करके सर्व वस्तु विषयक ज्ञान रूप प्रकाश देते हैं।

13. जहां दु:ख से दु:खित जीव अकर्मक (कर्म रहित) होकर ऊपर चढ़ सके, ऐसा लोक के अग्रभाग में हमेशा के लिए निरापद स्थान है, जहां पर जन्म, जरा, मृत्यु, संताप, रोग कुछ भी नहीं है। वहाँ शिव रुप (कल्याणकारी) शरीर, मन दु:ख रहित, बाधा रहित, नित्य परब्रह्म-स्वरुप अनंत सुखमय स्थान है। जिसे मोक्ष के नाम से पहिचाना जाता है वहाँ जाने वाले जीवों का भव प्रवाह पूर्णत: अंत हो जाता है। वहाँ सुखमय नित्य अवस्था-शाश्वत सुखमय आवास में निवास, शोक रहित जीवन बनता है।

केशी गणधर, गौतम स्वामी का मिलन प्रसंग का अवसर बना। केशी गणधर उसके बाद 5 महाव्रतों को स्वीकार कर एक हो गए।

अष्ट प्रवचन माता

उत्तराध्ययन सूत्र - अध्ययन 24वाँ

5 समिति और 3 गुप्ति को अष्ट प्रवचन माता कहा है। चारित्र स्वरूप जीवन जीने से मन-वचन-काया का अनैतिक-अपराधिक व्यवहार रुक जाता है। ईर्या. भाषा. ऐषणा. आदान-निक्षेप.पारिष्ठापनिका-5समितियाँ (प्रवृत्ति) जयणापूर्वक चलना, बोलना। साधु भगवंतों को स्वयं के लिए बना हुआ-बनवाना या बिकता हुआ लेना, मंगवाना आदि। अनुमोदना आदि दोषों से रहित नौ कोटि (नौ प्रकार से) 42 दोष रहित आहार वहरना, वस्तु लेते रखते, प्रमार्जन करके ही करना। बेकार (निक्रिष्ट) वस्तु को विधिसह परठना। 5 समितियाँ अग्निरुप प्रवृत्तियाँ हैं तो गुप्तियाँ सर्व अशुभ योग की निवृत्ति रुप है और मन, वचन, काया को शुभ योग आदि में प्रवृत्ति स्वरुप है।

* मौन रहने की आदत डालने से मन को प्रतिबंधित किया जा सकता है। सत्यमय और विधिसह जीने की प्रवृत्ति हो जाएगी। समिति, गुप्ति पालन से, पानी में गिरे बिना तैरते नहीं सीखा जाता। विशेष प्रयत्न के द्वारा ही सहजता से किनारे पहुंच सकते हैं; दुनिया देखती रह जाएगी और हम अपने गंतव्य पर पहुंच जाएंगे।
* भगवान कहते हैं – धर्म का पालन करने के लिए हृदय परिवर्तन जरूरी है।
* जिनेन्द्र देव की भक्ति – उपासना सद्गुरु की सेवा, गुणीजनों के गुणानुवाद से अपने ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण होता है। उनके कमजोर होने पर जो शक्ति या गुण प्रकट होते हैं उनको जैन परिभाषा में 'क्षयोपशम' कहते हैं। पुण्य आराधना का फल रूप में अलग अलग प्रकार के क्षयोपशम सभी को होते हैं। इस क्षयोपशम से ही बहुत कुछ समझ सकते हैं। किसी को सहज रूप में, किसी को कम, किसी को ज्यादा। कोई संकेत (इशारा) मात्र से समझ जाता है। पूरा खेल समझने का है।

सब कुछ हो और ज्ञान (समझ) न हो तो कुछ नहीं

एवं

कुछ भी न हो और ज्ञान (समझ) हो तो सब कुछ है।

* भरत चक्रवर्ती को एक अंगूली से अंगूठी उतरते ही समझ यानि बोध प्राप्त हो गया।
* एक राजा को सिर में एक सफेद बाल देखते ही सब कुछ समझ में आ गया।
* बहुत बड़ा भाग निठल्ला या बुरा होने पर भी अच्छा लगता हो, अच्छा होता है इसलिए अच्छा लगता हो ऐसा नहीं है, किन्तु 'मन को जंचता है, इसलिए अच्छा लगता है' और बाद में वही चीज बुरी भी लगती है। अंत में उस वस्तु से छुटकारा पाने का भी प्रयास रहता है। मोह का पर्दा बहुत पतला (आर–पार) है।
* मनुष्य बात देने की करते हैं लेकिन दृष्टि लेने पर ही रहती है। सारा सौदा है, धंधा है। कम देकर अधिक लेने की चाह रहती है। मिलने में लालच में देते हैं। मिलता है इसीलिए तो देते हैं। यदि मिलना बंद हो जाए तो देना भी बंद हो जाए।
* साथ में क्या आने वाला है यह विचार आने पर मन के भाव निर्मल होने लग जाएंगे। तुम्हारी बुद्धि को स्वार्थ में मत बसाना, याद रखना, आखें बंद हुई कि सच्चाई

छुपाए नहीं छिपेगी । झूठ को सत्य करने का कोई उपाय ही नहीं है । धर्म की शरण आ जाओ । जितना दिया है उतना ही तुम्हारा है ।

* दुनियादारी के लिए बहुत कुछ सहन किया है, करते अब-आत्मा के लिए थोड़ा सहन कर लो, तिर जाओगे ।
* कृष्ण जैसे अति विलास वैभव में रमण करने वाले किन्तु हृदय धर्म-परम पद का धाम होना चाहिए । श्रीकृष्ण महाराज श्याम-कन्हैया से महाराज बन गए । रूक्मिणी आदि पट्टरानियाँ एवं हजारों रानियों के प्रिय राधारमण के रूप में विख्यात हुए । उनको राज्य, रानियाँ, वैभव और विलासमय वातावरण बहुत अच्छा लगता था। किन्तु हृदय में मुक्ति का धर्म का एवं परम पद का वास था ।
* प्रारब्ध (भाग्य) से सब मिल जाएगा, ऐसा नहीं : धर्म तो पुरुषार्थ से ही मिलेगा, धर्म के बदले दुनिया की कोई भी वस्तु मांगना वह नियाणा (निदान) कहलाता है । किंचित भी धर्म किया जाए या दान दिया जाए तो किसी को मालूम नहीं होना चाहिए । तन-मन-धन की शक्ति मोक्ष के लिए लगाना व्यर्थ मत खोना ।
* लग्न - यह मनुष्य को बंधन में लेने की गहन संसारी व्यवस्था है ।
* नेम - राजुल की प्रीति 9-9 भव की थी । राजमती कहती थी - मेरे तो एक नेमि प्रभु हैं, दूसरा कोई नहीं । नेमिनाथ दीक्षित होकर केवलज्ञान प्राप्त किया और शासन की स्थापना की तब राजमति ने अपने लंबे काले भंवर केशों का लुंचन कर प्रभु के हाथ से दीक्षा ले ली ।

किंचित् आत्मस्पर्शी आत्मलक्ष्मी सुवाक्य

* उत्तम के साथ उत्तम का संयोग, उत्तमता को जगत में अद्भुत बल देता है । जैसे मणि-सोने का संयोग ।
* अंतिम समय में जीव को शांति चाहिए । शांति अन्यत्र कहीं नहीं है, हमारे अंतर में स्थित है । उसे प्रकट करने के लिए ज्ञान (समझ) चाहिए । ज्ञान गुरु से प्राप्त होता है । गुरु बिन ज्ञान कहाँ से पाऊँ ?

* संघ जितना बिखरा हुआ होगा उतना ही कमजोर होगा । जितना कमजोर होगा, उतनी अराजकता (Defects in administrations) का दबाव होगा । <u>कलियुग में संघ का ही बल है ।</u>
* विनय देखना हो तो जैन परिवार के घरों में जाओ : वहां देखने को मिलेगा । ग्रंथों में लिखा है, <u>भगवान ने हमें कैसी जवाबदारी सुपुर्द की है, यह विचार करना ।</u> यह सब विचार करने योग्य है ।
* बड़े के साथ सम्मान से और छोटे के साथ प्रेम से व्यवहार करना चाहिए । सम्मान देने से विनयगुण को बल मिलता है । बड़े को दिया सम्मान शीघ्र फलता है ।

यज्ञीय अध्ययन - एक रोचक कथा

उत्तराध्ययन सूत्र - अध्ययन 25वाँ

मनुष्य को देखते, सुनते और समझते आ जाय तो किनारा लग जाता है । पशु, पक्षी, और करोड़ों मनुष्यों को भी आंख, कान, बुद्धि आदि सभी मिला है परन्तु उसका लाभ नहीं मिला ।

समग्रता से, गहनता से देखना आ जाए तो सुंदर शरीर के स्थान पर अस्थिपिंजर ही दिखाई देते हैं । (अशुचि-भावना)

दुःखी, दरिद्री, अपराधी या मुर्दे को देखो-सोचो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा । मेंढ़क बाहर निकलने के लिए जोर आजमा रहा है, किन्तु नहीं छूट सकता । बोल भी नहीं सकता, सर्प के टेढ़ी दाढ़ के बीच दबा हुआ शिकार निकल नहीं सकता । ऐसे में पतंगिया उड़ता-कूदता वहां आ गया, मेंढक उसको अपनी जीभ से पकड़ने के लिए छटपटा रहा है । पतंगिया उसके आस-पास उड़ रहा है । मेंढक यह भूल गया कि खुद सर्प के मुंह में है । अब देखो इसकी हालत ? टर्र-टर्र भी बंद है, फिर भी उसकी मांग बंद नहीं । इच्छा, अभिलाषा और आकांक्षा को पहिचानो ।

<u>अपनी जिन्दगी का यही स्वरूप है, आखें कहां घुमती हैं, जिव्हा कहाँ सरसराती रहती है ? मन की कितनी ही मांगे हैं, अभिलाषाएँ हैं ?</u>

साँप, मेंढक और पतंगिया (जुगनू) तीनों की चाल (एक दूसरे को मारने की) चल रही है, इतने में गगन मार्ग से उड़ती हुई चील की दृष्टि इन पर पड़ी - एक झपट्टा मारती सर्प को चोंच में पकड़कर उड़ चली। इधर सर्प जुनून भरा मेंढक को जीता ही निगलने को तैयार था। अब यहाँ चील ने सर्प को पकड़ा और सर्प ने मेंढक को। एक क्षण में सारी कहानी बदल गई। सर्प मेंढक की लड़ाई का स्थान रिक्त (खाली) हो गया।

प्रभु कहते हैं - रात्रि भोजन करने से चील, कौवा, उल्लू, गिद्ध, चामचिड़ी (चमगादड़) जैसी योनि प्राप्त होती है।

चील ने चोंच मारकर सर्प की आंखें फोड़ दी और मार कर खा गई। जय घोष वेद-वेदान्त का परम विद्वान ब्राह्मण यह सब नाटक देख रहा था और गहराई से अवलोकन कर रहा था। विद्वान कहते हैं - देखो ! कैसी आपाधापी, अंधाधूंधी, अराजकता व्याप्त है ? मेंढक को मारने का विचार करने वाला सर्प ही मारा गया। प्रत्येक जीव के पीछे कोई न कोई लगा हुआ है। तभी कहते हैं 'जीव-जीव का लागू' ऐसे में खामोशी भयभीत थी।

ब्राह्मण जीव सृष्टि का विचार करने लगा; यदि हम भी ऐसी योनि में चले गए तो ? भय से घबराए हुए, कहीं शांति-निर्भयता नहीं, सुरक्षा नहीं, छोटा सा पेट भरने के लिए कैसा खतरा मोल लेना पड़ता है, अपने 100 वर्ष पूर्ण होने में समय नहीं लगता ? ऐसा न हो इस विचार ने ब्राह्मण को व्याकुल कर दिया। मार्ग में चलते एक जैन मुनि महात्मा मिल गए। विचारों का संयोग और मुनि का सान्निध्य मिला। ''सान्निध्य में रहो तो प्रभाव अवश्य पड़ता है।'' साथ रहने से सान्निध्य मिले - ऐसा नहीं है। अंतर्मुखी होने का अवसर मिला।

शास्त्रकार कहते हैं; हमारे ऊपर भी बहुत बड़ी चील (काल) चक्कर लगाती उड़ रही है; जीवन रूप मेंढक काल सर्प के मुख में फंसा हुआ है। गहराई से सोचने, अवलोकन करने से देखने की विचारने की पद्धति बदल जाती है।

जय घोष ब्राह्मण ने बेचारगीमय जीवन से उबरने का उपाय पूछा और दीक्षा ग्रहण कर ली। साधु जीवन अहिंसक है। यहां सभी जीवों के साथ मैत्री ही मैत्री है। जीवन निर्दोष है।

सत्य दिशा मिली, दशा बदल गई, जय घोष साधु बन गया। निष्परिग्रही, बाहर से पूर्णतः खाली दिखाई देने वाला अंदर भरा-भरा है। इन्द्र भी शर्मा जाता है,

आत्मा में शौर्य, सत्यता का झनकार, श्रद्धा की स्थिरता, आत्मीय निखालसता और तप रूप शस्त्र के तेज से अंदर की रिक्तता को भर दिया था।

बुद्धि की निर्मलता, हृदय की सरलता और विचारों की परिपक्वता के बिना सत्य जानने उत्कंठा जागृत नहीं होती।

सच्चा सो मेरा

* नक्षत्रों का मूल चन्द्र है, चन्द्र के कारण ही इतने नक्षत्र बने हैं।
* धर्म का मूल प्रभु ऋषभ देव हैं।
* सच्ची सम्पति निष्परिग्रहता है, ज्ञान-विद्या यही संपत्ति है।
* समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण ज्ञान से मुनि (ज्ञानी) और तप से तापस हुआ जाता है।
* देखना ! परमात्मा के नाम से, परमात्मा से दूर न निकल जाएँ ? ध्यान रहे !!

मोक्षमार्ग - गति

उत्तराध्ययन सूत्र - अध्ययन 28वाँ

* यह जीव दु:ख, दर्द, पीड़ा, संताप, जन्म-मरण से मुक्ति, क्लेश-कषाय, वध (मारना), बंधन से मुक्त हो - वह मोक्ष।
* जन्म-मरण, पेट-भर खाया-फिर भूखा हो गया, हंसना फिर रोना, चढ़ना-फिर गिरना, राजा होकर रंक बने, इन सब से पृथक (मुक्त) होने के लिए - मोक्ष। साधना के लिए ज्ञान, दशर्न, चारित्र और तप एक मात्र मोक्ष का मार्ग है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप चारों ही हमारे भीतर हैं। हमारी सम्पत्ति है। बाहर से लाने की कोई वस्तु नहीं है।
* मन, दुनिया की दौलत से नाचता-कूदता है, आत्मा नहीं ! प्रभु ने जो हमें ज्ञान दिया है, उस पर दृढ़ श्रद्धा रक्खो, श्रद्धा बिना का ज्ञान निरर्थक है।
* स्वाध्याय करो, श्रुत सीखना है, श्रुत ज्ञान के बिना केवलज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। श्रुतज्ञान-मति ज्ञान के बिना नहीं मिल सकता। मति (बुद्धि) शुद्ध और निर्मल होना चाहिए। शास्त्र श्रवण, स्वाध्याय, अध्ययन से 'क्षयोपशम' होता है।

जो एगं जाणई सो सव्वं जाणई :- जो एक आत्मा को जान लेता है, वह सब जान लेता है। सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने का है ।

* ग्रन्थों में कहा है :- रात्रि समय श्रावक परिवार के साथ बैठकर धर्म-चर्चा, कथा-वार्ता आदि करें तो 'तत्वबुद्धि' की परिणति जागृत होती है । सुई में धागा पिरोया हुआ हो तो सुई गुम नहीं होती । उसी प्रकार सूत्र कंठस्थ कर लिया जाए तो अर्थ गुम नहीं होता । जीवन भरा-भरा लगता है । स्वयं की महानता जागृत होती है ।
* श्रद्धा सम्पन्न ज्ञान के बिना जीवन में अंधेरा ही है । अंधेरा देखने आंखे चाहिये । ज्ञानियों के वचन-आंखों में दिव्य अंजन रूप हैं जिससे हमारी रोशनी विस्तृत हो जाती है । बर्तन को गंदा नहीं होने देना चाहिए अन्यथा उस बर्तन में जो वस्तु रखी जाएगी वह भी गंदी हो जाएगी (खराब हो जाएगी) ।
* कर्मों का उपशम (उत्पन्न न होने देना) और फिर क्षय होना वह क्षयोपशम । पानी का कचरा फिटकरी घुमाने से नीचे बैठ जाता है; पानी शुद्ध निर्मल हो जाता है । कांच जैसे पानी में कचरा साफ दिखाई देता है । ठीक इसी प्रकार गुणीजनों के गुण गाकर अपनी बुद्धि को निर्मल बनाइए, कचरा सारा साफ हो जाएगा और बुद्धि स्वच्छ हो जाएगी ।

ज्ञानियों के प्रति अपना अत्यंत आदर भाव रखिए । कुमारपाल राजा 108 देश के अधिपति, अपने ऊपर अनेक जिम्मेदारियाँ-कठिनाइयाँ होते हुए भी जब तक 20 प्रकाश वीतराग स्तोत्र के और 12 प्रकाश योग शास्त्र के = इस प्रकार कुल 32 का स्वाध्याय नहीं कर लेते तब तक मुंह में पानी नहीं लेना । अर्थात् नवकारसी के पच्चक्खाण नहीं पारते । स्वाध्याय से अनंत कर्मों का क्षय होता है । बुद्धि उत्तम और तेजस्वी होती है । अद्भुत ज्ञान संपदा की प्राप्ति होती है ।

स्थूलभद्रजी की 7 बहनों का गजब का क्षयोपशम था । प्रबल प्रज्ञा और प्रगल्भ (तीव्र) प्रतिभाशाली बहनें थी । एक बहन ने 60 वर्ष की उम्र चारित्र लिया । ज्ञानार्जन की ऐसी लगन लगी और श्रुत एवं श्रुतदेवी सरस्वती की आराधना करी तथा महापंडित बन गई । तार्किकता में अजोड़ होने से आचार्य वृद्धवादी सूरि के अनुरूप प्रख्यात हो गई ।

प्रतिक्रमण के सूत्र द्वादशांगी का मूल है । ठवणी (लकड़ी की) पर प्रतिक्रमण की पुस्तक रखकर 3 प्रदक्षिणा और 5 खमासमणा देकर सामायिक लेना । फिर जिसने धर्म

समझाया सिखाया उन माता-पिता को, गुरु-शिक्षक को याद करना । उनके महान उपकार के गुणों को याद करके कहना कि आपके उपकार को हम कभी नहीं भूलेंगे । किन्तु अब कितना याद रहा या भूल गए । उसकी माथापच्ची में मत जाना । कमाई काफी हो गई उसका फल आगामी भव में प्राप्त होगा ही होगा ।

भगवान ने गौतम स्वामी को त्रिपदी ही दी थी - और उन्होंने उसमें से 14 पूर्व की रचना की । गणधर पदवी प्राप्त की, यह प्रबल क्षयोपशम का चमत्कार है । अभ्यास करना, पठन-पाठन करना, गुरु उपासना, भक्ति, बहुमान करना, वीतराग देव की पूजन, वीतराग वाणी का श्रवण, सत्संग आदि से बुद्धि निर्मल होती है । श्रुत ज्ञान की आराधना के बिना केवलज्ञान संभव नहीं । **5. गाथा कंठस्थ करो तो 1 उपवास जितना फल मिलता है ।**

जो गुण और पर्याय युक्त होता है वह द्रव्य कहलाता है । ''गुण पर्याय वत् द्रव्यम् ।'' जैसे सोने में चमक, भाटीपन, मुलायम आदि गुण हैं, इससे वह अनेक आकार में परिवर्तित होता रहता है, उसे उसका पर्याय कहा जाता है और सोना द्रव्य कहलाता है, उसी प्रकार आत्मा द्रव्य कहलाती है, ज्ञानमय है, द्रव्यमय है ।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अगुरु, लघु आदि उसके गुण हैं । विविध प्रकार के शरीर धारण करे वह पर्याय है । आत्मा अनेक योनि, शरीर, संबंध धारण करती है किन्तु आत्मा का स्वरूप वैसा का वैसा रहता है । चाहे वह सामान्य जीव-जंतु या पत्ता-फूल ही क्यों न बने ।

यह लोक षड्द्रव्यात्मक रूप में देखा (समझा) जा सकता है । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुदगलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये छः द्रव्य है । जड़-चेतन पर काल का परिवर्तन निश्चित मालूम पड़ता है । बालक युवा होता है, युवा प्रौढ़, प्रौढ़-वृद्ध और वृद्ध भी काल - मृत्यु को प्राप्त करता है । उसे काल किया कहलाता है । मुख (चेहरा) उसका निरंतर बदलता रहता है । देखते आना चाहिए । इमली के पेड़ में असंख्य पत्ते होते हैं, सभी समान दिखते हैं, किन्तु समान नहीं हैं । पुद्गल बहुत रंगीन है, पुद्गल से जीव तुरंत मोह में पड़ जाता है ।

हम जो कुछ द्रव्य देख रहे हैं, विशेष रूप से वह एकेन्द्रिय जीव का कलेवर है। मिट्टी, चूना, सीमेंट, रत्न, खान का सोना, धातु, जमीन में होने वाले कंद, मूली, गाजर, आदि सभी कलेवर रूप ही बनते हैं जो देख रहे है। वह पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि में रहने वाला जीव कितने समय में ऊपर आता है, चलता-फिरता शरीर मिलता है, अनेक पर्याय बदलने के बाद मनुष्य बनता है। बुद्धि के साथ पुरुषार्थ करके शुद्ध-बुद्ध, स्वच्छ होकर सिद्धि पद भी प्राप्त कर लेता है। मोक्ष भी पा लेता है।

नौ तत्व का संक्षिप्त परिचय :- जीव - वह जीव, बिना जीव जो जड़, वह - अजीव। जो सत् कर्म से संसार में अच्छा फल = सारी सुविधाएँ आदि मिले वह पुण्य। पाप = जिसके परिणाम से जीव को दु:ख, शोक, संताप, अभाव आदि अनेक दु:ख भोगना पड़ता है - वह पाप। आश्रव = अच्छे या बुरे कार्य के द्वारा जो पुण्य या पाप जीव को लगता है वह आश्रव। संवर = जो जीव उत्तम कार्य (सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, व्रत-नियम आदि) करता है उस पुण्य से असद्कार्य आते रूक जाते हैं उसे संवर कहते हैं। निर्जरा = क्षमा, सरलता, तप, जप आदि से आत्मा से चिपके हुए कर्म अलग होने लगते हैं, वह है निर्जरा। बंध = दूध और पानी की तरह कर्म आत्मा से एकाकार हो जाते हैं उसे कहते हैं बंध। मोक्ष = कर्म बंध से आत्मा पूरी तरह से मुक्त हो जाती है वह मोक्ष है। मोक्ष प्राप्त प्राप्त हुआ जीव अंत में शरीर (पुद्गल) छोड़कर सिद्धि गति नामक अजर-अमर, अविचल, शाश्वत धाम में प्रवेश कर जाता है। वहाँ दु:ख रहित परमानन्दमय शाश्वत सुख-शुद्ध स्वरूप प्राप्त होता है। किन्तु याद रखना श्रद्धा अर्थात् सम्यक्त्व के बिना कुछ भी नहीं है।

''तत्वार्थ श्रद्धानाम सम्यग्-दर्शनम्'

'मा तुष मा रुष' खुश भी न होना और रोष भी न करना। (तुष्ट मान भी न होना और रुष्टमान भी ना होना) बस ! यह सूत्र याद करते-करते मास-तुस मुनि केवलज्ञान को प्राप्त हो गए। 'सरलता काम आ गई' श्रद्धा को उन्होंने कभी शिथिल नहीं होने दी।

परमात्मा का ज्ञान तुमको पहले जैसा रहने ही नहीं देता परंतु बदल देता है। प्रभु ने फरमाया है - शिक्षाप्रद कहा है - ''श्रावकों को जिनवाणी-गुरुवाणी अवश्य सुनना चाहिए। धर्म श्रवण से ही आत्मा जागृत होती है।

सम्यक्त्व के अनेक प्रकार हैं, उसमें से 10 प्रकार यहां बताते हैं:-

1. निसर्ग रुचि : समकित पिछले जन्मों से साथ आता है, स्वभाव गत तत्व को जानते हैं।
2. उपदेश रुचि : गुरु उपदेश से जिसने श्रद्धा प्राप्त की हो।
3. आज्ञा रुचि : प्रभु की आज्ञा को सर्वस्व माने, दृढ़ श्रद्धा हो, पेथड़शाह ने सभी आगम सुने थे।
4. सूत्र रुचि : श्रुत के प्रति अटूट श्रद्धा, सभी आगम पढ़ने की ललक, त्रिपदी से आगम रचने वाले।
5. बीज रुचि : प्रज्ञा से परिपक्व हो, पढ़कर-सुनकर सभी याद कर लें (याद हो जाए)।
6. अभिगम रुचि : सूत्रार्थ सुनने-पढ़ने की ललक
7. विस्तार रुचि : समस्त पर्यायों को जानने की रुचि वाला, सर्वनय को जानने वाला।
8. क्रिया रुचि : ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, समिति-गुप्ति आदि में उपयोग रखने वाला, आवश्यक क्रिया में तत्पर
9. संक्षेप रुचि : चिल्लातीपुत्र के समान, थोड़े में बहुत कुछ समझना, दृढ़ श्रद्धा, गहरी समझ।
10. धर्म रुचि : धर्म ही अंतिम स्वरूप है।

थोड़े में बहुत*

उत्तराध्ययन सूत्र - अध्ययन 28वाँ

एक राजा विद्वान, परोपकारी एवं सज्जन था। दूर देशांतर से आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, राजनीति और कामशास्त्र में निपुण 4 पंडित अपने महान ग्रंथ की रचना कर राजा को इस अद्भुत महान ग्रंथ को पढ़कर सुनाने को निकले। राज दरबार में पहुंचे। राजा से कहा - महाराज हम आपको ये ग्रंथ सुनाने आए हैं। राजा ने उत्तर दिया - तुमको जो चाहिए सो ले जाओ। मैं देने को तैयार हूँ, किन्तु मेरे पास इतना समय नहीं है कि बैठकर आपके ग्रंथ सुन

* 1. शरीर शास्त्र - पूर्व में किया भोजन हजम न हो तब तक पुन: भोजन न करना। 2. धर्मशास्त्र - जीवों पर दया करना, दयालु होना। 3. राजनीति - राजनीति में किसी का विश्वास नहीं करना। 4. कामशास्त्र - स्त्री के साथ कठोर व्यवहार नहीं करना, जितनी मृदुता उतनी ही वश में रहेगी। अर्थात् सांसारिक जीवन सुखमय, खुशबुमय रहे (वश में रखने का मतलब गलत न समझें - अन्योअन्य स्वरूप में इसे समझें)

सकूं । पंडितों ने कहा - राजन् ! हम आपसे कुछ नहीं मांग रहे हैं । हम तो सिर्फ विद्धाता का सम्मान चाहते हैं । राजा ने कहा - पंडितों ! आप लोग भी विचार करो कि इतनी जिम्मेदारी-राजकाज में इतना समय कहाँ मिल पाता कि 4 लाख श्लोक वाले इतने बड़े ग्रंथ सुन सकूं । आप सिर्फ सार सुना दो बस !

पंडितों ने 40,000, 25,000, 10,000 करता करता 1,000 में से 100 श्लोकों का सार सुनने को कहा । राजा ने कहा फुरसत नहीं है । पंडित समझ गए । उन्होंने 4 लाख साहित्य श्लोक प्रमाण मर्म केवल एक श्लोक में समाविष्ट कर दिया ।

जीर्वो भोजनं आत्रेयः, कपीलः प्राणिनां दया ।

बृहस्पतिः अविश्वासः, पांचालः स्त्रीपुमार्दवम् ।।

1. आत्रेय नामक आयुर्वेद विशारण धन्वंतरी जैसे पंडित ने कहा - मेरे शास्त्र का सार यह है कि - पूर्व में किया भोजन पाचन हो जाए तब भोजन करें । राजा सुनकर प्रसन्न हो गया । वैद्यक शास्त्र का निरोगता का मंत्र मिल गया । (2) कपिल नाम पंडित ने कहा - धर्म का विवेचन तो अपार है किन्तु सारांश यह है कि - प्राणी मात्र पर दया करो ! दया भाव रखो । राजा ने प्रसन्नता के साथ कहा कि -थोड़े में बहुत कुछ बता दिया । (3) नीति शास्त्र के विचक्षण वृहस्पति पंडित ने कहा - राजनीति बहुत विचित्र है । छल-कपट से परिपूर्ण है । लेकिन संक्षिप्त सार यह है कि - किसी का भी विश्वास नहीं करना । सगे पिता या मित्र का भी विश्वास नहीं करना । अंत में (4) पंडित पांचाल ने कहा - कामशास्त्र का सार यही है - 'स्त्रियों के साथ कभी भी कठोर व्यवहार नहीं करना, मृदुता, अर्थात् सरलता - मधुरता का व्यवहार रखना चाहिए तभी सांसारिक जीवन सुखमय रह सकता है । राजा ने चारों पंडितों का सम्मान कर भेंट देकर आदर के साथ विदा किया ।

लेश्या

उत्तराध्ययन सूत्र - अध्ययन 34वाँ

हमारी आंतरिक परिणति, अंतर के भाव, कर्म बंधन में पूर्ण काम करते हैं । अंतवृत्ति को जैन शास्त्रों में, आगम ग्रंथों में 'लेश्या' नाम दिया गया है । विश्व के कोई भी धर्म ग्रंथों में

आत्मा की अन्र्तदशा का ऐसा वर्णन नहीं मिलता, जैसा जैन ग्रंथों में है।

मनुष्य बहुत अच्छा हो - अच्छा बोलता हो, दिखावे में धर्ममय बन गया हो लेकिन उसकी अंतर्भावना अत्यधिक मलीन हो सकती है। स्फटिक जैसी शुद्ध आत्मा को यह (ऐसी) भाव दशा तत्काल अपने रंग में रंग देती है। मनुष्य सब कुछ समझता है किन्तु समझने वाले को नहीं समझ सकता तो उनमें क्या खाक जाना (समझा) ? जिसने स्वयं को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया।

थोड़ा सा उसके विचारों के विपरीत हुआ कि छोटे से स्वार्थ के लिए, किंचित लाभ के लिए, अहं के पोषण के लिए, कुछ लोभ-लालच और वासना या अभिमान में आकर किसी को या पूरे संघ को हानि पहुँचाने या पीड़ा पहुँचाने के लिए तैयार होने वाले असभ्य मनुष्यों से सावधान रहना। अनुमोदना के द्वारा तुम सहभागी बनोगे ? अपढ़-अज्ञानी-उद्धत या झोपड़पट्टी में रहने वाले आवारा लोग जैसे ''जैसे के साथ तैसा'' मानकर व्यवहार करते हैं। अपने देवताओं को भी कठिन लगे ऐसा करने के लिए ही आए हैं। धर्म को बदनाम करने के जो नाच करते हैं वह पापमय व्यापार को बढ़ावा देते हैं। अज्ञान में रच-बस जाने वाले होते हैं। कृष्ण, नील, कापोत ये तीन अशुभ लेश्याएँ हैं। इनसे सावधान रहना।

विवशता - मजबूरी में हमने बहुत कुछ सहन किया है। अब प्रभु के बताए मार्ग पर उनकी आज्ञानुसार चलने में कुछ थोड़ा ही सहन करना है। अटल श्रद्धा और किंचित हिम्मत के साथ उनके वचनों पर विश्वास रखना आवश्यक है। श्रीपाल राजा की आत्मा पूरी तरह से श्वेत एवं सरल थी, वहीं धवल सेठ की आत्मा पूर्ण रूप से कलुषित और नाग के समान विषमयी थी। सिर्फ नाम ही धवल (श्वेत) था। कहते हैं ऐसे लोगों के सामने राक्षस भी हार जाता है। श्रीपाल ने उसे सब-कुछ देकर अपने धर्म की रक्षा की। हमें भी सब कुछ देकर यदि धर्म बचाना हो तो बचा लेने की सलाह दी है, इससे स्वयं भी बच जाओगे।

वीतराग, अरिहंत, अनंतज्ञानी महावीर प्रभु, हमें जीवन के रहस्य और आत्मा का स्वरूप समझा रहे हैं कि ईर्ष्या प्रवृत्ति एवं हठवादिता से तुम क्या प्राप्त करना चाहतो हो। दूसरे की गलती निकालने का मतलब ये होता है कि तुम्हें आता समझ कम है ? जिद क्यों

करते हो ? सत्य को स्वीकार करो। अन्य कोई आपको कहे उसके पूर्व ही स्वयं कह दो कि - हाँ ! मेरी भूल थी। भूल को स्वीकार करने वाला मनुष्य कोई छोटा बच्चा नहीं होता। अपने को ऐसा विचित्र लोगों के बीच रहकर स्वयं को संभाले रखना है। संस्कार और मलिन वेश (कर्म) हमारे पूर्व भव के भी साथ आते हैं। नए रूप में, नए स्थान पर हमारा नए स्वरूप में जन्म हो जाता है, लेकिन कारनामे पुराने ही रहते।

तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या ये तीन शुभ लेश्याएँ हैं। प्रात:काल में गिरीराज (शत्रुंजय) ध्यान से देखें तो पूरा पर्वत सफेद-सफेद कपड़े वाले साधु साध्वियों से भरा दिखाई देता है।

लेश्या-अर्थात् हमारे भाव (इरादे), कितना जानते हैं हम, कितना करते हैं हम, इसका महत्व नहीं है किन्तु हमारे भाव कैसे हैं ? यह महत्व का है। तुम कैसे हो यह समझ लो ?

भगवान कहते हैं - तुम मनुष्य को पहचानना सीखो। निकृष्ट मनुष्य से बच कर रहना। उससे तुमको कुछ भी लाभ नहीं होना है उल्टा तुम्हारे आत्म धन को बहुत बड़ा घाटा होना है। हस्त रेखा तो कभी गलत भी हो जाती है परन्तु वृत्तियों से मनुष्य की सत्य पहिचान होती है। प्रवृत्ति को समझ सको उतना समझो और गलत प्रवृति से दूर रहो। उसकी निंदा भी नहीं और वार्ता भी न करें। सिर्फ सावधानी के साथ गलत प्रवृत्ति से बचने का प्रयास करें।

दुर्योधन कितना सक्षम था ? सौ-सौ भाई थे। वैभव अपार था। किन्तु मस्तिष्क में अहंकार भर गया। उसने पूरे कौरव वंश का विनाश को न्यौता दिया। थोड़ा देने का मना करने वाला - सबकुछ छोड़कर चला गया (मृत्यु को प्राप्त हो गया) उसके आस-पास खड़े रहने वाले दु:खी-दु:खी हो गए। अनुमोदना का प्रभाव क्या होता है ? यह जैन धर्म में सबसे अच्छी तरह से समझाया गया है। सचेत रहकर किस के पास खड़े रहना चाहिए इसकी सावधानी रखना सीखना। धन-दौलत, ऐश्वर्य का स्वामी सेठ को, नौकर के यहां नौकरी करने का मौका आया, इसके दृष्टांत हैं। झूठ को सत्य करने में आकाश-पाताल एक करने का ऐसा ही मिलता है।

रोचक कथा - अणगार मार्ग गति

उत्तराध्ययन सूत्र - अध्ययन 35वाँ

सुधर्मा स्वामी - प्रभु महावीर के पंचम पट्टधर गणधर थे। वह स्वयं के पट्टधर जंबूस्वामी को समझाते हैं :-

भगवान महावीर की स्वयं की अंतिम देशना की वाणी सूत्रबद्ध हुई वह उत्तराध्ययन के रूप में विश्व में विख्यात बन गई और सम्मान को प्राप्त हुई। उसका 35वाँ अध्ययन 'हे आयुष्यमान् जंबु ! तुझे समझाता हूँ।''

अणगार - अर्थात् अगार के बिना, अगार अर्थात् घर, भवन, निकेतन, निवास, आवास, आश्रय, स्थान, मुकाम, आयतन, आलय, निलय, ये सब घर के नाम हैं।

अणगार शब्द वेधक और सूचक हैं, सांकेतिक है। यह शब्द जैन ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य कहीं उपलब्ध नहीं होगा। साधु होने के लिए जो घर छोड़े वह अणगार कहलाता है। जीव को घर का बहुत आकर्षण (मोह) होता है। दुनिया का अंत घर कहलाता है। मनुष्य घर में संग्रह करना ही सब कुछ मानता है। घर भरने में और सजाने में पूरी जिन्दगी खपा देता है। अन्य धर्म में घर को गृहस्थाश्रम कहा गया है। जीवन के 4 आश्रम बताए हैं - गृहस्थाश्रम, ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थाश्रम और अंत में सन्यासाश्रम।

सभी साधना पद्धति में घर- परिवार को छोड़े बिना आत्मा पूर्ण साधन नहीं हो सकता। यह प्रत्येक भारतीय धर्म में निर्विवाद रूप में स्वीकार किया गया है।

अपना शरीर भी असंख्य जीव जंतु का घर है। इसलिए शरीर को आयतन भी कहा गया है।

बहुत बड़ा प्रश्न यह है कि यह घर क्या है ? वास्तव में यह घर किसका है ? इसमें माल क्या है ? जिसने .... सभी इसको मेरा-मेरा कहते हैं। अशांति खड़ी करते हैं। घर बहुत अच्छा सजाते हैं परन्तु शांति से रहने की कोई कला या व्यवस्था मनुष्य के पास जानने में नहीं आई। कोई किसी को निकाल देता है, कोई किसी को छोड़कर चला जाता है।

कोई घर छोड़कर भाग जाता है। अविश्वास के द्वारा दुखी होता है। कोई ऐसे भी हैं कि मर कर भी घर नहीं छोड़ना चाहता निकलता नहीं है।

मिस्र (Egypt) के पिरामिड इसका अद्भुत उदाहरण हैं। वे लिख कर गए होंगे, हमको निकाल मत देना। 'ममी' के स्वरूप में हजारों वर्षों बाद भी इनको सहेज रक्खे हैं। बसे रहने की गहरी आसक्ति का असार यहां संग्रहित किया हुआ पड़ा है।

तीर्थंकर प्रभु ही एक ऐसे हैं जिन्होंने घर को निकट से देखा, उनको उसमें कुछ खास नहीं लगा तो उन्होंने संसार के प्राणियों को आगाह किया कि 'तुम बहुत जल्दी इस घर को छोड़ देना' और घर की आसक्ति से, इसके ममत्व से बचने के लिए सभी को समझा कर सचेत करते रहना। सर्व विरति ही धर्म है और सब दुःख का कारण घर है। जहां हिंसा, पाप, झूठ, माया, कपट, कलेश, क्रोध, द्वेष, धिक्कार, अहंकार, अविश्वास, संग्रह वृत्ति, ईर्ष्या आदि अनेक विपदा का कारण 'घर' है।

चिंता, शोक, विषाद और भय का कारण भी घर ही है। घर में रहना ही पड़े और रहना ही हो तो ममत्व कम रखना। जिस घर को तुमने 50, 60, 70 वर्ष तक सजाया उस घर में से तुमको उठाकर बाहर रखने में किसी को हिचकिचाहट नहीं होगी। कहेंगे अरे जल्दी उठाओ ! बाहर निकालो ! धन्य हैं वो आत्माएँ जिन्होंने घर का त्याग कर अणगार रूप धारण कर लिया। घर की ममता गहन है। समझदार बनो। वस्तु स्थिति क्या है ? उसे समझो ! घर का चक्कर समझना जरूरी है। 'तुम में घर समा गया है या तुम घर में समा गए हो।' गहराई से विचार करना।

मेरे बिना घर का क्या होगा ? ये सोचने वाले चले गए। कहीं किसी को कोई बाधा नहीं आई। सभी काम व्यवस्थित चल रहे हैं। एक मनुष्य के चले जाने पर कई संबंध समाप्त हो जाते हैं। इस बदलती दुनिया में स्थिर कुछ नहीं है। स्वयं अपना दुःख छिपाना चाहते हैं। ऊपर की चमक दिखाकर दुनिया को दिखाना चाहते हैं कि हम तुमसे सुखी हैं। 'उपर की अच्छी बनी भीतर की राम जाने' वृद्धावस्था, मृत्यु, पराजय और संताप मिला ? जंबू ! भगवान महावीर देव

कहते हैं कि - यह घर तुम्हारा वास्तविक आश्रय नहीं है। तुमको यह घर तुम्हारा सब कुछ लेकर तुम्हें विदा कर देगा। ऐसा लगता है जैसे घर कह रहा हो 'सब कुछ तुम्हारा है लेकिन सावधान ! किसी वस्तु को हाथ लगाना नहीं।'

राजकुमार सुनते जा रहे हैं और जीवन पूरी तरह परिवर्तित हो गया। विचार करते हैं - वर्धमान भी मेरे जैसे ही राजकुमार क्या नहीं थे ? अमूल्य जीवन के अमूल्य पल ऐसे ही बीते जा रहे हैं।

घर में एक तरफ ऐसा स्थान, कमरा रखो जहां आसन बिछाकर आराम से बैठो और धर्म क्रिया, प्रभु स्मरण, स्वाध्याय आदि कर सको। जीव को इस घर में भटकने नहीं देना। घर को घर ही रहने देना 'तुमको उसमें रहना पड़े ठीक है किन्तु उसको अपने में मत बसा लेना'

तुमको यह सब समझ में नहीं आया है इसलिए घर में बैठे हो। तुम्हें घर में से कुछ मिलने का इन्तजार है। तुमको जो चाहिए, दुनिया के पास वह वस्तु कुछ भी देने के लिए नहीं है। या तो माल की कीमत करो या माल देने वाले की। राजकुमार अकेला बैठा - बैठा गंभीरता से विचार कर रहा है-अंत में मिला या नहीं, सब कुछ बराबर है। घर तो निश्चित ही छोड़ना है।

प्रबुद्ध चेतना का मालिक आने वाले समय को नहीं देखता क्योंकि आने वाला समय तो है कुछ होने वाला भी है - जो तुमने सोचा ही नहीं। गजब की बात तो यह है कि तुम बिना लुटाए बरबाद हो जाओगे। राजकुमार को तो अब बिलकुल चैन नहीं। दुविधा में पड़ गया अब क्या करना ? विचार करते-करते गहराई में चले गए। कुछ पता नहीं चला कि सूर्य अस्त हो गया - अंधेरा हो गया। दास-दासी यह सोचकर कि राजकुमार के चिंतन में कोई बाधा न हो दीपक भी लगाया।

वैसे तो अंधेरा उपयुक्त होता है। अंधेरे में शांति और शीतलता होती है। स्वयं में (आत्म मंदिर में) उतर जाने के लिए घर, जंगल, रहवासी, इलाका या शमशान सभी समान हैं। मनुष्य भय प्राप्त करता है, डरता हो उसके लिए घर की आवश्यकता होती है। ऐसा अंधेरा चोर के लिए उपयुक्त होता है। चोर ने राजकुमार के महल में प्रवेश किया। राजकुमार को देखकर सहम गया। राजकुमार ने कहा - डरो मत ! मैं दीपक लगाता हूँ।

उन्होंने चोर का हाथ पकड़ कर चौंका दिया। राजकुमार कहते हैं यहाँ बहुत भरा है, किन्तु काम का कुछ नहीं है। मुझे तो कुछ भी नहीं मिला, तुमको कभी कुछ मिल जाए। यह कहकर युवराज दीपक लगाने लगा, वहां चोर हाथ छुड़ा कर भाग गया। दूर बहुत दूर निकल गया। उसको लगा कि 'मैंने मालिक को ऐसे शब्द कहते कभी नहीं सुना कि ''मुझे तो कुछ न मिला, कभी तुमको मिल जाय।'' चोर को कोई अदृश्य शक्ति खींचकर वापिस ले आई जहां से गया था वहीं राजमहल में आकर खड़ा हो गया।

जीवन में शब्द बहुत पीछा करते हैं। शब्दों में जान हो और सुनने वाले में भान (ज्ञान, समझ) हो तो पूरी दुनिया को हिला कर रख दे। तुम्हें कहाँ से कहाँ पहुँचा दे। शब्द तो ब्रह्म है। शब्द जो अनुभूति को प्राप्त करे तो सार्थक हो जाते हैं, अन्यथा शब्दों का शतरंज बुद्धि को बहलाया करते हैं। जहां आत्मा के अस्तित्व की अनुभूति शब्दों में नहीं वहाँ सिर्फ शब्दों की चतुराई दिखाई देती है। उसमें श्रद्धा, धैर्य और लगन होना चाहिए। 'श्रद्धांध' बनना पड़ता है।

घर तो घर है परन्तु धूल में एकदम बैठ जाने में जो सहज आनंद की अनुभूति करते हैं वह देवराज इन्द्र को भी नसीब नहीं। वर्षा के बरसते पानी में भीगना आना चाहिए। प्रकृति की गोद में बैठना यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं। इसलिए अणगार को यह सौभाग्य सहज प्राप्त होता है।

चोर को देखकर युवराज ने कहा 'मुझे विश्वास था कि तुम आओगे। वस्तुतः मुझे तुम्हें पकड़ना नहीं था। आओ ! दीपक लगाता हूँ, तुम देख लो।'

चोर का उत्तर - 'नहीं महाराजकुमार ! बस करो ! दीपक हो गया, प्रकाश मिल गया, मुझे सब कुछ दिखाई दे गया। आपने ऐसी 'शमा' जलाई है कि यह रोशनी कभी बुझेगी नहीं, न भूली जाएगी। मेरा तो रोम रोम खुल गया है।

युवराज ने कहा - 'आज मैं प्रभु महावीर का उपदेश सुनने गया था। उन्होंने प्रकाश कर दिया।'' उन्होंने कहा - 'तुम्हें तुम्हारे घर में कुछ मिलने वाला नहीं है इसलिए समय रहते जागृत हो जाओ। भयभीत जीव ही घर में दुबके रहते हैं। बाहर निकलो, स्वयं के लिए घर को पहचानो।

चोर ने कहा - 'युवराज ! मुझे भी भगवान के पास ले चलो तो तुम्हारा बहुत उपकार होगा। तुम बहुत उत्तम हो, प्रभु तो पुरुषोत्तम है, सर्वश्रेष्ठ हैं। यह दिव्य विभूति यदि खो दी तो पुनः सहज में नहीं मिलने वाली। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपका बहुत उपकार है।

युवराज ने कहा - मैं तुझे यहाँ लाया हूँ, तू मुझे क्यों छोड़ कर जाएगा ? मैं भी तेरे साथ ही तो आया हूँ। दोनो नाचते - कूदते प्रभु के चरणों में समर्पित हो गए। दीक्षा लेकर अणगार बन गए। छोटा-सा घर छोड़कर पूरी दुनिया के स्वामी बन गए। साधु घर बनाते नहीं और बनवाते नहीं ... यतो सिंह के जैसे निर्भय।

नागार्जुन और पादलिप्तसूरि की कथा

भगवान महावीर की अंतिम देशना से साभार

गुरु या महाराज साहेब से कुछ भी प्रश्न करना है तो अत्यन्त विनम्रता के साथ करना चाहिए। उनके कहे शब्द अंतर के हृद द्वार को खोल कर सुने ताकि आत्मीय-कर्म लोहा संपूर्ण स्वर्ण बन जाए। भक्त और भगवान के बीच कोई अंतर (बाधा) न रहे।

स्नेह, प्रीति, श्रद्धा प्रकट होने से सुपात्र = योग्य को सब कुछ देने का मन होता है और देने के बाद अति आनंद प्राप्त होता है और पुनः पुनः दान देने का उल्लास मन में प्रकट होता रहता है। ऐसा करने से अपूर्व शक्ति प्राप्त होती है। तीर्थंकर अरिहंत के 12 गुण याद करके प्रभु को नित्य 12 खमासमणा देने से तुम्हारा सौभाग्य वृद्धि को प्राप्त होगा। हाथ-पाँव-शरीर अत्यन्त स्वस्थ और सुंदर मिलेंगे। बाहुबलिजी को इसी प्रकार से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। भाव उत्तम रखना तुमको बाहुबलीजी का बल प्राप्त होगा।

लैला को देखने के लिए मजनू की आखें चाहिए। बादशाह को लैला में सामान्य लड़की दिखाई दी और मजनू को पूरी दुनिया, अप्सरा दिखाई दी। दृष्टि की देन है। 'तुम अच्छे होओगे तो पूरा संघ अच्छा होगा। धर्म के नाम पर मांगना, उपाय, अशांति, खड़ी नहीं करना, लड़ाई नहीं कराना, उदाहरण देकर तुम्हारी भावना बताओ। देते, छोड़ते, समन्वयता सीखो।

पाप की प्रवृत्ति का 'संस्कार' जीव के साथ ही रहता है, शरीर छूट जाता है पर संस्कार नहीं छूटते। गुरु शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर कहते हैं 'नित्थारग पारगाहोइ' अर्थात् तुम दु:ख के सागर से तैर कर जल्दी किनारा प्राप्त करो।

शांति समाधि अनमोल है, शांति के लिए जल्दी सब कुछ छोड़ने को तैयार होना चाहिए। जीवन की श्रेष्ठता शांति में है। व्यर्थ की दौड़ अशांति उत्पन्न करती है। स्वास्थ्य में अंतराय उत्पन्न करेगा।

जीवन में परोपकार करने योग्य कार्य है। जीवन व्यवस्था में आनंद देनेवाला गुण है। अन्य के दोषों को देखकर उन्हें याद करते रहने से जीवन व्यवस्था में दरार पड़ जाती है। अविनीत (अविवेकी अविनयी) जीवन को नि:शक्त (ढीठ) बैल की उपमा दी गई है। इसी बैल को खूंटे पर बांध दो यदि उसे वहाँ नहीं रूकना है तो उसमें खूंटा उखाड़कर भागने की शक्ति रहती है किन्तु गाड़ी उसको आराम से खींचना है तो वह ढीठ होकर बैठ जाएगा, आदत से दुष्ट हो जाएगा। काम करने में अपंग होकर बैठ जाएगा। गर्ग ऋषि के शिष्य सभी ढीठ बैल जैसे थे। तन से अशक्त नहीं किन्तु मन से अशक्त थे। कामचोर थे। महावीर प्रभु की बातों को समझो धर्म क्रिया में पीछे न रहो। धर्म क्रिया ही मोक्ष देने वाली है अत: धर्म साधना है सर्वस्व है।

नागार्जुन और पादलिप्तसूरि :- नागार्जुन ने स्वर्ण सिध्दि का रस सिद्ध किया। उसने तुंबड़ी में उसे भरकर अपने गुरु पादलिसूरि प्रथम भेंट के रूप में भेजी। गुरु ने उसे महत्व नहीं दिया; तुंबड़ा लुढ़क गया और रस ढुल गया। नागार्जुन तो यह देखकर रोने लगा। आपने इसे लापरवाही के कारण दुर्लभता से प्राप्त ऐसा सुवर्ण रस ढोल दिया। इससे कितना ही मण सोना बन जाता। सिद्ध पुरुष को मैं क्या कहूँगा ? नागार्जुन ने पूछा :-

गुरु ने कहा परेशान मत हो,पादलिप्तसूरि ने अपना मूत्र (पेशाब) तुंबड़ी में भर कर दे दिया। तेरा रस तूझे दे दिया। वह लेकर नागार्जुन रवाना हो गया। गुरु की उपेक्षा कैसे की जा सकती

है? उसने गुस्से से तुंबड़ी को आगे जाकर फैंक दी। जिस शिला पर जाकर गिरी वह शिला सोने की बन गई। नागार्जुन को समझ में आ गई कि अंतर की सिद्धि के सम्मुख संसार की कोई सिद्धि कुछ नहीं लगती। मेरा रस सिर्फ तांबे को सोना बना सकता है जबकि गुरु महात्मा का मूत्र तो पत्थर को सोना बना रहा है। यह विचार करते हुए वापिस लौटा और गुरु के चरणों में गिर गया।

श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और तप से सिद्धि एवं समृद्धि प्राप्त कर, यदि मन की दृढ़ता हो तो सुई की नोक जैसे छिद्र में से बाहर निकल सकते हो। तुम अपने शरीर को लाख योजन जितना लंबा कर सकते हो। पानी पर चल सकते हो, धरती पर डुबकी लगा सकते हो, यहाँ खड़े-खड़े मेरु पर्वत का स्पर्श कर सकते हो और तो और हवा में उड़कर शाश्वत जिन मंदिर के दर्शन भी कर सकते हो।

गुण वैभव की और भक्ति की महिमा उपयोगमय है। समय पर दिया गया साथ, सहयोग मनुष्य कभी भूल नहीं सकता (यदि कृतज्ञ है तो) परहित चिंता महान गुण है। गर्ग आचार्य के शिष्य सुखशीलता में खो गए। मनुष्य व स्वयं का इच्छित कार्य एकदम नहीं छोड़ सकता।

भगवान क्या कहते हैं ? :- प्रभु कहते हैं कि तुम बहुत दु:खी हो, मैं तुम्हारे दु:ख को जानता हूँ। उसको दूर करने का उपाय भी जानता हूँ। कारण कि ''मैं तुम्हारे बीच में रहता हूँ, ये सारे दु:ख मैंने सहे हैं; मैंने भी बहुत मां-बाप किए हैं; तुम्हारी तकलीफ की मुझे मालूम है।

दु:ख से छूटना इतना कठिन नहीं है पर सुख से छूटना मुश्किल है। तुम्हारे पास छोड़ने के लिए कुछ नहीं है। इतना बड़ा सौ धर्मेन्द्र तुम्हारे यहां जन्म लेने के लिए 32 लाख विमान की संपदा छोड़ने को तैयार है। बहुत अमूल्य अवतार है 'मानव' हाथी को कभी उड़ने का या चील को कभी तैरने का विचार नहीं आया, किन्तु मनुष्य को आकाश में उड़ने का और पाताल में उतरने विचार जरूर आया तथा उड़ा भी सही, अंदर (पाताल) उतरा भी सही। प्रश्न बने तो जिज्ञासु बना। जीव मुमुक्षु (वैरागी) बना तो मोक्ष भी प्राप्त किया।

जंबू स्वामी ने पूछा कि - उत्तराध्ययन का 30वां अध्ययन 'तपोगति मार्ग' का क्या अर्थ कहा है ? उन्होंने कहा कि - अनाश्रवी होना - अर्थात् जीव-अजीव-पुण्य-पाप और पांचवा आश्रव तत्व है, तुम आश्रव रहित होना ।

प्राणी की हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन (अब्रह्म) और परिग्रह उसी प्रकार रात्रि भोजन त्यागी, पांच समिति, 3 गुप्ति-युक्त, कषाय रहित, जितेन्द्रिय, गौरव रहित, 3 आसक्तियाँ (ऋद्धि गौरव, शाता गौरव, रस गौरव) और 3 निशल्य (माया शल्य, नियाणा शल्य, मिथ्यात्व शल्य) युक्त आत्मा निराश्रवी होती है ।

लाखों वर्षों तक उपार्जित किए हुए दुष्ट कर्मों को दूर करने के पीछे लाख वर्ष की आवश्यकता नहीं होगी । लकड़ी गट्ठर जैसे दुष्ट कर्म हैं, उनको तपरुप चिनगारी करोड़ों भवों के पापों को क्षण में विनाश कर देती है । प्रभु ने कैसा तप किया ? तुम्हें भी करना है । तप के बिना मुक्ति नहीं । मर-मर के, गिर-गिर कर भी तप करने की आदत डालना ।

दर्पण जैसे होना । दर्पण कुछ भी पकड़ता नहीं । जो उसके सामने आता है वो उसके आकार जैसा हो जाता है । वस्तु खिसते ही दर्पण वापिस खाली, आत्मा जैसा ।

आचरण : आंतरिक संपदा

आचरण ही तुम्हारे जीवन की आंतरिक संपदा है ।

चरण विधि :- आचरण : आत्मा को आचरण का ही शरण है, यह बात ही आत्मा को परम सुख और शांति देने वाली है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के 31वें अध्ययन से अचल, अखंड और अमल रुप प्रभुता के स्वामी महावीर प्रभु 1-2-3-4 आदि वस्तुएँ जो आत्मा के लिए उपयोगी है वह आंतरिक संपत्ति (Internal Prosperity) समझाते हैं :-

1. आत्मा - अमर, अविनाशी
2. बंधन - राग-द्वेष का बंधन, प्रेम और बिछोह आदि

3. <u>दंड</u> - 3 गौरव (ऋद्धि, शाता, रस) 3 शल्य (मिथ्यात्व, माया, नियाणा), और 3 गुप्ति (मन, वचन, काया)

4. <u>संज्ञा</u> - संज्ञाएं : आहार, निद्रा, भय, मैथुन, । कषाय : क्रोध, मान, माया, लोभ, ध्यान = आर्त, रौद्र, धर्म, शुक्ल । विकथा - स्त्रीकथा, देशकथा, भक्तकथा, राजकथा ।

5. <u>क्रियाएँ</u> - कायिक, अधिकरणीक, प्रदोष, परितापनिक, प्राणातिपातिक ।

<u>संयम</u> - 5 अव्रत त्याग, 5 इन्द्रिय जय, 4 कषाय जय, मन, वचन, काया से निवृत्ति ।

6. <u>लेश्या</u> - कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल ।

6. <u>कायजीव</u> - पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय, तेउकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय ।

7. <u>भय</u> - इहलोक, परलोक, राजा, पानी, अग्नि, विष, हिंसक प्राणी ।

8. <u>मद</u> - जाति, कुल, बल, रूप, ऐश्वर्य, विद्या श्रुत, लाभ, तप ।

9. <u>ब्रह्मचर्य की वाड़</u> - वसति, शयन-आसन, रागयुक्त कथा, इन्द्रिय निरोध, श्रृंगार त्याग, गरिष्ठ भोजन त्याग, तृष्णा त्याग, भोगोपभोग-स्मृति वर्जन विकार वृद्धि भोजन त्याग ।

<u>10 प्रकार का श्रमण धर्म</u> :- क्षमा, मार्दव (नम्रता), आर्जव (सरलता), अनासक्ति, तप, 17 प्रकार का संयम, शुद्धि, पवित्रता, त्याग, ब्रह्मचर्य और संज्ञाओं में आहार संज्ञा प्रथम छोड़ो, मानव को भूख का दु:ख भोगने में आता है तब मनुष्य किस परिस्थिति में क्या कर बैठता है । यह कौरवों की माता गांधारी के विषय में पढ़ने पर रोम-रोम खड़ा हो जाता है।

* जन्म लेने में किसी की इच्छा - शक्ति काम नहीं आती, परन्तु स्वयं का

ऋणानुबंध जिस स्थान का और जिस जीव के साथ होगा वहां चुकाना होगा और भवांतर में नियाणा के कारण जीव को वह योनि स्वीकार करना पड़ती है। (भगवती सूत्र भाग -3 पेज नं. 114)

* संपूर्ण जीवन में शुद्ध श्रद्धापूर्वक एक ही सामायिक करने वाला श्रावक, एक दिन का चारित्र पालने वाला मुनि, मोक्ष या देवगति प्राप्त कर सकता है तो जीवन के अंतिम श्वांस तक जैन धर्म की, पंच महाव्रत गुरुदेव की और दयापूर्वक जैन धर्म पर श्रद्धा रखने वाले के लिए क्या कहना ?

* ज्ञान में जैसे बाढ़ और चढ़ाव-उतार आता है है उसी प्रकार अज्ञान में भी चढ़ाव उतार आता है फिर भी किसी समय अज्ञान का संपूर्ण क्षय हो सकता है किन्तु तब भी ज्ञान का किसी काल में क्षय नहीं होता। इसीलिए निगोद में रहने वाली आत्मा भी ज्ञानयुक्त होती है। सिद्ध शिला में विराजित आत्माएँ भी ज्ञानी हैं। दोनों के ज्ञान का इतना अंतर है कि निगोद के जीवों का ज्ञान अधिक अंश तक ढंका हुआ होता है और सिद्ध जीवों का ज्ञान सर्वथा प्रकाशमान होता है। इस कारण निगोद जीव बड़े अंश में अज्ञानी होते हैं परन्तु केवलज्ञानी और सिद्ध आत्माओं में अज्ञान का अंश मात्र नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है।

सम्यक्त्व प्राप्त नारकी जीवों में ज्ञान का अंश होता है। अन्यथा इसके बिना जो अज्ञानी होते है एवं बार-बार कर्म बंधन करते हैं, भोगते हैं, संसार की वृद्धि करते हैं।

वस्तुत: जीवन जैसा कुछ भी नहीं है। हम नित्य प्रति थोड़े- थोड़े वृद्ध होते जा रहे हैं। यदि ऐसा न हो तो 100 वर्ष तक बूढ़े नहीं होते और 100 वर्ष धर्म की गहनता एवं आत्मा का गहराई से चिंतन के मूल में मृत्यु बैठी है।

* सबसे प्रिय सिर के केशों का लोचन कराने में, सबसे इच्छित का त्याग करने से तत्व बुद्धि को पोषण मिलता है। नारी स्वयं के प्रिय और परमात्मा के लिए ही मात्र श्रृंगार करें।

* क्षमा, नम्रता (मार्दव) सरलता (आर्जव), अनासक्ति, तप, संयम, शुद्धि, पवित्रता

(शौची), त्याग (अकिंचन) और ब्रह्मचर्य ये 10 प्रकार के धर्म आचरण के बिना मुक्ति नहीं है।

✻ क्षमा धारण करने से मनुष्य सिंह जैसा हो जाता है। अविनित और कायर पुरुष क्लेशकारी होते हैं। हर बात पर क्रोध करते हैं। ऐसे लोगों से दूर ही रहना चाहिए।

✻ भगवान का कथन सदा दयामय और हितकारी होता है। कभी हमारी समझ में फर्क हो जाता है, पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते, परन्तु यदि श्रद्धा से स्वीकार कर लिया जाए तो संसार सागर से किनारा मिल जाता है, इसीलिए कहते हैं धर्म में श्रद्धालु जीत जाता है।

✻ काया को प्रारंभ से ही ज्ञान-ध्यान-क्रिया में जोड़ दो। समयानुरूप सभी कर लो उम्र होने के बाद कुछ नहीं होना है। शरीर भी तप-त्याग-क्रिया में शिथिल हो जाता है। प्रभु को नित्य कम से कम 12 खमासणा भावोल्लास के साथ देना चाहिए। कुछ तप अवश्य करना, स्वाध्याय-स्मरण करना, खड़े-खड़े क्रिया करना। इससे भाव शुभ रहते हैं। सामायिक तो कभी भी नहीं छोड़ना। आत्मा को ज्ञान दशा में अनुरक्त रखना। ज्ञान तो भगवान है। ज्ञानी को उच्च भाव आते हैं और शुभ भावों के बल से आत्मा एक क्षण में करोड़ों भवों के पाप क्षय कर लेती है। ज्ञानी कभी हारता नहीं है।

अच्छी प्रकार से यह सब मन में धारण करना, दूसरे के ऊपर दयालु बनकर योग्य व्यक्ति को यह प्रक्रिया सिखाना, देना और तुम महान गुणों के धारक बनना। किसी को धर्म प्राप्ति कराने का प्रयास करना, शासन को कुछ अर्पित करोगे तो तुमको शासन बहुत देगा।

'मैं और मेरा' यह अंध दृष्टि है। यह भाव मन में न आए इसके लिए ज्ञान का अंजन लगाते रहना। यशकीर्ति के लालच में जीव लालायित होकर न करने जैसे काम कर बैठता है, मनुष्य मर कर भी मनुष्य को परेशान करता है।

स्वयं को स्वयं में रखना जिससे तुमको आत्मा से मिलन होगा। तुम्हारी तुमसे ही मुलाकात होगी। सबसे अच्छी बात यह है कि मनुष्य को दूर का दिखता है, पास का नहीं।

धरती पर रहकर धरती को कभी नहीं देखा। चांद को देखा। नीचे उतरो, स्वयं को टटोलो, देखो ! ढूंढने से भगवान भी मिल जाते हैं।

एक मिनिट का क्रोध शरीर के कोमल अवयवों को आग बबूला कर देता है। उन अवयवों को पुन: व्यवस्थित होने में तीन घंटे लगते हैं। जिसके हृदय में बार-बार क्रोध जागृत होता है उसके चेहरे की चमड़ी काली पड़े बिना नहीं रहती। आग से जैसे दिवालें काली पड़ जाती हैं ऐसे मनुष्य पर भी क्रोध का असर होता है। होठ काले और आंखे लाल ही दिखाई देती हैं।

मनुष्य का कैसा है ? अपने स्वयं का हित भी दिखाई नहीं देता। यह कैसा ? इसीलिए भगवान ने दयालु बनना, सत्य बोलना, संतों का समागम करना, ज्ञान पढ़ना, स्वाध्याय करना, ज्ञानियों की सेवा करना और उनका सुनने का कहा है।

ठंड में सूर्य कभी बादलों में ढंक जाता है, बादलों से घिर जाता है। प्रकाश दिखता है, यह तो अहसास होता है कि सूर्य है किन्तु कहाँ है यह समझ में नहीं आता। उसी प्रकार मनुष्य में जीव तो अच्छी तरह धड़क रहा है, संपूर्ण शरीर अच्छा काम कर रहा है। सिर्फ सिर ही नहीं चलता।

ज्ञानियों का कहा हुआ सुनने से कर्म आवनरण क्षीण होते हैं, विलीन भी हो सकते हैं। ज्ञान हो जाता है, समझ में आने लगता है। रास्ता दिखता है तो मनुष्य घर पहुंच जाता है और सुखी हो जाता है। मोक्ष जाता है और आनंद प्राप्त होता है।

क्षमा

* कर्म से विजय क्षमा और समता के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।
* प्रेम और करुणा का शुद्ध स्वरूप ही क्षमा है।
* क्षमा वीरस्य भूषणम्।
* प्रेम, करुणा और मित्रता के भाव हो तो ही किसी को क्षमा किया जा सकता है।
* आत्मा क्षमाशील कैसे होती है ? गहरी समझ, असीम प्रेम और वीरता के गुणों को धारण करने वाली आत्मा ही क्षमाशील हो सकती है।

* आत्मा का वजन क्षमा से हलका होता है। पूर्णतः नष्ट होता है।
* मनुष्य की शक्ति और क्षमता का अंदाज उसकी क्षमा से पता चलता है।
* हमारे पास क्षमा तो होती है किन्तु जब आवश्यकता पड़ती है तब ही नहीं होती।

क्षमा के उदाहरण

* पार्श्व प्रभु की क्षमा - 10-10 भवों तक कमठ के वैर के प्रति क्षमा के साथ प्रभु जीत गए।
* गुणसेन राजा और अग्निशर्मा तापस 9 भव तक साथ रहे। क्षमा के बल पर राजा सुखी हो गए और तापस दुःखी ही रहा।
* क्षमा के सागर भगवान महावीर - 'नमामि वीरं गिरिसार धीरं'
* प्राणांत कष्ट आने पर भी वीर की क्षमा अपूर्व थी।
* ग्वाला ने कान में कीले डाल कर सताया, परन्तु महावीर वीर ही रहे।
* शिष्य गोशाले का 'मेरी बिल्ली मुझसे म्याऊँ' वाला अन्याय सहन किया।
* बेटी-जमाई विरुद्ध हो गए। भरी सभा में जमाली स्वयं को सबसे अधिक ज्ञानी कहता था।
* बुज्झ-बुज्झ किं न बुज्झहिं ? (बुज्झ-बुज्झ चंडकौशिक) हे चंडकौशिक ! समझ-समझ तू समझ क्यों नहीं रहा है ?
* क्षमा करने से मनुष्य सिंह जैसा हो जाता है। अविनीत और कायर पुरुष क्लेशकारी होते हैं। क्षमा मनुष्य को परमात्मा बनाती है।
* पार्श्वनाथ की क्षमा :- 10-10 भव तक कमठ उनको सताता रहा, मार डालता था, प्रथम भव में कमठ ने मरुभूति (पार्श्व प्रभु का जीव) का सिर पत्थर की शिला से कुचल डाला। मरुभूति का प्राणांत हो गया।

✻

✻ क्षमावीर प्रभु महावीर को देवी उपसर्ग हुए, ग्वाला ने कीले डाले, गौशाला ने अवर्णवाद किया । जमाई जामाली ने स्वयं को अधिक ज्ञानी बताते हुए मिथ्या मत का प्रचार किया। सब कुछ प्रभु ने मौन धारण कर सहा । चंडकौशिक को भी भगवान ने क्षमा का बोध देते हुए समझाया – सर्प को बोध हो गया और क्षमा धारण कर ली ।

धम्मो दीवो पईट्ठा य गई सरमुत्तम :- धर्म ही हमें प्रतिष्ठा (आधार) की गति को उत्तम शरण देता है । धर्म अर्थात् स्वयं का स्वभाव । 'वत्थंसहावो धम्मो' वस्तु का स्वभाव ही धर्म है । क्षमा, नम्रता, सरलता आदि आत्मा का स्वभाव है । अंगारा पानी में गिरते ही कोयला बन जाता है । पानी बनना, बांस मत बनना । Negative Thinking कभी नहीं करना । Positive दृष्टि का ही सोच रखना । आर्त्त ध्यान के विषय को धर्मध्यान का रूप दे देना । अंतर (हृदय) वैभव का खजाना बहुत बड़ा । इस संपत्ति को देखो, जानो, समझो। यह अनहद, असीम, अपार है । सिर्फ पहचानने की क्षमता का प्रश्न है । 10 धर्म में क्षमा धर्म प्रथम है ।

प्रभु की वाणी है - क्षमा के बिना कभी भी कल्याण नहीं हो सकता। जब तक संसार है तब तक दु:ख अवश्य है। धर्म की गहनता और आत्मा के गहन चिंतन के मूल में मृत्यु है। इस जीवन के लिए मनुष्य कितना कुछ करता है। सब कुछ करने के बाद अंत सभी यहीं छोड़कर जाना है तो फिर इतना सब-कुछ करने का क्या मतलब ? धर्म के बिना अपना कोई आधार नहीं। संसार गहन जंगल रूप है। छोटी-सी पगडंडी पर सावधानी से चलना है।

नीति और धर्म के अंतर को समझो, नीति में करने न करने की बात आती है। धर्म में होने न होने की बात आती है।

* अरिहंत की शरण में जाने से निर्भयता आती है और इसी से समता की प्राप्ति होती है।
* सोऽहं, सोऽहं, वह मैं ही हूँ, मैं ही अरिहंत स्वरुप सिद्ध स्वरुप हूँ। यही है सोऽहं का अर्थ।
* जिसका अभिमान करते हैं वह वस्तु भवांतर में नहीं मिलती।
* अंदर का खोखलापन मनुष्य ढंकता रहता है; किन्तु उसको गुणों से भरो।
* थोड़े भी न देने का कहने वाला दुर्योधन सब कुछ छोड़कर मर गया।
* ज्ञान-पंडिताई का बोझ बहुत भारी है, इसको सिर पर उठाकर मत फिरो।

9 :- ब्रह्मचर्य की गुप्ति :- गरिष्ठ भोजन, तृष्णा, त्याग, भोगोपभोग स्मृति वर्जन, विकारयुक्त भोजन न करें। वसति, शयन-आसन, राग-कथा, इन्द्रिय निरोध, श्रृंगार त्याग।

10 धर्म

10 प्रकार का धर्म - क्षमा, मार्दव, आर्जव, अनासक्ति, तप, संयम, शुद्धि, पवित्रता, त्याग, ब्रह्मचर्य।

<u>11. श्रावक की प्रतिमाएं, 12 साधु की प्रतिमाएँ .</u>

1. प्रेम एवं करुणा का शुद्ध स्वरूप वह क्षमा :- प्रेम, मित्रता और करुणा के बिना क्षमा कभी किसी को नहीं दी सकती। आत्मा को क्षमाशील बनाने के लिए बहुत गहरी सोच, असीम प्रेम, अतुल्य वात्सल्य, अचल श्रद्धा, अपार मैत्री भाव, अपूर्व समर्थता तथा वीरता की आवश्यकता पड़ती है।

ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।

इसी प्रकार ढाई अक्षर '**क्षमा वीरस्य भूषणम्**' का पढ़कर वीरत्वता को प्राप्त किया जा सकता है। तुम्हारी आत्म-शक्ति की पहचान क्षमा से होती है। क्षमा के द्वारा आत्मा का बोझ कम हो जाता है। क्षमाशील आत्मा को 'अजातशत्रु' (जिसका कोई शत्रु नहीं) कहा है। अपने पास क्षमा है किन्तु समय आने पर विलुप्त हो जाती है।

2. नम्रता (मार्दव) : जहाँ अभिमान है वहाँ पतन है, जहाँ नम्रता है वहाँ उत्थान है।

जीवन में कभी उद्धत, उग्र उद्दंड, तुच्छ प्रवृत्ति एवं अहंकारी नहीं होना। आंधी, तूफान में बड़े-बड़े वृक्ष, जड़मूल से उखड़ जाते हैं क्योंकि वे कभी फिर से झुक नहीं सकते। सभी से लचीला धातू सोना है, उसे जैसे मोड़ो वैसे मुड़ जाता है। बहुत सरलता से मुड़ता है, इसी से इसके कई प्रकार के आभूषण बनते हैं। मनुष्य अहं से अनजान बना हुआ है। नम्रता का गुण सहेजने जैसा है।

3. सरलता (आर्जव) :- निखालस एवं सरल जीव कोई धर्म आदि नहीं करता, फिर भी सद्गति अवश्य प्राप्त करता है। सरलता, उत्तमता की पहिचान है। जीवन में जितना श्वास का है, उतना ही विश्वास का भी है।

4. अनासक्ति :- आसक्ति से मुक्ति है।

5. तप :- स्वाद, इच्छा, अभिलाषा, त्याग, तप, निर्जरा, क्रोड़ भव के कर्मनाश अंतराय टूटती है, सिद्धि मिले, तिथि का तप फलता है।

6. धर्म संयम :- स्वयं पर नियंत्रण, संयम की लगाम।

7. सत्य धर्म :- सत्य पर संसार खड़ा है, 'सत छोड़े पत जाय' सब कुछ चला जाता है।

8. शौच पवित्रता :- मन को मैला नहीं बनाना, अच्छी पुस्तकें पढ़ो, संग्रह करो, दूसरों को पढ़ने की प्रेरणा दो। मन को शुद्ध और उज्ज्वल भावयुक्त रखो। प्रभु की वाणी ही मन का मैल धोने का पानी (जल) है। अमिरात स्वयं में है। भाग्य में पुण्य का एकाध बिन्दु अवश्य होगा।

9. अकिंचन :- किंचन = सब कुछ है। अकिंचन = कुछ भी नहीं। अपरिग्रह ! जितना परिग्रह ज्यादा उतना भय ज्यादा। तुम्हारे पास छोड़ने के लिए कुछ नहीं है। सौधर्मेन्द्र मनुष्य भव प्राप्त करने के लिए 23 लाख विमान आये। देव-ऋद्धि छोड़ने के लिए तैयार है।

10. ब्रह्मचर्य :- 9 प्रकार की वाड़ अर्थात् जीवन की प्रतिज्ञा।

10 प्रकार का धर्म पालन करने वाला संसार चक्र से छूट जाता है।

श्रावक की 11 पडिमा = प्रतिमा :- आनन्द श्रावक, कामदेव, तेतलीपुत्र, कुंडकौलिक, महाशतक आदि उत्तम श्रावक थे। भगवान ने साधु समुदाय के सामने उनकी प्रशंसा की।

महाशतक श्रावक :- 10 उत्तम श्रावकों में एक थे। उत्तम व्रतधारी, प्रतिमाधारी, गीतार्थ और प्रभावक थे। रेवती नामक सुंदर, सुशील कन्या के साथ पाणिग्रहण (शादी) हुआ। फिर भी इतना त्याग करके जीवन धन्य बनाया। भगवान ने प्रशंसा की।

मनुष्य के पास कितनी ही संपत्ति हो, ऋद्धि-समृद्धि हो, असीम सत्ता, मन चाहा करने में स्वतंत्र, भोग की विपुल सामग्री, कीर्ति के कोट, बल-बुद्धि, पराक्रम, चतुराई का अकूत खजाना, फिर भी अंदर का खालीपन कभी नहीं भराता।

वस्तुतः मनुष्य अंदर से खाली होता है तभी बाहर लेने की बहुत माथापच्ची करता है और सोचता है मैं ही सब कुछ हूँ, मैं कहूँ वैसा ही होना चाहिए। मैं प्रमुख हूँ, वैभवशाली हूँ, सत्ताधारी हूँ किन्तु अंदर से खोखला है। उसको लगता है कि सभी ने मेरी सत्ता का लोहा मान लिया है किन्तु जब वाद-विवाद वाली स्थिति उत्पन्न होती है, उसकी चलती नहीं है तब वो अंदर ही अंदर दुःखी होता है और घुटन महसूस करता है।

जिसने स्वयं का खेत साफ कर रक्खा है, उसके वहाँ वर्षा सफल होगी। वर्षा जैसा कोई दाता नहीं है। पल भर में सब कुछ छलका देता है। प्रभु को पहिचान ने लग जाएं तो फिर परमात्मा दूर नहीं है। प्रभु तो हमारे पास ही है; हम उनसे दूर हो गए हैं। उस अविनाशी का नाद सुनाई देता है, दिखाई देना भी क्षण में संभव है। ज्ञान का परम प्रकाश लाख वर्ष का अंधरा दूर कर देता है।

जीवन में तुम कुछ समय अपने लिए निकालना, शांति से कुछ समय अध्ययन करना, पढ़ना, स्वाध्याय करना। अहिंसा परम धर्म है। वास्तविक रूप में अहिंसा का स्वरूप समझना है तो जीव-अजीव के प्रकार उसकी उत्पत्ति स्थिति, स्थान, गति-अगति, विकास-अविकास, सब कुछ जानने को मिलेगा। प्रभु केवल ज्ञान प्राप्ति के बाद बहुत सुंदर तरीके से समझाया, ''हे गुणावंत प्राणियों ! जो मुझे मिला है वह तुम्हें भी प्राप्त हो और तुम्हारी सारी विपत्ति दूर हो, तुम्हें शाश्वत सुख प्राप्त हो और मुक्ति मिले।'

जिनमें यह ज्ञान प्रकट हुआ, जिनमें यह पात्रता थी, उन्होंने श्रद्धा, वाणी और धीरता के साथ समझ लिया। तत्वों का अध्ययन किया, मनन किया, चिंतन किया तो उन्हें आनंद की अनुभूति हुई। संसार का स्वरूप समझ में आया - कैसा क्षणिक समय ? कितना शीघ्र बदल जाता है। हाथ में था और पता नहीं कहाँ चला गया ? समय को ढूंढते रहो। एक उक्ति है 'खाक में छोरो, गांव में ढिंढोरो' वाली कहावत चरितार्थ होती है।

जीवन में तुम भी थोड़ा ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना। जो तुमको भवोभव समझदार और सुखी बनाएगा। 14 गति, 24 दंडक, 84 लाख जीवायोनि में जीव जन्म लेता है। सुख-दु:ख के कई प्रकार हैं। जिसका अनुभव भी कई प्रकार से होता है। कितना ही बड़ा मनुष्य हो पर वह भी थक जाता है, मृत्यु प्राप्त हो जाता है, भुला जाता है। इसलिए प्रभु ज्ञान के स्वरूप का बोध कराते हैं। धार्मिक बनाते हैं। प्रभु के साथ हमारा संबंध बन जाता है। पुराना संबंध पुराना ही होता है। धर्म और प्रभु अलग नहीं होते।

जीव - अजीव का स्वरूप जान लो

जीव के जैसा ही अजीव भी असीम है, अद्भुत है, जीव पर अजीव का जादू चलता है। अजीव के प्रभाव से जीव भगवान् को सहजता से भूल जाता है। जो उसको सुंदर और सुहाना लगता है, मूल्यवान और दुर्लभ लगता है, वह सब जीवों का शरीर मात्र है। वह जीवों के शरीर से निकाली हुई और बनाई हुई वस्तु है। आंख से दिखती हुई दुनिया, जीवों के जीवित या छोड़े हुए (अपशिष्ट) शरीर है। उसके अलावा कुछ नहीं। अजीव में जीव के दर्शन करना है।

जिसमें ज्ञान नहीं है, जीव-अजीव से भरा संसार जैसा है वैसा नहीं जाना है वह प्राणी, दुनिया की हठधर्मिता, ठगी और मायाजाल का शिकार होता है। उपद्रव और प्रपंच में अपना जीवन पूर्ण कर देता है। ऐसा श्रावक का कुल, प्रभु वीतराग का शासन, दयामय धर्म, निर्ग्रंथ त्यागी, गुरुभगवंतों का आश्रय, करोड़ों भव तक प्राप्त नहीं होता। हाथ से बाजी हार गए फिर पछताने से कुछ नहीं होगा। गतं न शोचामि। गये समय को रोना नहीं, उठो ! और काम में लग जाओ ! याद रखना, अपनी वार्ता पालने से लेकर श्मशान तक की है। जीव को पहिचानो अजीव और 9/7 तत्वों का ज्ञान प्राप्त करो। जीवन अल्प है। महावीर के समान प्रेम वात्सल्य का झरना बहाओ, जीवन धन्य हो जाएगा। क्षमाशील, करुणामय और 'सवि जीव करूँ शासन रसी' की मैत्री भावना मन में जागृत कीजिए।

परमात्मा का यह प्रेम और करुणा भाव हमारे पास है इसको अन्य को दीजिए। जिससे प्रभु की करुणा की वर्षा पुन: होने लगे। यह प्रसुप्त जगत जागृत हो जाएगा, गगन में अहिंसा का नाद गूंज उठेगा। पाक्षिक प्रतिक्रमण के अतिचार के वर्णन पर विचार करना। अपना दु:ख रोकर नहीं प्रेम और सहजता से सहन करो। दु:ख टल जाएगा। यह एक ही उपाय है दु:ख को दूर करने का।

अंत में इतनी बात समझ लीजिए

* कली खिलेगी, फूल मुरझाएँगे।
* सच को छिपाने का प्रयास करोगे तो एक नई भूल करने की तैयारी हो जाएगी।
* श्रीकृष्ण को राज्य, रानियाँ, वैभव और विलास बहुत अच्छा लगता था किन्तु हृदय में धर्म, मुक्ति और परम पद का वास था।
* सभी वस्तु प्रारब्ध (भाग्य) से ही मिलती हैं किन्तु धर्म तो पुरुषार्थ से ही मिलता है।
* धर्म के बदले कोई भी वस्तु मांगना नियाणा (निदान) कहलाता है। यह शक्ति और संपत्ति जैसे श्राप युक्त हो - ऐसे शांति नहीं देती।
* जो मिला है उसमें भी दु:ख है और उसको संभालकर रखने की चिंता में ही एक दिन चिता पर सो जाना पड़ेगा जो कभी उठ ही नहीं पाओगे।
* लग्न मनुष्य को नाथने की (बंधन) संसार की गहन व्यवस्था है।
* मनुष्य तो भगवान जैसा ही है, परन्तु स्वयं की आदत (स्वभाव) से गुलाम हो गया है।
* आज मनुष्य को कुछ नहीं चाहिए, कल इसी मनुष्य को सारी दुनिया कम पड़ती है।
* मोक्ष यदि आज कोई दे रहा हो तो हम कहेंगे - अभी नहीं। इतनी क्या जल्दी है ? मनुष्य इच्छा-विकार में जीवित हैं। प्रभु से स्वार्थ की मांग करके हम मलिन हो गए हैं।
* मनुष्य तुच्छ वस्तु के लिए लड़ता है, मोक्ष के लिए नहीं।
* अंतर से निकले हुए शब्दों में आवाज होती है, उसमें सजीवता और मन की बुलंदी का राज होता है।
* मनुष्य को कितना कुछ मिलती है ? परन्तु कोई ही व्यक्ति मिला हुआ सफल करना जानता है।
* जो जैसा और जितना हमको मिलना चाहिए वैसा और उतना ही हमें मिलता है। उसमें किसी का दोष निकालना गलत है।
* पुण्य का फल खुशी-खुशी लेने वाला रोते-रोते भी पुण्य करने को तैयार नहीं होता और पाप का फल स्वप्न में भी अच्छा नहीं लगता और पाप छोड़ने को तैयार नहीं।

* जो तुमको मिला है उस पर तुमको गर्व है, परन्तु उसका क्या विश्वास ? मांग कर लिया गया माल से कभी अमीर नहीं बना जहाता।
* स्व और पर की सुरक्षा की जो जिम्मेदारी लेता है वही नाथ है।
* कितना जानते हो; यह बात महत्व की नहीं है किन्तु तुम्हारे भाव कैसे हैं यह बात महत्व की है। तुम अपने हृदय को सरल और बुद्धि को निर्मल रखना।
* अपना परलोक ज्ञान पर नहीं भाव पर निर्भर है।
* धर्म का ढोंग करना सरल है किन्तु धर्मी बनना कठिन है। अच्छा दिखने-दिखाने के लिए बहुत करते हैं; परन्तु अच्छा होने के लिए हमारे पास क्या कार्यक्रम है ? है कोई कार्यक्रम ?
* सूरज कभी का उदित हो गया है; अपनी दुनिया को इसने हजारों किरणों से प्रकाशित कर दिया है, सिर्फ हमें द्वार खोलने की देर है। हृदय-द्वार खुलते ही अंधेरा चला जाएगा। प्रकाश से दुर्गन्ध, जीव के रोग कीटाणु भी चले जाएंगे। दोष-रुपी धूल-कचरा दिखाई देने लग जाएगी। तुम उनको दूर करने का उपाय सोचना। कैसी गजब की बात है।
* शांत, पवित्र, निर्मल, अंदर से खाली हो कर सरल स्वभाव से ज्ञानी की वाणी सुन लेना चाहिए , जिससे निश्चित खुशी से भर जाओगे।
* उत्तम - बड़े :- बड़े भाग्य वाले देकर खुश होते हैं।

  मध्यम :- मध्यम लोग बचाकर खुश होते हैं।

  अधम :- अधम मनुष्य मुफ्त का लेकर प्रसन्न होते हैं।

  अधमाधम :- अधम से भी अधम (नीच) -दूसरे को ठगना, पीड़ा पहुँचा, इसी काम से खुश होते हैं।

प्रकृति की कोर्ट में सभी कुछ लिख रहा है। तुम सावधान रहना।

तुम समझदार बनना, प्रत्येक पल अमूल्य है। उसको व्यर्थ मत खोना। घर में सभी एक साथ बैठकर सामायिक करना, धर्मकथा करना, मुट्ठि सहियं, गट्ठि सहियं, ऐसे घंटे दो घंटे के प्रत्याख्यान करना; पूर्ण सरलता से धर्म क्रिया करना। पैसे से कुछ भी नहीं आता। पैसे से सत्यता को असत्य में बदलने की नाकाम कोशिश ना करना। पक्षी के समान यह जीवन है; एक दिन उड़ जाना है।

ध्यान

मंदिर नी अधखुली बारीमांथी
रोकतो रह्यो वरसादनी, भीनाश ने ...
भगवान ना ध्यान मां,
कांच पर नां सरकता बिन्दुओ,
दीपकनी ज्योत समीप आवी,
भल्युं सुरभीमय आकाशमां....
जीवने वलग्युं, लागणी नुं धुम्मस .... !!

वरसाद हवे ना अटके तो सारुं ...
हूँ खोवाई गयो छुं,
दीपकनी बुझाती,
ज्योतनां
अंतरमां
कशे क्योक
मोक्षनी केड़ी पर ?
ध्यानमां !!!

'श्रद्धांध'

विभाग – ५

कल्याण – यात्रा

'श्रद्धांध' कहते हैं ....
हूँ साव अधूरा,
'ने त्यां तारो संग मल्यो'
अने
'करूँ हूँ आंतर निरीक्षण'

- जीवन को सार्थक करने के लिए क्या करना चाहिए ? 136
- योग दृष्टि 138
- भाव श्रावक के 17 लक्षण 144
- भाव श्रावक की भव्यता 146
- मतिज्ञान एवं श्रुत ज्ञान 148

तारो संग मल्यो .....

(राग - यमन कल्याण, ढाल - चंदन सा बदन)

तारो संग मल्यो रूडो रंग मल्यो,
नवुं गीत मल्युं भीनो भाव मल्यो ....
तारा संगना रंगमां रंगाई जता,
पुलकित प्राणोंनो प्रसंग मल्यो ।
नवा गीतनां भीना भाव महिं,
अंगे-अंग मां नित्य उमंग मल्यो ।
उरना अनुभवनां घेनमाँ,
मनड़ानां मयूर ने मेघ मल्यो ।। ...... तारो संग .... ।।
तारी वाणी, समवसरणनी महेक,
लाखो जीवों ने तारणहार मल्यो ।
संदेश मल्यो, उपदेश मल्यो,
जिन शासन ने साचो 'श्वास' मल्यो ।।
'श्रद्धांध' नी भीनी भावना मां,
तारो 'गेबी' अनेरो साद मल्यो ।। .... तारो संग.... ।।

''श्रद्धांध''

2011

हूँ तो सावरे अधूरो .....

हूँ तो साव रे अधूरो ...
मनमां ने मनमां मानुं जाणे शूरो पूरो ।। हूं तो . ....
सोना रुपाना मढ्या में भक्तिनां भाणा,
गातो हूँ स्तवनो तारा गुणलानां गाणा,
छलकातो द्रव्यथी हूँ, भावथी अधूरो ।। ..... हूं तो भाव. ....

अनशन करूँ हूँ त्यारे, देह ने विचारूं,
भेद ज्ञान नुं भणतर हूँ पोथिमां प्रसारूं ।
चारित्रनी बारखड़ी भण्यो ने भूल्यो .... हूं तो ....

राग-द्वेषनां तांडव नुं, आक्रमण छे भारी,
ग्रंथी उघड़वा ना दे, समकित नी बारी,
'श्रद्धांध' जिन आज्ञा मां,
सूर पूर मधुरो .... हूं तो .....

*****

अंतर निरीक्षण

खबर नथी आवुं, शाने थाय छे ?
क्यारेक तन तो क्यारेक मन गाय छे ।
पूर्व जन्मनी तो वात ज क्यां करवी ?
प्रसंगना हर्षनुं समर्पण, तरबोल करी जाय छे ।।

''श्रद्धांध''

जीवन को सार्थक करने के लिए क्या करना चाहिए ?

प्र. :- इस जीवन को सार्थक करने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर :- जीवन क्या है ? पहले यह समझना आवश्यक है । जीवन का रहस्य जानने के प्रयत्न में भगवान का रहस्य आ जाता है । Highway पर Sign देखते जाइये । मार्ग सत्य है, मंजिल कितनी दूर है, रास्ता तो यही है, आदि का विश्वास और आश्वासन जो मिलता रहता है उसी को ज्ञानी समाधान कहते हैं । पूना जाना है, अभी आया नहीं; समाधान से आगे बढ़ते जाओ । आपकी यात्रा लंबी है, परन्तु कल्याण यात्रा होनी चाहिए ।

एक ही ध्येय एवं एक ही चिंता हो ।

दिशा सत्य है ना ? सच्ची दिशा है, इसकी कैसे मालूम पड़ेगी ?

पूना कितना दूर है उसकी जानकारी बोर्ड पर देखने से मालूम पड़ेगी उसी प्रकार अध्यात्म की प्रतीति जीवन में से करनी है । जीवन अनेक द्वंद्व से बना हुआ है ।

सुख-दु:ख, शीत-ग्रीष्म, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर है । दिन-रात सुख अच्छा लगता है, दु:ख अच्छा नहीं लगता, परंतु पर्वत हो और खाई न हो ऐसा कभी होता है ? जन्म हो मृत्यु न हो ऐसा कभी होता है ?

उत्सर्ग तंत्र के बिना पाचन तंत्र हो सकता है क्या ? सुख को स्वीकार करते हैं वैसे दु:ख को भी स्वीकार करना ही पड़ता है । इस द्वन्द्ध से छुटकारा पाने के लिए सुख और दु:ख से ऊपर की एक स्थिति होती है, आनंद की । आनंद का पर्याय ढूंढना बहुत कठिन है । हम अंदर से (गहराई से) आनंद की खोज में हैं; किन्तु सुख-दु:ख के चक्कर में अटक कर रह गए हैं ।

जीवन में स्वस्थता, स्थायी भाव को बढ़ाइए। यह बुद्धि से उदित होती है। साधना द्वारा स्थिर होती है। जब इस स्थित्ति में आनंद का स्पर्श होता है, तब प्रसन्नता का जन्म होता है। स्वस्थता, आनंद, प्रसन्नता के भावों को दृढ़ करने के लिए हैं। उसी का नाम साधना, स्वस्थता और पुरुषार्थ है।

जीवन की आसक्ति में सासांरिक फल की आशा छुपी होती है।

* नियाणा का क्यों मना किया ?

  आसक्ति के बिना नियाणा होता ही नहीं। आसक्ति से अधिक से अधिक पुद्गल (कर्म) चिपकते हैं। 'शरीर = मैं हूँ' यह भाव कर्मों को चिपकाता है।

* साधना सर्वज्ञता के लिए नहीं वीतरागता के लिए करना है। वीतराग बनोगे तो सर्वज्ञता स्वयं फूल माला के समान आपके कंठ से आ जाएगी।

* ब्रह्मचर्य कौन पाल सकता है ?

  जिसको प्रभु मिलते हैं तब सच्चे अर्थ में वह ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है। यह रस इतना मधुर होता है कि उसके सामने सोना, चांदी, नारी, प्रत्येक पदार्थ रसहीन लगते हैं।

* करुणता यह है कि सिर्फ प्रभु के रस के अतिरिक्त अन्य सभी रस हमारे जीवन में परिपूर्ण हैं।

* **पाप का अनुबंध तोड़ने के लिए दुष्कृत्य की निंदा है, पुण्य का अनुबंध जोड़ने के लिए सुकृत की अनुमोदना है।**

* तीन योग में समता-उसका नाम सामायिक

  जिसके मोक्ष जाने की तैयारी नहीं है, उसको निगोद में जाने की तैयारी रखना पड़ती है। अन्य कहीं भी अनंतकाल तक रहने की व्यवस्था नहीं है। त्रसकाय की उत्तर स्थिति 2000 सागरोपम है। सिद्ध नहीं हुए तो निगोद तैयार ही है।

18. पाप स्थानक के स्वाध्याय की Cassettes में से हैं

– पंडित धीरूभाई

✻ केवल ज्ञानी संसार से मुक्त रहकर साधु जीवन में ही रहते हैं । क्योंकि संसार में रहने से बंधन अवश्य बाधक बनते हैं । बंधन रहित क्षेत्र सर्वोत्तम है । गृहस्थावस्था में आरंभ समारंभ होता ही है । तीर्थंकर का बताया हुआ साधु जीवन ही अहिंसक है ।

✻ साधु जीवन न हो तो उनके प्रति पूज्य भाव होना चाहिए । भविष्य में तारे और गुणानुराग से कर्म क्षय करें । मन के परिणाम कर्म बंधन में मुख्य भूमिका निभाते हैं ।

उदाहरण – शिकारी बाण मारा .... पक्षी को नहीं लगा, फिर भी कर्मबंध । किसी बच्चे ने पत्थर फैंका, लगा नहीं किन्तु कर्मबंध तो हुए ।

✻ अपनी दृष्टि कैसी होना चाहिए ? संसार तरफ की ओघ दृष्टि, <u>आत्मा तरफ की योग दृष्टि</u> (आत्मा की खोज दृष्टि) ।

✻ केवल ज्ञानी उपसर्ग कैसे सहन करते हैं ?

✻ दु:ख आता है वह दोष रहित नहीं होता । दोष युक्त को दु:ख आए बिना नहीं रहता । इसलिए संसार में दु:ख आए तब आत्मबोध (योगदृष्टि) करना जिससे कर्मबंध कम हों ।

✻ कषाय :- क्रोध को दूर करना हो तो क्षमा चाहिए ।

चांडाल :- मान को दूर करना हो तो नम्रता चाहिए

चोकड़ी :- माया को दूर करना हो तो सरलता चाहिए ।

⊗ लोभ को दूर करने के लिए संतोष चाहिए

कल्याण चौकड़ी

✻ संसार के विचार करना – आर्त और रौद्र ध्यान ।

आत्मा के विचार करना – धर्म ध्यान और शुक्ल – ध्यान ।

योग दृष्टि :– योग के अंग–गुण इत्यादि

याकिनी महत्तरापुत्र, तर्क–सम्राट - अध्यात्म योगी सूरि पुरन्दर आचार्य महर्षि श्री हरिभद्रसूरिजी विरचित स्वोपज्ञटीका संयुक्त

श्री योगदृष्टि समुच्चय से ....

योग के विविध अर्थ - आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़े वह योग (कर्मक्षय), मन–वचन–काया की शुभाशुभ प्रवृत्ति–वह योग, जो कर्मबंध का हेतु है वह योग, आत्मा पर आवरण रुप आए हुए कर्मों के बादल छंट कर जो गुणवत्ता प्रकट हुई है और गुणों का विकास की ओर गमन करना उसको योग कहते हैं।

मोक्षेण योजनादिति योग। मोक्ष की योजना हो वह योग ! ऐसा योग जिस महात्मा को होता है वह योगी कहलाता है।

तत्व का सत्य बोध वह सम्यगज्ञान। उस ज्ञान के द्वारा तत्व में हेय–ज्ञेय–उपादेय रूप में यथार्थ निवृत्ति और प्रवृत्ति वही सम्यग्चारित्र, सम्यक्ज्ञान के प्रभाव से रुचि–प्रेम और विश्वास ही सम्यग्दर्शन है।

ज्ञान को शास्त्र बोध कहते हैं। यही बोध दृष्टि, वस्तु का स्वरूप जानने की आत्म शक्ति है, जिसे 'दृष्टि' कहते हैं। सांसारिक सुखों की ओर दृष्टि (ओघ दृष्टि) कहलाती है।

दु:ख के साधनों के प्रति द्वेष रखने वाला जीव, सुख के साधनों के प्रति राग रखने वाला जीव पत्थर जितने देवता को मानना, पूजना, धर्म करना, बाधा (आखड़ी) नियम लेना, जड़ी–बुटी से उपाय करना, पुद्‌गालिक सुख की इच्छा से धर्म करने वाला जीव होता है।

दूसरी दृष्टि - योग दृष्टि - पुद्‌गालिक सुखों से निरपेक्ष (अनिच्छा) आत्मिक गुण विकासी जीव मोक्ष के साथ जुड़ने वाला होने से उसे योग दृष्टि जीव कहा है।

ज्ञानवरणीय कर्म के क्षयोपशम और मोहनीय कर्म के क्षयोपक्षम से योग दृष्टि आती है। अत: पुरुषार्थ करना चाहिए।

दृष्टि = (बोध = ज्ञान)

ओघ दृष्टि
↓
भवाभिनंदीता
↓
परभावदशा
पुद्गल सुख की इच्छा
↓
पुद्गलिक सुख के साधन की इच्छा
सुख का राग-दुःख का द्वेष
↓
उससे क्लेश, कषाय, आवेश
↓
अनंत जन्म-मरण का चक्र

योग दृष्टि
↓
मोक्षाभिलाषी
↓
स्वभाव दशा
गुण रूप सुख की इच्छा
↓
गुण प्राप्ति-साधन की इच्छा
राग-द्वेष का अभाव
↓
उससे वीतरागता, सर्वज्ञता
↓
शैलेषी अवस्था, मोक्ष

योग की प्रथम दृष्टि से जो बोध होता है वह बहुत ही निस्तेज, दुर्बल होता है। ऐसे बोध को तृण की अग्नि (घास की आग) की उपमा दी है। तृण की अग्नि का तेज, अल्प और दुर्बल होता है। सहज ही हवा लगते ही बुझ जाती है। उसी प्रकार प्रथम दृष्टि जीव निस्तेज होता है।

	योगदृष्टि	योगांग	दोषत्याग	गुणस्थान	बोध-उपमा	विशेष
1.	मित्रा	यम	खेद	अद्वेष	तृणग्निकण	मिथ्यात्व
2.	तारा	नियम	उद्वेग	जिज्ञासा	गोमय अग्निकण	मिथ्यात्व
3.	बला	आसन	क्षेप	शुश्रुषा	काष्ट अग्निकण	मिथ्यात्व
4.	दीप्रा	प्राणायाम	उत्थान	श्रवण	दीपप्रभा	मिथ्यात्व
5.	स्थिरा	प्रत्याहार	भ्रांति	बोध	रत्नप्रभा	सम्यक्त्व
6.	कांता	धारणा	अन्यमुद	मीमांसा	तारा प्रभा	सम्यक्त्व
7.	प्रभा	ध्यान	संग	प्रतिपत्ति	सूर्य प्रभा	सम्यक्त्व
8.	परा	समाधि	आसंग	प्रवृत्ति	चंद्रप्रभा	सम्यक्त्व

योग के ८ अंग

1. <u>यम :-</u> मुख्य व्रत - जाव जीव तक का व्रत - जैसे - 5 महाव्रत, 12 अणुव्रत ।
2. <u>नियम :-</u> समय सीमा का व्रत - जो मूल व्रत की वृद्धि करे, जैसे- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, प्रभु भक्ति, ध्यान, ये नियम कहलाते हैं ।
3. <u>आसन :-</u> बैठना, स्थिरता रखना, यह द्रव्य से हैं, दो भेद हैं; द्रव्य से, भाव से, पद्मासन, वीर्यासन, पर्यंकासन आदि । काया मुद्रा की स्थिरता आत्मा को परभाव में से आत्म-भाव में स्थिर करती है - यह भावासन ।
4. <u>प्राणायाम :-</u> शरीर की प्रक्रिया जिसमें गैस आदि वायु को दूर करे वह रेचक, शरीर को निरोग रखने के लिए जो वायु ली जाती है वह पूरक और जैसे कुंभ (घड़ा) में पानी भरा जााता है वैसे शरीर में धातु स्थिर होते हैं वह कुंभक । यह शारीरिक प्राणायाम हुआ । भाव प्राणायाम - बाह्य पुद्गलों की तरफ आकर्षण युक्त भावों को दूर करने के लिए रेच लगाना, रेचक शुभ भावों को पूर्ण करने वाला होने से पूरक । आत्मा में स्थिर हो गया वह कुंभक ।

"बाह्य भाव रेचक इहांजी, पूरक अंतर भाव,
कुंभक स्थिरता गुणे करीजी, प्राणायाम स्वभाव,
मनमोहन जिनजी, मीठी ताहरी वाणी ।। (श्री योगदृष्टि की सज्झाय)

5. <u>प्रत्याहार :-</u> त्याग, 5 इन्द्रियों को विषय विकार से दूर करना, विषय विकारों का त्याग करना, यह है प्रत्याहार ।

   "विषय विकोर इन्द्रिय न जोड़े ते इहाँ प्रत्यारोहणजी।"

6. <u>धारणा :-</u> चित्त को संभालकर रखना, पकड़कर रखना । धारणा, तत्व, चिंतन अथवा आत्म हितवर्धक भावों में मन एकाग्र करके करना ।
7. <u>ध्यान :-</u> मन की एकाग्रता, तल्लीनता, तन्मयता, भाव से ओतप्रोत, तत्व-चिन्तन आदि में मन को एकाग्र रखना, वह ध्यान, हेय भाव में से चित्तवृत्ति का निरोध करके उपादेय तत्व चिंतन में लीन होकर स्थिर होना वह ध्यान ।

8. <u>समाधि :-</u> आत्मा का आत्म तत्व के रूप में प्रकट होना। पूर्णतः निर्विकल्प दशा, रागादि सर्व उपाधि युक्त भावों से मुक्त। ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकरुपता, सभी प्रकार के बहिर्भावों से मुक्ति व समाधि।

चित्त के ८ दोष

1. <u>खेद :-</u> थक जाना। धर्म की प्रवृत्ति करते-करते थक जाना। जहाँ थकने की बुद्धि वहां द्वेष, अरूचि, अप्रीति, भाव आते ही हैं।
2. <u>उद्वेग :-</u> बोर हो जाना, तिरस्कृत भाव। धर्म प्रवृत्ति में बैठे-बैठे बोर हो जाना। तिरस्कार का भाव आना, कब पूरा हो ओर जाऊँ ऐसे भाव को उद्वेग दोष कहते हैं।
3. <u>क्षेय :-</u> फेंकना, जो क्रिया कर रहे हैं उसको छोड़ मन को अन्य क्रिया (काम) में लगाना, धर्म क्रिया चल रही हो उस समय अन्य क्रिया में चित्त को जोड़ना।
4. <u>उत्थान :-</u> चित्त का उच्चाटन, क्रिया करते चित्त को उधर से हटाकर मोक्ष का साधन योग मार्ग की क्रिया का त्याग करने का भाव, लोकलाज से क्रिया न छोड़े पर मन उसमें न लगे।
5. <u>भ्रांति :-</u> भ्रमण, भटकना, भ्रम होना, योग मार्ग बताई हुई क्रिया का त्याग कर चित्त को भटकाना।
6. <u>अन्यमुद् :-</u> परमार्थ साधक योग मार्ग की क्रिया करते अन्य स्थान का हर्ष मनाना, खुशी मनाना, कार्य साधन में यह दोष अंगार वृष्टि के समान है।
7. <u>रूग :-</u> रोग, राग (प्रीति) द्वेष (अप्रीति), मोह (अज्ञान) ये तीन दोष ही महारोग हैं। भाव रोग हैं। संसार वर्धक क्रिया का राग, मोक्ष साधक क्रिया का द्वेष और योग मार्ग साधक सत्य क्रिया की नासमझी, यह सब भाव साधना में पीड़ा रुप है।
8. <u>आसंग :-</u> आसक्ति होना, परद्रव्य, परभाव के प्रति आसक्ति, मुक्त मार्ग की साधना के असंख्य उपाय में एक आसक्ति, दूसरा उपाय के प्रति उपेक्षा उत्पन्न करे, गुण स्थान का विकास रोकता है।

योग के ८ गुण

1. <u>अद्वेष :-</u> द्वेष न होना, अरुचि का अभाव, सत्सत्व के प्रति अभाव न होना, यह आत्म कल्याण की प्रथम सीढ़ी है। अभाव न हो तो ही जीव विकास के प्रति आगे बढ़ता है।
2. <u>जिज्ञासा :-</u> परमार्थ तत्व जानने की इच्छा। मन में जानने की जिज्ञासा हो तो ही तत्व की जानकारी जहाँ से मिले वहाँ जाने की और सुनने की इच्छा होती है।
3. <u>सुश्रुषा :-</u> धर्मतत्व सुनने की इच्छा, उत्कंठा।
4. <u>श्रवण :-</u> सुगुरु से धर्म तत्व का एकाग्रता से श्रवण करना।
5. <u>बोध :-</u> धर्मतत्व सुनने से ज्ञान होना, तत्व का बोध होना।
6. <u>मीमांसा :-</u> तत्वबोध का ज्ञान होने के बाद उसका सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना।
7. <u>प्रतिपत्ति :-</u> मीमांसा करते-करते सत्य बोध का स्वीकार। हेदय को हेय रुप में आदि का स्वीकार। यही सत्य है, शेष मिथ्या है, इत्यादि रुप स्वीकारना।
8. प्रवृत्ति :- उपादेय रुप में समझे हुए मार्ग की ओर प्रवृत्ति करना, उसीमें निमग्न होना। अनुभव मय हो जाना।

बोध : ज्ञान प्रकाश

1. तुम्हारी दृष्टि में बोध अग्नि के कण की उपमायुक्त है।

   तृण : घास, घास की गंजी, उसका अग्निकण, अंधेरे में नहीं के बराबर प्रकाश से क्षण भर का प्रकाश दिखाता है। उसी प्रकार सघन मिथ्यात्व से आप्लावित आत्मा पर यह दृष्टि प्रकाश फैलाती है।

   तृणग्निकण : अल्प स्थिति काल स्थायी - बड़ी कठिनाई से वस्तु स्थिति दिखाई देती है

   - अल्पवीर्य युक्त
   - असमर्थ = सूक्ष्म पदार्थ को जानने में असमर्थ
   - विकल (अधूरा) = उपयोग करने जाने वाला-न जाने वाला हो जाता है।

2. मित्रा : मित्रा दृष्टि में उपमा, गोमय, अग्निकण जैसा बोध प्राप्त कराता है ।

<u>गौमय अग्किण</u> - कंडे का अग्निकण, घास से कुछ तेज प्रकाश होता है । तारा दृष्टि और मित्रा दृष्टि जैसा ही होता है ।

3. <u>बला</u> : काष्ट के अग्निकण समान, अधिक शक्तिशाली, अधिक समय स्थायी रहने वाली । स्मृति, संस्कार, प्रयत्न विशेष ।

4. <u>दीप्रा दृष्टि</u> :- दीपक की प्रभा के समान, अधिक दीर्घ समय और समर्थवान । मोह को तोड़ने का प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ता है । द्रव्य क्रिया होती है । भावक्रिया नहीं होती ।

5. <u>स्थिरादृष्टि</u> : इसे रत्नप्रभा के समान कहा है । अप्रतिपाति युक्त बोध - दृष्टि है । दीपक पराभवनीय (बुझ जाने वाला) रत्नप्रभा अपराभवनीय है ।

6. <u>कांता दृष्टि</u> :- तारा प्रभा के समान, इस दृष्टि में ज्ञान प्रकाश तारा के समान दूर-दूर तक चमकता और झिलमिलाता हुआ दिखाई देता है । रत्न तो सीमित क्षेत्र में ही चमकता है, तारा अनंत आकाश में दूर से दिखाई देता है ।

7. <u>प्रभा दृष्टि</u> :- सूर्य के प्रकाश समान । आनंद, अपरिमित, ज्वाजल्यमान, ज्ञान प्रकाश सर्व काल ध्यान का हेतु बनता है ।

भाव श्रावक के 17 लक्षण

1. नारीवशवर्ती नहीं होना, ममता की आसक्ति के त्याग के के परिणाम युक्त जीव ।
2. इन्द्रियों के गुलाम नहीं बनना ।
3. अर्थ (धन) अनर्थकारी समझना ।
4. संसार असार है ।
5. विषय विष से भी भयंकर है ।
6. आरंभ से भयभीत रहे ।

7. गृहस्थाश्रम पाश (जाल-फंदा) है।

8. निर्मल सम्यक्त्व का पालन करना।

9. गाडरिया प्रवाह (भेड़ वाली चाल) को अनर्थकारी मानना।

10. आगम के अनुसार आराधना करनी।

11. दान आदि चतुर्विध धर्म यथाशक्ति आचरण करना।

12. घर के राग-द्वेष के भावों से विरत होकर करना।

13. राग-द्वेष से दूर रहकर हठाग्रह छोड़कर माध्यस्थ भाव धारण करना।

14. धनादि संपत्ति को क्षणभंगुर मानना।

15. धर्म करते हुए अज्ञानी लोग हंसी करे तो हमें शर्म नहीं करनी चाहिए।

16. काम-भोग का सेवन - मजबूरी में हो तो ही करना।

17. वैश्या के समान ग्रहस्थाश्रम में रहना।

श्रुत ज्ञान : सिंहनी के दूध जैसा

संसार में भोगवृत्ति करते हुए श्रावक अनासक्त भाव में रहे। क्योंकि आसक्ति अनर्थ का कारण है। नारी में आसक्त बनकर न रहे। विषयसुख भोगते हुए उसमें गर्त न होना। विवेक के साथ रहना।

जो राग द्वेष के अधीन होते हैं वे कभी भी विवेकशील नहीं होते।

'श्रीफल लेकर हाथ में, वर घोड़ा बनकर जाता। ऐसा न हो।

वरकन्या सावधान का अर्थ ही यह है कि .... विवेक !

पेथड़शाह, भीम सेठ खंभात के रहने वाले थे। ये साधर्मिकों के दिए हुए पहरावणी रुप साड़ी-दुपट्टे को नित्य दर्शन करते थे। चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य) की प्रतिज्ञा लेने के बाद भीम सेठ ने 700 साधर्मियों को पहेरावणी भेजी थी।

पेथशाह ने 32 वर्ष की उम्र में अपनी पत्नी 28 वर्ष (प्रथमीणी देवी) की स्वीकृति से दोनों ने गुरु के पास जाकर चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य) की प्रतिज्ञा ले ली थी। मांडवगढ़ के इस महामंत्री के अनासक्त भाव ने शास्त्र वचन को समुज्ज्वल बना दिया।

भाव श्रावक के भावगत 17 लक्षण

भवोभव का संबल देने वाले जिन कल्याणक दिन है । कल्याण करने वाले साधन को समझो । क्या खराब है यह सोचकर जानकर कल्याणक होना संभव है ।

च्यवन : देवलोक का सुख खराब है, ऐसा तीर्थंकर देवों ने विचार किया था ।

जन्म : 9 माह तक मां के गर्भ में अंधेरी कोटड़ी में नहीं लटकना ।

दीक्षा : संसार नाम ही खराब है ।

केवल ज्ञान : घाती कर्म खराब है ।

निर्वाण : अघाती कर्म खराब है ।

खराब क्या है ? इसका चिंतन न किया जाए तो कल्याणक, कल्याण के कारण नहीं बनते, शरीर स्वजन, संपत्ति, यह त्रिपुटी का संसार में बोलबाला है ।

जिन, जिनाज्ञा, जिन प्ररुपित मार्ग की त्रिपुटि के अध्यात्म में बोलबाला । चैत्यवंदन करने के बाद 24 मिनिट प्रभु के समाने चिंतन करना चाहिए ।

भाव श्रावक की भव्यता

पू. गणिवर्य श्री नयवर्धनविजयजी म.सा.

'धर्मरत्न' प्रकरण से उद्धृत

रचनाकार (शास्त्रकार) परमर्षि श्री शांतिसूरीश्वरजी म.

* क्रिया :- क्रिया द्वारा जीव जो कर्म बांधता है उससे अधिक भाव द्वारा कर्म बंधन करता है । आत्मा प्रवृत्ति के द्वारा कर्म क्षय करती है, उससे कहीं अधिक वृत्ति/भाव से क्षय करती है । आराधना को भाव का स्पर्श होता है तब शून्य (0) पर एक्का (1) उभरता है।
* द्रव्य - अनुष्ठान (क्रिया) द्वारा देवलोक प्राप्त होता है ।
  भाव अनुष्ठान मोक्ष की प्राप्ति करवाता है ।
* भाव धर्म का अभाव क्रिया को शून्य बना देता है । जब भाव धर्म जीव में मिल जाता है,

तब संसार के प्रति जीव को भय प्राप्त होता है। सांसारिक सुख अंगारे समान जलाते हैं।

* मोहनीय की सत्ता दूर करने से ही भाव धर्म उत्पन्न होता है। परमात्मा के वचन के मर्म को समझकर अपने मर्म से मृत्यु का भेद समझा जा सकता है।

* भाव धर्म, दिशा निश्चित कराता है फिर प्रवृत्ति रुप धर्म उसमें बेग उत्पन्न करता है।

* संसार के प्रति क्यों अभाव पैदा नहीं होता ?

  क्योंकि संसार के पदार्थों को आदि (प्रारंभ) से देखते हैं, अंत से नहीं। संसार के सुख देखने में अच्छे लगते हैं किन्तु अंत बुरा होता है। संसार की समस्त सुंदर वस्तुओं में ऐसा अनुभव होता है जैसे बम रखे हों। ऐसा अनुभव किसको होता है ? श्रावक को ! प्रत्येक पदार्थों में मोह राजा ने राग-द्वेष के बम रखे हैं।

* श्रावक के श्रावकत्व की जहोजलाली कैसी लगती है ?

  यह जन्म भोग के लिए नहीं योग के लिए मिला है। राग के लिए नहीं, त्याग के लिये, पुद्गल की रमणता के लिए नहीं, आत्म रमणता के लिए मिला है। आसक्ति श्लेष्म है, अनासक्ति शक्कर है। श्रावक (मक्खी तरह) शक्कर पर बैठता है।

* बंध प्रवृत्ति से पड़ता है अनुबंध विचारों से।

  * विचारों से पाप को दूर हटा देना, उसका नाम <u>भावधर्म,</u> भाव धर्म निश्चय की बात है। <u>द्रव्य धर्म</u> व्यवहार की।

  * संसार के प्रति अभाव और मोक्ष के प्रति अहोभाव उसका नाम भावधर्म।

* संसार बुरा, मोक्ष ही अच्छा। तन और मन के बीच दिवाल (समकित) इसी का नाम श्रावकत्व।

* दुनिया की बातें आत्मा को बेहोश बनाती है, परमात्मा की वाणी आत्मा को बाहोश बनाती है।

* परमात्मा की वाणी सुनो - पानी जैसी - शीतलता देती है।
  परमात्मा की वाणी का चिन्तन करो - दूध जैसी - पुष्टता देती है
  परमात्मा की वाणी का मनन करो - अमृत जैसी - शाश्वत आनंद देती है।

* श्रावक जीवन - एक राधा वेध

राधा वेध = उपर पुतली घूमती है	श्रावक जीवन = राग द्वेष की पुतली
◆ साधक की दृष्टि नीचे तेल के कड़ाह में	◆ साधक की दृष्टि संसार सागर में
◆ लक्ष्य भेदने का उपर	◆ मोह को भेदने का लक्ष्य - मोक्ष
◆ दो पल्ले में दो पांव रखे जाते हैं	◆ अनुकूलता और प्रतिकूलता-दो पल्ले
◆ ऊपर खंभे पर आरा में चक्र घूमते हैं जिस पर पुतली होती है।	◆ 8 आरा वो प्रमाद 8 प्रकार का अनुकूलता, प्रतिकूलता के चक्र
◆ एक पुतली को ही देखना है, डाबी आंख को देखना, आंख की कीकी पर निशाना लगाना	◆ आराधनमयी श्रावक एक मोह को ही देखता है और दर्शन मोह को भेदता है

◆ भव का भय जागृत होता है तब मोक्ष की लगन लगती है। इसको कहते हैं - श्रावक

आपात मात्र मधुरो विषयोपभोग = जिसका अंत अच्छा वह वस्तु अच्छी। दुनिया किसी भी सुख का अंतिम परिणाम क्या ?

वर्तमान जन्म में भी दुःख और अगले जन्म में भी दुःख (दुर्गति) आत्मा का सुख अनंत है। जिसका अंत नहीं ऐसा अव्याबाध सुख है।

जंबू स्वामीजी, स्थूलभद्रजी, वज्रस्वामीजी, पेथड़शाह, आदि अनेक ब्रह्मचारियों का निरंतर श्रावक स्मरण करे।

ब्रह्मचर्य अर्थात् आधि दीक्षा :-

नारी नरक नी दीवड़ी (दीपक) नर नरक नो दीवड़ो, अरस परस चिंतन करे ... !

स्त्री के साथ रहते श्रावक की स्थिति कैसी-अग्नि के साथ काम करती नारी के जैसी। समुद्र के बीच नाविक जैसी, सांप को नचाते मदारी जैसी होना चाहिए।

मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों मन और इन्द्रियों द्वारा होता है । मनयुक्त चक्षु आदि इन्द्रियों से रुप आदि विषयों का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष मतिज्ञान है ।

मन से सुख आदि की संवेदनता होती है वह मन:स्थिति प्रत्यक्ष ज्ञान है । मन से तर्क वितर्क - विचार - स्मरण, अनुमान जो होता है वह परोक्ष मतिज्ञान है ।

प्रत्यक्ष मतिज्ञान के 4 भेद

1. अवग्रह :- अव्यक्त दर्शन के बाद अवग्रह होता है, रुप, स्पर्श आदि का आभास होना वह अवग्रह ।

2. ईहा :- संदेह होने पर उसको जानने की विशेष जिज्ञासा होना ।

दा.त.-यह मनुष्य होना चाहिए-यह वृक्ष होना चाहिए । यह मनुष्य बंगाली होना चाहिए।

3. अपाय :- यह मनुष्य ही है, यह वृक्ष ही है, यह बंगाली ही है ।

4. धारणा :- संस्कार युक्त ज्ञान वह धारणा (becomes memory)

नंदी सूत्र में मति ज्ञान में 4 प्रकार की बुद्धि कही है (टीका by मलय गिरिजी)

1. औत्पातिकी :- विकट समस्या का भी हल खोज निकाले ऐसी तत्काल उत्पन्न सहज बुद्धि ।

2. वैनेयिकी :- विनय, सलीके से अपनी बात रखना ।

3. कार्मणिकी :- शिल्प और कर्म से संस्कार प्राप्त बुद्धि वह कार्मणिकी की बुद्धि ।

4. पारिणमिकी :- दीर्घ अनुभव से प्राप्त ज्ञान, मति ज्ञान ।

श्रुत ज्ञान :- श्रुत अर्थात् सुना हुआ ज्ञान । शास्त्र ज्ञान से उत्पन्न हो वह श्रुत ज्ञान, शब्द जन्य या संकेत सूचक जन्य ज्ञान वह श्रुत ज्ञान ।

शब्द को सुनना यह अवग्रहादि रुप, श्रोनेन्द्रिय का मतिज्ञान है, परन्तु उसेक द्वारा बोध होना वह श्रुत ज्ञान है ।

अर्थ की उपस्थिति करावे वह श्रुत ज्ञान

मतिज्ञान और श्रुत ज्ञान के बीच की दूरी

✻ मतिज्ञान : - इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाला ज्ञान वह मतिज्ञान ।

- मतिज्ञानी को बुद्धिमान कह सकते हैं ।
- निमित्त योग से स्वयं उत्पन्न होने वाला ज्ञान ।
- पर्याय की ग्राहकता सीमित है ।

✻ श्रुतज्ञान : - श्रुत ज्ञानी को विद्वान कहा जा सकता है ।

- श्रुतज्ञान के बिना मतिज्ञान पंगु है ।
- पर्याय ग्राहकता ज्यादा है ।
- मानसिक चिंतन जब शब्द रुप में लिखा जाता है, तब वह श्रुतज्ञान कहा जाता है ।

न्याय शास्त्र की दृष्टि से मिथ्याज्ञान (अज्ञान) और सम्यग्ज्ञान :-

जैन दर्शन की यह मुख्य दृष्टि है । जिस ज्ञान से आध्यात्मिक उन्नति होती है वह सम्यग्ज्ञान और जो ज्ञान से आध्यात्मिक पतन हो वह मिथ्याज्ञान ।

सम्यग् दृष्टि जीव को भी संशय होता है, भ्रम होता है, अधुरा ज्ञान हो जाय तो भी हठाग्रह रहित और सत्य गवेषक होने से विशेष दर्शी, ज्ञानी का आश्रय लेकर अपनी भूल सुधारने के लिए सदा तत्पर रहता है ।

भगवान कहते हैं-पल में बिजली की चमक में मोती पिरो लेना चाहिए । यदि चूक गये तो चूकते ही जाओगे । गर्गाचार्य के शिष्य रस में, स्वाद में, आराम में, वाह वाह में और शरीर के सुख में लीन हो गए थे । ऐसे महान् आचार्य के शिष्यों ने शिथिलता में सब कुछ खो दिया ।

श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र और तप से सिद्धि या समृद्धि ऐसी प्राप्त होती है कि सुई के नुक्के जैसे छिद्र से बाहर निकला जा सकता है । तुम अपने शरीर को लाख जोजन जितना लंबा कर सकते हो और अणु जैसा छोटा भी कर सकते हो । पानी पर चल सकते हो और तो और धरती पर डुबकी लगा सकते हो ।

शिष्य नागार्जुन के सिद्ध रस धातु को सोना बना रहा था किन्तु गुरु की तप सिद्धि ने उनके मूत्र से पत्थर को सोना बना दिया ।

ज्ञानी कहते हैं स्वतंत्रता तुम्हारे पास जो है वह सच्चा सोना है । स्वयं को साधो और अन्य को भी सहयोग दो । सहन करना सीखो । साधु संथारे पर सोते हैं । पराधीन करे ऐसे बिस्तर पर नहीं सोते ।

वृद्धवादिसूरिजी के शिष्य सिद्धसेन दिवाकर महान् थे, महातार्किक थे, प्रखर पंडित और अद्‌भुत प्रतिभा के धनी थे । उनको बड़े बड़े राजा - श्रेष्ठि आदि मानते थे और उनकी सेवा मिल जाए तो उसे अहोभाग्य मानते थे । राजा की तरफ से सम्मान और सुविधा मिलने से सहनशीलता-प्रमाद में बदल गयी और गोचरी में उपाश्रय में ही मंगवाने लगे । अचानक गुरु का आगमन हुआ, भूल सुधारी, पश्चाताप से दोषों को धो डाले और महान हो गए ।

गर्गाचार्य के शिष्य किसी भी उपाय से, गुरु की गंभीर अर्थ युक्त देशना सुनकर भी नहीं समझे, ऐसे शिष्यों को शास्त्र में 'निर्बल' बेल की उपमा दी है ।

प्रमाद और सुखोपभोग के साधनों से रहना, अभ्यास से दूर करो तीर्थंकर 12 गुण याद करके प्रभु को नित्य 12 खमासमणे देना । हाथ-पांव और शरीर ऐसे मिलेंगे कि तुम स्वस्थ, सुंदर और शक्तिवान बनोगे । तुम्हारा सौभाग्य बढ़ जाएगा । धारा काम कर सकोगे । एक बार खड़े हो जाओ तुमको स्वत: एहसास हो जाएगा ।

'अब केवलज्ञान लेकर ही जाऊँगा' बाहुबलिजी के समान, 12 महीने तक काउसग्ग ध्यान में खड़े रहे, कितनी धैर्यता, श्रद्धा, अटलता और दृढ़ - इच्छा शक्ति ?

हम 4 लोगस्स के काउसग्ग में ही हिल जाते हैं । भूल-चूक में मक्खी मच्छर हाथ-पांव पर बैठ जाए तो उनकी कयामत आ जाए !

प्रभु कहते हैं - भाव शुभ रखो । बाहुबली जैसा बल मिलेगा, जैन के अतिरिक्त कहीं 'शाता में हो ?' ऐसे सुंदर शब्द पूछने के लिए नहीं है । ज्ञानी कहते हैं - व्यवहार, और वचन में सच्चे बनना । देना, छोड़ना और निर्वाह करना सीखो । तुम अच्छे रहोगे तो पूरा संघ अच्छा रहेगा । अशांति-उपद्रव नहीं करना । चिल्लाकर नहीं, उदाहरण देकर, आदर्श खड़ा करो और सच्चाई का महत्व समझाओ ।

जिनालय नमणुं

(राग - आशावरी)

जिन मंदिर जिन उपाश्रयमां, आलीशान निर्माण हजो,
गौतम स्वामीनी लब्धि हजो, अरिहंतनाउर आशीष हजो ।।

सात क्षेत्रमां सौथी उत्तम, दान कह्यु छे जिनालय साटे ।
मित्रों श्रावक श्राविकाओं, देजो दान सहु छूटे हाथे .... ।
ल्हावो अनुपम फरीफरी नां वे जिन शासन जयकार हजो ।
जिन मंदिर ......

आ अवसर ने ओलखी लईये, जन्म मल्यो छे सार्थक करीए,
धन वैभवनां सुपात्र दाने, भवो-भवनुं भाथुं भरी लईए ।
श्रद्धानां फूलोनी म्हेकथी, संघनो जय-जयकार हजो ।।
जिन मंदिर ....

कांति प्रसन्न जिन मूर्तिओथी, जलहलतुं जिनालय नमणुं,
आरती मंगल दीवो गवातां, सुघोष घंटाखनुं शमणुं ।
समता भावना शीतल जलथी, 'श्रद्धांधे' प्रक्षाल हजो,
सकल संघ मां मंगल वर्ते, दान भावनी वृद्धि हजो ।।
जिन मंदिर ......

''श्रद्धांध''

अप्रैल 2004

विभाग – ६

गीत समकित का, लक्ष्य मोक्ष का !!!

'श्रद्धांध' गाए समकित का गीत
इच्छाएँ जीव की, जिन तत्व में संजीवनी,
मनोविजय के ज्ञान की तान, जड़ चेतन का भेद ज्ञान
यात्रा समकित से मोक्ष की, समझिए 'त्रिपदी' संक्षिप्त से

- जीव की 5 मुख्य इच्छाएँ 155
- कालस्यवेषि पुत्र 157
- जो होता है अच्छे के लिए 158
- मिलने का ही बड़ा दुःख 160
- सत्य और इष्ट श्रवण का ध्येय 162
- सद्चरित्र श्रवण 164
- जयणा जैनों की 165
- साधना जगत में मन की भूमिका 167
- अनेकांतवाद 182
- जड़ और चेतन का भेद ज्ञान 188
- समकित के अपवाद रुप 6 आगार 192
- मद्य, शहद, मक्खन, मांस 193
- समकित के 6 प्रभावक 194
- त्रिपदी 195
- पद्मासन 197
- मोक्ष की सीढ़ियों की पंक्ति 197
- शरीर : 32 लक्षण 199
- पांच धाय - माताएँ 200
- मोक्ष किसलिए ? 201

समकित

(राग - चेत चेत नर चेत)

करे नहीं फरियाद ने, रहे सदाय प्रसन्न चित्त,
आर्त्तध्यान थी दूर रहे, जे पामी गया समकित ।
पंकज सम संसार मां, राखे अनेरी रीत,
हृदयंगम वाणी वदे, जे पामी गया समकित ।।
जिन आज्ञानी वाड़ मां, जे रही थाए स्थित,
सड़सठ फूलों खीलवी रहे, जे पामी गया समकित ।।
श्रद्धांमां 'श्रद्धांध' बनु प्रभु, प्रकटे अनुपम प्रीत,
आ भवमां भावित थईने, हुँ पण पामुं समकित ।।
जे समकित पामी गया, तेनो संसार सीमित,
अर्ध पुद्गल परावर्त काले, 'शिवपुरमां' अंकित ।।

''श्रद्धांध''

जीव की ५ मुख्य इच्छाएँ

❊ जीव की 5 मुख्य इच्छाएँ :-

1. जीव की प्रथम इच्छा जीने की (सबसे प्रबल इच्छा) है ।
2. जीव की द्वितीय इच्छा ज्ञान प्राप्त करने की है ।
3. जीव की तृतीय इच्छा सुख प्राप्त करने की है ।
4. जीव की चौथी इच्छा स्वतंत्र रहने की है ।
5. जीव की पांचवी इच्छा सभी मेरे अधीन रहना चाहिए ।

1. जीने की इच्छा :- 100 वर्ष पूरे हो जाए तो भी और ज्यादा जीने का प्रयत्न करता है । देवलोक में पल्योपम से सागरोपम का आयुष्य होने के बाद मृत्यु आती है तो भी अच्छा नहीं लगता । मृत्यु कभी न आए और शाश्वत जीवन मिले उसके लिए हमको मूलभूत आत्म स्वरुप प्रकट करना जरूरी है । उसके बाद ही शाश्वत जीने की इच्छा पूर्ण हो सकती है ।

2. ज्ञान प्राप्ति की इच्छा :- पूरे जगत में भ्रमण करके आ जाए, छ: खंड की प्रदक्षिणा करके आ जाए तो भी फिर नया जानने की (ज्ञान प्राप्ति का) इच्छा कभी संतुष्ट नहीं होती । हमारे भीतर एक ज्ञान ऐसा बैठा है कि जिसके द्वारा सभी जीव और सभी पुद्गल का तीनों काल के सर्व पर्यायों को एक समय में जाना जा सकता है । यह लोकालोक प्रकाश ज्ञान प्रकट होने के अतिरिक्त जीव की ज्ञान प्राप्ति की इच्छा पूर्ण होती ही नहीं । इस इच्छा को पूरी करने के लिए केवल ज्ञान प्राप्त करना जरूरी है ।

3. सुख प्राप्त करने की इच्छा :- कैसी इच्छा ? किसी के पास मेरे से ज्यादा सुख नहीं होना चाहिए । मेरे पास 5 करोड़ हैं; पास वाले (पड़ौसी) के पास 10 करोड़ हैं । उसके विचार में जो 5 करोड़ मिले हैं उसका भी सुख नहीं भोग सकते । हमको तो ऐसा सुख चाहिए कि जो मिला वह वापिस जाए ही नहीं । उसमें बिल्कुल दु:ख का मिश्रण नहीं चाहिए । सिद्ध

जीवों को सभी को एक समान सुख होता है । कम या अधिक नहीं । मिलने के बाद कभी जाता नहीं है और दु:ख कभी आता ही नहीं । उन आत्माओं को अनंत सुख है ।

4. स्वतंत्र बनने की इच्छा :- पराधीनता अच्छी नहीं लगती । बाह्य स्वतंत्रता मिलने के बाद भी शरीर का बंधन ही ऐसा है कि शरीर के लिए रोटी, पिज्जा, पाव भाजी चाहिए । पैसा चाहिए । जहां तक शरीर है वहां तक पराधीनता रहेगी ही । अशरीरी बनिए तो ही स्वतंत्रता पूरी मिलेगी ।

5. सभी मेरे अधीन रहें :- इस इच्छा की तृप्ति के लिए संसार में अनेकों युद्ध हुए, तो भी इच्छा पूरी नहीं होती । केवलज्ञानी की एक ही अवस्था है जिसमें 1000 वर्ष बाद भी यह कार्य होगा यह स्थिति होगी । ये उन्होंने ज्ञान में देखा है और ऐसा ही बनाव बनता है । सकल विश्व को एक अपेक्षा से केवलज्ञानी ने देखा है । उसी अनुरूप चलता है, अत: केवलज्ञानी बनिए जिससे अपने ज्ञान के अधीन सारा विश्व चलता है ।

इस प्रकार अपना मूल रुप अनंतज्ञान, अव्याबाध सुख, अनंत आनंद, अनंत शक्तिमय और शाश्वत है वह प्रकट होता है तभी सारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं । इसलिए **परम ध्येय लक्ष्य है, आत्म स्वरुप प्रकट करना** । इतना लक्ष्यांक करके साधना होती है उसको **'प्रणिधान'** कहते हैं । आत्मस्वरुप के अनुभव का परम आनंद अंत में सर्व कर्मों का क्षय करने में निमित्त बनकर मोक्ष प्राप्त करवाता है ।

द्रव्य और भाव से शुद्धि थी इसलिए श्रीपाल राजा की सर्व आराधना सफल हुई । निश्चय और व्यवहार दोनों नय एक ही रथ के दो पहिये हैं । दोनों की आवश्यकता है ।

निश्चय दृष्टि हृदये धरी, पाले जे व्यवहार,

पुण्यवंत ते पामशे, भव समुद्र ने पार ।

* अरिहंत उपकार के भंडार हैं,

सिद्ध भगवंत सुख के भंडार हैं।
आचार्य भगवंत आचार के भंडार हैं।
उपाध्याय भगवंत विनय के भंडार हैं।
साधु भगवंत सहायता के भंडार हैं।

* पंच परमेष्ठि दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपमय हैं।
सम्यग्दर्शन सद्भावनाओं का भंडार है।
सम्यग्ज्ञान सद्विचारों का भंडार है।
सम्यग्चारित्र - सद्चारित्र का भंडार है।
सम्यग्तप संतोष का भंडार है।

* सत्संग के बिना विवेक नहीं, विवेक बिना भक्ति नहीं,
भक्ति के बिना मुक्ति नहीं, मुक्ति के बिना सुख नहीं ।।

कालस्यवेषिपुत्र

पार्श्वनाथ भगवान के शिष्य कालस्यवेषि पुत्र नामक अणगार (मुनि) ने प्रभु महावीर के शिष्यों से प्रश्न पूछे कि निम्न पदों का अर्थ क्या है ?

*** सामायिक :-** दीक्षा ली उसी क्षण से आयु के अंतिम क्षणों तक समभाव से रहना और नए कर्म नहीं बांधना। यह सामायिक है और सामायिक का अर्थ है।

*** प्रत्याख्यान :-** नवकारसी, पोरसी, साढ पोरसी, परिमुड्ढ, चउविहार, गंठसि, मुट्ठसि, आदि पच्चक्खाण के नियम रखना, जिससे आश्रव द्वार बंद हो जाए किंचित भी नियम नहीं रखने वाला कैसा भी ज्ञानी क्यों न हो तो भी आश्रव द्वार बंद नहीं कर सकता।

*** संयम :-** पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय के जीवों की रक्षा करना, उसको संयम कहते हैं।

*** संवर :-** 5 इंद्रियों एवं मन को समिति और गुप्ति नामक संवर (आते हुए कर्म को रोकना) धर्म में जोड़ने का प्रयत्न करना।

✻ विवेक :- विशेष प्रकार से जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव-संवर, बंध-निर्जरा, मोक्ष । इन 9 तत्वों को जानना, श्रद्धा रखना और आचरण में लाने का प्रयास करना । वह विवेक कहलाता है । इससे त्याग करने योग्य पदार्थों का तथा क्रियाओं का त्याग होगा ओर मन, वचन, काया, अरिहंत देव के धर्म के प्रति जुड़ जाएगी ।

✻ व्युत्सर्ग :- शरीर और इन्द्रियों का व्युत्सर्ग करना अर्थात् काया की माया छोड़ कर मन, वचन और शरीर को घंटे या आधे घंटे के लिए ध्यान एवं जाप में लगाना, जिससे अनादिकाल से शरीर के प्रति जो मोह है वह कम हो जाए ।

✻ निंदा और गर्हा :- किए पापों की निंदा करना, विशेष प्रकार से निंदा करना, गुरु की साक्षी से पापों की निंदा और गर्हा (घृणा पश्चाताप) करने वाला साधक पाप एवं पाप कर्मों से मुक्त हो जाता है ।

✻ आधा कर्म :- साधु को वोहराने के उद्देश्य से फल-सब्जी आदि अचित करना । सचित वस्तु पकाना । साधु के लिए मकान निर्माण करवाना, कपड़े बनवाना, गोचरी तैयार करवाना, ऐसा कोई भी आरंभ की क्रिया (साधु के लिए) वह आधा कर्म कहा जाता है। साधु के लिए ही जो खास वस्तु तैयार की गई हो जिसमें आरंभ लगा हो वह आधा कर्मी कहा जाता है ?

ईर्यापथिकि एवं सांपरायिकि क्रिया :-

ईर्या :- जाना, पथ= मार्ग, अर्थात् जो जाने का मार्ग है वह ईर्या पथ कहलाता है, उसमें होने वाली 'क्रिया' वह ईर्यापथिकि क्रिया-यानि मात्र शरीर के व्यापार से होने वाले कर्मबंध ।

जिसके द्वारा प्राणी संसार में भ्रमण करता है वह संपराय अर्थात कषाय ! उन कषायों से जो क्रिया होती है वह सांपरायिकी यानि कषायों से होने वाले कर्मबंध ।

ईर्यापथिकी क्रिया का कारण अकषाय है । कषाय से निवृत्ति । सांपरायिकि क्रिया का कारण कषाय है । कषाययुक्त स्थिति । दोनों परस्पर विरोधी क्रिया की उत्पत्ति एक ही समय एक ही जीव में नहीं हो सकती ।

जो होता है अच्छे के लिए

प्रतिकूल घटना में प्रकृति का संकेत

भोजन का निमंत्रण नहीं दिया	समारोह में Food Poison...??
शरीर निरोगी, अच्छा हुआ	आराधना होगी।
शरीर में रोग उत्पन्न हुआ, अच्छा हुआ	कर्म क्षय करूंगा .....
भूमि पर सोना पड़ा, अच्छा हुआ	गिरने का भय नहीं।
सुख-संपत्ति मिली, अच्छा हुआ	पुण्य अनुकूल हैं, धर्म होगा।
विपत्तियों ने घेरा, अच्छा हुआ	धर्म याद आएगा।
आँखों में तेज अच्छा है, अच्छा हुआ	प्रभु दर्शन, जीव रक्षा, शास्त्र वांचन होगा।
आँखें चली गई, अच्छा हुआ	अंदर देख सकूंगा।
नौकर काम करने आ गया, अच्छा हुआ	आराधना समय अधिक मिलेगा।
नौकर काम करने नहीं आया, अच्छा हुआ	एक्सरसाईज होगी।
पैसा बहुत कमाया, अच्छा हुआ	दान दूंगा, सुकृत करूंगा।
पैसा खो दिया, अच्छा हुआ	पाप कम होगा।

* Socretis की पत्नी क्लेशकारी मिली थी, क्षमा से स्वयं महान हो गया।
* एक नवयुवक लग्न पूर्व दुविधा में था, चिंता मत करो, अनुकूलता मिलेगी जीवन में तकलीफ नहीं आएगी। क्लेशकारी मिलेगी तो संसार को दूसरा सोक्रेटीस मिल जाएगा।
* जीवन में दो उद्देश्य हों तो ? गुण प्राप्ति और दोष निवारण। इन उद्देश्य के बिना धर्म अधर्म बन जाता है।
* अनुकूलता के दास न बनो, प्रतिकूलता से उदास न बनो। यही साधक के लक्षण हैं। यह विचारधारा प्रतिकूलता को अनुकूलता में बदल देती है।
* आत्मा की बातें हमने बहुत की, अब आत्मा के साथ बातें करो। इसीलिए सामायिक करने का विधान है, यह आत्मा के पास हमको ले जाती है।

मिलने का ही बड़ा दु:ख है !

भूखा अच्छा या तृप्त ? जागृत अच्छा या सुप्त ?

समुद्र विजय और शिवादेवी के दो पुत्र थे । अरिष्टनेमि और रथनेमि । अरिष्टनेमि नेमिनाथ के रुप विख्यात हुए । एक बार श्रीकृष्ण महाराजा की विविध प्रकार के शस्त्रों से भरी आयुधशाला में मित्रों के साथ खेलते हुए पहुंच गए । स्वयं स्नेहिल, शांत और मृदु स्वभाव के थे अत: उन्हें कभी शस्त्र को स्पर्श करने का अवसर ही न आया । प्रथम बार शंख देखा ।

श्री कृष्ण का पंचजन्य शंख देखा । बहुत बड़ा और सफेद शंख देखकर उठाने का मन हो गया । नेमिकुमार ने शंख को हाथ में उठाया और जोर से फूंक मारी कि – ऐसा लगा कि गंगा में बाढ़ आ गई हो, समुद्र में धुंआधार लहरें उठ रही हो । ऐसा गंभीर नाद सुनकर द्वारिका नगरी की जनता भयभीत हो गई ।

धनुष का टंकार और शंख का झनकार सुनकर श्रीकृष्ण विचार में पड़ गए कि – यह क्या हो रहा है ? इतने में नेमिकुमार के दोस्तों ने जाकर कृष्ण को कहा कि – आपके भाई ने शंख बजाया ! श्रीकृष्ण दौड़े आए । नेमिकुमार के हाथ में शंख देखकर आश्चर्यचकित हो गए । यदि ये शंख, धनुष उठा सकता है तो चक्र, गदा भी उठा सकता है । कभी मेरे को भी पराजित कर सकता है ।

देखिए ! मिले हुए का कितना बड़ा दु:ख है । हमको कोई हराने वाला नहीं लेकिन एक दिन अर्थी पर सीधे-सपाट सो जाएंगे फिर कभी उठने वाले नहीं है ।

श्रीकृष्ण विचार करने लगे – अब इसकी जल्दी शादी कर देना चाहिए ताकि घर गृहस्थी का बोझ सिर पर पड़ेगा और चिंता में इसका बल कम हो जाएगा ।

लग्न (शादी) ये मनुष्य को नचाने की गहन व्यवस्था है । सिर पर चिंता सवार हो गई तो मनुष्य सीधा सपाट हो जाता है फिर सिर ऊँचा नहीं कर सकता । यों अगर देखा जाए तो मनुष्य भगवान जैसा है, परन्तु अपनी स्वयं की आदत से लाचार है ।

श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार के लिए उग्रसेन राजा की लाड़ली, सुंदर, विद्युत जैसी चेहरे की चमक, सुशील, गुणवान, ऐसी राजकन्या 'राजीमती' की मांग की और संबंध हो गया ।

* सत्य जानना है ? सुधर्मास्वामी आर्य जंबू स्वामी को समझाते हुए कहते हैं कि - बुद्धि की निर्मलता, हृदय की सरलता और विचारों की परिपक्वता के बिना सत्य जानने की जिज्ञासा नहीं होती। सच्ची संपत्ति तो निष्परिग्रहता है। ज्ञान-विद्या यही संपत्ति है।
* समता से श्रमण बना जाता है। ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण। ज्ञान से मुनि और तप से तापस बना जा सकता है।
* जीवन कैसा जीओगे ? ऐसा कि तुम्हारे जीवन के लिए अन्य जीव को पीड़ा नहीं होवे।
* मनुष्य को दूसरे का सब समझ में आता है। सिर्फ स्वयं का समझ में नहीं आता। सच्चाई से जो बचना चाहता है, वह एक नई भूल करने की तैयारी करता है।
* भाग्य से सब-कुछ मिलेगा, लेकिन धर्म तो पुरुषार्थ से ही मिलता है।
* तात्विक वैराग्य के बिना मोक्ष का द्वार नहीं खुल सकता है। अत: आत्मा में ही सुख है। इस तत्व की अनुभूति, प्रतीति होना प्रारंभ हो जाए वही तात्विक वैराग्य।

माता के 3 गुण

भगवती सूत्र सार, शतक-3, उद्देशक-10, भाग-1

1. जीव मात्र के प्रति दया भाव रखने की उदात्त भावना।
2. जीव मात्र को रोजी-रोटी देने की पवित्र भावना।
3. सभी जीवों के अपराधों को क्षमा करने की पवित्र भावना।

* देव गुरु के गुण गाने से, गुणानुवाद करने से उच्च गौत्र का बंध होता है। अगत भाव में उत्तम कुल और उच्च खानदान में जन्म मिलता है।
* प्रभु के गुण गाने से 'सुस्वर' नाम कर्म का बंध होता है। मंत्रमुग्ध आवाज मिलती है। इसलिए प्रभु के गीत स्तवन की रचना करना, गाते रहना। उपार्जन किया हुआ सब घट जाएगा, परन्तु आत्मा में जो सर्जन हो गया है वह कभी विसर्जन नहीं हो सकता। (हृदय में सरलता और बुद्धि में निर्मलता दिखाई देगी)
* सूरज कभी का उदित हो गया, उसकी किरणें अपने पास आने के लिए खुश है (तैयार है)। मात्र अपने द्वार खोलने की देर है पंच सूत्र का सार समझिए :-

श्रोतव्यानि सच्चेष्टितानि

सत्य और ईष्ट सुनने का ध्येय रखिए

जैन दर्शन में जीव को निरन्तर ज्ञान से सुवासित करके वैराग्य की तरफ ले जाने का ! स्वाध्याय का योग तैयार है। प्रत्येक जीवन में कुछ देर के लिए (एकाध घंटा) वैराग्य प्रेरक स्वाध्याय, वांचन-श्रवण अवश्य करना चाहिए। प्रतिक्रमण में सज्झाय (स्वाध्याय) रखने का कारण भी यही है।

सुबाहुकुमार, जंबुकुमार, खंधकऋषि, वज्रकुमार, आदि की संझायें नए-नए शास्त्रीय रागों में गाने से, सुनने से आत्मा ज्ञानवान बनकर सिद्ध होती है। ऐसा श्रवण अपना इहलोक और परलोक दोनों का सुधार देता है। महाराज साहेब कहते हैं :-

''व्यापार से भी यह काम जरूरी है। धंधा ही सब कुछ नहीं है, जीने के लिए'' सतियों के चरित्र घर को मंदिर बना देते हैं।

'सती सीता, कलावती, मदनरेखा, चंदनबाला, ऋषिदत्ता, सुलसा, मयणा सुंदरी, आदि जीवन में सहनशीलता, समता, धैर्य, मर्यादा, विनय आदि अनेक गुणों का विकास कर सकते हैं।'

चरमावर्त में आया हुआ जीव स्वयं की सच्ची प्रगति के मार्ग पर विचरण करने लगता है।

धर्म के सन्मुख होने पर, शुभ आलंबनों द्वारा जीवन में गुणों का विकास होता है। शुभ का आदर बढ़ता है। अशुभ का आदर घटता है। गुणों के प्रति रुचि बढ़ती जाती है। दोषों के प्रति अरुचि होती है। सद्गुण सुनने के बाद उनका मनन करने से सदाचार का आगमन होता है। सदाचारी महापुरुषों का सानिध्य प्राप्त करने की रुचि बढ़ती है। दुराचारी और दुर्जनों के प्रति अरुचि होती है। सद्चारित्र, श्रवण करने से विद्वान पुरुषों के हृदय भी परिवर्तन हो जाते हैं। उसको गुरु भगवंत उदाहरण से समझाते हैं। जीवन पथिक को मार्ग बताने वाले शब्द निमित्त बनते हैं। उसका सुंदर उदाहरण है, हरिभद्रसूरिजी। पहले जैन धर्म के कट्टर विरोधी ब्राह्मण थे :-

दृष्टांत :- शाम का समय था, हरिभद्र ब्राह्मण जैन साध्वियों के उपाश्रय के पास से गुजर रहे थे। उपाश्रय में से कुछ श्लोक की कड़िया सुनाई दी।

''चक्की दुंग हरि पणयं'' हरिभद्र ब्राह्मण को ये शब्द अच्छे लगे। जाना भूलकर वहां स्थंभित हो गए। सुनने में मन रम गया परन्तु उनको अर्थ समझ में नहीं आया। आर्या क्या बोल रही हैं ? वह समझ न आया।

ब्राह्मण के दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि जिस शब्द का अर्थ मुझे नहीं आए तो जो समझाएगा उसका शिष्य बन जाऊंगा। वैसे वह स्वयं प्रकांड पंडित था। साध्वीजी के उपाश्रय में गया उनसे अर्थ पूछा - साध्वीजी ने कहा - यहाँ पास में उपाश्रय में हमारे गुरु महाराज हैं वहाँ जाकर पूछ लीजिए। गुरुवर्या याकिनी महत्तरा प्रकांड ज्ञानी ब्राह्मण को पहचान गए थे।

दूसरे दिन महापंडित साध्वीजी के उपाश्रय पहुंचे। कल की घटना सुनाई। साध्वीजी भी ज्ञानी थे। शास्त्रीय वाणी का गंभीर अर्थ सामान्य व्यक्ति को, अपात्रता के कारण नहीं दिया जा सकता। इसलिए 'जैन दीक्षा ग्रहण करना पड़ेगी' शास्त्रों का ज्ञान होने के बाद ही ऐसे गहन सूत्रों का अर्थ मिल सकता है। 'शब्दानां अनेका अर्था:'। व्याकरण में अनेक अर्थ होते हैं। किस सूत्र का कौन सा अर्थ किस जगह और कब करना इसलिए गीतार्थ गुरु, आचार्य भगवंत चाहिए। जिनका शुद्ध चारित्र पालन द्वारा, तप और त्यागमय जीवन जीते हों, वे ही अपनी तीव्र बुद्धि के द्वारा गूढ़ अर्थ को बता सकते हैं। गुरु के बिना ज्ञान अधूरा है। मूंग जिस प्रकार पानी गरम होते ही बफ जाते हैं; उसी प्रकार सूत्र अभ्यास से आत्मा बफ जाती है। उसके बाद गीतार्थ भगवंत सूत्रों का अर्थ बताते हैं। 24-24 वर्ष के सतत अभ्यास के बाद शिष्य को पद पर स्थापित करते हैं-अर्थात् सूत्र और अर्थ के ज्ञाता के अनुरुप पद देते हैं। 45 आगम पढ़ने के लिए तो योगोद्वहन करना पड़ता है। कई महीनों तक कठिन तपस्या और क्रियाएं करना पड़ती हैं। आगम शास्त्र सिंहनी के दूध जैसा है। सुवर्ण (सोने) का पात्र ही चाहिए।

पंडित हरिभद्रजी की प्रथम जिज्ञासा और दृढ़ निश्चय जान कर आचार्यश्री के पास भेज दिया। आचार्य ने अपने सामने बैठाया और कहा कि - ''इन पंक्तियों का अर्थ जानने के लिए तुमको जैन दीक्षा लेना पड़ेगी। जैन शास्त्रों का अभ्यास करने के बाद तुम स्वयं ही इन पंक्तियों का अर्थ कर सकोगे। तुम शीघ्र ही संयम मार्ग की तरफ प्रयाण करो।' पंडित को

तीव्र जिज्ञासा ज्ञान प्राप्ति की थी। संयम ग्रहण किया और विद्या के पारंगत तो पहले थे ही और अभ्यास करते-करते मुख में से ये शब्द निकल पड़े, 'हा मणाहा कहं हूं तो जई न हूँ तो जिणागमो।'

हे जिनेश्वर ! तेरे ये जिनागम न होते तो, हमारे जैसे का क्या होता ? जिन धर्म के प्रति श्रद्धा बंध गई। एक समय का जैन धर्म का कट्टर विरोधी ब्रह्मण पंडित ने जिन शासन को उज्ज्वल बनाने हेतु 1444 ग्रंथों की रचना की। 1 पूर्व का अद्भुत ज्ञान प्राप्त करने वाले हरिभद्रसूरि महाराज हुए।

सत्चारित्रों को सुनने से जीव के जीवन के अंतर की भावनाएँ जागृत होती हैं। राह भटक गए हैं तो पुन: अपनी सत्य राह पर जाने का मन होता है। मध्य राह में अटक गए हों तो आगे बढ़ने की इच्छा होती है। कथा के नायक रुप हरिभद्रसूरिजी म. की प्रेरणा लेने से जीवन में अनेक परिवर्तन होने लगेंगे ? भद्रिक श्रोता धर्म मार्ग में आगे बढ़ेंगे। जीव को सत्य दिशा प्राप्त होगी। हमारा अंतर भीग जाए ऐसा तत्व ज्ञान प्राप्त होता है।

सद्चरित्र श्रवण

हरिभद्रसूरिजी ने ललित विस्तराग्रंथ में जीव के 27 गुणों का वर्णन किया है। जीव की सत्य और वास्तविक प्रगति चरमावर्त में प्रवेश होने के बाद होती है। उसके बाद ही जीव धर्म के प्रति आकर्षित होता है और धार्मिक चर्चा उसे रुचिकर लगती है। अच्छे बुरे का भेद वह कुछ अंश में कर सकता है। सद्भावों के प्रति आदर भाव बढ़ने लगता है। पाप छोड़ने की बुद्धि प्रबल होती है, दृढ़ श्रद्धा का सूर्य उदित होता है और जीव का कल्याण होता है। यह सद्प्राप्ति की अनुपम राह 'सद्चरित्रों के श्रवण' से होती है।

पांचों इन्द्रियों का संयोग यह अनंत पुण्य प्राप्ति के बाद मिली है। एकेन्द्रिय स्थावर काया में जीव अनंत काल तक रहा फिर कुछ पुण्य की प्राप्ति हुई तो - दो इन्द्रिय में रसना (जिह्वा) से भेंट हो गई। इलड़ आदि का भव मिला। असंख्य काल तक परिभ्रमण करने के बाद क्रमश: घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय में प्राप्त हुई। श्रवणेन्द्रिय को पांचों इन्द्रियों में श्रेष्ठ बताई है। इसीलिए तीर्थंकर देव महावीर प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त होने पर धर्म देशना देना

प्रारंभ किया देशनाओं की अमृत वर्षा की।

यह ध्यान रखें :- जिस इन्द्रिय का दुरुपयोग करोगे वह इन्द्रिय पीछे के भव में पुनः नहीं मिलेगी। श्रवण यंत्र से देव-गुरु की सिर्फ निंदा ही सुनी, उपकारी के दोष और अवर्णवाद सुने। दुनिया की गंदगी, कान में डालकर 'मस्ती करी' तो श्रोमेन्द्रिय खो देने का अवसर आने वाला है। इसलिए बुराई सुनना छोड़ो और अच्छी बातें सुनो।

उदाहरण :- पटेल सभा में गए, वहाँ उन्हें सम्मानजनक शब्द सुनने को मिले - आओ भाई, कैसे हो ? भाई बैठो ? कैसे जल्दी उठ कर चल दिये ? इन तीन वाक्यों को सुनकर पटेल सा. को अच्छा लगा। घर गए। दिन भर शब्द कानों में गूंजते रहे। रात को सोए। नींद में ये तीनों वाक्य बोलते रहे। घर में चोर आए। चोर उसके इन शब्दों को सुनकर घबरा गए। पटेल से माफी मांगी और चले गए। प्रवचन में कभी नहीं जाने वाले पटेल को क्या मिला ? सुनने गया, सम्मान मिला, घर की सम्पत्ति बच गई। पटेल ने सोचा सत्संग करना चाहिए। अब प्रतिदिन साधु संतों के समागम में रहने लगा।

लाभ :- जिनवाणी सुनने के लिए एकत्रित होने में कितना लाभ है। एक घंटा धर्म ध्यान में जाएगा, कर्म निर्जरा और पुण्य प्राप्ति होगी। मन में उठते प्रश्नों का समाधान होगा, वहां आने वाले गुणीजनों से संपर्क होगा। उनके समागम से लाभ मिलेगा। औचित्य और मर्यादा का आभास होगा। वैयावच्च का लाभ मिलेगा। धार्मिक सर्कल बनेगा। बुरे व्यक्तियों से दूरी हो जाएगी। सत्कार्यों की प्रेरणा मिलेगी।

जयणा जैनों की

भागा हुआ व्यक्ति भी पकड़ा जाता है।

जैन घर में इस प्रकार रहें कि हिंसा से बचने का और अहिंसा पालने का हमेशा ध्यान रहे।

दाल-चावल जैसी वस्तु घर के व्यक्ति देखकर और झटक कर नौकर को देगा। फिर भी नौकर उस अनाज को फिर से देखेगा कि कोई जीव-जंतु तो नहीं है। उसके बाद बर्तन में पकेगा।

काम के बिना पंखा, लाईट, पानी के नली चालु नहीं रहना चाहिए, ये हिंसा के बिना नहीं चलते। बिना छना पानी, बिना चारा हुआ आटा, बिना देखी सब्जी ये सारी वस्तु खाने-पीने लायक नहीं हैं। घर का कोई भी भाग (स्थान) निरन्तर भीगा हुआ नहीं रहना चाहिए क्योंकि वहां कांजी सूक्ष्म बादर अनंतकाय वाली वनस्पति उत्पन्न होती है। महान पुण्यवान जीव घर छोड़कर सर्वविरति ग्रहण कर साधु बनते हैं। (संयम)

पुण्यपाल राजा को रात्रि में 8 स्वप्न आए थे। उनका अर्थ पूछने भगवान महावीर की धर्मसभा में पहुँचे। देशना के अंत में राजा ने अपने स्वप्नों का अर्थ पूछा। एक स्वप्न में जीर्णशाला रतो हस्ति था। अर्थात् जीर्ण-क्षीर्ण गिरने जैसी हस्तिशाला में एक हाथी रहा हुआ था। उसकी जगह बहुत संकरी थी। हाथी हिल-डुल नहीं सकता था। पूंछ या सूंड भी यदि हिलाए तो हस्तिशाला की ईंट ऊपर गिरे। पीठ-खुजाले तो दिवाल गिरे।

इस स्वप्न का अर्थ समझाते हुए प्रभु महावीर ने कहा - हे राजन् ! इस स्वप्न में कलिकाल, दुषमकाल का स्वरुप बताया है। पंचम आरे में मनुष्यों का गृहस्थ जीवन बहुत दुखमय रहेगा। जीवन कष्टमय और स्वार्थ-प्रपंच से युक्त होगा। आमोद-प्रमोद के अनेक साधन होते हुए भी शांति या आनंद की प्राप्ति नहीं होगी।

दूसरों के लिए कितना ही करो लेकिन एक न एक दिन तुम थक जाओगे, निराश हो जाओगे। आत्मा ज्ञान से समृद्ध बनती है। जीवन संस्कार से समृद्ध बनता है। ज्ञानी पुरुषों का समागम करो, ज्ञान गोष्ठि करो। मनुष्य घर में रहता है या घर मनुष्य में रहता है। विचार करना। घर में एक कमरा प्रभु के नाम का रखना। जहाँ बैठकर सामायिक, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय, सेवा, उपासना करना। ज्ञान की अच्छी पुस्तकें पढ़ना, जिससे जीवन सद् संस्कार युक्त और ज्ञान से समृद्ध बने।

घर में रहने वाले को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि एक दिन सदा के लिए यहां से चले जाना है। यह यदि समझ में आ जाए तो दु:ख ही न रहे। कुछ ढुल गया, टूट गया, उफन गया, कोई कैसे और कोई कैसे वापरे, वस्तु कोई पैसे पचा गया, तो दु:खी मत हो। यह यदि हो गया तो जीव अणगार बन जाता है। न राग-द्वेष रहे, न कोई प्रतिबंध रहे, न बंधन रहे। जब जाना है, जितनी दूर जाना है वहां आराम से जाया जा सकता है। भाग कर जाने वाला मनुष्य भी किसी घर में से ही पकड़ाता है।

साधना जगत में मन की भूमिका

प. पू. आ. श्री विजय जयसुंदर सूरीश्वरजी म.सा. की वांचना

पुराने समय में आज जितनी सुख सुविधाएँ नहीं थी । इसलिए उनको इकट्ठा करना, संभालना ये उपाधि भी नहीं थी । भौतिक साधन संपत्ति या मूल्यवान वस्तु से मानी हुई सुविधाएँ मन को शांति नहीं दे सकती । आज का मानव इन साधनों के संग्रह से बहुत अशांत है । शांति-प्राप्ति के लिए मनुष्य अब आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हो रहा है । शांति के लिए एकांत स्थान, उद्यान, गुफाएँ, पर्वत की चोटी पर जाकर प्रयोग कर रहा है ।

ज्ञानी कहते हैं - ''जब तक मन में अनादिकाल से बैठा हुआ संसार का आकर्षण दूर नहीं होगा तब तक बाह्य प्रयोग मन को शांति नहीं दे सकते । कषाय बन्द नहीं होते तब तक ये सारे प्रयोग 'राख पर लीपने' के बराबर हैं, अर्थात् व्यर्थ हैं ।

* Those men are richest whose necessities are simplest, whose pleasures are simplest.
  आनन्द के विषय बिलकुल सामान्य होते हैं और जरुरतें सस्ती एवं सामान्य, ऐसे मानव सुखी रह सकते हैं ।

* ध्यान योग और कायोत्सर्ग जैन धर्म में ही देखने को मिलते हैं । यही परम् शांति का मार्ग है । सच्चे सुख की प्राप्ति का सटिक उपाय है । साधना मार्ग कठिन है, क्योंकि साधना का आधार मन है, मन का निग्रह चंचलता पर कंट्रोल हो तो ही मन आत्मा के साथ बैठने को तैयार हो सकता है । पूरी दुनिया का चक्कर सेकंड के छठे भाग में करने वाले मन को कैसे स्थिर करके रखना यह उपाय विचार करने जैसा है ।

मन स्थिर करने के 3 उपाय

1. <u>मन तृप्ति (अप्रशस्त)</u>   2. <u>मनोनिग्रह (प्रशस्त अनुबंध),</u>
3. सम्यग ज्ञान से मन को समझाना - मनाना ।

मनोनिग्रह साधना का प्राण है । मन की <u>अतृप्ति का शमन</u> कर ध्यान में नहीं बैठा जा

सकता। मन जो मांगे वो देकर उसको शांत करना उसे योग कहा है। यह एक बाल चेष्टा है, मन स्थिर होने की संभावना, न के बराबर है। दूसरा रास्ता – मनोनिग्रह का है; प्रशस्त योग है, कठिन है किन्तु लाभदायक है।

मनोनिग्रह करने के लिए 12 भावना का चिंतन, मन के प्रत्येक प्रश्न का समाधान देकर शांत करने का प्रयत्न करना कहा है। निरन्तर प्रयत्न से मन के संकल्प-विकल्प कम होंगे, मन शांत होगा। इसके लिए मन को समझाते रहो उसे प्रतिबंधित करो। बच्चा रोता हो तो माता-पिता एक चांटा मारकर उसे चुप कर देते हैं किन्तु 22 वर्ष का युवान पुत्र को प्रेम से समझाकर शांत किया जाता है। छोटे दोष हो तो अतृप्ति के शमन रुप प्रथम राह से मन को शांत किया जा सकता है। बड़े दोष के लिए भावना-चिंतन और समझाइश से काम लिया जाता है। साधक मन को निरन्तर समझा-समझाकर अशांत मार्ग पर जाने से रोकता है। अर्थात् आत्मा की तरफ गति करने को प्रेरित करता है। आत्मा और आत्महित को FOCUS में रख बाह्य भावों से दूर रखता है। मन कंट्रोल होता जाता है और संसार से अरुचि होती जाती है। अशुभ कर्म का उदय बलवान हो जाने पर कई वर्षों की मेहनत को निष्फल कर देता है।

'समरादित्य केवली' के उदाहरण में, मासक्षमण के पारणे मासक्षमण का कठिन तपस्या करने वाले 'अग्निशर्मा' तापस भी मनोनिग्रह करने में सफल हो गए थे किन्तु मान रुपी कषाय के कारण असमाधि में आ गए और दुर्गति में गए।

आत्मा और मन के युद्ध में मन यदि निर्बल बन जाता है तो कर्म बलवान हो जाते हैं और साधक को हार का अनुभव करना पड़ता है। ऐसे समय में भी यदि साधक पीछे न हटे और मन को समझाता ही रहे, मन को सबल बनाता है, इस प्रकार **Diversion** करते रहना चाहिए।

सम्यग् ज्ञान के द्वारा मन को मनाते रहे यह तीसरा उपाय कहा है। जीवन में जो आग्रह नहीं रखते स्वयं को कषाय का पोषण करने के लिए 'मेरा सो सच्चा' नहीं करता वह जीवन की लड़ाई जीत जाता है। और कर्मों से बच जाता है। सज्जनता महागुण है उसको अपनाइए।

'आग्रह नहीं वहां अपेक्षा नहीं' जहां अपेक्षा नहीं वहां अशांति नहीं। समाधान युक्त आत्मा को सहज समाधि प्राप्त होती है। सम्यग् ज्ञान ऐसा ही होना चाहिए। यह हठवादिता से विजय प्राप्ति करवाता है। संसार की प्रवृत्ति में पूरा ध्यान रखकर निराग्रही बनना। मनोनिग्रह करने से ध्यान तो आता ही है साथ ही जीवन में कहीं संघर्ष भी नहीं आता और न ही अशांति का सर्जन होता है। जीवन झरना शांत बहता रहता है।

ध्यान 4 प्रकार का ध्यान :-

पिंडस्थ, पदस्थ, रुपस्थ, रुपातीत।

धर्मध्यान :- आज्ञाविचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय।

ध्यान की भूमिका में यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, मन की उद्विग्नता को बढ़ाने वाले आहार का त्याग, मन-वचन-काया की वृत्ति-प्रवृत्तियों पर नियंत्रण, निमित्तों का त्याग, मौन-वृत्ति आदि अनेक अंग मनोविजय के महत्व के अंग है।

भावांतर में भी मनोनिग्रह की साधना सानुबंध बनती है। अशुभ से दूर रहिए। आत्मा में शुभ संस्कार ही भवांतर में साथ आते हैं। साधना से मन की तृप्ति अप्रशस्त (गलत) योग है। समाधान और मनोनिग्रह प्रशस्त योग है। कुर्यात सदा मंगलम्।

'मनोविजय और आत्मशुद्धि' पुस्तक में से

Analysis of

चेतना - शुद्ध भाव, भाव मन - अशुद्ध भाव

द्रव्यमन जड़ अणु-परमाणु की रचना है, इसलिए आत्मा से अलग समझा जाता है। आत्मा चैतन्यमय है। मस्तिष्क (दिमाग) जिसको अपने जैन विज्ञान में 'मन:पर्याप्ति' कहते हैं वह भी जड़ है। मस्तिष्क में रहे हुए सूक्ष्म ज्ञान तंतु, उसमें रहे हुए नर्वस सिस्टम (चेतना तंत्र), जैविक रसायन और प्रवाही सभी जड़ की रचना का संयोजन है। अत: इन सबका नियंत्रण चेतन से होता है। मन: पर्याप्ति जड़ है, द्रव्यमन जड़ है इसलिए आत्मा से अलग है, उसको सरलता से समझा जा सकता है।

जड़ अणु-परमाणु की रचना में द्रव्यमन, मस्तिष्क अथवा मन:पर्याप्ति, नर्वस सिस्टम, जैविक रसायन, प्रवाही आदि सभी आ जाते हैं।

भाव मन चैतन्य मय है, फिर भी आत्मा से अलग है। 24 घंटे चेतन का उपयोग चलता रहता है उस उपयोग मन को भावमन कहते हैं।

भावमन में क्या-क्या होता है ?

* अनंत काल से कई जन्मों के संस्कार संग्रह रुप में पड़े रहते हैं।
* कुसंस्कार, अशुद्ध वृत्तियाँ भाव मन में होते हैं।
* क्रूरता की वृत्ति या स्वार्थवृत्ति, काम वासना वृत्ति, लोभ वृत्ति।
* इस भव की, गए भव की, असंख्य भवों की वृत्ति वही होती है।

अशुद्ध चेतना, विकृत चेतना, मोहात्मक चेतना वह भाव मन है, शुद्धचेतना, ज्ञान चेतना वह आत्मा है। शुद्ध चेतनामय स्वरुप वह आत्मा का स्वरूप है।

भाव मन में शुभाशुभ दोनों भाव हैं। क्योंकि वह अशुद्ध चेतना मोहात्मक चेतना है। शुभ-अशुभ अशुद्ध चेतना के ही भेद हैं।

आत्मा अर्थात् आत्मा के गुण, स्वरुप, स्वभाव, पर्याय सभी आत्मा में ही आते हैं।

भावमन से शुभाशुभ दोनों विकारी भाव समझना। अशुद्ध चेतना अनंतकाल से आत्मा के साथ जुड़ी हुई है। वह बहुत से छुटती है और जब छुटती है तब जीव वीतरागता प्राप्त कर लेता है। जब तक मन को नहीं मारोगे तब तक वीतराग नहीं बना जा सकता। जब भावमन का उच्छेद होगा तभी वीतरागता प्राप्त होगी।

भाव मन में उपयोग मन और लब्धिमन दोनों आ जाते हैं। उपयोग मन ही चेतनामय है। लब्धिमन में चेतना नहीं है।

भावमन अनंतकाल से आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है। भाव मन में अगले भव के एवं इस भव के संस्कार, वृत्ति, परिणति, गहरे अंदर पड़े हुए हैं।

11वें 12वें में गुणस्थानक में भावमन जो अशुद्ध चेतना है उसका क्षय होने पर वीतरागता प्रकट होती है। इसलिए अरिहंत को भावमन होता ही नही। याद रखना भावमन-मोहात्मक चेतना। अरिहंत को ज्ञानात्मक चेतना जो आत्मा का स्वभाव है, वह होती ही है।

11वें गुणस्थानक में भी वीतरागता है; वहाँ मोहात्मक भाव नहीं है, जिससे उसको अमनस्क योग कहते हैं। 11वें गुणस्थान में कषाय शक्ति रुप है, व्यक्त रुप नहीं। 11वें गुण स्थानक में वीतराग को आसक्ति व्यक्त रुप नहीं - शक्ति रुप में है। इसीलिए वे अपने भावों से नीचे गिर जाते हैं।

राग की दशा में अंतर है। कोई राग अभिव्यक्त होता है किन्तु उसे कोई निमित्त नहीं मिला इसलिए तो खड़ा नहीं हुआ किन्तु अंदर हृदय के तहखाने में दबा हुआ है जैसे राख में अंगारे छिपे होते हैं। भविष्य में उत्पन्न हो सकते हैं यह उनकी शक्ति है।

* **आत्मा देह से भिन्न है, मन और आत्मा एक नहीं, अलग है।**

  देह आत्मा से भिन्न है।

  मन आत्मा से भिन्न है।

  इन्द्रियाँ आत्मा से भिन्न हैं।

* **चित्त, मन, बुद्धि, मस्तिष्क (दिमाग) इस सभी शब्दों का अर्थ समझिए।**

  चित्त = मन

  मन = चित्त

  बुद्धि = मन का अविभाज्य अंग

  मस्तिष्क (दिमाग) = मन:पर्याप्ति।

बुद्धि, मन का अविभाज्य अंग है। जैन दर्शन मन और चित्त को अलग नहीं मानता। मन शुद्धि हो और आत्म शुद्धि न हो तो, चाहे मन शुद्धि कितनी ही क्यों न हो उसका कोई मूल्य नहीं। आध्यात्म शुद्धि अर्थात् आत्मशुद्धि।

✻ मन है वो ही चित्त

द्रव्य मन
जड़ है

मन पर्याप्ति : दिमाग जड़ है
दिमाग वह जड़ है, उसमें रही हुई
Nervous System (चेतन तंत्र)
यह भी जड़ है, जैविक रसायन
प्रवाही सभी जड़ है
✻ दिमाग का नियंत्रण चेतना
(आत्मा) द्वारा ही होता है

भाव मन
चैतन्यमय है

उपयोगमन
चैतन्यमय है
✻ स्वार्थवृत्ति
✻ कामवासना
✻ इस भव की, गत भव
की असंख्य वृत्तियाँ
✻ संस्कार सभी चेतना
स्वरुप हैं।
✻ अशुद्ध चेतना,
मोहात्मक चेतना, विकृत
चेतना ये भावमन।
✻ शुद्ध चेतना - ज्ञान चेतना
ये आत्मा है।

लब्धिमन जड़ है
यहां चेतना नहीं
जड़ है
Storage of all feelings
मन का गोडाउन है
उपयोग मन
से करोड़ गुना
विशाल है।

✻ भाव

शुद्ध भाव
ये ज्ञान चेतना है
आत्मा का मूल स्वरुप है।

अशुद्ध भाव
शुभ भाव - अशुभ भाव

✻ दिमाग ये मन:पर्याप्ति है, मन नहीं।
मन: मन की सक्रियता (Activeness) 24 घंटे चालू ही रहती है।
मन के दो प्रकार
1. द्रव्य मन :- दिमाग से अत्यन्त सूक्ष्म मनोवर्गणा पुद्गल से बनी हुई।
2. भावमन :- उपयोग मन और लब्धि मन।

मानव मन की मोनोपॉली (Monopoly) क्या है ?

मानव मन उच्च से उच्च और नीचे से नीचे भाव प्रयाण कर सकता है। देव भव के मन में दोनों किनारे तक जाना संभव नहीं है। शुद्धि और अशुद्धि के चरम शिखर का स्पर्श करने की मन की प्रबल शक्ति सिर्फ मानव भव में है। मन के रहस्यों को जो समझ लेता है तो इस मानव भव को सफल किया जा सकता है।

मन एक क्षण में पूरी दुनिया में भ्रमण कर वापिस आ सकता है। जो एकाग्रता आ जाए तो मन की शक्ति गजब की है।

द्रव्य मन :- अति सूक्ष्म मनोवर्गणा के पुद्गलों से बना साधन है। द्रव्य मन का आकार और विचार भाव के अनुरुप निरंतर बदलते रहते हैं। द्रव्य मन जड़ है और जबकि भाव मन चैतन्यमय है।

भावमन :- अनंत जन्मों के अनुभवों से उत्पन्न होने वाले अच्छे-बुरे संस्कार या शुभाशुभ भाव भावमन में संग्रहित होते हैं। यह मन मोह के सर्जन का घर और मोह के विसर्जन का साधन है। कषायों से संयुक्त मन वह संसार है और इससे मुक्त होना ही मोक्ष है। कर्म का बंध या निर्जरा वचन/काया की प्रवृत्ति में, जो मन मिले तो ही होता है। इसलिए मन का बहुत महत्व है।

मन

मनुष्यत्व जीवन की ज्ञानियों ने बहुत प्रशंसा की है तो देव भव की प्रशंसा ऐसी क्यों नहीं की ?

अपने पास ऐसी क्या वस्तु है जो देवों के पास नहीं ? ''प्रबल शक्ति युक्त मानव का मन''। वैसे मन तो दोनों के पास हैं परन्तु देवों का मन शक्ति और क्षमता की दृष्टि से बहुत अक्षम है। मानव का मन अनंत शक्ति सम्पन्न है।

विज्ञान जिसको मन कहता है वह BRAIN मनः पर्याप्ति है। जैन परिभाषा में मनोवर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ मन BRAIN से बिल्कुल अलग है (जीव ग्राह्यवर्गणा-औ.वै.आ., भाषा, मनो., श्रा., तै., का.)

हमारी 24 घंटे देह के साथ रहने की आदत पड़ गई है। नींद में कुछ समय के लिए अलग हो जाते हैं परन्तु मन के साथ हमारा संधान 24 घंटा रहता है।

मन तो नींद में भी सक्रिय ही रहता है। मन और इन्द्रियाँ पृथक हैं। मन और आत्मा अलग है। किन्तु मन की प्रत्येक प्रवृत्ति आत्मा पर प्रभाव डालती ही है। आत्मा के साथ सबसे अधिक मन का संबंध है। इसके जैसा पुराना संबंध है ही नहीं। अपने संबंध पुराने से पुराने हैं .... !!

जो मन से गुलाम उसको मोक्ष से जुखाम ....

जिसने मन को नहीं जीता उसका जीवन व्यर्थ है। मोक्ष को पाना है तो मन से पार पाना ही पड़ेगा। मन ही मुक्ति की साधना के लिए मुख्य कड़ी है। मानव मन (Flexible) है। जैसे मोड़ना चाहो वैसे मुड़ सकता है। मन का स्वभाव परिवर्तनशील (Changeable) है।

84 लाख जीवायोनि में मानव मन जितनी उत्कृष्ट ऊँचाई या नीचाई तक शक्तिमान होने योग्य दूसरा कोई भव नहीं। यही मानव मन की वास्तविक विशिष्टता है। देवता कितना ही प्रयास कर ले किंतु ऊँच-नीच की सीमा के दोनों छोर तक नहीं पहुँच सकते। मानव मन ही जा सकता है। भाव प्रयाण की Limits Unfathomable है। इसलिए मन के पुरुषार्थ द्वारा आमूल-चूल परिवर्तन हो सकता है।

शुद्धि और अशुद्धि के चरम शिखर का स्पर्श करने की शक्ति मात्र मानव मन में ही है। मन चाहे तो एक वस्तु में एकाग्रता भी ला सकता है।

अध्यवसाय, आत्मानंद जैसे शब्द भारतीय धर्म के अतिरिक्त अन्य कहीं मिलता ही नहीं। Salvation शब्द मोक्ष का पर्यायवाची मानते हैं। परन्तु Salvation का अर्थ पाप की मुक्ति होती है। मोक्ष में तो पुण्य की भी मुक्ति है।

पुद्गलों से अत्यन्त सूक्ष्म ऐसा मनोवर्गणा के पुद्गल से बना साधन ही मन है। जो द्रव्यमन कहलाता है। जड़ परमाणु की रचना से बना हुआ विशेष आकार वाला द्रव्यमन है।

विचारों-भावों-अध्यवसायों के अनुरुप इसका आकार निरंतर बदलता रहता है।

मन:पर्यवज्ञानी मुनि, रुपयुक्त ऐसे मन को वे स्पष्ट देख सकते हैं। सामान्य इन्द्रियों से अति सूक्ष्म होने से ग्राह्य नहीं है। जड़ पुद्‌गल से बना हुआ है। आत्मा तो अरुपी है, वहां चेतना है। आत्मा को प्रत्यक्ष केवलज्ञानी ही कर सकते हैं। द्रव्यमन का प्रभाव 24 घंटे हम अनुभव करते हैं।

द्रव्यमन साधन है। विशेष महत्व तो भावमन का है। जो आत्मा के साथ जुड़ा हुआ है। यह भावमन चैतन्यमय है, जबकि द्रव्यमन जड़ है।

अनंत जन्मों के अच्छे बुरे संस्कार के शुभाशुभ भाव मन में जमा रहते हैं।

* कषाय और विकारों से वासित मन वो ही संसार और उसमें सर्वथा मुक्त मन वो ही मोक्ष।
* मात्र काया, वाणी या इन्द्रियों की प्रवृत्ति के कारण कर्मबंध नहीं होता किंतु इस प्रवृत्तियों में मन मिल जाता है तो ही कर्म का बंध या निर्जरा होती है।
* सुख-दु:ख का कारण मन और बंध - मोक्ष का कारण भी मन। श्री सिद्धर्षिगणी लिखित 'उपमिति भव प्रपंचा कथा' ग्रंथ मनोविज्ञान का विश्लेषण (Analysis) समझने के लिए अद्वितीय ग्रंथ है। उसमें लिखा है ''मन के सुख के बिना कोई सुखी नहीं होता और मन के दु:ख के बिना कोई दु:खी नहीं होता।'' जीवन में प्रत्येक वस्तु संबंधी सत्य-असत्य का निर्णय तुम्हारा भावमन ही करता है। टकटकी लगाए विकारी दृश्य देखती आंखों में, यहां आखें अपराधी नहीं, तुम्हारा भावमन अपराधी है। कारण कि - विकारों का जन्म ही भावमन में होता है। Amazing..... !
* द्रव्यमन साधन है, प्रेरक तो आत्मा है। आत्मा ही एक ऐसा तत्व है कि जो स्वयं को पहचान सकती है। समझा भी सकती है और स्वयं को बदल भी सकती है। आत्मा जैसा कोई दूसरा तत्व नहीं है जो इस प्रकार स्वयं को समझा सके और बदल सके।

* आत्मा ही आत्मा को, आत्मा में, आत्मा द्वारा जानती है, यही आध्यात्म है । यही सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है । इस विश्व में कर्ता, हर्ता, भोक्ता सभी कुछ आत्मा है । आत्मा के चमत्कार देखने के लिए भी दृष्टि चाहिए ।
* तुम्हारी चेतना, चेतन स्वरुप में आत्मा में आत्मा द्वारा आत्मा के लिए आत्मा को देखती है, जानती है, अनुभव करती है - इसी का नाम आध्यात्म है ।
* In essence अपनी चेतना में कर्तव्य जो बाहर पुद्गल में, जड़ में है, उसे अंदर आत्मा में ले जाना वह आध्यात्म ।
* भाव मन यह द्रव्यमन द्वारा आत्मा में उत्पन्न होने वाले भाव हैं । असंज्ञी को भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म द्रव्यमन होता है । सिर्फ 14वें गुणस्थान में द्रव्यमन नहीं होता । द्रव्यमन सभी योनि में होता है । अन्यथा आत्मा उपयोग का प्रवर्तन नहीं कर सकती ।

भावमन से कर्मबंध होते हैं । कर्मबंध 4 प्रकार के होते हैं :- 1. स्पृष्ट, 2. बद्ध स्पृष्ट, 3. निधत्त, 4. निकाचित ।

राग, द्वेष, मोह, मान, माया, असूया, आसक्तियों की परिणतियाँ भाव मन में ही रहते हैं। ऐसे असंख्य भावों के कारण आत्मा पर निरन्तर कर्म आते ही रहते हैं । सभी जीवों को भाव मन होता है । कर्म बंध भाव मन से ही होता है ।

भाव मन अंदर में रहे हुए आत्मा के भाव हैं । द्रव्यमन, अणु-परमाणु की संरचना है । भावमन निरंतर सक्रिय है । इसीलिए आत्मा एक क्षण भी मनोभावों से दूर नहीं रहती । चींटी जैसा छोटे जीव को भी हर क्षण भाव होता ही रहता है । मनोभाव से शून्य कोई भी आत्मा इस जगत में नहीं । प्रतिक्षण उत्पन्न होने वाले मनोभाव को उपयोग मन कहते हैं ।

भाव मन के दो भेद हैं :- 1. उपयोग मन (Conscious Mind), लब्धि मन (Unconscious Mind or Subconscious mind.)

मन की चंचलता और तरलता (विविध विषयों में दौड़ जाना) उपयोग मन के आभारी हैं ।

उपयोग मन गतिशील स्वभाव वाला है । उपयोग मन सपाटी है (Surface) It is lika a computer screen what you see is not all what computer has in it. लब्धि मन अधिक गहराई वाला उड़ने वाला है । विचार आदि का Store house है । गहरे उपयोग मन से कई गुना विशाल है । लब्धिमन - भावमन का तल (Bottom) है ।

मन का अध्ययन सपाटी अर्थात् उपर से नहीं अंदर की गहराई से करना । जीवन निमित्त के अधीन है । (प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के उदाहरण से इसे स्पष्ट समझा जा सकता है । अपने वातावरण या संयोगों से पर नहीं बने किन्तु निमित्त के द्वारा पर बने हैं) जिन निमित्तों से पर हुए वह समता से ही हो सकते हैं । गलत निमित्तों का असर अधिक होता है और अच्छे निमित्तों का प्रभाव कम अनुभव होता है ।

धर्म की सफलता असफलता का आधार तुम्हारी मनोवृत्ति पर है । शालिभद्र ने दान देकर फल प्राप्त किया वह सफलता मध्यम थी । जीरण सेठ ने सुपात्रदान का उत्कृष्ट फल प्राप्त किया । वह मोक्ष जाने वाला जीव है । अभिनव सेठ का दान निष्फल गया । सुपात्र दान का फल किंचित भी नहीं पा सका । मम्मण सेठ का दान विपरीत हुआ ।

<u>लब्धिमन :-</u> आध्यात्म की साधना द्वारा लब्धिमन का पूर्णत: परिवर्तन करना है । ये परिवर्तन लाने के लिए सपाटी का उपयोग मन की गतिशीलता के प्रवाह को संभालना पड़ेगा । चाहे जहाँ आकर्षित होकर जाए तो उसे वहां न जाने देना ।

व्यर्थ विचार न करना, न बोलना , न व्यर्थ कोई काम करना । मन का अभ्यास करो । <u>सामायिक से सपाटी शुद्ध होती है ।</u> किन्तु <u>लब्धिमन के कचरे को शुद्ध करना जरुरी है ।</u> इसलिए क्रिया <u>भावुक</u> होना चाहिए । सिर्फ पैसे के विचार से कर्मबंध नहीं होता । 24 घंटे तुम्हारे अच्छे बुरे विचारों का मूल्यांकन करो। फिर तुमको ही हंसी आएगी तुम्हारे मन की गति असावधानी वश कहां जा रही है, यह मालूम पड़ेगी । अच्छे विचारों के बाद बुरे विचार आते हैं और बुरे के बाद अच्छे । यह तुम्हारे अंदर की वृत्तियाँ से ही आभारी हैं । प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के दृष्टांत से यह पूर्ण समझ में आ जाता है ।

प्रकृति में परिवर्तन आता है तब कर्मबंध में बहुत इजाफा होता है।

निसीहि-निसीहि बोलकर मंदिर में प्रवेश करते समय संसार का विचार नहीं करुं, इसलिए निसीहि का अर्थ प्रथम श्रद्धा अर्थात् मस्तक पर तिलक करना। यानि प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करना। संसार छोड़ने जैसा है, संयम लेने जैसा है। मोक्ष प्राप्त करने जैसा है। इस त्रिपदी का भाव आत्मसात हो उसको उस निमित्त का पुण्यबंध होता है। प्रतिदिन इस त्रिपदी का स्मरण करते रहो।

तुम अंदर से क्या हो वह बहुत गंभीर विषय है। सरल स्वभावी मनुष्य भी अंदर यह सोचता है कि समय आने पर कभी छल-कपट करना पड़े, ऐसा मानने वाला उसका समर्थक है। उसको कर्तव्य मानकर चलता है तो अनुमोदना से पाप तो उसे लगता ही है।

हिंसा का आचरण करें परन्तु मन में अच्छी न मानने पर निमित्त से परे तो बना ही। इसलिए समता में रहने की क्षमता वाला है - यह इसका निचोड़ निकलता है। धर्म की सफलता असफलता का आधार तुम्हारी मनोवृत्ति है।

* भावमन की 4 शक्तियाँ हैं :-

1. संवेदन शक्ति 2. विचार शक्ति, 3. ज्ञाता शक्ति और 4. परिवर्तन शक्ति।

इस मनोशक्ति को विकसित करने का एकमात्र उपाय ध्यान है। ध्यान में बैठने से पहले चिंतन, भावना और अनुप्रेक्षा इस प्रकार 3 स्वरुप हैं

द्रव्यमन - विचार करने का साधन है। इस साधन के द्वारा अंतर आत्मा में उत्पन्न होने वाले भावों के समूह को भावमन कहते हैं।

उदाहरण :- कान साधन हैं - सुनने का। सुना या विचार किया यह ज्ञान है। शब्द का अर्थ समझो वह ज्ञाता शक्ति कान रूपी साधन से मिलती है उसमें मन से काम लेकर जो भाव अंतर में उत्पन्न किए वे भावों का समूह भावमन कहलाता है।

* श्रद्धा और विश्वास, मान्यता और परिवर्तन यह जीवन का सच्चा कवज है।

''श्रद्धांध''

मन को जानो, मन को समझो (पुस्तक से)

प. पू. कीर्तियशसूरीश्वरजी म.सा.

आत्मा भावयुक्त कैसे होती है ?

चित्त भ्रमण करता रहता है, विचरण करता रहता है, उसे विचार कहते हैं। उस विचार को 'चिंता' कहते हैं। चित्त कहो या मन कहो, सामान्य रुप में दोनों का एक ही अर्थ है। चित्त की 'अस्थिर' अवस्था 3 भागों में विभाजित है :-

1. चिंता (चिंतन), 2. भावना और 3. अनुप्रेक्षा।

ध्यान चित्त की स्थिर अवस्था है।

एक ही वस्तु से आत्मा भावित होती है, इसी तरह बारंबार विचार आते रहें वह भावना है। एक ही बात को बड़ी चाह से पुनः पुनः विचार करने से आत्मा भावित होती है। चिंतन करते-करते भावना में मन घिर जाता है और अधिक सूक्ष्म बन जाता है। जिन विचारों से मन भावित हुआ हो उसी के एक मुद्दे Point पर मन स्थिर हो जाता है। उसे ध्यान कहते हैं। इस ध्यान से बाहर आने के बाद ध्यान के प्रभाव के कारण चिंतन के गहरे विचार में गहराई आए, बढ़ जाते हैं, विस्तार बढ़ता जाता है और जिस सूक्ष्मता की तरफ आगे बढ़ते हैं वह है अनुप्रेक्षा। अनुप्रेक्षा ध्यान बाद की अवस्था है।

मन एकाग्र होता है तब आत्मा का उपयोग किसी भी एक विषय पर स्थिर हो जाता है। अन्य विषयों से दूर हो जाता है। इसी को ध्यान कहते हैं।

5 इन्द्रियाँ स्वयं का काम करती हैं तब आत्मा का उपयोग मन द्वारा इसके साथ जुड़ जाता है। इसी से नाक सूंघता है, आंख देखती है, कान सुनते हैं आदि। आत्मा का उपयोग नहीं जूड़ता है तो चाहे कितना ही चिल्लाकर आवाज दे तो भी नहीं सुनाता और जब जुड़ जाता है तो धीरे से कोई बोले तो भी सुना जाता है।

अनु = पीछे से, प्र = प्रकर्ष और ईक्षा = देखना। ध्यान में से बाहर आने के बाद गहराई से हर प्रकार से विचार करना वह अनुप्रेक्षा।

✻ दृढ़ प्रहारी का उत्तम चिंतन :- Ultra Positive thinking...

1. जैसा कर्म करे वैसा फल मिले।
2. एकदम निर्दय बनकर मेरे ऊपर जो आक्रोश कर रहा है उससे मेरी तो बिना प्रयास के 'निर्जरा' हो रही है।
3. मनुष्यों को आक्रोश का आनंद आ रहा है वैसे मुझे भी निर्जरा रुप आनंद आ रहा है।
4. संसार में सुख दुर्लभ है। लोगों को क्रोध से बकवास करके आनंद आता है। उसमें मैं निमित्त बन रहा हूँ उनके सुख का निमित्त मेरा भाग्य बन रहा है।
5. उनके द्वारा मुझे मारना, मेरे कर्म को मार पड़ रही है, जिससे वे कर्म दूर होंगे। मुझे मार रहे हैं, सहन करने से ही मेरे कर्म क्षय होंगे।
6. जो अपने पुण्य का व्यय करके मेरे पापों को दूर कर रहे हैं इनके जैसा प्रिय बंधु कौन होगा?
7. मेरे ऊपर उपद्रव करने वाले ने मेरा तिरस्कार ताड़ना - तर्जना की है। मुझे मारा तो नहीं? मुझे मारने वालों ने मुझे मार से ही मारा है - पूरा तो नहीं मार डाला, जिन्होंने मारने का प्रयत्न किया तो उन्होंने मेरा धर्म तो नहीं लिया ना ? इसलिए उन्होंने मेरी दया ही की है तो वे मेरे सच्चे बंधु जैसे हितैषी हैं।

   याद रखें - कल्याण अनेक विघ्नों और अवरोधों से घिरा हुआ है। दुष्कृत्यों की निंदा - घृणा (गर्हा) में महर्षि दृढ़ प्रहारी ने अपने संचित कर्मों को पूर्णत: जला दिए और दुर्लभ केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष चले गए।

किंचित आध्यात्म पूर्ण विचार :-

✻ राग व द्वेष वस्तु में नहीं, मन में है।

✻ अनुकूलता का राग छोड़ो और प्रतिकूलता का द्वेष छोड़ो। प्रभु महावीर ने परिषह सहन किए तो इसका रहस्य, इसका मतलब समझने योग्य है।

✻ आर्त्तध्यान के निमित्तों से नहीं किन्तु इसके चिंतन से दूर रहो। नापसंद - व्यक्ति या

स्थिति के प्रति नफरत ही आर्तध्यान की प्रथम सीढ़ी है। दृढ़ प्रहारी ने परिस्थिति को स्वीकार किया और मोक्ष को प्राप्त किया। ''जिस दिन मुझे मेरा पाप याद आएगा उस दिन मैं भोजन नहीं करुंगा।'' और क्षमा धारण करुंगा। दृढ़ प्रहरी ने साधु जीवन स्वीकार करने के बाद यह प्रतिज्ञा ली थी।

* रोग - वियोग प्रणिधान - रोग को समभाव से सहन करना यह कर्म को दूर करने का श्रेष्ठ उपाय है।
* दर्द जहाँ हैं वहीं रखो, मन तक न आने दो। उसको खुशी से सहन करो।
* शरीर की ममता को कम करने के लिए - 1. अनित्य, 2. अशरण, 3. संसार, 4. एकत्व, 5. अन्यत्व, 6. अशुचि, 7 आश्रव, 8. संवर 9. निर्जरा, 10. लोक स्वभाव, 11. बोधि दुर्लभ, 12. धर्म स्वाख्यात आदि भावनाएँ उपकारकर बनती हैं।

'मनोविजय और आत्मशुद्धि' (पुस्तक से....)

गुणों में सुख का अनुभव नहीं होता - तब तक मन उसको सुख का साधन मानने को तैयार नहीं होता। इसलिए 'मान्यता' नहीं बदलाती है।

'सुरनर पंडित जन समझावे, समझ नहीं मारो सालो'

आनंदधनजी ने गाया है . मन सबको समझाता है परन्तु स्वयं को कौन समझाएँ ?

* मनोविजय की साधना की 5 सीढ़ियाँ :-

1. श्रद्धा :- पंगु मन से ज्यादा आत्मा की प्रबल शक्ति में विश्वास।
2. संकल्प बल :- 'मुझे मन को जीतना ही है' संकल्प।
3. संवेग :- निरंकुश मन के तूफान - वासना - विकारों से उद्धेग प्राप्त करना, वैराग्य का राग।
4. समझ :- मन को समझाना और कबूलात से उसे कंट्रोल में करने की Technique।
5. साधना :- मनोविजय के आलंबन या अनुष्ठान में निरंतर प्रयत्नशील, पुरुषार्थ और ज्ञान चिंतन चालू रखना।

समझ

1. समझ का अर्थ = जानना। इसको दांव पेच के विभाग रुप माना गया है।

   मन को कंट्रोल में करने के लिए पहले साम-दाम-फिर दंड-भेद।

   तरकीब से गलती उगल जाती है और वहीं कान पकड़ा जाता है, सीधे रुप से ठिकाने न आए तो ....।

2. मन को ठगने की वृत्ति का वंचना कहीं कही है 'जबर्दस्ती नहीं'।

   मन को ठिकाने लाने के लिए उसको फ्री नहीं रखना अन्यथा भटकता फिरेगा।

3. मन में चंचलता किस कारण से ? वासना-कुबुद्धि के कारण।

   Subconscious Mind (लब्धिमन) में अशुद्धि है जो चंचलता लाती है। उल्टी मान्यता चंचलता के कारण है। विचारों की स्थिरता, एकाग्रता, अंदर लाने की साधना है।

* चंचल मन के पास शुभ योग में सतत परिश्रम करते रहो कि वह कहीं दौड़कर न जाए।

(हेमचंद्राचार्य - योगशास्त्र)

बुद्धि या अनुभव के द्वारा मन को Conscious करना। कंट्रोल में जरूर आएगा। धर्म के पायदान के सिद्धांत मन को जो स्वीकृत करा सको तो मन तुम्हारे अनुसार हो जाएगा।

अनेकान्तवाद

तत्वार्थाधिगम सूत्र से - विवेचक - प. पू. राजशेखरसूरीश्वरजी म.सा.

प्रत्येक वस्तु में परस्पर विरोध धर्म रहे हुए हैं। निर्बलता भी और बल भी, विद्वान और मुर्ख, निर्भय और भयभीत। ऐसा होने से इस पर शंका उत्पन्न होती है कि क्या प्रकाश और अंधकार दोनों एक स्थान पर रह सकते हैं क्या ? यह आश्चर्य या शंका निवारण करने वाला सिद्धांत उसका नाम अनेकान्तवाद।

अनेकान्तवाद कहता है कि परस्पर विरोधी लगते धर्म बताते हैं, जबकि ऐसे विरोधी कोई है नहीं अपेक्षा भेद से ये धर्म विरोधी है ही नहीं।

अनेकान्त = अन् (निषेध = नहीं), + एक + अन्त (पूर्णता) एक से पूर्णता नहीं वह अनेकान्त।

हाथी बलवान है परंतु सिंह के सम्मुख निबल। अपेक्षा से हाथी, गाय-बेल के सामने बलवान किन्तु सिंह के सामने एकदम चूहे जैसा।

संस्कृत के प्रोफेसर विद्वान होते हैं परन्तु खेती के विषय में उनसे प्रश्न पूछा जाए तो अपेक्षा से प्रोफेसर बुद्धिमान पर इस अपेक्षा से बुद्धू।

इसलिए अनेकान्तवाद को स्याद्वाद (अपेक्षावाद) भी कहतें हैं। अपेक्षा अर्थात् नय अनेक धर्मों में से कोई एक धर्म का बोध हो उसे नय और जिसे परस्पर विरोधी दिखते अनेक धर्मों का बोध हो उसे अनेकान्तवाद।

अनेकान्तवाद महल का नय उसके पाये हैं। नय के उपर ही अनेकान्तवाद रचित हुआ। अनेकान्तवाद साध्य है, नय उसका साधन है।

जितनी अपेक्षाएं उतने नय, अपेक्षाएं अनंत हैं तो नय भी अनंत हैं। संक्षिप्त करके महापुरुषों ने सभी नयों को सात नयों में सीमित कर दिए।

1. नैगम - गम दृष्टि, ज्ञान, विशाल दृष्टि सामान्य और विशेष दोनों को Include करें।
2. संग्रह - सभी विशेष धर्मों को एकरुप, सामान्यरुप में देखने की दृष्टि।
3. व्यवहार - विशेष के बिना सामान्य से व्यवहार नहीं चलता। मानते हैं; वनस्पति को लाओ कहने से नहीं चलता, नीम को लाओ कहना पड़ता है।
4. ऋजुसूत्र - केवल वर्तमान अवस्था को लक्ष्य में रखें।
5. संप्रत - शब्द - शब्द आश्रयी विचारधारा।
6. समभिरुढ - एक शब्द अनेक अर्थ निकलते हैं। जैसे नृप - रक्षण करने वाला। राजा - राज चिन्ह धारण करने वाला, भूप - पृथ्वी का पालन करने वाला।
7. एवंभूत - वर्तमान में जो गाता है उसे ही गायक कहते हैं। व्युत्पत्ति सिद्ध भेद से जो अर्थ करे वह नय है।

अनेकान्तवाद :- सारभूत मर्मग्राही सिद्धांत है

प. पू. गणिवर्य श्री युगभूषणविजयजी म.सा.

प्रभु महावीर की वाणी का सर्वस्व, सार का भी सार, तत्व का भी तत्व, सभी का जो दोहन होता है, वह अनेकान्तवाद है। संपूर्ण जैन शासन की विशेषता इसी पर आधारित है। वाक्य के अर्थ को सच्ची अपेक्षा से जोड़ दो तो सच्चा अर्थ समझ में आ जाए, इसी का नाम अनेकान्तवाद !

हमने प्रभु महावीर उनके सिद्धांत और तथ्यों को पहचाना नहीं। सिर्फ Packing लेकर धूम रहे हैं। जैन धर्म लेकर घूम रहे हैं किन्तु उसका वास्तविक परिचय तो है नहीं। एकांत व्यवहार नय नहीं है। एकान्त से निश्चय नय भी नहीं। दोनों को एक साथ पकड़ना है तो ही उद्धार होगा।

आश्रव तत्व को एकांत विचार से हेय कहा है। ऐसा क्यों ? किसी ने प्रश्न किया :-

नीची कक्षा (भूमिका में) में अमुक आश्रव उपादेय भी है, जैसे कि - तीर्थंकर नाम कर्म - एकान्त से आश्रव को हेय कहने वाले एकांतवादी हैं।

व्यवहार नय :- प्रथम गुणस्थान से आध्यात्म मानते हैं।

निश्चय नय :- पांचवे गुणस्थान से आध्यात्म मानते हैं। समकित बीच गुणस्थान में आता है। योग 5वीं दृष्टि से सम्यक्त्व आता है।

नमुत्थुणं सूत्र की पांचवी गाथा

प्रथम पद	अभयदयाणं	योग की प्रथम दृष्टि	मित्रा
दूसरा पद	चक्खुदयाणं	योग की द्वितीय दृष्टि	तारा
दूसरा पद	मग्गदयाणं	योग की तृतीय दृष्टि	बला
चौथा पद	शरणदयाणं	योग की चतुर्थ दृष्टि	दिप्रा
पांचवा पद	बोहिदयाणं	योग की पंचम दृष्टि	स्थिरा
छठा पद	धम्मदयाणं	योग की षष्ठम दृष्टि	कांता
		योग की सप्तम-अष्टम दृष्टि	प्रभा-परा

निश्चय नय, समकित के बाद सत्य धर्म मानता है । समकित केवल धर्म की श्रद्धा बढ़ाता है वैसा मानता है । व्यवहार नय प्रथम गुण स्थान से आध्यात्म को मानता है ।

हरिभद्रसूरि :- जिन शासन को मिली हुई अमूल्य भेंट :-

साध्वीजी 'याकिनी महत्तरा' रात्रि के समय स्वाध्याय कर रहे थे । रात्रि को प्रथम प्रहर में हरिभद्र राजपुरोहित को राजमार्ग से जाते हुए श्लोक सुनने में आया । खड़े रह गए । कुछ देर सुनने के बाद साध्वीजी के पास गए और बोले कि मुझे इस श्लोक का अर्थ समझाओ, मैं आपका शिष्य बन जाऊँगा । साध्वीजी ने सोचा मैं न बताकर गुरुवर के पास भेज दूं । उन्होंने कहा पास में उपाश्रय में गुरु महाराज हैं वहां चले जाओ । गुरु महाराज ने देखा कि ऐसे व्यक्ति जिनशासन को मिले तो दोनों का काम हो जाए । भविष्य में जिन का लाभ जानकर उनसे कहा – जैन दीक्षा लेने पर ही इसका अर्थ समझा जा सकेगा । तैयार हो गए । दीक्षा ले ली । और इस प्रकार जिन शासन को 14 पूर्वी हरिभद्रसूरि प्राप्त हुए । ऐसा बताते हैं – हरिभद्रसूरि ने अंत में यह कहा कि ''यदि हमको ये शास्त्र, सिद्धान्त नहीं मिलते तो हमारा क्या होता ?'' वे अनेकान्त रहित शास्त्र निरर्थक मानते हैं । अनेकान्तयुक्त शास्त्र से हम सनाथ हैं । ऐसा मानते हैं ।

निश्चय नय को प्रथम पकड़ने का नहीं, उसको प्रारंभ में हृदय में ही रखना है ।

उपादान मुख्य या निमित्त ?

निश्चय नय कहता है उपदान मुख्य है । निमित्त तो ठीक है । अनंत बार हम समवसरण में गए, शासन पाया, धर्म प्राप्त किया किन्तु क्या हुआ ? परंतु विचार करना :- वीतरागी संयम प्राप्त किए बिना कोई जीव निमित्त के बिना आगे नहीं बढ़ सकता । तीर्थंकरों को भी अगले तीन भव सरागी संयम की साधना है । वे जन्म जन्मांतर के साधक हैं ।

अभी तो निमित्त से अन्यदशा के मार्ग की भूमिका उच्छेद ही है । ज्ञाता दृष्टा भाव का वर्तमान में उच्छेद (छेदन) है । इसलिए 24 घंटे अपने को निमित्त की आवश्यकता है ।

प्रथम गुणस्थान से 6वें गुणस्थान तक निमित्त प्रधान भूमिका है। मूंग का पानी भी जिसको न पचता हो और रबड़ी खाने की बात करना - यह व्यवहार नय को न अपनाकर निश्चय नय के पीछे दौड़ने जैसा है।

तीर्थंकर की प्रज्ञा के ऊपर न्यौछावर करने जैसा कोई तत्व है तो एकमात्र अनेकान्तवाद है। जिसको समकित प्राप्त करना हो, पूर्ण सत्य को समझना हो तो यह एकमात्र उपाय है। स्याद्वाद की रुचि यही सम्यक्त्व का बीज है। अनेक दृष्टिकोण से सत्य का विचार किया जाता है। जो समझ में आ जाए तो वही अनेकान्तवाद है। जहाँ सर्वांग दृष्टि होगी वहाँ अनेकान्तवाद होगा।

जैन धर्म में किसी वस्तु का आग्रह नहीं, उनको अनेकान्तवाद नहीं माना है। स्याद्वाद - उलट-पलट जैसा सिद्धांत नहीं है। ''जिनपूजा करना ही अच्छा है यह एकांतवाद नहीं है।''

अनेकान्तवाद की अन्य पहचान सापेक्षवाद है। अकेली भक्ति नहीं चलती उसके साथ विवेक व ज्ञान भी चाहिए। तत्व समझोगे तो उसमें प्राण आ जाएंगे। भक्ति करते-करते ही समर्पण का बल मिलता है। समकित की श्रद्धा प्राप्त करने का अमूल्य उपाय है - स्याद्वाद।

स्याद्वाद शब्द का प्रयोग वाणी से संबंधित है। वाणी में सापेक्षता होनी चाहिए, तीर्थंकर की वाणी सापेक्ष है।

* 'यह मनुष्य है' वर्तमान की अपेक्षा से सत्य है। भूत काल में पशुयोनी से आया है और भविष्यकाल अन्य गति में जाना हो - सापेक्षता।
* यह मकान सीमेंट कांक्रीट का बना हुआ है किन्तु पत्थर का बना हुआ नहीं तो पत्थर की अपेक्षा से मकान का अस्तित्व ही नहीं - सापेक्षता आ गई।
* 'शांतिभाई ऑफिस गए हैं' क्षेत्र की अपेक्षा से हाल घर में उनका अस्तित्व ही नहीं। इसलिए वे सब जगह नहीं है। सापेक्षता आ गई।

इसी प्रकार भावात्मक, अभावात्मक अपेक्षा भी होती है। आत्मा, परमात्मा, मोक्ष मार्ग की भूमिका में भी स्याद्वाद मय वाणी आती है।

जैन दर्शन को आभास मात्र सापेक्षता के साथ संबंध नहीं हैं । जैसे 6 फिट का मनुष्य पहाड़ पर से एक वेंत (12'') दिखता है । यह आभास मात्र है फिर ऐसा ही दिखता है । रेल्वे के दो पाट मिलते हुए दिखते हैं आदि आकाश और पृथ्वी क्षितिज पर एक होते दृष्टिगत होते हैं। यह सब वास्तविकता नहीं है । इसलिए जैन दर्शन में ऐसी सापेक्षता को स्थान नहीं है । जैसा दिखता है वैसा ही कहा जाता है उसमें सत्य का अनुभव नहीं । इसलिए इसको सत्य कहने से सत्य से दूर ले जाना है ।

भगवान महावीर ने 'गौशाला गलत है' ऐसा कहा - लेकिन उसका अर्थ यह नहीं किया जाता कि भगवान को स्याद्वाद लगाते नहीं आता था ? जहां प्रभु को गलत लगा वहाँ उन्होंने उसका खण्डन किया ।

* स्याद्वाद शुद्ध दृष्टिकोण से वास्तविक रुप में प्रारंभिक शैली है । इसमें कोई भी हठवादिता का स्थान नहीं है ।

  अनेकान्तवाद का अर्थ क्या है ? सामान्य अर्थ, एकान्त नहीं वह ।

  सापेक्ष का अर्थ क्या ? अपेक्षा सह विचार करना ।

  स्याद् का अर्थ क्या ? अव्यय है, सभी विधानों में स्याद् शब्द को जोड़ना वह स्याद्वाद।

  नयवाद का क्या अर्थ ? नय- अर्थात् दृष्टिकोण, आंशिक सत्य का ज्ञान कराता है, प्रमाण ज्ञान पूर्ण सत्य का, बस यह स्याद्वाद ।

हाथी और 6 प्रज्ञाचक्षुओं का दृष्टांत :-

1. पहले ने हाथी की सूंड पकड़ी - हाथी कमान (Arch) जैसा है वैसा लगा ।
2. दूसरे ने हाथी पूंछ पकड़ी - हाथी रस्से जैसा है वैसा कहा ।
3. तीसरे ने हाथी का पांव पकड़ा - हाथी खम्बे जैसा ।
4. चौथे ने हाथी का कान पकड़ा - हाथी सूपड़े जैसा ।
5. पांचवें ने हाथी के पेट पर हाथ फेरा - हाथी पहाड़ जैसा ।
6. छठे ने हाथी की पीठ पर हाथ फेरा - हाथी सपाट शिला जैसा ।

6 ही प्रज्ञाचक्षु 6 अपेक्षा से सत्य ही थे । किन्तु सभी के विधान अलग थे । आंशिक सत्य वास्तविकता के साथ मेल बिठा ले तो हो सकता है ।

भगवान की प्रत्येक बात में स्याद्वाद होता है । छोटी से छोटी हिंसा को अस्वीकार किया परंतु न्याय-नीति-धर्म के प्रश्न में हिंसा का विचार नहीं करना, ऐसा कहा है । मंदिर लूटने आएगा तो उनके सामने अहिंसा का विचार नहीं करना । कालिकाचार्य को साध्वीजी की रक्षा के (शील की) लिए युद्ध लड़ना पड़ा । इसमें अधर्म नहीं कहा गया ।

उबाला हुआ पानी :- कच्चा पानी विकारी है, उबाला हुआ पानी निर्विकारी होता है । सजीव को मुंह में डालो तो कैसे भाव होते हैं ? निर्जिव है या निर्जिव करके मुंह में डालो तो भाव में अंतर आ जाता है । पाप प्रवृत्ति से ही बंधते हैं ऐसा नहीं । पाप करने का भाव बना वहाँ पाप का बंध हो गया । उबला हुआ पानी पीने का पच्चक्खाण लिए हों तो अपकाय के जीवों को अभयदान मिलता है ।

ज्ञान से ही मोक्ष होता है या क्रिया से ही मोक्ष होता है यह वाक्य दुर्नय है, एकांत मान्यता है । ज्ञान से मोक्ष होता है या क्रिया से मोक्ष होता है, यह एकांत दृष्टि नहीं ।

जड़ चेतन का भेदज्ञान

पू. चित्रभानुविजयजी

अजीव :- जीव के संसर्ग से जीवंत बनता है । इन्द्रियाँ आत्मा बिना जड़ हो जाती हैं । आत्मा और पदार्थ (अजीव) का भेद समझने की आवश्यकता ज्ञानियों ने बताई है ।

सूक्ष्म से सूक्ष्म जड़ पदार्थ वह परमाणु, अधिक परमाणु इकट्ठे हो जाए वह अणु । अधिक अणु इकट्ठे हो जाए वह स्कंध, स्कंध का देश और प्रदेश एकत्रित हो जाए ऐसा दिखता है ।

अणु जड़ शक्ति है, इसका मिलना-बिछुड़ना स्वभाव है । सतत गति और स्थिति के बीच झूलता रहता है । और आपस में टकराते हैं जिससे स्पंदन होता है ।

आत्मा और जड़ का मिलना = संसार । पूर्व की संस्कृति आत्मा का रहस्य ढूंढती है । पश्चिम की संस्कृति पदार्थ का रहस्य ढूंढती है ।

अणु से आगे जो नहीं देख सकता वह सिर्फ भौतिक सिद्धियों के लिए पुरुषार्थ करते हैं।

उत्पत्ति और लय की प्रक्रिया में गोल-गोल भ्रमण करते रहते हैं। मानव को यंत्रवत् समझकर स्वयं के विनाश को निमंत्रण देते हैं।

जो सिर्फ आत्मा की ही बात करता है और पुरुषार्थ की उपेक्षा करते हैं वे प्रगति के प्रति उदासीन और दुःखी जीवों के प्रति कठोर बनते हैं। कीचड़ में जन्म, यह उसका कर्म फल, कमल बनना यह इसकी महत्त्ता है।

जीने के लिए आत्मा और पदार्थ दोनों आवश्यक है और दोनों के बीच संतुलन की आवश्यकता है।

संतुलन किस प्रकार से ? पुद्गल पर आध्यात्मिक प्रकाश डालने से, जड़-चेतन का भेद समझ में आता है।

मन का अनुभव क्या है ? पुद्गल का ही सर्जन है। चाहे हम उसे आध्यात्मिक अनुभव का मुखोटा पहना दें ? मानव चित्त के अतीत पदार्थों का सौंदर्य और भव्यता देखने के लिए मुक्त नहीं है। इसलिए बाह्य चर्चा के प्रपंच में पड़ना-इससे तो मन से परे होने की इच्छा वाले जीव अंतर्मुखी बनते हैं। आत्म निरीक्षण से आत्मशुद्धि होती है। इसी निरीक्षण से चमत्कार जागृत होता है। जागृति का प्रकाश बढ़ता है। पुराने अशुभ तत्व दूर होते हैं और नए नहीं आते हैं।

क्रोध का अतिक्रमण, ईर्ष्या की चिनगारी, लोभ का भारीपन, अहं का उछलना, माया, छल-कपट आदि कोई भी अशुभ तत्व के प्रवेश करते ही तत्काल ज्ञान का प्रकाश जगमगा उठता है।

जागृति और स्वनिरीक्षण की सतत प्रक्रिया से नवीन जागृति का प्रभात खिल जाता है। इस स्थिति में मन आत्मा पर नियंत्रण नहीं कर सकता है। आत्मा का अधिकार मन पर होता जाता है।

जड़ अजीव पदार्थों की शक्ति भी बहुत होती है। मन के स्तर को आच्छादित कर सकता है। शराब, गांजा, अफीम ये इसके दृष्टांत हैं।

दृश्य पदार्थ में रंग, रुप, स्पर्श, गंध के गुण हैं। अमूर्त तत्वों में गति, स्थिति, अवकाश और काल हैं। गति और स्थिति के बीच अणु का सतत सर्जन होता है। इस प्रक्रिया में अणु

परस्पर टकराने का काम करते हैं। चेतन जब गति करता है तब सम्यक दिशा पकड़ता है। उसकी पूर्णता: केवल दर्शन, केवलज्ञान, केवल चरित्र, सिद्धशिला।

आकाश = अवकाश देता है।

काल = भौतिक अस्तित्व की कक्षा में काल का अस्तित्व परिणाम रुप में दिखाई देता है।

जड़ और चेतन का घनिष्ठ संबंध है। छिलके और अनाज, फूल और सुगंध, मिट्टी और सोना जैसा उनका संबंध है।

चेतन शक्ति पुष्प रुपी जड़ शक्ति से मानव बनती है, अंडा और अंदर का जीव, पत्ता और वृक्ष दोनों का संबंध स्पष्ट समझना, पक्षी अंडे को छोड़कर जब ऊपर उड़ता है तब या पत्ता वृक्ष से अलग हो उस प्रक्रिया का निरीक्षण करना होगा।

बालक जमीन में बीज बोते हुए देखता है - नासमझी से सोचता है बीज नष्ट हो गया। अनुभवी मनुष्य समझता है अनुभव से कि यह बीज एक दिन वृक्ष बनेगा। सम्यक् दृष्टि और मिथ्या दृष्टि के बीच यही फर्क है। मृत्यु का भी ऐसा ही है। गहना तुड़वाकर दूसरी डिजाइन बनवाते हैं किन्तु सोना तो वो का वो ही रहा।

चेतना शक्ति अद्‌भुत है, पृथ्वी को फाड़कर बीज ऊपर आता है न ? रूई की गठान को (ढेर को) 1 माचिस की काड़ी भस्म कर देती है। उसी प्रकार तुम्हारा पुरुषार्थ। आत्मा का उपयोग कर्मों को जला सकता है। ''हूँ'' में ''तुम'' नहीं हो। हूँ सिर्फ समय की अपेक्षा से है, हूँ (मैं) सिर्फ तुम्हारा नाम है। हमारी क्षणिक बाह्य अवस्थाओं को असली मानने-मनाने का ि मिथ्यात्व है। कांच में देखो स्वयं को स्वयं 'हूँ' को 'हूँ' मानने जैसा है।

जिस बर्तन में पानी भरा उसमें यदि छिद्र होगा तो पानी पूरा बाहर आ जाएगा। मन में यदि छिद्र होंगे तो आत्मा के अमूल्य उपहार कैसे रहेंगे।

छिद्र कौन करता है ? वह है अपनी मर्यादाएँ और दिवालें, इच्छा-अनिच्छाएँ, घृणा, आकांक्षा, विस्तृतता, वास्तविकता के बिना लिए गए निर्णय। एक ही शब्द में कहें तो 'कर्म' प्रकृति, वह निष्पक्ष है। किसी के लिए उसके भेदभाव नहीं।

छिद्र कैसे बंद होंगे ? पोषध करो, आत्मा के निकट जाओ, प्रतिक्रमण करो, पीछे मुड़ कर आत्मा के दर्शन करो।

छिद्र बंद करने से क्या ? स्वयं को पूर्ण करो। 3 मार्ग हैं (1) प्रतीति : Realize (2) पुन:प्राप्ति - Recover (3) जीवन में उतारना - Retain.

अरुपी का अनुभव करने के लिए पहले रुपी को पदार्थ रुप में, विश्व के तत्वों को जैसे हैं वैसे देखना, परखना, समझना आवश्यक है।

हड्डी, नख, चमड़ी, दांत, केश - ये शरीर के पृथ्वी तत्व है। तुम्हारे आंसू, लार, पसीना, रक्त (खून), जल तत्व है - पाचन शक्ति, शरीर की गर्मी, अग्नि तत्व है।

श्वासोच्छ्वास - वायु तत्व है।

इसीलिए जो बाहर है वही अंदर है। दुनिया से अलग नहीं तुम्हारे अंदर-बाहर का रुप, ब्रह्मांड का रुप सुक्ष्म स्वरूप में है। जैन धर्म में तो ब्रह्माण्ड का स्वरुप मनुष्य के आकार का बताया है।

निरंतर परिवर्तन का रहस्य क्या है ? बहते रहना।

वृक्ष भी पत्ते को गिरने देता है, प्रकृति के नियम अनुकूल होकर हम भी सूखे जीर्ण-शीर्ण पुराने विचारों को पत्ते के समान गिराने वाले हैं। विस्तार और विकास के लिए योग - क्षेत्र - काल - भाव के अनुरुप परिवर्तन, निरासक्ति - अनासक्ति, में पत्ते गिरकर नाचते हुए गिरते हैं वैसे ही मान पूर्वक राग को छोड़ दो।

* परस्परोऽपग्रहजीवानाम् - जीव परस्पर उपकारक बनकर एक दूसरे के विकास में सहायक बनते हैं।
* तर्क का जहां अंत आता है वहां आध्यात्म का प्रारंभ होता है।
* शरीर रुप का आकर्षण वह वासना है, आत्मा के गुणों का आकर्षण प्रेम।
* परोपकार श्रेष्ठ सदुपयोग है।
* मिथ्यात्व टले और समकित मिले तो उपयोग और आनंद मिले।

समकित के अपवाद रुप 6 आगार

आचार्यश्री विजयलक्ष्मी सूरि विरचित 'उपदेश प्रासाद' ग्रंथ से

<u>समकित के अपवाद रुप 6 आगार :-</u>

(1) राजा की आज्ञा से (2) गुरुजन की आज्ञा से (3) आजीविका के लिए (4) समुदाय के कहने से (5) देव के बलात्कार से (6) सबल (बलशाली) पुरुष के आग्रह से। ये 6 आगार (छूट) अपवास से लेकर समकित को बचाया जा सकता है।

राजा की आज्ञा से मिथ्यादृष्टि को भी नमन करना पड़ता है। उसको <u>'राजभियोग'</u> आगार कहते हैं।

उदा. :- कार्तिक सेठ को राजा की आज्ञा से गेरिक तापस को मासक्षमण के पारणे में भोजन पिरोसना पड़ा और गेरिक तापस ने नाक पर अंगुली फिरा कर नाक काटने की चेष्टा दिखाई। यह देखकर कार्तिक सेठ ने विचार किया कि ''यदि पहले ही दीक्षा ले ली होती तो तापस (मिथ्यात्वी) से अपमानित नहीं होना पड़ता।'' यह विचार करते हुए 1008 पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की।

अनुक्रम से द्वादशांगी का अभ्यास कर 12 वर्ष संयम पालन के बाद <u>कार्तिक सेठ सौधर्मेन्द्र पद भोग कर वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि पद प्राप्त करेंगें।</u>

<u>'देवलोक में तिर्यंच नहीं होता'</u> परन्तु अभियोगिक देव को इन्द्र की आज्ञा से ऐरावण हाथी का रुप बनाकर फर्ज़ निभाना पड़ता है।

Interesting point :- कितनेक दृढ़ धर्मी आत्मा प्रबल आंतरिक शक्तियुक्त होती है, जो राजा की आज्ञा होने पर भी व्रत का भंग नहीं करती और नियम का पालन करती है।

दृढ़ धर्मी अपवाद रुप आगार रखकर व्रत भंग नहीं करते इसका सटिक उदाहरण :-

कोशा/वेश्या (कोष = गुणरत्नों का खजाना) और स्थूलीभद्रजी मुनि । उन्होंनें गुरु आज्ञा लेकर कोशा वैश्या के घर उसकी चित्रशाला में चातुर्मास किया । कोशा वैश्या को प्रतिबोध देने आए थे । वैश्या ने स्थूलीभद्र मुनि को अपनी मोह माया जाल में फंसाने का बहुत प्रयास किया । हाव-भाव, विभ्रम, विलास, कामोत्तेजक, नाटक-गायन, सबकुछ किया लेकिन स्थूलीभद्रजी का रोम मात्र भी चलायमान नहीं हुआ । अंत में मुनि ने कोशा को प्रतिबोध देकर श्राविका बना दी । उसको श्रावक के 12 व्रत उच्चरा दिए । 12 व्रत में चौथे व्रत के नियम में कुछ आगार रखा । राजा की आज्ञा से आए हुए पुरुष के साथ समागम के अलावा अन्य पुरुष का संग नहीं करने का नियम लिया । कोशा चिरकाल तक जैन धर्म का पालन कर स्वर्ग गई ।

भय किसलिए ? जब तक भय नहीं आता है तब तक मन में भय से डरना किन्तु जब भय सामने आ जाए तो डटकर मुकाबला करना । बाद में भय रखना व्यर्थ है ।

अगत्य की यह शिक्षा है कि जिसका शरण लिया उसी से भय उत्पन्न हो जाए तो प्रसन्नता के साथ भय सहन करना योग्य है ।

माँ और गुरु :- वज्रस्वामी 3 वर्ष की उम्र में माता के (जो उस समय गृहस्थी में थी) साथ रहना या पिता के पास जिन्होंने दीक्षा ले ली थी और गुरु पद पर स्थापित थे । उनके साथ रहना, कुछ समय विचार किया कि 'माता तीर्थ रुप है परन्तु वह इसी भव में सुख देने वाली है और गुरु तो प्रत्येक भव में सुख दे सकते हैं ।' इस विचार से अपने पिता का ओघा लेकर दौड़ गए । 3 वर्ष की उम्र में नन्हे बालक वज्रकुमार ने दीक्षा ले ली । बालक को दीक्षित देखकर माँ को भी वैराग्य की प्राप्ति हो गई और दीक्षा ले ली । वज्रस्वामी की बाल्यावस्था भी कैसी प्रभावशाली है ।

मधु - मद्य - मांस - मक्खन

'उपदेश प्रासाद' ग्रंथ से उद्धृत

मद्यै मांसै मधुनि च, नवीनतो तक्रतो बहिः ।
उत्पद्यन्ते विलियन्ते, सूक्ष्माश्च जन्तुराशयः ।।1।।

अर्थ :- मद्य में (मदिरा), मांस, मधु (शहद) और छाछ से निकाला हुआ मक्खन में हर पल सूक्ष्म जंतुओं का समूह उत्पन्न होता है और नाश होता है ।

सप्तग्रामे च यत्पापम, अग्निना भस्मसात्कृते ।

तदैव जायते पापं, मधु बिन्दु प्रभक्षणात् ।।2।।

अर्थ :- अग्नि के द्वारा 7 गांव जलाकर भस्म करने से जो पाप लगता है, उतना ही पाप मधु का एक बिंदु खाने से लगता है ।

यो ददाति मधु श्राद्धे, मोहितो धर्म लिप्सया ।

सा वाति नरक घोरं, खादकैः सह लंपटै ।।3।।

अर्थ - देने से धर्म होगा इस भाव से मोह के कारण किसी को शहद देता है वह पुरुष उन खाने वालों के साथ नरक में जाता है । यहां अनुमोदना करना भी महापाप समझाया है ।

कोई भी अन्य व्यक्ति दुष्कृत्य या शासन विरुद्ध प्ररुपणा करते हैं वहाँ यह सोचे कि इनका साथ देने से धर्म होगा तो उसमें दुष्प्रणि धान रुप अनुमोदना का पाप सहन करना पड़ता है । अनुमोदना को समझकर शुभ अनुमोदना कीजिए ।

समकित के 6 प्रभावक

समकित के 6 प्रभावक बताए हैं :-

जो मुनि जिन प्ररुपित आगम की प्ररुपणा समय के अनुसार करना जानता है एवं तीर्थ को शुभ मार्ग की ओर प्रवर्तित करके वे प्रवचन प्रभावक कहलाते हैं ।

1. प्रभावक :- वज्रस्वामी

2. प्रभावक :- सर्वज्ञसूरि । कमल नामक युवक का उदाहरण ।

कमल का जीव, स्वर्ग, मोक्ष, आकाश सभी को आलिंगन करने जैसा । घोड़े के सिंग जैसा असत्य मानता था, इसको समझाने के लिए लब्धिधर मुनि ने उसके पसंद के विषय से समझाकर सत्य मार्ग पर लाने के लिए 4 प्रकार की स्त्रियों के विषय में बताया -

1.पद्मिनी-सबसे उत्तम 2.हस्तिनी-मध्यम 3.चित्रिणी-अधम 4.शंखिनी-अधमाधक

1. पद्मिनी :- राजहंस के जैसी मंद-मंद गति से चलने वाली, पेट पतला, पेट में तीन

वलय पड़ते हों, वाणी हंस के जैसी मधुर, वेष सुंदर, शुद्ध और कोमल भाषा, अल्प भोजी (कम खाना), मर्यादा और लज्जाशील और श्वेत पुष्प जैसे वस्त्र जिसको अधिक प्रिय हो।

2. हस्तिनी :- हाथी जैसी गजगति की चाल वाली मंद मुस्कान, मर्यादाशील आदि

3. चित्रिणी :- काम मंदिर (गुप्तभाग) गोलाकार, उसका द्वार कोमल और अंदर से जल से आर्द्र, उस पर रोम अधिक हो, दृष्टि चपल, बाह्य संभोग में अधिक आसक्त (हास्य क्रिड़ामय), मधुर वचनी, नई-नई वस्तुएँ उसको रुचती है।

4. शंखिनी :- कर्कश स्वभाव वाली, नित्य क्लेशकारी, अशांत वातावरण को बढ़ावा देने वाली, उसके स्वभाव से कोई उससे बोलना पसंद न करे आदि।

हे कमल ! स्त्रियों के कौन-कौन से अंग में किस किस दिन काम रहता है सुन। पांव का अंगूठा, पांव के फण, पांव का मणका, जानु, जंघा, नाभि, वक्षस्थल (स्तन), कक्षा (बगल), कंठ, गाल, दांत, ओष्ठ, नेत्र, कपाल और मस्तक 15 अंगों में 15 तिथियाँ अनुक्रम से काम करती हैं।

शुक्ल पक्ष की पड़वा को अंगूठे में काम होता है वहाँ से चढ़ता हुआ पूनम को मस्तक तक आता है। कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा (एकम) को मस्तक से होता है और पुन: उतरता हुआ अमावस के दिन अंगूठे में आता है। इस प्रकार स्त्री के काम युक्त स्थल पर मर्दन करे तो वह स्त्री तत्काल वश होती है।

वश होना चाहती स्त्री अपने नेत्रों को झुकाती है। पुरुष के हृदय पर सिर रखती है एवं भौंहे टेढ़ी करके चेहरे की शोभा बढ़ाती है और संयोग होने पर लज्जा का त्याग कर देती है। कमल को इन बातों में आनंद आने लगा तो वह हमेशा आचार्य महाराज के पास जाने लगा। क्रमश: इन बातों के बीच-बीच में ज्ञान-चर्चा भी होने लगी और धीरे-धीरे उसने नियम लेना प्रारंभ किया तथा व्रतधारी बन गया।

363 पाखंडी (पाखंडी संग वर्जन रुप समकित की चौथी श्रद्धा)

ऐकांत क्रियावादी 180 भेद, अक्रियावादी के 84 भेद, अज्ञान वादि के 67 भेद और विनयवादि के 32 भेद, इस प्रकार कुल - 180+84+67+32=363 भेद होते हैं।

त्रिपदी

भगवान ने गौतम (इन्द्रभूति) को त्रिपदी दी थी :-

1. उपन्नेई वा-उत्पन्न होना, विग्गमेइवा=विनाश होना, (कायम) धुवेइवा=ध्रुव रहना।

(उवज्जए वा, विगमए वा , धुवए वा) रुप भी त्रिपदी कही है ।

✻ उपन्नेईवा – <u>अर्थ</u> – जीव से जीव उत्पन्न होता है, नर नारी से गर्भ उत्पन्न होता है । शरीर से नाखुन आदि उत्पन्न होते हैं, अजीव से अजीव उत्पन्न होते हैं, ईंट आदि के चूर्ण के समान, अजीव से जीव उत्पन्न होता है – पसीने से जूँ की उत्पत्ति की तरह । (जीव से जीव, जीव से अजीव, अजीव से अजीव और अजीव से जीव उत्पन्न होता है)

✻ विग्गमेईवा :– <u>विगम</u> – नाश होना, इसमें भी 4 भाग हैं

1. जीव से जीव नष्ट होता है　　2. जीव से अजीव नष्ट होता है

3. अजीव से जीव नष्ट होता है　　4. अजीव से अजीव नष्ट होता है

1. जीव 6 काय (पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय) जीवों की उपमर्दना करते हैं ।

2. जीव घड़ा (मिट्टी का) आदि अजीव पदार्थों का नाश करती है ।

3. <u>तलवार</u> या <u>जहर</u> आदि से जीव मृत्यु प्राप्त करते हैं ।

4. घड़ा पत्थर से टकरा जाए तो नष्ट हो जाता है ।

✻ <u>धुवेईवा</u> :– ध्रुवता में भी 1. नित्य, 2. अछेद्य, 3. अभेद्य आदि जीव के स्वरुप को जानना । दा.त. आत्मा नित्य है, अभेद्य है, अछेद्य है । सूक्ष्म, निगोद, नित्य, अभेद्य, अछेद्य है । भूत, भविष्य, वर्तमान की अपेक्षा से लोकनित्य है । (काल की अपेक्षा से अनित्य) द्रव्य रुप में जीव शाश्वत तिर्यंच, मनुष्य नारकी देव रुप पर्याय अशाश्वत है ।

शरीर के अंदर पांच वायु घूमते हैं :– प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान । हेमचंद्राचार्य सूरि इन पांच वायु को रोक सकते थे और इससे वे आसन से कुछ ऊँचे (अधर में) रहकर व्याख्यान दे सकते थे ।

सिंह बलशाली है हाथी और सुअर का मांस खाता है । फिर भी साल में एक बार काम क्रीड़ा करता है और कबूतर कंकर और ज्वर के कण खाते हैं फिर भी हमेशा कामी ही रहता है, तो अब इसका क्या कारण ?

सिंहो बली द्विश्य सूकर मांस भोजी, संवत्सरेण रतिमेति किलकवारम् ।
पारापतः खर शिला कण मात्र भोजी, कामी भवत्यनुदिनं ननतुं कोऽत्र हेतुः ।।

पद्मासन

प्रभु पूजन करने के बाद सात्विक भावना से या उत्तम साहचर्य (सहयोगी) से आत्म कल्याण के लिए जीव तैयार होता है, तब माला गिनते समय, ध्यान करते समय, कायोत्सर्ग करते समय या स्वाध्याय करते समय कमर झुकरने न देना-रीढ़ की हड्डी को सीधे रखकर पद्मासन में बैठना, जिससे वीर्यनाड़ी का संघर्ष आसन के साथ नहीं होगा । वीर्यनाड़ी अत्यन्त नाजुक होती है; लिंग (जननेन्द्रिय) के नीचे और गुदा के ऊपर की नस है जिसे वीर्य नाड़ी कहते हैं । आत्मकल्याण के लिए वीरासन में बैठने का प्रयत्न करना चाहिए । जिसे काय-क्लेश का अनुष्ठान कहते हैं । काया की माया को तोड़ने के लिए बाह्यतप में कायक्लेश तप की आवश्यकता समझना चाहिए । 'औपपातिक सूत्र' में उत्कट आसन, वीरासन, पद्मासन, अर्ध पद्मासन आदि आसन में बैठना ऐसा सूचित किया गया है । पांव के पंजे पर बैठना, जहाँ दोनों कूल्हे (नितंब) एड़ी से ऊपर रहे । काय क्लेश काया की माया को तोड़ने का तप है ।

इच्छितवस्तु की प्राप्ति, मनुष्यों की प्राप्ति के मूल में पूर्व भव का पुण्य और अनिच्छित वस्तु, व्यक्तियों की प्राप्ति होना उसमें पूर्व भव के पाप कर्म का प्रभाव है । इसलिए उस पुण्य को बढ़ाने के लिए देव, गुरु, धर्म का आराधन और पाप से मुक्त होने के लिए तप, जप, ध्यान, दान, पुण्य आदि सत्कर्म करने के अतिरिक्त पुण्य स्थिर नहीं रहता और पाप का नाश नहीं होता ।

मोक्ष की सीढ़ियाँ

मनुष्य जन्म, आर्य देश, उत्तम कुल, श्रद्धा, गुरु के वचनों का श्रवण और कृत्य-अकृत्य का विचार ।

जैसे - मनुष्य नेत्र होने के बाद भी सूर्य के प्रकाश को बिना नहीं देख सकता, उसी प्रकार ज्ञानयुक्त जीव होते हुए भी चारित्र के बिना मोक्ष सुख को नहीं देख सकता । इसलिए चारित्र में स्थिर होने की आज्ञा है । सर्व विरति - यही धर्म है .... ।

<u>विनय के 10 प्रकार :-</u> अर्हत्, सिद्ध, मुनि, धर्म, चैत्य, श्रुत, प्रवचन (चतुर्विध संघ), आचार्य, उपाध्याय, दर्शन के विषय में पूजा-प्रशंसा-भक्ति-अवर्णवाद का नाश, अशांति का परित्याग करना ये समकित सूचक 10 प्रकार का विनय है।

<u>* विनय के 7 प्रकार भी बताए हैं :-</u>

1. <u>ज्ञान विनय -</u> सम्यग्ज्ञान, ज्ञानियों की प्रशंसा, भक्ति, वैयावच्च, सामायिक के समय स्वाध्याय यह ज्ञान विनय है।
2. <u>दर्शन विनय -</u> अरिहंत पमात्मा, उनकी प्रतिरुप मूर्तियाँ, पंच महाव्रतधारी साधु, साध्वी, तपस्वी एवं ज्ञानी के सहवास से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। नमुत्थुणं, लोगस्स आदि सूत्र वारंवार बोलने से सम्यगदर्शन की शुद्धि होती है। स्वाध्याय से सम्यग्ज्ञान बढ़ता है और उससे विशेष रूप से सम्यग्दर्शन की शुद्धि होती है। पापों के त्याग का भाव रुप सम्यग् चारित्र की प्राप्ति होती है।

   एकाग्र चित्त से (मन प्रणिधान) अरिहंत की द्रव्य एवं भाव पूजन करना, शुद्ध अनुष्ठान में मन-वचन-काया को स्थिर कर गुणानुवाद करना, तुम स्वयं गुणवान बनोगे और 'नमो अरिहंताणं' पद को प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त करोगे।
3. <u>चारित्र विनय -</u> आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान को रोकने वाला विनय है। प्रतिक्रमण से चारित्र शुद्धि होती है। 12 व्रत, 5 महाव्रत स्वीकार करने के लिए तैयार रहना।
4. <u>मनो विनय -</u> मन से विनय भाव रखना।
5. <u>वचन विनय -</u> 84 लाख योनियों में 52 लाख योनि के जीवों के जिव्हा नहीं होती; केवल 32 लाख योनि के जीवों को जीभ होती है।
6. <u>काय विनय -</u> माता-पिता, गुरु की वैयावच्च विनय करना (सेवा)। काया के द्वारा उनकी सेवा-सुश्रुषा करना, यह काय विनय कहा जाता है।
7. <u>लोकोपचार विनय -</u> व्यवहार में वफादारी, सभ्यता, सत्यता को अपनाना, बड़ों का बहुमान करना, भद्रिक (सरल) अहिंसक व्यवहार, गुरु के प्रति अपना सर्वस्व समर्पण जिससे हमें नया ज्ञान मिलता रहे और पुराने का परिवर्तन होता रहे।

मानव शरीर के ३२ लक्षण

✻ **निम्न अंग 32 लक्षण युक्त बालक**
(अंग विजयी ग्रंथ में भगवंत के शरीर के लिए लिखा है)

7 अंग - लाल	नख, पांव के तलवे, हथेली, जिह्वा, ओष्ठ, तालुआ, आंखों के कोर
6 अंग ऊँचे	बगल का भाग, हृदय, गर्दन, नाक, नख, मुख।
5 अंग पतले	दांत, चमड़ी, केश, अंगुलियों के पेरवे, नख।
5 अंग दीर्घ	नेत्र, वक्षस्थल (छाती), नाक, दाढ़ी, भुजा।
3 अंग विस्तृत	ललाट, स्वर, मुख।
3 अंग छोटे	जंघा, लिंग, गर्दन।
3 अंग गंभीर	स्वर, नाभि, सत्व।
32 कुल	

32 लक्षण

छत्र, कमल, धनुष, रथ, कछुआ, अंकुशवाव, स्वस्तिक, तोरण, तालाब, सिंह, वृक्ष, चक्र, हाथी, शंख, समुद्र, कलश, प्रासाद, मत्स्य, जव, यज्ञ, स्तंभ, कमंडल, पर्वत, चामर, दर्पण, बैल, ध्वजा, अभिषेक युक्त लक्ष्मी माला, मयूर। ये बत्तीस लक्षण अति पुण्यशाली जीव को होते हैं।

तीर्थंकर की आत्मा अपूर्व ऐश्वर्य की अधिकारिणी होती है। अनंत ऋद्धि-सिद्धि की भोक्ता होने पर भी कर्म क्षय कर मोक्ष को प्राप्त करती है। चक्रवर्ती कर्म के अनुसार भोग सामग्री में आसक्त होकर नरक में भी जाते हैं, देव गति में भी जाते हैं, कर्म क्षय कर मोक्ष में भी जाते हैं। बलदेव को छोड़कर वासुदेव प्रति वासुदेव आरंभ समारंभ के कारण नरक में जाते हैं।

18 प्रकार के आभ्यंतर दोषों का सर्वथा अभाव होता है। तीर्थंकर का जीव, दानांतराय,लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, वीर्यांतराय, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, दुर्गंध, राग, द्वेष, काम, अज्ञान, निंद्रा, मिथ्यात्व, अविरति, द्रव्य से तीर्थंकर के जीव सर्व प्रकार के रोगों से मुक्त होते हैं।

* शरीर की 7 धातू - रक्त, मवाद, मांस, अस्थि, मज्जा, मेद, वीर्य।
* <u>अनुमोदना</u> प्रगति का एक राजमार्ग है।
* पुरुष से स्त्रियाँ विविध प्रकार के भिन्न-भिन्न स्वभाव वाली देखने को मिलती हैं।

5 धाय माताएँ

* <u>पुत्र को कुल दीपक और पुत्री को लक्ष्मी रूप कहा है, तीर्थंकर रुप बालक के लालन-पालन के लिए इन्द्र महाराज 5 धाय माताओ की नियुक्ति करते हैं।</u>

❖ 1. क्षीर धाय - स्तनपान कराने वाली।

❖ 2. मंजन धाय - स्नानादि कराने वाली।

❖ 3. मंडन धाय - श्रृंगार आदि कराने वाली।

❖ 4. खेलन धाय - क्रीड़ा कराने वाली (खेल-खिलाने वाली)

❖ 5. अंतर्धाय - गोद में उठाकर घुमाने वाली।

* <u>श्रद्धा को सर्वरोग निवारण करने वाली धन्वंतरी (वैद्य) की उपमा दी गई है।</u>

तीर्थंकर देव के प्रति जितनी दृढ़ श्रद्धा होगी - उतने ही प्रमाण में (तीर्थंकर के अतिशय का प्रभाव) भगवान के 'अतिशय' के प्रभाव से ईति-उपद्रव्य, दुःख, कष्ट दूर होते हैं।

"चिट्ठऊ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ।
नर तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुःक्ख दोगच्चं ।।

(उवसग्गहरं) महामंत्र का प्रभाव तो दूर रहा, किन्तु, हे पुरुषादानीय पार्श्वनाथ प्रभु ! आपको त्रिकरण योग (मन, वचन काया) से भावपूर्वक किया हुआ वंदन भी मनुष्य एवं तिर्यंच जीवों के दुःख-दारिद्रय दूर हो जाते हैं और दुर्गति द्वार बंद हो जाते हैं।

* मंत्र शास्त्र की दृष्टि से

  ❖ पीला रंग का ध्यान - स्थंभन कराता है

  ❖ लाल रंग का ध्यान - स्मरण से वशीकरण होता है।

  ❖ काला रंग का ध्यान - पापियों को शांत एवं उनका उच्चाटन कराता है।

  ❖ नीला रंग का ध्यान - इस लोक (मानव सुख) के लाभ की प्राप्ति और

  ❖ श्वेत रंग का ध्यान - शांति प्राप्ति होती है, कर्म क्षय होते हैं।

मोक्ष किसलिए ?

(चिन्तक - स्व. पन्नालाल जगजीवनदास गांधी)

''पहला सुख ते जाते नर्या, (शरीर से स्वस्थ)
बीजु धरे शीलवती भार्या,
तीजु सुख कोठी मां जार,
चोथु आज्ञांकित परिवार,
पांचमुं सुख कलशरुप सार
प्रतिष्ठावान ने आबरुदार ।''

***

पांचे पांच सुख-दु:खना द्वार,
ज्ञानी कहे मोक्ष सुख ज विचार ।
''श्रद्धांध''

* बंधन - दु:ख मुक्ति विचार :-

दु:ख का और बंधन का अभिन्न संबंध है ।

दु:ख होगा वहाँ बंधन होना है और बंधन होगा वहाँ दु:ख अवश्यंभावी है ।

दु:ख का समूल विनाश अर्थात् वहाँ मोक्ष मुक्ति प्राप्ति ।

सबसे बड़ा बंधन स्वयं के निकट ही है । यानि शरीर । शरीर को खिलाना, पिलाना, पहनाना (वस्त्र आभूषणों से सजाना) संवारना और अंत में उसे छोड़कर जाना । छोड़ना पड़ता है तब मृत्यु का दु:ख । यदि शरीर को मुक्ति प्राप्ति का साधन बनाना है तो योग धारण करो, अन्यथा भोग विलास का साधन बना है तो आत्मा का भोग । अर्थात् दु:ख को निमंत्रण।

* प्राप्त सुख और इच्छित सुख विचार :-

दु:ख विकृति है, इसको कोई चाहता नहीं । सुख जीवन का ही एक स्वरुप है । जीव की

स्वयं की मांग ही सुख की है । जीव को अधूरा, अल्प, अजनबियों की तरह अशुद्ध, पराधीनतमा मय, विकारयुक्त, विनाशयुक्त जीना अच्छा नहीं लगता ।

संपूर्ण या अपूर्ण, जो प्राप्त नहीं हुआ और हुआ वो कम है, दोनों की मांग चालू रहती है । जीव स्वरूप से पूर्ण है तो इसीलिए वह पूर्णता ही चाहता है । बाजार में खरीदी करने जाते हो तो पुराना, फटा हुआ, तड़क आई हुई - यानि चिराया हुआ, घिसा-पिटा, जो पूरी तरह जीर्ण-क्षीर्ण लगने वाला-चाहे कपड़ा या अन्य वस्तु हमें अच्छी नहीं लगती । शालिभद्र के पास अनगिनत ऋद्धि थी, अकल्पनीय वैभव था, फिर भी उनके ऊपर श्रेणिक राजा बैठा है, उसका अपने ऊपर अधिकार उनको अच्छा नहीं लगा और संसार का त्याग कर दिया, भगवान महावीर का स्वामित्व स्वीकार कर लिया । जीवन का वास्तविक सुख पूर्णता में ही है ।

अंग्रेजो के शासनकाल में जनता सब तरह से सुखी थी किन्तु गुलामी थी परतंत्रता थी । स्वतंत्रता के बिना जीव शांति से नहीं बैठता ।

सर्व परवंश दुःखं, सर्वात्मवंश सुखम् ।

पर-पदार्थ के संयोग से प्राणी को जो वेदना होती है वह आत्मा का विकृत स्वरुप है । इसलिए दुःख रुप है । किन्तु पर -पदार्थ यदि आत्मा परिणाम का स्व संवेदन कराता है तो वह सुख है । इसलिए कहा है

'स्व मां वस, परथी खस''

✻ अविकारी अविनाशी या विकारी विनाशी ?

जीव कैसा भी हो, मृत्यु कोई नहीं चाहता, अमृत - अमरण को ही हम चाहते हैं ।

✻ प्रभु के सामने 'अक्षत' से आलेखन करते समय स्वस्तिक में

ज्ञानियों ने अपूर्व ज्ञान गर्भित मांग रखी है ? Decode It और हम उनकी बलिहारी जाते हैं ।

✻ सर्वोच्च या सामान्य सुख ?

Marathon Race आज हम सभी को अच्छे से अच्छा Exclusive Paramount प्राप्त करने की चाह है । (आलतु फालतु) अव्यवस्थित-जो काम में न आ सके ऐसी कोई वस्तु हमें अच्छी नहीं लगती ।

6 द्रव्य में उत्तम से उत्तम द्रव्य जीव है और उनमें स्वयं के स्व स्वरुप को प्राप्त करने की वास्तविक चाह है, मांग है। आत्मा शाश्वत सुख की शोध में रहती है। अक्षय, अजर-अमर, अविकारी, अविनाशी ऐसा सुख उसे चाहिए।

Perfect, Pure, Personal, Permanent, Paramount सुख की मांग है। स्व, यानि स्वयं का, जो स्वयं के अंदर है उसे निखारना अर्थात् बाहर प्रकट करना है।

* अनजाने में जो याचना होती है, वह सत्य है, जायज है, भूल कहाँ होती है ? लेकिन, पुद्गल में से मिले यह संभव ही नहीं और वहाँ से प्राप्त करने के लिए हम याचना करते हैं।

* जीव व्यवहार में :-

1. दूधपाक या श्रीखंड एक चम्मच ही मिले तो अधूरा ? सिंघाड़े के आटे का भेल किया हुआ श्रीखंड क्या अच्छा लगता है ? हलवाई बिना कल्लाई किए हुए बर्तन में दूध पाक दे तो कैसा ? मेवा इलायची आदि मसाला युक्त दूधपाक ही स्वादिष्ट लगता है ना ?
2. शादी योग्य लड़के को कैसी कन्या चाहिए ? रंग, रुप और सर्वांग अक्षत कन्या चाहिए? कुँवारी एवं शुद्ध जीवन में रही हुई लड़की चाहिए। मन के अंदर विश्व सुंदरी के स्वप्न संजोए रहता है।
3. स्त्रियाँ बाजार में मटके खरीदने जाती हैं, अच्छे ठोंक बजाकर पक्का मटका देखती हैं। कहीं पानी भरते समय कच्चा हो तो फूट न जाए। इसलिए अच्छा पका हुआ देखती हैं।

आंतरिक जीवन के इन सभी मौलिक स्वरूपों में चाह की छाया छाई रहती है। जीव सच्चिदानंद स्वरूप है। सत्-नित्यता, चित्त-ज्ञान, आनंदरुप, मोक्ष को न मानना, न समझना तथा परमात्मा को न मानना, न समझना, या न स्वीकारने की मांग को यदि अंदर तक खोज कर देखा जाए तो जाने-अनजाने में भी मोक्ष की मांग तो होती ही है। जीवन स्वयं जीएं और न माने उसी का नाम अज्ञान है।

सुख के पहले और सुख के बाद भी दु:ख ही है। सुख के साथ दु:ख तो रहता ही है, ज्ञानी भगवंत ऐसा समझाते हैं।

निर्दोष सुख, निर्दोष आनंद, चाहे जहां से लो, ये दिव्य शक्तिमान है, जिससे जंजीरों से

निकल जाता है, पर वस्तु में आसक्त नहीं होना, इसकी दया मुझ पर रही, ये सिद्धांत त्यागन के बाद दुःख या सुख कुछ भी नहीं।

(श्रीमद् राजचन्द्र)

न इच्छा हो तो भी आवे उसका नाम दुःख और न इच्छा हो तो भी चला जाय उसका नाम सुख।

भरत चक्रवर्ती असीमित ऋद्धि समृद्धि के भोक्ता थे। पाँचों ही सुख संपूर्ण रूप से प्राप्त थे, फिर भी उनके प्रति वे निस्पृह थे। चूँकि उनके मन में यह दृढ़ निश्चय था कि - ये सुख क्षणभंगुर हैं, निःसार है। वे सदा उनको स्मृति में रहे - महल में ऐसे स्वरूप को निर्मित करवाया था। सदा उस स्वरूप को मन में समाया रखते थे और यही कारण रहा कि निस्पृह भावों का मंथन बढ़ता चला गया, एक समय ऐसा आया कि गृहस्थ जीवन में रहते हुए ही केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति पद पा लिया, मोक्ष मार्ग के अधिकारी बन गए।

मोक्ष कौन जा सकता है ?

✻ मोह को जीत ले वह मोक्ष जा सकता है।

संख्यात वर्ष की आयुष वाले युगलिक मोक्ष नहीं जा सकते, संज्ञी, भव्य, कम से कम नव (9) वर्ष की उम्र।

प्रथम संघयणी - वज्र ऋषभ नाराचसंघयण, ऊँचाई शरीर मान-500 धनुष प्रमाण।

✻ एक साथ कितने जीव मोक्ष जा सकते हैं ?

एक समय में 500 धनुष की देहमान वाले	02
2 हाथ की काया वाले	04
मध्यम अवगाहना वाले	108

✻ अंतगड़, अंतकृत केवली क्या है ?

जिनके केवलज्ञान और निर्वाण का अंतर सिर्फ 2 घड़ी का हो। उदाहरण स्वरूप - मेतारज मुनि, गजसुकुमाल, मरुदेवी माता।

✻ अंतरकाल कितना ? (मोक्ष जाने वाले जीवों के बीच)

जघन्य - 1 समय   उत्कृष्ट - 6 माह

✻ अनंतर काल (सतत्, In a raw) कितना ?

ज. - 2 समय	**निरन्तर 2 सिद्ध होते ही हैं**
उ. - 8 समय	**निरन्तर 8 समय तक सिद्ध होते हैं, मोक्ष जाते हैं।**
1. समय में उ.	**108 मुनि मोक्ष जाते हैं**
	10 नपुंसक मोक्ष जाते हैं
	20 तीर्थंकर मोक्ष जाते हैं

✻ रस भरा विवरण :-

तीसरे आरे के अंतर में 7 कुलकर होते हैं।

3 हक्कार नीतिवाले

1 मक्कार नीति वाला,

3 धिक्कार नीति वाले

पहला, दूसरा, तीसरा और छठे आरे में अग्नि नहीं होती है। चक्रवर्ती होते हैं तब बलदेव, वासुदेव, प्रति वासुदेव नहीं होते हैं। चक्रवर्ती के 14 रत्नों में 7 एकेन्द्रिय + 7 पंचेन्द्रिय रत्न होते हैं।

✻✻✻✻

उल्लास

घरमां प्रवेशतां बारणुं खोल्युं,
अने केशर बरासनी सुरभि,
देहने विलेपी रही ...
निरामय वितरागना सत्‌नी
कस्तूरी
श्वासमां जाणे भीनी, भीनी,
प्रसरी गई ...
प्रसन्नतानुं धुम्मस वलग्युं,
अने 'राग' नी उषमाथी,
टपक्यूं शेष एक
बिन्दु ।।
आतम ने अभिषेकतुं
वीतरागनी पूजाना
उल्लासमां ..

'श्रद्धांध'

सितम्बर 99

विभाग – ७

‘‘तत्व झरना’’

प. पू. श्री मेघदर्शन विजयजी महाराज द्वारा लिखित

‘‘तत्व झरणुं’

वांचने योग्य, जानने योग्य, आदरने योग्य

➤ तत्व झरणुं	210
➤ पांच समवाय	213
➤ भव्य-अभव्य जीव	216
➤ साधुवेश संयम का शणगार	221
➤ सुखी होना है ? आत्मा के निकट आओ	224
➤ मोक्ष किसको कहोगे ?	228
➤ मोक्ष किसको मिलता है ?	229
➤ समकित	231
➤ आश्रव और अनुबंध	234
➤ मृत्यु बने महोत्सव	246

हृदय की बात .....

आदिश्वर दादा (2)

भवोभव मलजो तमारो साथ,

भवाटवी मां भटकी रह्यो छुं,

झालजो मारो हाथ ..... भवोभव ...

छोड़्यो नहीं संसार, ना लीधुं

संयम चारित्र तात,

मोक्ष मारग नी राह भूल्यो हुँ,

सांभल्यो नहीं तारो साद .... भवोभव ....

महामंत्र ना जाप करुं हुँ,

आतम पर ना भात,

मोहमाया आश्रवनुं आचमन,

करतो हुं दिवस अने रात .... भवोभव ....

भवनी भावट भांगे एवुं,

'समिकत' मलजो तात,

'श्रद्धांध' मने कही दी थी तमने

मुझ हैयानी बात .... भवोभव ....

''श्रद्धांध''

अक्टूबर 2010

सर्वरोग निवारिणी

(राग :- दरबारी)

पद्मावती देवी तमे छो, सर्व रोग निवारिणी ।

पार्श्व प्रभुना यक्षिणी छो, सम्यग्दृष्टि धारिणी ।।

सर्वरोग निवारिणी ...

वर्ण ॐ ह्रीँ जोड़ी ने जपतां, पार्श्व प्रभुना धारीणी ।

अनुपम प्रभाव प्रवर्ते तमारो, मन वांछित फल दायीनी ।

सर्वरोग निवारिणी ...

भीना भावथी ध्यान धरे तम, पामे लब्धि दु:ख वर्जननी ।

'श्रद्धांध' चहे अमी आशीषनां, आश तमारा दर्शननी ..।।

सर्वरोग निवारिणी ...

''श्रद्धांध''

卐卐卐

'उगे समकित भाण'

'साधर्मिक भक्ति करतां,

थाए उभय कल्याण,

जिन आज्ञा ने सेवतां,

उगे समकित भाण ।।

Car में प्रात: Office जाते हुए मन में भाव उमड़े और लिखा गया

तत्व झरणा

– गणिवर्य मेघदर्शनविजयजी लिखित

वीतरागोऽप्ययं देवो, ध्यायमानो मुमुक्षुभिः ।
स्वर्गोपवर्गफलदः, शक्तिस्तस्य हि तादृशो ।।

वीतराग देव का मुमुक्षु (ज्ञान एवं धर्मप्राप्ति के जिज्ञासु) अन्तर्मन से ध्यान करते हैं तो वो उनको स्वर्ग और अपवर्ग = मोक्ष रूपी फल देने वाला होते है, कारण कि उस वीतराग देव की शक्ति ही ऐसी होती है । जो व्यक्ति इन परमात्मा के गुणों का स्मरण करता है; भक्ति करता है, वंदन करता है, पूजन आदि करता है, उसके दु:ख और दोष आत्मा से दूर हो जाते हैं और वो एक भगवान जैसा स्वरूप पा जाता है । उसी का नाम परमात्मा की प्रसन्नता ...

तित्थयरा में पसीयंतु – तीर्थंकर परमात्मा मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।

* अग्नि में कहाँ राग है ? फिर भी जो विधि से तापता है उसकी ठंड दूर करती है और बीच में हाथ डालता है तो जलाती है ।
* रेचक चूर्ण जो लेता है उसकी कब्जियत दूर होती है, नहीं लेता है उसकी नहीं होती है । तो क्या चूर्ण राग-द्वेष वाला है ?
* सूर्य प्रकाश देने वाला है किन्तु तलघर आदि में प्रकाश नहीं पहुँचाता तो क्या उसमें राग-द्वेष है ? नहीं ! अग्नि, रेचक चूर्ण, सूर्य आदि राग-द्वेष रहित हैं, उनमें ऐसी अद्वितीय शक्ति है, उसी प्रकार राग-द्वेष रहित परमात्मा की शक्ति भी अद्भुत है, अपूर्व है । भगवान के सन्मुख नयनों से नयन मिलाकर जो खड़ा हो जाता है उसे अतिशय लाभ की प्राप्ति होती है और जो उनकी आशातना करता है उसको प्रत्यक्ष चमत्कार-यानि उसका दुष्परिणाम का अनुभव करना पड़ता है ।
* प्रसन्नता हुई अर्थात् लाभ हुआ :- परमात्मा की भक्ति से मोक्ष से लेकर सभी पदार्थों की प्राप्ति का लाभ होता है, यही तो परमात्मा की प्रसन्नता है ।

व्यवहार नय के आधार पर भक्ति गीतों की कितनी पंक्तियाँ गाई जाती हैं ? तुं ही माता, तू ही विधाता, चाहे वो सात राज दूर है हम से, फिर भी मेरे हृदय में तुम्हारी भक्ति का स्वर चल रहा है । 'व्हाला सीमंधर स्वामी, अरजी आ मारी सुणजो अंतर्यामी ।'

* निश्चय नय और व्यवहार नय; दोनों नय अपने-अपने स्थान पर बलवान है। मगरमच्छ का बल पानी में अधिक रहता है। हाथी का पृथ्वी पर हाथी जल में निर्बल और मगर पृथ्वी पर निर्बल। इस प्रकार अपनी-अपनी जीवन शैली में योग्य महत्व देना चाहिए।

* आत्मा अनादि है, संसार अनादि है, आत्मा और कर्म का संयोग अनादि है। यह वीतराग वाणी है और इसे कंठ में उतारो, इन तीनों स्वरूपों को यदि अनादि नहीं माना जाए तो हजारों प्रश्न खड़े होंगे और उनका समाधान कहीं नहीं होगा।

* अगत्य की बात अच्छे से ध्यान में रखो इस काल में भले दूसरी नरक से आगे नहीं जा सकते किन्तु निगोद में तो जा ही सकते हैं।

* बाधा (अविरति दूर) लेने का मन कब होता है ?

अप्रत्याख्यानीय कषाय मोहनीय कर्म का उदय दूर होता है, तब अप्रत्याख्यानीय कषाय का निकाचित उदय हो जाए तो छोटा से छोटा व्रत, पच्चक्खाण भी नहीं कर सकते। छोटे नियम से लगाकर दीक्षा (संयम) जैसा बड़ा नियम करने के लिए बहुत पुरुषार्थ करके ऐसे कषायों का उदय नहीं होने देना चाहिए।

पाप प्रवृत्ति नहीं करते हुए भी पाप क्यों लगता है ? कारण - पाप करने की इच्छा या विचार मन में उत्पन्न होते ही पाप लगता है। जैसे किसी को मारा नहीं परन्तु मारने का विचार करने मात्र से पाप लग गया। पाप करने के भाव मन में दृढ़ है ही, इसलिए बाधा में नहीं ले सकते। तो अशुभ प्रवृत्ति न करते हुए भी पाप तो लगता ही रहता है। इसलिए जो कार्य हमें नहीं करना है उसका प्रत्याख्यान (त्याग) कर लेना चाहिए।

गलत विचार जब आने लगे तब उस समय अच्छे विचारों को मन-मस्तिष्क में लाकर गलत विचारों को रोक देना चाहिए।

पाप प्रवृत्ति के भाव उत्पन्न होना, वह अतिक्रम और उसके लिए उपाय सोचना- व्यतिक्रम। पाप प्रवृत्ति में आगे बढ़ना, वह अतिचार और पाप कर्म करना, अनाचार कहा जाता है।

जैन शासन में प्रवृत्ति से अधिक परिणाम का, परिणति का महत्व अधिक बताया है।

भीतर में पाप करने की प्रवृत्ति सदा की है तो उसका कर्म बंध हमेशा होता ही रहेगा । इन कर्म बंध से छूटने के लिए हमेशा नित्य नए व्रत-नियम-प्रत्याख्यान करते रहना चाहिए ।

* विज्ञान और धर्म :- पदार्थ में परिवर्तन लाए वह विज्ञान एवं आत्मा में परिवर्तन लाए वह धर्म ।

* 'प्रत्याख्यान (त्याग, नियम) लिया और टूट जाय (खंडित हो जाए) तो इससे अच्छा कि नियम लेना ही नहीं चाहिए । ऐसा मन में विचार करना, प्रवृत्ति या परिणति होना, उत्सूत्र वचन है ऐसा कभी मन में नहीं सोचना । ऐसा सोचने से, ऐसा मानने से प्रायश्चित आता है (दोष लगता है) इसलिए नियम तो लेना ही चाहिए । कभी ऐसा संभव हो तो कुछ छूट रख कर लेना । कदाचित कोई ऐसा अवसर आ गया हो कि नियम टूट गया तो उसका प्रायश्चित जरूर ले लेना चाहिए लेकिन नियम के बिना नहीं रहना । मन की दृढ़ता के साथ लिया हुआ नियम कभी टूटता नहीं । कोई ऐसा ही अनिवार्य कारण बनता है कि मजबूरी में नियम तोड़ना पड़ता है या टूट जाता है; टूटने में जो दोष लगता है उससे ज्यादा नियम न लेने से दोष लगता है । तंदुलिया मत्स्य सातमी नरक में जाता है क्योंकि उसके मन में सदा पाप वृत्ति के ही भाव रहते हैं ।

* गृहस्थ जीवन सर्वविरति की Net Practice के लिए है । बेकार जीवन जीने के लिए नहीं ।

अपना मूल कहाँ है ? - निगोद में, अव्यवहार राशि (ऐसी आत्मा जो एक बार भी दुनिया में व्यवहार योग्य नहीं बन सकी) की गोद में, वहाँ से बाहर निकले तो किसके प्रभाव से ? धर्म के प्रभाव से ।

सहन करना वह धर्म ।

दान में :- धन की मूर्छा में घटन आये तो वह दान, धर्म ।

शील में :- काम वासना में घटन आये तो मन को सहना पड़े तो वो धर्म ।

तप में :- शरीर को सहन करना पड़ता है इसलिए वह उसका धर्म है ।

भाव में :- दुर्भावों को दूर करने के लिए, शुभ भावों को मन में उत्पन्न करना पड़ता है, मन को सहना पड़ता है, इसलिए वह धर्म है ।

इच्छापूर्वक सहन करते हैं तो कई कर्मों का नाश होता है । यह सकाम निर्जरा । बिना इच्छा के अनजाने में या दूसरे के द्वारा सहन करना पड़ता है । वह अकाम निर्जरा कहलाती है।

पाँच समवाय

पांच समवाय :- एक आत्मा मोक्ष गई तो ही अपनी आत्मा बाहर निकली, उसमें नियति, भवितव्यता मुख्य कारण है। शेष 4 कारण गौण हैं।

* स्वभाव, काल, कर्म और पुरुषार्थ (उद्यम)। विश्व में कोई भी कार्य, कारण के बिना होता ही नहीं है।

* बालक 9 महीने में ही क्यों जन्म लेता है ? आम गर्मी में ही क्यों आता है ? विकार युवावस्था में ही क्यों उत्पन्न होते हैं, बाल्य अवस्था में क्यों नहीं ? इसका मुख्य कारण काल (समय)।

* कांटे तीक्ष्ण क्यों होते हैं ? अग्नि गरम क्यों ? बर्फ ठण्डा क्यों ? दही दूध से ही क्यों होता है ? पानी से क्यों नहीं होता? कड़ु मूंग क्यों नहीं सीजते हैं ? तो कहेंगे इसका मुख्य कारण स्वभाव।

* एक समझदार दूसरा मूर्ख क्यों ? एक श्रीमंत दूसरा गरीब क्यों ? ये सब विचित्रताएँ क्यों हैं ? इसका मुख्य कारण कर्म या पुरुषार्थ।

जिस जीव ने मोक्ष जाकर अपने ऊपर उपकार किया तो अपने को उसके बदले कुछ नहीं करना ? ऐसा नहीं। अपने को भी जो अव्यवहार राशि के निगोद के जीव हैं उनको बाहर लाने के लिए मोक्ष में जाना ही चाहिए।

पांच समवाय - दुनिया में कोई भी कार्य हो उसमें मुख्य, गौण रूप में 5 कारण काम करते हैं - 1. नियति, 2. स्वभाव, 3. काल, 4. कर्म, 5. पुरुषार्थ (उद्यम)

* उदार, संतोष और प्रसन्नचित बनना है तो जीवन का केन्द्र बिन्दु भगवान को रखना होगा।

* आत्मा को अव्यवहार राशि में से बाहर निकालने में मुख्य कारण नियति है। आत्मा भव्य है या अभव्य, इसमें मुख्य कारण स्वभाव है।

* अचरम आवर्तकाल में से भव्य आत्माओं को चरमावर्त काल में प्रवेश कराने में मुख्य कारण काल है। जब आत्मा का काल (समय) परिपक्व हो जाता है तब भव्य आत्माओं का चरमावर्त काल में प्रवेश हो जाता है।

चरमावर्तकाल में प्रवेश होने के बाद जीव को धर्म एवं मोक्ष से संबंधित सभी बातें अच्छी (रूचिकर) लगने लगती हैं।

ऐसा सुखद अनुभव करने वाले प्राणी के हृदय में उल्लास, उमंग प्रकट हो जाता है, मन में एक ही भाव चलते रहते हैं - बस ! अब तो विशेष साधना करूँ, पुरुषार्थ करूं और जल्दी मोक्ष प्राप्त करूँ।

अर्ध चरम आवर्तकाल में आत्मा का प्रवेश हुआ है या नहीं, यह अपने स्वयं के हृदय को टटोल कर देखना है। बाहर से साधु जीवन में होते हुए भी अंदर से कुछ अलग ही हो सकता है। उसी प्रकार से बाहर से संसारी रूप में दिखाई देते हुए भी अंदर से आत्मा बड़ी प्रशस्त भाव में रह सकती है। इसलिए - No judgement on others !

सेठ तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर चारित्र लिया और केवलज्ञानी के रूप में विचरण कर रहे हैं। आयु पूर्ण कर मोक्ष जाएँगे।

अनुपमा के भव में दीक्षा नहीं ली थी किन्तु मन के परिणाम उत्कृष्टी होने से दूसरे भव में ही मोक्ष के अधिकारी बन गए।

संसारी शिष्य कुमारपाल राजा के सिर्फ 3 भव ही बताएँ हैं। सभी के लिए सभी कार्य हो सकते हैं। जैंसे - बाह्य रूप से गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी कुर्मा पुत्र अंतर्भावना की उत्कृष्टता से उच्च श्रेणी को स्पर्श करते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। केवली के रूप में 6 माह तक घर में रहकर माता-पिता की सेवा की। क्योंकि - केवलज्ञान की किसी को जानकारी नहीं हुई (न होने दी)।

अचरमावर्त में संसार के क्रियाकलाप अच्छे लगते हैं। मोक्ष अच्छा नहीं लगता।

चरमावर्त में संसार भी अच्छा लगता है और मोक्ष भी।

अर्ध चरमावर्त में संसार में रहना किंचित भी अच्छा नहीं लगता। मोक्ष ही अच्छा लगता है। गुरुदेव का साथ अच्छा लगता है। पत्नी यदि साथ भी रहती है तो भी उसके साथ रहना अच्छा नहीं मानता है।

नियति परिपक्व हो गई तो अव्यवहार राशि में से बाहर निकल कर व्यवहार राशि में जीव आ जाता है। काल परिपक्व हुआ तो अचरमावर्त में से चरमावर्त स्थिति में आ जाता है। शेष रहा आधे चरमावर्त के स्वरूप में पहुचने के लिए निरंतर प्रयास करना अनिवार्य होता है।

हमारी आत्मा का स्वरूप ये हो कि मन को मोक्ष रूचिकर लगे, संसार की प्रवृत्ति अरुचिकर लगे। मोक्ष से संबंधित सामग्री अच्छी लगती है। संसार नहीं। सर्वप्रथम भगवान से मिलन, उसके बाद दुनिया की प्रवृत्तियाँ।

श्रीपालकुमार की मयणासुंदरी के साथ शादी होने के बाद उसी रात्रि में श्रीपालजी ने मयणा से पूछा - ''कल प्रात: क्या करेंगे ?' तो उसके उत्तर में मयणा ने यह नहीं कहा कि - पहले वैद्यराज के पास जाकर कोढ़ रोग के निवारण का उपाय करेंगे या मामा के यहाँ जाकर आश्रय लेंगे अथवा बहिन के घर जाकर रहेंगे। नहीं ! मयणा ने क्या उत्तर दिया - ''कल प्रात:काल सर्वप्रथम भगवान आदिनाथ के दर्शन वंदन करेंगे।'' मयणा-श्रीपाल के हृदय में प्रभु बसे हुए थे - इसलिए सबसे पहले भगवान का ध्यान ही उनके नयनों में था, और हमारे ? भगवान और गुरु का नम्बर आखरी में।

अर्धपुद्गल में प्रवेश करने के लिए :- प्रथम नम्बर देव, गुरु और धर्म के गुणों के प्रति आकर्षण (राग) और संसार के प्रति निरागता उत्पन्न करना आवश्यक है।

जल कमलवत् = अनासक्ति - यह अंतर्हृदय से विचार करने योग्य है, पाप करने वाला पापी ही होगा, ऐसा नहीं होता।

वेद मोहनीय कर्म के तीव्र उदय (निकाचित कर्म) वालासत्यकी विद्याधर समकित धारी था; ऐसा भगवान महावीर ने कहा था, अदृश्य रूप में शील भंग करता था, परन्तु अंदर से बहुत पश्चाताप होता। हृदय उस कार्य से अत्यन्त व्यथित होता था। निरंतर रोता रहता था। वह जीव मोक्ष में जाने वाला था।

काल की परिपक्वता के आधार पर जीव चरमावर्त में प्रवेश करता है।

आत्मा का विकास करवाने में आधार क्या है ?

1. दु:खी है या सुखी ?

2. पापी है या पुण्यशाली ?

3. दोषी है या गुणवान !

आत्मा को दोष दूर करना और गुणों को प्राप्त करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करना आवश्यक है। सु:ख-दु:ख, पाप-पुण्य की चिंता किए बिना ! चरमावर्त काल में ही दोष का नाश और गुण की प्राप्ति हो सकती है।

अचरमावर्त काल में कर्म बलवान, पुरुषार्थ निर्बल हो जाता है और चरमावर्तकाल में

पुरुषार्थ सबल एवं कर्म निर्बल हो जाते हैं।

धर्म और धार्मिक अनुष्ठानों में जितनी अधिक आसक्ति होगी उतनी अधिक आराधना बढ़ेगी और विराधना घटेगी। (विराधना कम होगी)

नियति, गणित के उदाहरण के पीछे जो उत्तर है वह उसके जैसा है; परन्तु उसका उत्तर लाने के लिए गुणाकार, भागाकार, हिसाब, उसके बाद शेष सारी रूप रेखा करनी पड़ती है। उसके लिए उसके जैसा पुरुषार्थ चाहिए।

उदाहरण का उत्तर तो निश्चित है ही; किन्तु पुरुषार्थ के बिना उत्तर नहीं मिल सकता।

जब तक नियति को नहीं समझ सकते तब तक पुरुषार्थ करना ही पड़ता है।

भव्य - अभव्य जीव

अव्यवहार राशि की निगोद से बाहर निकली हुई आत्मा की दो प्रकार से यात्रा प्रारंभ होती है -

1. गोल - चूड़ी के जैसा या खाली कुए जैसा मार्ग। गोल-गोल घूमते रहो (चक्कर लगाते रहो) उसका अंत नहीं है।

2. कुंडलिये जैसा - गोल-गोल कुंडालिये बड़े-बड़े बनाते-बनाते आखिर अंत आ जाता है।

प्रथम मार्ग - घाणी के बैल जैसा - जिसमें घूमते रहो। उससे मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं होती।

द्वितीय (दूसरा) मार्ग - मोक्ष तक पहुँचा देता है।

* निगोद में से बाहर निकली हुई आत्मा दो प्रकार की होती है।

1. भव्य (मोक्ष की योग्यता वाली)

2. अभव्य (कभी मोक्ष नहीं जा सकने वाली)

500 शिष्यों के गुरु बनजाए तो भी चूड़ी जैसा गोल मार्ग में ही चक्कर लगाता रहता है।

अव्यवहार राशि की निगोद के जीव एकेन्द्रिय ही होते हैं, उसके स्पर्शेन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रिय नहीं होती।

भवि (भव्य) जीव में मोक्ष जाने की योग्यता होती है और अभवि (अभव्य) जीव में

वैसी योग्यता नहीं होती । पानी में (जावण) जमावण डालने से दही नहीं जमता, प्रत्यक्ष तीर्थंकर देव की देशना श्रवण करने के बाद भी अभवि जीव में मोक्ष जाने की योग्यता नहीं आती है । अभव्य का उपदेश सुनकर 500 शिष्य मोक्ष जाते हैं ऐसा हो सकता है किन्तु स्वयं मोक्ष जा ही नहीं सकता ।

❊ हम भव्य हैं या अभव्य ?

पालीताणा - शत्रुंजय तीर्थ की जिसने यात्रा की है वह भव्य ही है । जिसके मन में यह प्रश्न उठता है कि मैं भवि हूँ या अभवि - तो वह जीव भी भव्य ही होता है । दृा. त. छोटा बालक अपनी माँ से पूछता है कि 'माँ तोतला हूँ या बोलता हूँ ?' तो बोलता है तभी तो प्रश्न पूछ रहा है, अन्यथा प्रश्न पूछ ही नहीं सकता ।

भवि तो भवि ही रहता है, अभव्य-अभव्य ही रहता है । मुख्य रूप से इसका कारण 'स्वभाव' है। मूंग को करडू किसने बनाया ? तो कहना होगा - उसका स्वभाव है । क्योंकि आग पर कितना ही पकाया जाए व लेकिन वो मूंग नहीं सीजता, ठीक ऐसे अभवि को कितना ही उपदेश दो, किन्तु वह भव्य नहीं होता । अभवि-अभवि ही रहता है ।

संसार में धर्मी से पापी अधिक दिखाई देते हैं; फिर भी देखा जाता है कि - अभवि से ज्यादा भवि जीवों की संख्या अनंत गुना होती है । असंख्यात संख्या के 9 प्रकार हैं । पूर्व पूर्व के (प्रथम-प्रथम) असंख्यात करते बाद - बाद के असंख्यात बड़े (स्थूल से स्थूल) बड़े होते जाते हैं । नो से नो असंख्यात की गणना करते फिर अनंत आ जाते हैं । अनंत के भी 9 प्रकार हैं । इस विषय में 9 के अनंत प्रमाण में कोई भी वस्तु या पदार्थ नहीं है; इसलिए विश्व की सभी आत्माएँ 8वें अनंत जितनी कही गयी है ।

उसमें से चार अनंता आत्मा अभव्य है । पांचवें अनंत आत्माएँ मोक्ष गई । पांचवे अनंत आत्माएँ भव्य हैं ।

सूई के अग्रभाग में रहे इतने बटाटा प्याज आदि कंदमूल के कणों में भी आठवें अनंत जितने जीव होते हैं । इसीलिए जैन धर्म में कंदमूल खाने का निषेध किया गया है । कंदमूल खाना महापाप का कारण है । मानव जीवन प्राप्त होने के बाद पापकर्म का मार्ग कौन सा है यह समझ लेना चाहिए और पुण्य प्राप्ति का मार्ग कौन सा है यह भी जानने की आवश्यकता है ।

दोनों राह की जानकारी पूरी होने के बाद ही सुख-दु:ख के हिसाब से जीवन जीना सार्थक होता है।

पाप हो जाए तो रोते-रोते पाप करना और प्रायश्चित करना कभी भूलना नहीं।

जाति भव्य :- जाति से भव्य, नियति से मजबूर कभी भी अव्यवहार राशि में से बाहर न आ सके ऐसे भव्य जीव (ब्रह्मचारिणी साध्वीजी के समान)।

भव्य :- संयम जीवन की सामग्री के संयोग से मोक्षफल की प्राप्ति करे ऐसी आत्मा।

अभव्य :- वंध्या स्त्री के समान, सामग्री होते हुए मोक्ष न जा सके।

भारकर्मी भव्य :- घने कर्म बंधन के बोझ से दबी हुई आत्मा। जैसे - दृढ़ प्रहारी, अर्जुन माली, चिलातीपुत्र आदि।

दुर्भव्य :- कई भवों के बाद मोक्ष जाने वाली आत्मा।

आसन्न भव्य :- निकट भव में मोक्ष जाने वाली आत्मा।

7. अभव्य प्रचलित हैं :-

1. कपिला, 2. कालसौरिक, 3-4. दो पालक, 5-6. दो साधु - विनयरत्न एवं अंगारमर्दक और 7. संगम देव।

1. <u>कपिला</u> :- श्रेणिक राजा की मुख्य दासी थी। साधु को दान (सुपात्रदान) नहीं दे सकती थी। श्रेणिक ने जबरन दान देने बैठाया व हाथ पर चम्मच (चाटू) बांध दिया तो दान देती जाती और कहती जाती - मैं दान नहीं दे रही हूँ राजा का चम्मच दान दे रहा है।

भव्य समकित प्राप्त कर लेता है तो मोक्ष जरूर जाता है। सिर्फ भव्य होने से ही मोक्ष मिल जाता है ऐसा कोई नियम नहीं है।

आचार : प्रथमो धर्म :- पहला धर्म ज्ञान नहीं, पहला धर्म आचार है।

2. <u>कालसौरिक</u> कसाई 500 पाड़ा मारना बंद कर दें तो श्रेणिक तेरी नरक टल जाएगी, भगवान महावीर ने कहा। श्रेणिक ने कालसौरिक को खाली कुएं में उतार दिया कि अब पाड़े नहीं मारेगा। लेकिन वहाँ भी कल्पना के (शरीर का मेल उतार कर पाड़े का आकार बनाया) पाड़े मारे, 500 पाड़े मारे।

3-4 दो <u>पालक</u> :- श्रीकृष्ण का पुत्र <u>प्रथम पालक</u> था। एक समय श्रीकृष्ण ने शांब और पालक को कहा :- तुम दोनों में से जो भी प्रातःकाल (कल) नेमिनाथ भगवान को प्रथम वंदन करेगा उसको मैं मेरा श्रेष्ठ घोड़ा पुरस्कार रूप में दूंगा।

दूसरे दिन प्रातः अंधेरे में ही पालक दौड़ता हुआ गया और नेमिनाथ भगवान को वंदन करी। शांब ने विचार किया - अंधेरे में चलने में जीव-जंतु की रक्षा नहीं हो सकती। जयणा का ध्यान रखकर कर उसने घर बैठे ही भाव से प्रभु को वंदन किया।

सूर्योदय के बाद कृष्णजी भगवान को वंदन करने गए तब पूछा कि प्रथम वंदन किसने किया ? प्रभु ने शांब की भाव वंदना को उत्तम और प्रथम बताई। पालक की सिर्फ द्रव्य वंदना थी।

<u>जयणा</u> में मोक्ष प्राप्ति लक्ष्य है। इसलिए जयणा में धर्म है। शांब नहीं गया उसमें जीव हिंसा नहीं करने का उसका <u>उपयोग</u> ही धर्म था।

दूसरा पालक मुनिसुव्रत स्वामी के शासन काल में हुआ -

स्कंदक सूरिजी आचार्य को नमुचि ने उद्यान में चारों तरफ से घेर लिया। अपने सेवक

पालक के द्वारा नमुचि ने सभी साधुओं को घाणी में डालकर मारना प्रारंभ किया (आचार्य के 500 शिष्य थे) स्कंदक सूरि ज्ञानवान थे, उन्होंने सभी साधुओं को अंतिम आराधना करवाई। ''शरीर और आत्मा अलग है, शरीर घाणी में पिला रहा है, आत्मा नहीं पिलाती, आत्मा कभी नष्ट नहीं होती, शरीर नाशवान है।'' इन भावों से पालक के प्रति दुर्भाव नहीं होता। 499 साधु गुरु आज्ञा में रहकर बिना दुर्भाव के मोक्ष को प्राप्त हो गए। अंतिम छोटा बाल मुनि गुरु का प्रिय शिष्य था। पालक से कहा पहले मेरे को पिल दे उसके बाद बाल मुनि को लेना। मैं उसको पिलते हुए नहीं देख सकता। किन्तु पालक अभव्य था, इसलिए उसने ऐसा नहीं किया। पहले बालमुनि को घाणी में डाला। इस कारण स्कंदक सूरि को पालक के प्रति दुर्भाव (क्रोध) उत्पन्न हुआ और उनकी मोक्ष मार्ग में जाने के प्रति रोक लग गई।

5. ''<u>उदायी राजा</u> की जो हत्या कर दे उसको आधा राज्य मिलेगा'' ऐसी घोषणा सुनकर एक अभव्य व्यक्ति तैयार हुआ। 'उदायी' अकेला कहाँ मिलेगा ? पर्व तिथि को पौषध करता है। इसलिए पौषधशाला में जाने के लिए जैन साधु का सहारा लेना पड़ता है। उदायी राजा की हत्या करने के लिए गुरु का विनय किया। जैन मुनि से दीक्षा ग्रहण किया। गुरु ने उसका नाम विनयरत्न मुनि रखा। रजोहरण (ओघा) में छूरी छुपाकर रखता था। पौषध करवाने के लिए गुरु पौषधशाला में ले गए। आधी रात को उदय राजा की मेन नस काट डाली। गुरु को मालूम पड़ी। जिन शासन की हिलना न हो इसलिए गुरु ने अपने हाथ से अपनी नस काट डाली और प्राणों की आहुति दे दी।

प्रात:काल जब लोग पौषधशाला में गए गुरु को और राजा को मरा हुआ देखकर कहने लगे – 'विनयरत्न गलत था जो इसने राजा को तो मारा ही लेकिन गुरु को भी मार डाला।' जैन धर्म की निंदा होने से बच गई।

6. <u>अंगारमर्दक</u> :– 500 साधु के अभव्य गुरु थे।

7. <u>संगमदेव –</u> महावीर स्वामी को एक रात में 20 उपसर्ग किए। उससे भी संतुष्टि नहीं 6 महीने तक भगवान को शुद्ध आहार नहीं मिलने दिया। जहां भी भगवान आहार के लिए जाते वहां आहार अशुद्ध कर देता। फिर भी प्रभु के मुख मंडल पर प्रसन्नता ऐसी की ऐसी ही रही और संगम के प्रति वीर प्रभु को दया आ गई एवं नयनों में दो आंसू छलक पड़े।

संपूर्ण विश्व को तिराने की भावना वाले प्रभु इस (संगम) के संसार में निमित्त बन गए।

सर्वप्रथम सभी आत्माएँ अव्यवहार राशि की निगोद में होती है। जाति भव्य आत्माएँ कभी बाहर नहीं आती हैं। भव्य आत्मा और अभव्य आत्मा बाहर आती हैं परन्तु दोनों की राह (रास्ते) अलग होती है।

अभव्य गोल आकार आवर्त (O) में भ्रमण करती रहती है। भव्य की यात्रा के गोलाकार का आकार क्रमशः बड़ा होता जाता है और अंत में मोक्ष तक पहुँच जाता है।

जैन शासन में पाया के 6 सिद्धांत है

1. आत्मा है, 2. आत्मा परिणामी (शरीर से पृथक) नित्य है। 3. आत्मा कर्म की कर्ता है, 4. आत्मा कर्म की भोक्ता है। 5. आत्मा का मोक्ष है, 6. मोक्ष के उपाय भी हैं।

अभव्य आत्मा प्रथम के 4 सिद्धांत तो फिर भी मानती है, किन्तु 5वाँ और 6वाँ सिद्धांत तो मानती ही नहीं है। स्वयं दूसरे को मोक्ष के विषय में समझाते हैं, मोक्ष के उपाय बताते हैं। स्वयं द्रव्य से दीक्षा लेते हैं। (ऋद्धि, सिद्धि और स्वर्ग सुख के लिये) नव ग्रैवेयक तक पहुँच जाते हैं। परन्तु मोक्ष नहीं मानते या चाहते ही नहीं हैं।

भव्य कभी अभव्य नहीं होता है और अभव्य कभी भव्य नहीं होता है। अभव्य आत्माएँ चौथा अनंत प्रमाण है, किन्तु उसमें के सात अभव्य प्रचलित है।

साधुवेश, संयम का श्रृंगार

पहला धर्म आचार है, ज्ञान नहीं। क्रिया के प्रति रुचि और आदर होना चाहिए। क्रिया रुचि वाली जीव शुक्ल पाक्षिक होता है, भव्य होता है, जो ऐसी क्रिया आदि में आनंद का अनुभव करता है। एक पुद्‌गल परिवर्तन काल से ज्यादा समय में नहीं रहता। वह उस पहले ही मोक्ष चला जाता है।

सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध आदि के प्रति अहोभाव रक्खो।

✻ <u>कौन सा जीव कहाँ तक जा सकता है ?</u>

✻ <u>जातिभव्य</u> – अव्यवहार राशि से बाहर नहीं निकल सकता

✻ <u>अभव्य</u> – ग्रैवेयक देवलोक तक जा सकता है।

* <u>भव्य</u> - मोक्ष पद प्राप्त कर सकता है।
* <u>सच्चा साधु</u> - मोक्ष पद प्राप्त कर सकता है।
* <u>द्रव्य लींगि साधु</u> - नौवे ग्रैवेयक तक।
* <u>श्रावक-श्राविका</u> - बारहवें देवलोक तक।
* <u>तिर्यंच</u> - आठवे देवलोक तक।
* <u>समकिती श्रावक</u> - बारहवें देवलोक से ऊपर भी जा सकता है।
* <u>मिथ्यात्वी अभव्य आत्मा</u> - वेशधारी साधु बनकर नौवे ग्रैवेयक तक जाता है।

साधु जीवन की सिद्धि, शक्ति अजब गजब की होती है।

साधुवेश से जीवदया का पालन, गुरुसेवा, ब्रह्मचर्य, सहज रूप से पालन हो सकते हैं। मन: पर्यवज्ञान साधु को ही प्राप्त होता है।

<u>'धम्मं रक्खई वेसो'</u>, वेश धर्म की रक्षा करता है, देव साधु को वंदन करते हैं, संसार के रंगीन सुंदर वस्त्रों को त्यागकर संयम श्रृंगार रूप साधु वेश की चाह रहती है।

* सस्नेही प्यारा रे संयम कब ही मिले ?
* क्यारे बनीश हूँ साचो रे संत ?
* लेवा जेवुं ना लीधुं में संयम चारित्र आ भवमां ?
* छोड़वा जेवो छोड़यो नहीं खारो संसार में आ भवमां।

साचा छे वीतराग, साची छे एनी वाणी,

आधार छे आज्ञा बाकी धूल धाणी।

वीतराग ने कहा वही सत्य है, उनकी श्रद्धा ही समकित है, समकित ही मोक्ष का आवश्यक उपाय है। श्रद्धा के लिए चाहिए, मार्दव और आर्जव आदि गुण एवं गुणानुराग।

आध्यात्मिक जगत का भिखारी

जिसका हृदय कोमल नहीं, जिसकी आंखों में करूणा, अनुमोदना या पश्चाताप के आंसू न हो, ऐसा अरबपति भी भिखारी है। जो भौतिक रूप से गरीब है, परंतु करुणा, अनुमोदना, पश्चाताप के आंसू जिसकी आंखों में हो वह आध्यात्मिक जगत का श्रीमंत है।

अवसर्पिणी काल में प्रथम मरुदेवी माता मोक्ष के सद्भागी बने, 1000 वर्ष तक ऋषभ को याद करके आंसू बहाती रही ।

चंदनबाला ने महावीर को आंसू के प्रभाव से वापिस लौटा कर बुलाया, केवलज्ञान रोते-रोते होता है, हंसते-हंसते नहीं । रोने की भी साधना करनी पड़ती है । करुणा में, अनुमोदना में, पश्चाताप में ..... अरे ! प्रभु के विरह में आंसू गिरना ही प्रभु को हृदय में बसाना है।

अर्णिका पुत्र के रक्त बिन्दु नदी के अप्काय जीवों की हिंसा करते देख कर आंसू टपक पड़े, केवलज्ञान हो गया ... मोक्ष चले गए ।

घनघोर वर्षा होती है तो धान्य उत्पन्न होता है, जिनवाणी की अमृत वर्षा से गुण प्रकट होते हैं ।

* भगवान के पांच कल्याणक की आराधना करना चाहिए ? कैसे ?

च्यवनकल्याणक होने के बाद भगवान के मोक्ष के अतिरिक्त सभी गतियों के द्वार बंद हो जाते हैं ।

जन्म कल्याणक अर्थात् गर्भ में आने के द्वार जो खुले थे वो सदा के लिए बंद हो गए ।

दीक्षा कल्याणक यानि गृहस्थाश्रम के द्वार सदा के लिए बंद हो गए ।

केवलज्ञान कल्याणक अर्थात् छद्म अवस्था के द्वार सदा के लिए बंद हो गए ।

मोक्ष कल्याणक होने के बाद संसार में आने का द्वार सदा के लिये बंद ।

अपने को यदि ये सभी द्वार बंद करना है तो ये पंच कल्याणकों की भावविभोर होकर आराधना करनी चाहिए । दीपावली अर्थात् महावीर स्वामी का मोक्ष कल्याणक । उसकी आराधना - मिठाई खाना, फटाके फोड़ना नहीं किन्तु छट्ठ (दो उपवास), पौषध जाप, देव वंदन, प्रवचन श्रवण आदि करना ।

मोक्ष जाने के पहले जीवन का एक ही आवर्त - कुंडालिया बाकी रहता है तब वह चरमावर्त काल (अंतिम कुंडालिया) में प्रवेश कहलाता है । तभी वह भव्य आत्मा चरमावर्ती कहलाती है । (एक कुंडालिया = 1 पुद्गल परावर्त काल), उसमें अनंत भव निकलते हैं । हमने अनंत पुद्गल परावर्तन में भ्रमण किया है । अत: हम चरमावर्त काल में प्रवेश कर चुके हैं ?

सामायिक, प्रतिक्रमण, वीस स्थानक आदि तप, जाप आदि इसके बेरोमीटर नही । आंतरिक परिणति, राग द्वेष के भाव, आत्मा का झोक (Attitude) आदि उसके लक्षण हैं । बाहर से मान-सम्मान प्राप्त करने वाला जीव अंदर से उसकी स्पर्शना नहीं करे ऐसा हो सकता है । गलत प्रवृत्ति बाह्य हो और आत्मा अंदर से रोती हो ऐसा बनाव बने ।

स्थूल भाषा में जिसको संसार ही अच्छा लगता है, उसको मोक्ष अच्छा नहीं लगता । उस जीव ने अभी तक चरमावर्त में प्रवेश नहीं किया । जिसकी आत्मा का आंतरिक झोंक Trend के प्रशस्त भाव विकसित होते हैं तो चरमावर्त में प्रवेश किया हुआ हो सकता है । धर्म भी अच्छा लगे, पाप भी अच्छा लगे, मोक्ष भी, संसार भी अच्छा लगे, होटल भी और आयंबिल भी अच्छा लगता है । ऐसी प्रवृत्ति-वृत्ति वाला जीव, स्थूल भाषा में ज्ञानी जब समझाते हैं - तब कहते हैं, चरमावर्ती जीव होना चाहिए । मोक्ष, धर्म, अनुष्ठान, तप, क्रिया आदि अच्छी ही नहीं लगे, ऐसा नहीं होता ।

क्या बात है ? मेरा इतना अधिक संसार खत्म हो गया । एक ही आवर्त बाकी है ? तो थोड़ा और पुरुषार्थ अधिक करुं ताकि मोक्ष जल्दी मिल जाए । ऐसे भावविभोर होना चाहिए ।

तेजपाल की पत्नी अनुपमा देवी महाविदेह में जन्म लिया, दीक्षा ली और केवलीज्ञानी के रूप में विचरण कर रहे हैं । आयुष पूर्ण करके मोक्ष जाएंगे । गजब की गति ।

गुरु हेमचन्द्राचार्य के बहुत भव होते है । उनके संसारी शिष्य कुमारपाल 3 भव करके मोक्ष जाएंगे । सभी के लिए सभी हो सकता है । अपने अंतर के भावों को शुद्ध निर्मल रखना चाहिए ।

✻ दीक्षा :-

दीक्षा देने वाला या उदय में लाने वाला कोई कर्म है ही नहीं । दीक्षा पुरुषार्थ से प्राप्त होती है । दीक्षा लेते हुए उसको रोकने वाला कर्म है । प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा उसे दूर किया जा सकता है । उसको रोकने वाला कर्मका नाम है, चारित्र मोहनीय कर्म । चेतन की शक्ति जड़

कर्म से अधिक शक्तिशाली होती है। पुरुषार्थ की प्रबलता होने पर चारित्र मोहनीय कर्म को हटना पड़ता है।

भोजन की थाल परोसी हुई है। उसे खाने के लिए व्यवस्थित बैठकर खाने का पुरुषार्थ करोगे तो उदरपूर्ति होगी। उसमें कोई रोकने वाला नहीं। पुरुषार्थ कमजोर होगा तो घर बैठे कोई नौकरी नहीं देगा। व्यापार के लिए पुरुषार्थ (उद्यम) करोगे तो ही पैसे मिलेंगे।

दीक्षा लेने और पालन करने में ज्ञान नहीं वैराग्य चाहिए। शारीरिक बल नहीं, मानसिक बल चाहिए। धैर्यता चाहिए। एकासणा भी नहीं करने वाला मानसिक बल से मास क्षमण की तपस्या कर लेता है। बस ! इसी प्रकार से दीक्षा पालन के लिए व्रत पालन करने की धैर्यता चाहिए।

भाव सहित दीक्षा उत्तम से भी उत्तम है। भाव से रहित भिखारी ने दीक्षा ली, किन्तु बाद में संयम की अति अनुमोदना के प्रभाव से संप्रति राजा हुआ। वेश से ली हुई दीक्षा भी मनुष्य को तार देती है।

उपवास करते हैं तब 24 घंटे भाव एक-जैसे कहाँ रहते हैं ? इसलिए भाव कम ज्यादा हो सकते हैं फिरभी तारने वाला अनुष्ठान है।

सुखी होना है ? आत्मा के निकट जाओ

<u>* आत्मा का विकास कैसे करना ?</u>(इन्द्रिय पराजय शतक ग्रंथ में से विवेचन लिया है)

मैं <u>अवगुणी</u> हूँ या गुणवान इसके आधार पर आत्मा का विकास होता है। सुखी या दुःखी पापी या पुण्यशाली के आधार पर नहीं। <u>दोषों के नाश और गुणों की प्राप्ति करने का प्रयत्न करने से विकास की साधना होती है।</u> चरमावर्त काल में ही ऐसा बनता है। अचरमावर्त काल में कर्म बहुत बलवान होते हैं और पुरुषार्थ कमजोर होता है। चरमावर्त में पुरुषार्थ बलवान होता है जिससे कर्मों को हारना पड़ता है।

धर्म आराधना, अचरमावर्त काल में भी इतने समय विराधना को रोक देती है। इसलिए धर्म आराधना सतत चालू रहना ही उत्तम है। पुण्य का बंध और पाप का नाश करती है। दुःख कम करती है।

---

* (इन्द्रिय पराजय शतक ग्रंथ में से विवेचन लिया है)

अचरमावर्त काल में विराधक भाव होते हैं, जिससे दोष निवारण या गुण प्राप्ति नहीं होती।

मोक्ष होना होगा जब होगा (नियतिवाद) तो पुरुषार्थ किसलिए करें ?

गणित के उदाहरण का जवाब पीछे के पन्ने पर दिया हुआ है और उसे प्राप्त करने के लिए जैसे-हिसाब-उसके बाद बाकी (जोड़-बाकी) आदि करना ही पड़ता है । गुणाकार, भागाकार, वर्गमूल, सारी रीति करना पड़ती है, उसके जैसा पुरुषार्थ है तो उदाहरण का उत्तर निश्चित होगा । फिर भी जब तक समझ में नहीं आता तब तक संपूर्ण प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है । नियति को नहीं समझा तब तक पुरुषार्थ करना ही पड़ता है ।

जिसको मोक्ष की इच्छा है, उसको मोक्ष नहीं मिले तब तक मोक्ष से पूर्व की सारी स्थितियां प्राप्त होती रहती है ।

मोक्ष प्राप्ति के लिए, सत्संग करना, अच्छी पुस्तकों का वांचन करना, जिससे ज्ञानवर्धन हो। तप, जप, ध्यान में आगे बढ़ना, व्याख्यान श्रवण करना आदि से हेय, ज्ञेय और उपादेय का विवेक विकसित होता है ।

* सभी को सुख अच्छा लगता है वह सुख कैसा हो तो अच्छा लगे ?

(1) ऐसा सुख जो पीछे से बड़ा दु:ख न दे जाए । (2) जो अखंड सुख रहे (3) स्वयं के अधीन हो और (4) दु:ख से मिश्रित सुख नहीं चाहिए ।

* ऐसा सुख कहाँ मिलता है ?

हिरण को कस्तूरी की सुगंध आती है, वह जंगल में इस छोर से उस छोर तक दौड़ लगाता रहता है, यह देखने के लिए कि यह सुगंध कहाँ से आ रही है ? उसको नहीं पता कि यह खुशबू युक्त पदार्थ 'कस्तूरी' मेरी ही नाभि में है । वो जंगल में बाहर ढूँढता फिरता है ।

अपने सुख को पत्नी, पिता, पुत्र, पुत्री परिवार में ढूँढते हैं TV Set, Tea Set, BR Set , Dining Set आदि विज्ञान ने जो शोध करके उपयोग के साधन बनाए हैं, उसमें सुख को ढूंढते फिर रहे हैं । प्यास छिपाने के लिए विविध प्रकार के पेय पदार्थ पिए किन्तु जो पानी की प्यास है वह नहीं छिप सकती । पानी की प्यास पानी से ही दूर होती है ।

Face Cream से Temporary युवावस्था दिखाई देती है । मगर .....

सुख साधनों में नहीं है साधना में है । धर्म की शरण में है । सूई झोपड़ी में गिर गई और बुढ़िया ढूंढ रही है बाहर तो कहाँ से मिलेगी ? अंदर ही ढूंढो ! निश्चित रुप से मिलने पर आनंद का अनुभव होगा ।

जैसे-जैसे आत्मा के निकट जाएंगे वैसे-वैसे सुख का अनुभव होगा । जैसे-जैसे आत्मा से दूर होंगे वैसे-वैसे दु:ख का अनुभव होगा ।

आत्मा के गुण, निर्विकारता, निराभिमान, तृप्ति, क्षमा आदि का प्रकट होना सुख की निशानी है ।

मोक्ष में आश्चर्यअजीब ये है कि कोई भी पदार्थ के संयोग के बिना मोक्ष अवस्था अचल सुख प्रदान करती है ।

नींद में से कोई उठाता है तो अच्छा नहीं लगता वह पदार्थों के संयोग बिना का बहुत ही सामान्य सुख है। दूसरा - दर्शनावरणीय कर्म के उदय से नींद आती और ऐसे ही आठों कर्म के क्षय होने पर ही मोक्ष प्राप्त होता है ।

विज्ञान पूर्ण सत्य नहीं यह सत्यान्वेशी है । उससे उच्चता युक्त दूसरा सत्य मिल जाए तो पूर्व में स्वीकार किए हुए सत्य को भी छोड़ देते हैं । जैन धर्म के वीतराग प्रभु ने सत्य योग से जाना है प्रयोग से नहीं, **Experiment** से नहीं, **Experience** से जानकर बताया है ।

मोक्ष अर्थात् आत्मा का आरोग्य

उदाहरण - बड़े भाई का शरीर निरोग था । छोटे भाई को टाईफाईड हो गया । छोटे भाई को घंटे-घंटे में फ्रूट ज्यूस मिलता है । माता-पिता उसका पूरा ध्यान रखते हैं । स्कूल जाना बंद हो गया ? काम भी नहीं कराते हैं । किन्तु बड़े भाई को सब कुछ करना पड़ता है ।

इन दो भाइयों में सुखी कौन और दु:खी कौन ? छोटे भाई को सब कुछ मिल रहा है फिर भी सुखी तो नहीं ही कहला सकता । सब कुछ मिलने के बाद भी छोटा भाई दु:खी क्यों ? क्योंकि-रोगी है, संसारी जीव भी रोगी है इसलिए दु:खी है, उसको भूख, प्यास, इच्छाएं, भोजन की मांग, सारी सुविधा चाहिए । ये सारी सुविधा नहीं मिले तो भी निरोगी बनना ही

पड़ता है । इसलिए संसारी जीव को मोक्ष जाने का मार्ग प्राप्त करना ही है । सांसारिक सुख सुविधाओं में सुख मानना-मीठी खुजली रोग जैसा है । उसमें सुख नहीं है ।

दशा बदलने के लिए दिशा बदलना पड़ती है । क्षमा, आर्जव, मार्दव, सत्य, अहिंसा, तप आदि गुणों का अनुभव आत्मामय है । जैसे-जैसे गुण प्रकट होते हैं; वैसे-वैसे मोक्ष की आंशिक अनुभूति होना चाहिए ।

मोक्ष किसको कहोगे ?

* आत्मा के मूल भूत स्वभाव को प्रकट करना उसका नाम मोक्ष है ।

आत्मा की सर्व दु:ख रहित, सर्व पाप रहित, सर्व दोष रहित अवस्था ही मोक्ष है । सभी गुणों का प्रकटीकरण ही मोक्ष है । व्यवहार से 14 राजलोक के ऊपर के अंतिम छोर की सिद्धशिला पर पहुँचना ही मोक्ष है ।

लक्ष्य मोक्ष का - मोक्ष को लक्ष्य में रखकर की गई सांसारिक क्रिया भी दुर्गति को दूर करती है । मोक्ष के लक्ष्य के बिना की हुई धार्मिक क्रिया सद्गति की गारंटी नहीं दे सकती । मोक्ष का लक्ष्य प्रबल स्वरूप में रखा जाए तो वह लक्ष्य सम्यक्त्व की निशानी है । समकित की प्राप्ति के बाद अगले भव में वैमानिक देवलोक का ही आयुष्य बंधता है ।

* 10 प्राण - 5 इन्द्रियाँ मनबल वचन बल कायबल+आयुष्य+श्वासोच्छ्वास ।

ये 10 द्रव्य प्राण है । भाव प्राण दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि है । प्रमत्त योग से, प्राण का वियोग करना, कराना और अनुमोदन करना ये हिंसा है, इसलिए आत्मा मरती नहीं है तो हिंसा कहां से होती है, ऐसा नहीं सोचना ।

प्रमत्त योगात् - प्राण व्यपरोपणं हिंसा ।

अन्य जीव मरे नहीं इसका पूर्ण उपयोग रखने के साथ क्रिया करना, फिर भी कोई जीव मर जाय तो उसकी हिंसा का पाप नहीं लगता, क्योंकि वहां प्रमाद कारण नहीं है । जीव न मरे उसको पूर्णत: देखा नहीं जाता । प्रमाद हो और दौड़-भाग करते भी जीव न मरे तो भी हिंसा का पाप लगता है ।

<u>रुपी-अरुपी</u> :- जिसका रुप हो वही रुपी ऐसा नहीं । जिसके वर्ण (रंग) गंध, रस, स्पर्श, आकार हो वह रुपी और जिसके ये सभी न हो तो अरुपी । रुपी दिखता है, अरुपी दिखाई नहीं देता, वह 'पुद्गल' है । पूरन और गलत होता है वह पुद्गल, पुद्गल परिवर्तन शील है, रुपी है, कर्म भी पुद्गल है ।

मोक्ष किसको मिलता ?

टीवी, अच्छा खाना, पति, पत्नी, पुत्र आदि अच्छे पदार्थों की इच्छा जिसका होती है उसको वो सभी मिल जाए ऐसा कोई नियम नहीं है । परन्तु मोक्ष की इच्छा जिसको होती है उसको मोक्ष अवश्य मिलता है, ऐसा नियम है ।

मोक्ष किस प्रकार मिलता है ?

अपने पाप कर्मों का संपूर्ण क्षय होने के बाद ही मोक्ष मिलता है । पुण्य से स्वर्ग के सुख मिलते हैं, धर्म क्रियाओं से पुण्य का बंध होता है । संसार में रहकर पाप कर्मों का समूल विनाश संभव नहीं । इसलिए सर्व विरति को ही धर्म कहा है । वहाँ पाप का समूल विनाश करने का बहुत अच्छा अवसर है ।

मोक्ष में जितने जीव मोक्ष गए हैं उनसे अनंत गुणा जीव ..... प्याज आदि कंदमूल है हैं । इन विचारों को आत्मसात् करके कंदमूल का त्याग मोक्ष में जाने की चाह वाले के लिए आवश्यक है । मोक्ष मनुष्य गति से ही प्राप्त होता है । इसलिए जितना जल्दी हो उतना शीघ्रातिशीघ्र इस तत्व ज्ञान को समझने का, जीवन में उतारने का प्रयत्न करना चाहिए ।

मोक्ष कौन जा सकता है

1 गाउ = 2000 धनुष - अधिक से अधिक 500 धनुष की कायावाला, कम से कम 2 हाथ की शरीर वाला ।

एक समय में अधिक से अधिक 108 आत्माएँ मोक्ष जाती हैं ।

मोक्ष जाने का बंध होता है तो अधिक से अधिक 6 महीने तक बंध रहता है ।

चैत्र सुदी पूनम के दिन शत्रुंजय तीर्थ में पुंडरिक स्वामी के साथ 5 करोड़ मुनि मोक्ष गए।

कार्तिक सुदी पूनम के दिन शत्रुंजय तीर्थ में द्राविड़-वारिखिल्ल के साथ 10 करोड़ मुनि मोक्ष गए ।

आसोज की पूनम दिन शत्रुंजय में 5 पाण्डवों के साथ 20 करोड़ मुक्ति को प्राप्त हुए ।

आज के विज्ञान ने एक सेकंड के अरब अरब अरब अरब करोड़वें भाग को Plank Second कहा है। जैन धर्म की परिभाषा में समय इससे भी सूक्ष्म है। एक समय में 108 से अधिक मोक्ष नहीं जाते हैं। किन्तु एक सेकंड के अरबवें भाग में करोड़ों जीव मोक्ष जाते ही हैं। अपनी बुद्धि में 20 करोड़ जीव एक साथ मोक्ष गये ऐसा लगता है।

* चौथे आरे में जन्मा हुआ जीव पांचवे आरे में मोक्ष गया है। <u>गौतम स्वामी भगवान</u> महावीर के मोक्ष जाने के <u>12 वर्ष बाद</u> मोक्ष गये। <u>सुधर्मास्वामी 20 वर्ष बाद</u> और <u>जंबुस्वामी 64 वर्ष बाद</u> भरत वर्ष में से मोक्ष गए।

मोक्ष सिर्फ 15 कर्मभूमि में ही होता है। इससे बाहर होता ही नहीं है। यह नियम है। अढ्ढाई द्वीप का प्रमाण 45 लाख योजन है। उसके चारें ओर मानुषोत्तर पर्वत है। उसके बाहर कोई भी मानव का जन्म या मरण नहीं होता।

मोक्ष में संपूर्ण स्वभाव प्रकट होने से वहाँ किसी प्रकार का कोई दु:ख नहीं है। वहां संतोष, तृप्ति आदि आत्मिक गुणों का विकास है। वहाँ शांति, समाधि, प्रसन्नता है। दोष के जागरण में दु:ख और गुणप्राप्ति में आनंद है।

इच्छा हो वहां दु:ख आता ही है, क्योंकि सर्व दु:खों का मूल ही इच्छा है। एक ही इच्छा करना है कि - मैं अनिच्छा वाला बनूँ। Desire to be Desire less.

कपिल दो मासा सोना लेने गया था, इच्छा बढ़ती गई, दु:खी होता गया। अंतर से शुभ भाव की धारा बह चली, केवल ज्ञानी हो गया, कुछ समय बाद मोक्ष चला गया।

भव्य जीव ही मोक्ष जाते हैं लेकिन सभी भव्य जीव मोक्ष जाते ही हैं; ऐसा कोई नियम नहीं है। इसलिए पुरुषार्थ जरूर करना चाहिए।

भव्य जीव आठवें अनंता है। अभव्य चौथा अनंता है और मोक्ष में पांचवा अनंता जीव गए हैं। इसलिए सभी भव्य जीव मोक्ष नहीं जाते। अन्यथा मोक्ष जाने वाले जीव आठवें अनंता कहे जाते।

* जहां नए कर्म बंधे होते हैं वहां दुर्गति, जहां बहुत सारे कर्म नाश होते हैं वह सद्गति।
* देव गति के और नरक गति के जीव चौथे गुणस्थानक से आगे नहीं जा सकते हैं। तिर्यंच गति के जीव पांचवे गुणस्थानक से आगे नहीं जा सकते।
* सात लाख सुत्र का क्रम गुणस्थानक के आधार पर बनाया गया है, ऐसा लगता है।

समकित

* समकित अर्थात् हृदय परिवर्तन, विरति यानि जीवन परिवर्तन। हृदय परिवर्तन के बिना जीवन 'आभास मय' ही रहता है। जीवन परिवर्तन अधिक समय नहीं रहता। भगवान की बताई हुई सभी बातें हृदय से स्वीकार कर ली जाए तो समकित है अन्यथा वह मिथ्यात्व है।
* समकित प्राप्ति से पहले 6 अवस्था से गुजरना पड़ता है। (1) द्विर्बंधक, (2) सुकृतबंधक, (3) अपुनर्बंधक, (4) मार्गाभिसुख, (5) मार्गपतित, (6) मार्गानुसारी।

मोहनीय कर्म की उ. स्थिति 70 क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम की स्थिति। दो से अधिक बार नहीं बांधे वह द्विर्बंधक।

मोहनीय कर्म की उ. स्थिति एक ही बार बांधने वाला सुकृत बंधक।

एक बार बांधने के बाद फिर मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति नहीं बांधे वह अपुनर्बंधक।

मोक्ष मार्ग की तरफ जो दृष्टि रखता रहे वह मार्गाभिमुख।

उसके बाद मोक्ष मार्ग पर जाकर खड़ा हो जाए वह मार्ग पतित।

जब मोक्ष मार्ग का अनुसरण कर लेता है तो मार्गानुसारी बन जाता है। उसके बाद ही समकित की प्राप्ति होती है।

मोहनीय कर्म का मिथ्यात्व मोहनीय कर्म ही 70 क्रो.क्रो. सागरोपम की स्थिति वाला बंध सकता है। इसलिए मिथ्यात्व जैसा कोई दोष नहीं।

आत्मा में राग, द्वेष, विषय, कषाय आदि दोषों की तीव्र मंदता को परिणति कहा जाता है। मन, वचन, काया के विचार उच्चार आचार की प्रवृत्ति और परिणति, आत्मा में चुंबकीय शक्ति पैदा करती है, जो कार्मण वर्गणा को आकर्षित करके स्वयं पर चिपकते कर्म बनते हैं। अर्थात् कर्म बंध होता है उस समय उसमें प्रकृति, स्थिति रस, प्रदेश निश्चित होते हैं।

मिथ्यात्व 18वाँ पापस्थानक है। उसके कारण आगे के 17 पाप होते रहते हैं। मिथ्यात्व जब तक समाप्त नहीं होता तब तक समकित प्राप्त नहीं होता।

समकित को तुम क्या करते हो ? उसके साथ जुड़ाव (Connection) नहीं किन्तु तुम क्या मानते हो ? तुम्हारी मान्यताएँ क्या हैं ? उसके साथ जुड़ाव है।

परमात्मा के साथ एकता वह सम्यक्त्व। विलग होना वह मिथ्यात्व। विरति (त्याग, पच्चक्खाण आदि) का उच्चारण, आचार के साथ संबंध है। आचारों में परमात्मा के साथ एकता वही सर्वविरति है।

✻ 5 प्रकार का मिथ्यात्व

1. मेरा सो सच्चा - हठवादि, दूसरे की किसी की बात मानने को तैयार ही नहीं। सच्चा सो मेरा नहीं, मैं ही सत्य हूँ और सभी असत्य। आभिग्राहिक मिथ्यात्व।
2. सभी धर्म अच्छे हैं, ऐसी विचारणा, अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व। सर्व धर्म समभाव नहीं सर्व धर्म सहिष्णुभाव चाहिए।
3. भगवान की सभी बातें मानें किन्तु एकाध ही न माने वह अभिनिवेशिक मि.। किया गया हो तो करा हुआ कहा जाएगा। व्यवहार भाषा का भगवान का वचन, ''कडे माणे कडे'' जमाली जो जमाई था उसने यह वाक्य माना नहीं। हठवादी होकर मिथ्यात्वी हो गया। <u>उत्सर्ग और अपवाद अपने-अपने स्थान पर समझकर उपयोग करना चाहिए।</u> भगवान के सामने अपना बल दिखाने वाला निह्नव कहलाता है। निह्नव अर्थात् भगवान के सिद्धांतों को गोपनीय करने वाले (भगवान के सिद्धांत को अपने तरीके से बताने वाला) 8 निह्नव बताये हैं। जमाली प्रथम निह्नव था। प्रभु ने जो कहा वह करने का है, उन्होंने किया वह करने का आग्रह नहीं करना।

4. भगवान के वचनों में शंका करे तो समकित जाता है, सांशयिक मिथ्यात्व। मरीचि के भव में समकित खो दिया। 16वें भव में फिर प्राप्त किया।

5. अनुपयोग दशा, अज्ञानता, विवेक का अभाव, समझ का अभाव, अनाभोगिक मि.। कीड़ी-मकोड़ा, पशु-पक्षी, कितने कुछ अज्ञानी मानव।

* कर्म 4 द्वार से आत्मा में प्रवेश करते हैं

(1) मिथ्यात्व, (2) अविरति, (3) कषाय और (4) योग।

जैन दर्शन में सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद ही प्रवेश हुआ कहा जाता है और यहाँ से ही भव की गणना प्रारंभ होती है।

* उत्सूत्र वचन महा पाप है। * सुसूत्र वचन महा धर्म है।

समकित प्राप्त करने के लिए क्रोध (कषाय), काम वासना, आसक्ति आदि दोष से सचेत रहना पड़ता है।

5 प्रकार का मिथ्यात्व चला जाय और समकित आये तब पहला द्वारबंध होता है। शेष 3 द्वार खुले ही रहते हैं। सर्वविरति आने पर शेष दो द्वार खुले रहते हैं।

अविरति का द्वार थोड़ा कुछ बंद होता है, वह देशविरति। विरति अर्थात् पाप से बचना। सभी पापों से बचना वह है सर्व विरति।

<u>अविरति के 12 प्रकार -</u> पृथ्वी काय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रस काय, छः हिंसा से बच जाना वे छः प्रकार हैं + 5 इन्द्रिय और मन की अविरति।

* गृहस्थ जीवन में पाप न करना और न कराने की प्रतिज्ञा, परन्तु पाप की अनुमोदना तो चालू ही रहती है।

* राग आग जैसा है, द्वेष धुँए जैसा है।

* आग बिना धुंआ नहीं होता उसी प्रकार राग बिना <u>द्वेष</u> नहीं होता।

* लोभ (आसक्ति) को सभी कषायों का मूल कहा है, वह 10वें गुण स्थानक के अंत में

नाश होने वाला कषाय है। क्रोध मान, माया, पूर्णतः 9वें गुणस्थानक में नष्ट (समाप्त) होते हैं।

✻ कामवासना बुरी है या धन की ममता बुरी है ?

कामवासना से ज्यादा धन की ममता सब से अधिक भयानक है। कामवासना अधम है, तो धन की ममता अधमाधम है। काम की इच्छा आर्त्तध्यान है। धन की लेश्या रौद्र ध्यान बनकर नरक गति का कारण बनता है।

काम को वेद मोहनीय उत्पन्न करता है, वह 9वें गुणस्थानक पर नष्ट होता है। अर्थ की लेश्या को उत्पन्न करने वाला मोहनीय कर्म 10वें गुण स्थानक पर नष्ट होता है।

कामवासना में (समय, शक्ति, व्यक्ति, समाज, इज्जत की मर्यादा) मर्यादा बाधा बनती है, धन की लेश्या में मर्यादा बाधा नहीं बनती।

✻ आत्मिक दृष्टि से जो सो रहा है वह मिथ्यात्वी है, जो जागृत है वह समकिती है।

जंबुस्वामी को पूर्व भव में मोहनीय कर्म का निकाचित उदय था। 12 वर्ष तक छट्ठ के पारणे छट्ठ करते थे फिर भी दीक्षा प्राप्त नहीं हुई। बिना पुरुषार्थ के चारित्र मोहनीय कर्म के सघन उदय की ओट लेकर नहीं बैठा जाता।

देव और नरक के जीवों को निकाचित चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होता है। सामान्य से 1 लाख में एकाध कर्म निकाचित हो सकता है।

संसार की बातें कर्मों पर छोड़ देना चाहिए, किन्तु धर्म के कार्यों में पुरुषार्थ को महत्व देना चाहिए।

हठवादी को उपदेश देने की शास्त्रकारों ने मना की है। ऐसा व्यक्ति प्रवचन श्रवण करने के लिए अयोग्य है। कच्चे घड़ों में पानी डालने जैसा है। भरा हुआ घड़ा फूट जाएगा। पानी भी व्यर्थ जायेगा।

आश्रव और अनुबंध

आश्रव :- जीवन में शुभाशुभ कर्म का आना वह है आश्रव । तत्वार्थाधिगम सूत्र का 6ठे अध्याय में आश्रव का विवेचन है । मन, वचन और काया की क्रिया ही आश्रव । जहाँ योग वहाँ आश्रव । योग वीर्यांतराय के क्षयोपशम/क्षय से होता है । 108 कारण होते हैं ।

<u>सरंभ</u> : प्रमाद के कारण हिंसादि प्रयत्नों का आवेश ।

<u>समारंभ</u> : ये कार्य करने का साधन एकत्रित करे ।

<u>आरंभ</u> : अंत में उस समय कार्य को प्रारंभ करे ।

3x3 मन, वचन, काया ।

9x3 करना, कराना और अनुमोदना करना ।

27x4 कषाय, इस प्रकार आश्रव 108 हुए ।

<u>बंध</u> : कर्म का आत्मा के साथ दूध-पानी के जैसा हो जाना ।

<u>संबंध</u> : कार्मण वर्गणा का आत्मा द्वारा ग्रहण होने की क्रिया, वह संबंध है ।

राग द्वेष इसके मुख्य कारण हैं, इसलिए बंध और संबंध होते हैं । बंध होने में आत्मा परिणामी द्रव्य है । इसलिए बंध हो सकता है । 14वें गुणस्थानक में बंध नहीं है । योग है तब तक ही लेश्या है ।

त्रसकायपन 2000 सागरोपम से अधिक नहीं होता ।

पंचेन्द्रिय जीव 1000 सागरोपम से अधिक निरन्तर नहीं रह सकते ।

मनुष्य भव लगातार 7 बार ही मिलता है ।

आश्रव कम कैसे होता है ?

हेय का चिंतन : पाप, आश्रव, बंध ।

ज्ञेय को जानना : जीव - अजीव ।

उपादेय को प्राप्त करना : पुण्य, संवर, निर्जरा, मोक्ष । इनके लिए प्रवृत्ति करो ।

मन को अच्छे स्थान पर रोको, स्वाध्याय करो, निर्जरा होगी ।

आठ कर्मों के बंध का मूल लेश्या है । लेश्या कर्म का पिता है ।

आश्रव को द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव, भव से विचार करो, 18 पाप स्थानक से विचारो ।

उदय में आए हुए कर्म में नए कर्म बंध की शक्ति होती है वह है अनुबंध ।

दु:ख आया : पाप कर्म का उदय ।

सुख आया : पुण्य कर्म का उदय ।

दु:ख से दुर्जनता भयंकर ।

सुख से सज्जनता श्रेयस्कर ।

आश्रव और अनुबंध

– प. पू. मोहजीत विजयजी म.सा. की पुस्तक से उद्धृत

अपना कर्मवाद प्राकृतिक न्याय पर रचित है । जैसा विचार करो बोलो या चेष्ठा करो, उसके सामने निश्चित कर्मबंध है ।

अज्ञान, राग-द्वेष ये आंतरिक मूल बीज हैं । पुराने कर्मों से राग द्वेष होता है और उनसे फिर नए कर्म बंधते हैं । ये घट माल अनादि से है । इनसे छुटकारा पाने के लिए नवतत्व का ज्ञान आवश्यक है ।

14 राजलोक में ठूंस-ठूंस कर कर्मवर्गणा भरी हुई है - वही लोक स्थिति है । एक प्रकार के निश्चित नियम का अनुसरण करते अनिवार्य घटनाएँ होती हैं, जिसको तीर्थंकर देव भी बदल नहीं सकते ।

जहाँ परस्पर उपधात (टकराहट) होती है वहाँ अवकाश (Space) का प्रश्न उपस्थित होता है । अत: एक स्थान पर दो वस्तु नहीं रह सकती है । सिद्धशीला के ऊपर सिद्ध जीवों में परस्पर टकराहट नहीं है । यानि, शुद्ध द्रव्य जीव एक ही स्थान पर अनंत संख्या में रह सकते हैं। जहाँ बादर (स्थूल) परिणाम होता है वहीं टकराहट होती है । सूक्ष्म परिणामी द्रव्य में टकराहट (उपघात) नहीं होती । अचित महास्कंध (धर्मास्तिकाय आदि) सूक्ष्म परिणामी होते हैं ।

जीव ज्ञानात्मक और प्रकाशात्मक है इससे मोक्ष अवस्था में ज्योति में ज्योति मिल जाती है , उसी प्रकार एक ही आकाश प्रदेश पर अनंत सिद्धो के आत्मप्रदेश रह सकते हैं ।

सिद्ध जीवों के निकट कार्मण वर्गणाएँ होते हुए भी वहाँ कर्मबन्ध या संबंध नहीं है । कर्मवर्गणा का आत्मा द्वारा ग्रहण उसके संबंध कहा है । आत्मा के साथ दूध पानी सा संबंध होना वह बंध । आत्मा अशुद्ध दशा में होने के कारण ऐसा होता है ।

स्पृष्ट = स्पर्शबंध, बद्ध = बंधन (स्पर्श को पोषण मिलना), निधत्त = अनुमोदना की इससे कर्म बंध हुआ, निकचित = रचा-बसा हो गया (पूर्ण आसक्ति) । गुनाह की स्वीकृति ही होती है, वकालात नहीं । पाप की अनुमोदना ?

हम संसारी जीव हैं, जो आकाश प्रदेश में हैं तो इसी आकाश प्रदेश पर कर्मवर्गणा भी है । किन्तु उसे ग्रहण कर रहे हैं। आत्मा परिणामी है। अत: कर्मबंध है ।

तत्व के अज्ञान को मोह का शरीर कहा है, तो तत्व के ज्ञान को चारित्र धर्म का शरीर कहा है । इसलिए तत्वज्ञान के अतिरिक्त संसार से किनारा नहीं है ।

योग और कषाय : जहाँ-जहाँ योग, वहाँ-वहाँ कंपन (आत्म प्रदेश का) । कंपन है तब तक कर्म का बंध है । (कंपन कैसे होता है ? वीर्यांतराय के क्षयोपशम से) राग-द्वेष की जितनी तीव्रता होगी उतनी ही कर्मबंध की भी तीव्रता रहेगी ।

जहां चंचलता है वहाँ कर्मवर्गणा चिपकती ही है।

योग है वहाँ तक लेश्या है । (मनोयोग का परिणाम - रसबंध का मूल कारण) जहाँ चंचलता है वहां लेश्या होती ही है।

* यदि समझें तो मोक्ष की चाबी हमारे ही पास है । हमारे हाथ में है । अज्ञान के कारण मोक्ष होता नहीं है । जीव, दर्शन, मोहनीय आदि कर्म उदय के कारण मोक्ष का उपाय समझ नहीं पाता, उसके लिए प्रयास नहीं करता और इसलिए भटकता रहता है ।

हम निमित्तों के बीच जी रहे हैं, किन्तु Face किस प्रकार करोगे ? राग-द्वेष के बिना, इसलिए स्थितप्रज्ञ होना है । <u>अनुकूलता हो या प्रतिकूलता, दोनों में समभाव से रहना ही स्थितप्रज्ञ होता है ।</u>

प्रथम तत्व का निर्णय, फिर तत्व का पक्षपात - यहाँ सम्यग्दर्शन होता है । उसके बाद हेय और उपादेय के तरीके का सेवन ।

प्रथम सुश्रूषा (जिज्ञासा), फिर श्रवण, पश्चात् ग्रहण ।

तत्व का अज्ञान ये मोह का शरीर जिसकी करोड़ रज्जु (Backbone) 18 पाप स्थानक हैं । आत्मा की प्रकृति मोक्ष है । आत्मा की विकृति संसार है ।

संसार में पराधीनता तो देखो, जीव को कुछ भी करना हो तो पुद्गल का मुख देखना पड़ता है । बोलना है ? भाषा वर्गणा के पुद्गलो की आवश्यकता रहती है । विचार करना है तो ? मनोवर्गणा पुद्गलों को अलग करने पड़ेंगे ।

संसार में जीव परतंत्र है । मोक्ष में जीव स्वतंत्र । जीव के मनोयोग के समय जो परिणाम आते हैं वे भाव लेश्या हैं । 13वें गुणस्थानक तक, भावलेश्या रहती है; फिर जीव अलेश्या रूप हो जाता है । कारण वहां मनोयोग के परिणाम नहीं है ।

जहां तक योग होता है वहां तक लेश्या रहती है । राग-द्वेष नहीं हो और मनोयोग के परिणाम हो तो परम शुक्ल लेश्या समझना, राग-द्वेष नहीं होता - उस भाव को माध्यस्थ भाव कहा है और तब 'निर्जरा' होती है ।

औदासिन्य = राग द्वेष रहित = माध्यस्थ भाव ।

व्यवहार नय प्रमाण से माध्यस्थ भाव, अपुनर्बंधक अवस्था से प्रारंभ होता है । निश्चय नय प्रमाण से पांचवे गुणस्थानक से प्रारंभ होता है ।

अपुनर्बंधक अवस्था : जीव की मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की 70 क्रो.क्रो. सा. की स्थिति का पुन: बंधन न हो वह योग्यता । जीव अब उत्कृष्ट स्थितिवाला मोहनीय कर्म बांधेगा ही नहीं। आध्यात्म का पहला अंक शुरु हुआ ऐसा कहा जाता है ।

नौ तत्वों में 'आश्रव' तत्व का समावेश मुख्यतः जीव को सावधान करने के लिए किया है।

तत्व – मोक्ष का सहज रूचि भाव रहे, जिसका चिंतन सकाम निर्जरा कराती है।

तत्व का ज्ञान – चारित्र धर्म का शरीर। तत्व का अज्ञान – मोह का शरीर। **'आश्रव' क्या है ?** 'जीव में शुभाशुभ कर्म का आना वह आश्रव'

उमास्वाति भगवंत ने तत्वार्थाधिगम सूत्र के 6ठें अध्याय में 'आश्रव' पर विवेचन किया है। उसके प्रथम सूत्र का अर्थ करते हुए बताया है कि मन, वचन और काया के योग से की हुई क्रिया ही आश्रव है। जहां योग वहां आश्रव।

'योग' : किस कारण से होता है ? वीर्यांतराय के क्षयोपशम से अथवा क्षय से होता है। कुछ भी बोलो, मन से विचार करो या काया से चेष्टा करो उसके सामने नियमा कर्मबंध है। वह शुभ या अशुभ हो सकते हैं। जीव नियमा, सतत कर्म बंध करता ही रहता है। आत्म प्रदेश में योग के कारण कंपन होता है और वो होता ही रहता है उसको 'आश्रव' कहते हैं। उस प्रक्रिया को जानना अति आवश्यक है और उसके सामने सावधानी रखना भी अति आवश्यक है।

अनादिकाल से जीव का चलते रहने वाला संसार 'आश्रव' के कारण से ही टिका हुआ है। आत्मा के साथ कर्म का संबंध 108 पृथक-पृथक रूप से होता है। आश्रव 108 कारण से होता है।

सरंभ : प्रमादी जीव के हिंसा आदि कार्य के लिए प्रयत्न का आवेश।

समारंभ : यह कार्य करने के लिए साधन एकत्रित करना।

आरंभ : अंत में कार्य को अंजाम देना।

3x मन, वचन, काया = x 3 करना, कराना और अनुमोदन करना = 3x4 कषाय।

बंध-संबंध : कर्म का आत्मा के साथ दूध पानी के समान मिश्रित होना वह बंध और कार्मण वर्गणा का आत्मा द्वारा ग्रहण होना वह संबंध।

सिद्ध के जीवों के निकट कार्मण वर्गणा होते हुए भी उसका प्रभाव कारक संबंध भी नहीं और बंध भी नहीं। हमें संबंध भी है और बंध भी है।

ऐसा क्यों ? आत्मा को कर्म का बंध है, कारण आत्मा परिणामी द्रव्य है । कर्म बंध में मुख्य कारण राग-द्वेष है, जो संसारी जीव को होता ही है और सिद्ध जीवों को नहीं होता ।

इसलिए कहा है - मुनि स्थिर रहे ! मन, वचन, काया की चंचलता छोड़नी पड़ती है । जहाँ आत्म प्रदेश का कंपन है, वहाँ तक कर्म का बंध है । अत: 14वें गुण स्थानक में कर्म का बंध नहीं है ।

योग है वहाँ तक 'लेश्या' है । मनोयोग के परिणाम जो आठ कर्म के रसबंध का मूल कारण है ।

यह समझना चाहिए कि कर्म की चाबी हमारे हाथ में है । जीव को मोक्ष की अवस्था अज्ञान के कारण से नहीं मिलती ।

* त्रसजीव - त्रस स्थिति में 2000 सा. से अधिक नहीं रह सकते । पंचेन्द्रिय जीव 1000 सा. से अधिक नहीं रह सकते । मनुष्य भव लगातार 7 बार ही मिलता है ।

* आश्रव तत्व मुख्य है । उसके कारण अन्य तत्व खड़े हो जाते हैं और निर्जरा, संवर और मोक्ष की बात उसके कारण ही है । आश्रव तत्व का ज्ञान सबसे महत्वपूर्ण है ।

* उदय में आए हुए कर्मों को जीव समता से भोगे तो नए कर्म नहीं बंधे । नए कर्मों का आश्रव नहीं होता ।

आत्मा की प्रकृति ही मोक्ष है, विकृति संसार है ।

प्रश्न - क्या करने से विचारने से 'आश्रव' कम होता है ? या रुकता है ?

* हेय पदार्थ का चिंतन करो : पाप, आश्रव, बंध ।
* ज्ञेय-पदार्थ को जानो : जीव - अजीव ।
* उपादेय - पदार्थ को प्राप्त करने का प्रयास करो : पुण्य, संवर, निर्जरा, मोक्ष ।
* मन को अच्छे कार्य में रोको ।

* स्वाध्याय करो, निर्जरा का कारण है। अभ्यंतर तप है।
* शुभ बंध - अशुभ बंध मानव के हाथ में है, मन-वचन-काया पर जितना कंट्रोल कर सको (गुप्ति) उतना तुम्हारा कल्याण है। घर में धूल क्यों आई क्योंकि खिड़की-द्वार खुले रहे, इसलिए।
* आठ कर्म के बंध का मूल कारण लेश्या है। लेश्या कर्म का पिता है।
* आश्रव को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से विचारो।

मकान, ईंट, चूना, पत्थर से बना हुआ द्रव्य है। इसको अपना मानते हो। जड़ है, किन्तु मोहनीय कर्म के उदय से अपना मानते हो।

मेरा क्या ? आत्मा का गुण पर्याय ही मेरा है, आत्मा और उसकी ज्योति, ज्ञान के अतिरिक्त किसी को अपना नहीं मानता। किस क्षेत्र, काल में हो, जो मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग जिस कर्म बंध का कारण है, उसको पुष्ट करने में मदद रूप होता है। और आत्मा में इसके कारण कैसे भाव, शुभाशुभ भाव, शुभाश्रव-पुण्य रुप या अशुभाश्रव-पाप रुप बनते हैं।

18 पापस्थानक से विचार करो, उससे 18 पाप स्थानक से कार्य कारण भाव है। तर्क से या श्रद्धा से जहाँ गम्य होता है, ईष्ट होता है उसके प्रमाण से आश्रव का विचार करो। जड़ में जो जीव, प्रवृत्ति करता ही नहीं तो आश्रव होता ही नहीं।

मोक्ष में भवितव्यता नहीं, लेश्या नहीं, विचार नहीं, अध्यवसाय नहीं, संसार में योग के कारण विचारों से, अध्यवसाय से लेश्या से कर्मबंध होते हैं।

योग और अध्यवसाय का बल इसके 'करण' आठ है; बंधन, निधत्त, निकाचना, उद्वर्त्तना, अपवर्तना, संक्रमण, उदीरणा, उपशमन।

Lastly - Very important aspect :

निमित्त अशुभ मिला - आसवद्य अध्यवसाय उत्पन्न हुआ। मोहनीय कर्म उदीरणा में पहुंचने लगा - सचेत हो जाइए। मन, वचन, काया को उसमें से पीछे खींच लो।

दो मिनिट किया हुआ क्रोध का विपाक दीर्घ समय तक भोगना पड़ता है। छोटी सी भूल

हड्डी क्रेक कर देती है, असर जीवन भर सहना पड़ता है। तुम्हारी शक्ति हो तो अपने दृष्टिकोण से विचार करके मन को शांत कर लो तो कम से कम में अधिक कर्म खप जाएंगे और नए कर्म नहीं बंधेंगे। अनुबंध नहीं होगा।

शयन करने से पूर्व परिणाम, लेश्या, अध्यवसाय विशुद्ध करके शयन करो। आश्रव की क्रिया Natural Phenomenon (प्राकृतिक घटनाक्रम) है। जीव मात्र के लिए एक ही नियम है। Conviction is strength.

आश्रव में मानना सीख लो, जिन्दगी सुधरने लग जाएगी।

अकेले कर्म को कारण नहीं माना जा सकता। 5 कारण इकट्ठे होते हैं तक कार्य होता है। काल, स्वभाव, भवितव्यता (भाग्य) पूर्व कर्म और पुरुषार्थ।

संतोष कहाँ जरूरी है ? संसार में ! धर्म में संतोष से बैठना नहीं। नित्य धर्म करते रहो। ज्ञान की प्राप्ति के लिए ! ज्ञानी भगवंतों ने कहा है, बंधे हुए कर्म उदय आते समय नए कर्म बांधने की शक्ति होती है, उसी का नाम है 'अनुबंध'।

जीवन में दुःख आता है – पाप कर्म का उदय ;

जीवन में सुख आता है – पुण्य कर्म का उदय ;

सामान्यतः दुःख अच्छा नहीं लगता, सुख बहुत ही अच्छा लगता है। इच्छा है दुःख निवारण की और सुख प्राप्ति की।

मानव जीवन मिला है उसका वास्तविक मूल्य है, दुःख निवारण से विशेष दुर्जनता निवारण में बहुत अधिक प्रयास हो। पुरुषार्थ की प्रधानता होना चाहिए।

सुख प्राप्ति से अधिक सज्जनता की प्राप्ति में (सुख में अनासक्ति) है।

दुःख नहीं हो और जीवन दुर्जनता से भरा हो तो ? उसकी क्या कीमत ?

पूणिया श्रावक, संगम उर्फ शालिभद्र बाह्य रुप से सुखी नहीं थे, किन्तु जीवन सज्जनता से परिपूर्ण था।

प्रश्न – दुर्जनता को किस प्रकार दूर करना ?

उत्तर – दुर्जनता को लाने वाला कौन? उसका मूल है पाप कर्म का अनुबंध। सज्जनता को उत्पन्न करने वाला – पुण्य कर्म का अनुबंध।

अनुबंध अर्थात् आत्मा की तासीर (Attitude) तत्व की रुचि या अरुचि जो मन में छुपी हुई हैं अध्यवसाय मन का विचार है, वचन और काया का व्यवहार होता है, आत्मा का तासीर अनुबंध का बंध करती है।

मन, वचन, काया और आत्मा पृथक् है, इसलिए योग की प्रवृत्ति से आत्मा की तासीर अलग हो सकती है।

मन, वचन, काया परमात्म भक्ति में लीन हो, परंतु आत्मा की तासीर संसार में आसक्त भी होती ही है ना। इसीलिए मन, वचन, काया तीनों अनुबंध के कारण कहे गए हैं।

* भगवान महावीर ने त्रिशला माँ के गर्भ में रहे हुए प्रतिज्ञा की थी कि माता-पिता के जीवित रहते दीक्षा नहीं लूंगा। क्योंकि उनके रहते दीक्षा लेने पर माता-पिता के 'अनुबंध' अशुभ पड़ जायेंगे। वह उनकी दुर्गति का कारण हो जाएगा। अवधि ज्ञान का उपयोग देखा तो उनका अशुभ अनुबंध रुका दिया।

* हेय-उपादेय का विवेक अनुबंध की आधारशिला है। सम्यक्त्व प्राप्त जीव को हिंसा में भी हेय बुद्धि ही होती है। अनुबंध पुण्य का ही होता है, हिंसा होते हुए भी सद्बुद्धि काम कर जाती है।

* अशुभ अनुबंध पड़ता है तो पाप की Link (परंपरा) प्रारंभ हो जाती है। गलत बुद्धि आती है। अविरति में सुख मिलता है Vicious Circle चलता है। इसलिए अशुभ अनुबंध को शिथिल करो। जिनाज्ञा स्वीकार कर दुर्बुद्धि को कमजोर कीजिए।

<u>* चौभंगी :</u>

1. आत्मा का तासीर शुभ, मन, वचन, काया के विचार, शब्द-व्यवहार भी शुभ हो, इस समय बंध और अनुबंध पुण्य के बंधाते हैं और इसलिए पुण्यानुबंध पुण्य बंधता है ऐसा कहा जाता है।

2. तासीर अशुभ, योग अशुभ तो पापानुबंधी पाप बंध जाता है।

3. तासीर अशुभ-अनुबंध पाप का, योग पुण्यमय पापानुबंधी पुण्य ।

4. तासीर शुभ-अनुबंध पुण्य का, योग-पापमय, पुण्यानुबंधी पाप।

When you change the way you look at things. The things you look at chance.

अपुनर्बंधक अवस्था : मोहनीय आदि कर्मों की उ. स्थिति फिर नहीं बांधने वाला जीव ।

*** 4 प्रकार के कर्म : अपुनर्बंधक जीव पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध करते हैं ।**

पुण्यानुबंधी पुण्य	**तारक**	**शालिभद्र**	**सुख में अनासक्ति**
पापानुबंधी पाप	**मारक**	**कालसौरिक कसाई**	**दु:ख में दीन**
पापानुबंधी पुण्य	**मारक**	**मम्मण सेठ**	**दु:ख में दीन**
पुण्यानुबंधी पाप	**तारक**	**पुणिया श्रावक**	**सुख में लीन**

शक्कर पर बैठी मक्खी	**पुण्यानुबंधी पुण्य**
श्लेष्म पर बैठी मक्खी	**पापानुबंधी पाप**
मधु में बैठी हुई मक्खी	**पापानुबंधी पुण्य**
पत्थर पर बैठी हुई मक्खी	**पुण्यानुबंधी पाप ।**

मेघकुमार का पूर्व भव हाथी का, मोक्ष का लक्ष्य नहीं था परन्तु नि:स्वार्थ भाव थे । दया थी । श्रेणिक राजा के पुत्र बने और महावीर प्रभु संयम के सारथी मिले । पुण्य के अनुबंध के कारण से निमित्त शुभ मिले और मोक्ष का लक्ष्य हो गया । तिर गए ।

भोग और धर्म की सामग्री देने वाला पुण्य प्राप्त करना है ? धर्म क्रिया से ही मिलता है ।

तारक पुण्य बांधना है अर्थात् पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध करना है ?

प्रवृत्ति अति शुद्ध हो तो मिल सकता है, लक्ष्य मोक्ष का होना चाहिए ।

भोग भोगे पर अनासक्त भाव से । Feel what 'it' feels.

संपत्ति मिले पर अजीर्ण न हो, इन्द्रिय सुख तुच्छ लगे, अंधानुकरण न करें। देव-गुरु-धर्म के प्रति आदर हो। स्वभाव शांत हो, दृष्टि में आमूल परिवर्तन। पेथड़ शाह, कुमारपाल, जगडुशा, शालिभद्र। पाप के अनुबंध वाला जीव।

जिसकी खबर है - उसह की खबर नहीं।

* संसार सुख में रच बस जाना।

* जहर चढ़ जाय उसे नीम भी मीठा लगता है। उसी प्रकार मोह का जहर चढ़ने पर संसार के भोग सुख विपाक से कड़वा होते हुए भी मीठा लगता है।

* अंधानुकरण करना, देखा देखी क्रिया, अधिकरण के प्रति आकर्षण होना।

* परलोक की चिंता रहित जीवन।

पाप के अनुबंध को तोड़ने और पुण्य के अनुबंध को जोड़ने का उपाय <u>'दुष्कृत गर्हा (अेकरार) और सुकृत अनुमोदना'</u>

खामेमि	: मैत्री भाव	चंदन बाला, मृगावती
मिच्छामि	: स्वदोष दर्शन	महाराजा रावण, रथनेमि
वंदामि	: अहं को दूर करना	बलराम और मृग, सूरदास, मीराबाई, नरसिंह मेहता।

इसको खामेमि त्रिक कहते हैं।

मैं सर्व जीवों को खमाता हूँ	-	खामेमि
मेरे सभी दुष्कृत्य मिथ्या हों	-	मिच्छामि
सुदेव, सुगुरु, सुधर्म द्वारा कहा गया धर्म	-	वंदामि

तीर्थंकरों को मेरा कोटि-कोटि वंदन हो जो।

खामेमि त्रिक से मृत्यु धन्य बन जाती है। मृत्यु महोत्सव बनती है। परलोक सुधर जाता है और परम्परा से परम पद प्राप्त होता हैं।

खामेमि, मिच्छामि, वंदामि। वीर्यांतर का क्षयोपशम जागृत हो यही प्रार्थना है।

सर्व मंगल मांगल्यं ....

मृत्यु बने महोत्सव

मृत्यु में समाधि मिले और परलोक में सद्गति प्राप्त करने की शक्ति उत्पन्न करने के लिए-

- ❊ पुण्य प्रकाश का स्तवन
- ❊ संथारा पोरसी की कुछ गाथाएँ
- ❊ वीतराग स्तोत्र के 1,9,15,16,17,19,20 वें प्रकाश के श्लोक
- ❊ पंच सूत्र
- ❊ रत्नाकर पच्चीसी
- ❊ आत्मनिंदा बत्तीसी
- ❊ अमृतवेल की सज्झाय
- ❊ अरिहंत वंदनावली = आदि का पुन: पुन: पठन कर हृदय को शुभ भाव से पूर्ण बनाना आवश्यक है
- ❊ खामेमि - खामेमि सव्वे जीवा - मैं सभी जीवों से क्षमा याचना करता हूँ
- ❊ मिच्छामि - मिच्छामि दुक्कड़ं - मेरे सर्व पापों का नाश हो
- ❊ वंदामि - वंदामि जिण चउव्वीसं - 24 तीर्थंकरों को वंदन करता हूँ।

  इन तीन पदों का अजपा जाप करना चाहिए।

  दुष्कृत निंदा (गर्हा) और सुकृत अनुमोदना नित्य ही करना चाहिए।
- ❊ चार का शरण निरंतर स्वीकार करना।

  (अरिहंत, सिद्ध, साधु, केवली द्वारा बताया धर्म)
- ❊ और कुछ न कर सकें तो इतना तो अवश्य करें -

  हे अरिहंत मिच्छामि दुक्कड़ं, हे अरिहंत मिच्छामि दुक्कड़ं रटते रहना चाहिए।
- ❊ अथवा 'वीर-वीर' 'महावीर-महावीर' या 'अरिहंत-अरिहंत' का जाप जपते रहो। अपने को जो पद अच्छा लगे उस पद का निरंतर जाप करते हुए हृदय को, मन को, जीवन को उस पद से पूरी तरह अभिभूत बना देना चाहिए जिससे अंतिम क्षणों में वह पद सुनते हुए मृत्यु-महोत्सव बन जाए।

विभाग – ८

‘कर्म निवारण’

कर्मवाद

आध्यत्मिक पुरुषार्थ ही कर्मवाद की सत्य समझ

‘श्रद्धांध’ के तीन स्तवन

- कर्मवाद कणिकाएँ 251
- जैन धर्म में कर्मवाद के रहस्य 255
- जैन दर्शन 261
- कर्म विचार 265
- आत्म तत्व विचार 285

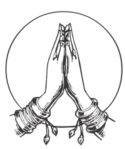

कर्म का साथ

यात्रा – सम्यक्दर्शन से मोक्ष की

(राग – केदार)

आव्यो जगमां एकलो, साथे कर्म नो सथवारो रे,
ज्ञानी कहे छे सम्यग् दर्शन, जन्म मरण नो आरो रे ।
आव्यो जग मां ....

वितरागी वैभव ना समज्यो, रागी थई तूं भव-भव भटक्यो,
राग द्वेषनां तांडव काजे, थाये ना छुटकारो रे ।।
आव्यो जग मां ....

मानव जन्म मल्यो अति दुर्लभ, छुटकारो करवाने सुलभ,
रत्नत्रयी ना पंथे विचर तू, झलहलशे जन्मारो रे ।।
आव्यो जग मां ....

सर्व जीवों ने 'मिच्छामि दुक्कड़', भावजे तूं अरिहंत अधिगम,
'श्रद्धांध' हृदये भजतां उघड़शे, मोक्षपुरीनां द्वारो रे ।।
आव्यो जग मां ....

'श्रद्धांध'
5/1999

समकित है सत्य अटल श्रद्धा ....

(राग – सुखदायी रे सुखदायी रे)

समकित छे सांची अटल श्रद्धा
❖'तत्वत्रयीमां' अविहड श्रद्धा .... समकित ...
मुक्ति नुं द्वार उघाड़े जे,
पहुँचा डे सिद्ध-शीला श्रद्धा .... समकित ...
✻'करण लब्धि' सह भवि-जीव भावे,
भव सागर करुं पार तरी ।
◆ दर्शन सप्तक उपशम थावे,
मोक्ष भणी वर फाल भरी .... समकित ...
समकित दृढ़ धर्मीनुं हो जो;
'तुंगीया' नगरी विशेष कही ....
धर्मलाभ 'सुलसा' ने दे जो;
वीरनी वाणी सु अर्थ वही .... समकित ...
सुखदायी रे सुखदायी रे
समकित उत्तम सुखदायी रे ।
जिन आज्ञा मां रहीने करीये,
काम बधां ना' वे बाधा .... समकित ...

'श्रद्धांध'
मार्च 2006

❖ तत्वत्रयी – सुदेव, सुगुरु, सुधर्म
✻ पांच लब्धियों में – 'करण लब्धि' भव्य जीवों को ही होती है ।
◆ दर्शन सप्तक – तीन दर्शन मो. कर्म+4 अनंतानुबंधी कषाय ।

तप

(राग – मालकौंस)

(राग – मने महावीरना गुण गावा दे ...)

अनशन उणोदरी, वृत्ति संक्षेप,
　　रसत्याग, संलीनता, कायक्लेश ।
षट्बाह्य तप नो महिमा विशेष,
　　छे करावे आंतर-तप मां प्रवेश ....　षट् बाह्य. ....

प्रायश्चित, विनय ने वैयावच्च,
　　स्वाध्याय, ध्यान ने कायोत्सर्ग ।
षट् आंतर तप नो महिमा विशेष,
　　छोड़ावे अंतमां राग ने द्वेष ....　षट् आंतर ....

जे जाणे तपनां बार आ भेद,
　　ते माणे निर्जरा, कर्म नो छेद ।
जाए जीवनो, भवो भवनो भेद,
　　द्वादश तपनो छे, महिमा विशेष ....　द्वादशः ....

'श्रद्धांध'
24 अगस्त 2008

कर्मवाद कणिकाएँ

– प. पू. गणिवर्य युगभूषणविजयजी म.सा.

1. कर्म नाम की महासत्ता हमारी प्रत्येक घटना का व्यवस्थित संचालन करती है।
2. कर्मबंध भाव प्रधान है परिणाम निरपेक्ष बंध नहीं हो सकता।
3. संसार में भाग्य की प्रधानता है। पुरुषार्थ गौण सहयोगी कारण है। धर्म में पुरुषार्थी की प्रधानता है। सद्गति आदि सामग्री पूर्ति ही पुण्य कर्म की आवश्यकता है।
4. जहां राग-द्वेष रुपी चिकनाहट होती है; वहाँ कर्मरुपी पदार्थ का चिपकना प्रकृति का गुण धर्म है। जैसे अग्नि का स्वभाव जलाने का है, चंदन का स्वभाव शीतलता का है, उसी प्रकार आत्मा में राग-द्वेष की परिणति रुप चिकनाहट होने से, सहज स्वभाव से कर्मवर्गणा आत्मा पर चिपकती है और फिर उसके अनुरुप योग्य विपाक बताती है।
5. पुद्गल की शक्ति जड़ता युक्त है। आत्मा की शक्ति पुद्गल की शक्ति पर अपना संपूर्ण वर्चस्व जमा सकती है।
6. आत्मा का पुद्गल के प्रति आकर्षण ही जड़ रुप कर्मों को आत्मा पर चिपकाता है।
7. संवेदना चेतन का लक्षण है, वैज्ञानिक संवेदनशील संवेदनयुक्त यंत्र बना सके ऐसा नहीं है।
8. 'राग' कर्म को आकर्षित करने के लिए चुंबक जैसी शक्ति है।
9. जीवन के पूर्वार्ध में पुरुषार्थ, बुद्धि की तीव्रता होते हुए धन प्राप्ति में असफलता। इस का कारण ? भाग्यवाद !
10. कर्म का समूह निश्चित करने वाली भी क्रिया है (आत्म प्रदेश का स्पंदन, कंपन), कर्म का बंध (रस, प्रकृति, स्थिति), निश्चित करने में आत्मा का परिणाम है, लेश्या-अजागृत (लब्धि) मन रुप अध्यवसाय 'रस' निश्चित करता है।

11. 'मिच्छामि दुक्कड़म्' यह महावाक्य है ।सच्चा मिच्छामि दुक्कड़म् देने की पूर्व शर्त है, 'पापमय संसार के प्रति अरुचि-अभाव हो ।

12. जिस भाव से पाप सेवन किया हो उसी प्रतिस्पर्धा भाव द्वारा पश्चाताप हो तो ही वह पाप बिना भोगे समाप्त हो जाता है ।

13. देह, इन्द्रिय, मन, कर्म बांधता नहीं है । आत्मा स्वयं कर्म बांधती है । हाँ, इन्द्रियाँ शुभाशुभ कर्म बांधने का साधन बन सकती है । उदाहरण - चश्मा, आंख देखने का साधन है, परन्तु देखने वाली आत्मा स्वयं है ।

14. शुभ प्रवृत्ति, शुभ आत्म परिणामपूर्वक करनी चाहिए । परन्तु अशुभ प्रवृत्ति करनी पड़ती है तो भी अशुभ आत्म परिणाम नहीं करना । अभिनव सेठ ने दान के परिणाम के बिना दान किया और लेश मात्र पुण्य का बंध नहीं किया । जीरण सेठ ने दान की प्रवृत्ति किए बिना ही श्रेष्ठ आत्म परिणाम द्वारा विवेकयुक्त उच्च पुण्य बांध लिया ।

15. शुभाशुभ भाव कर्म का सर्जक है, शुद्ध भाव कर्म का विसर्जक है ।

16. प्रशस्त कषाय - यानि नि:स्वार्थ भाव, अर्थात् स्व-पर के हित की बुद्धि से प्रकट हुआ कषाय ।

17. मोक्ष में शुद्ध भाव साथ लेकर जाने का है -

प्रथम शुद्ध भाव - तात्विक वैराग्य

द्वितीय शुद्ध भाव - सम्यगदर्शन रूप विवेक

तृतीय शुद्ध भाव - भाव विरति

18. चमत्कार के आकर्षण से प्रेरिक होकर चमत्कारी साधु के सान्निध्य वाला नियमा मिथ्यादृष्टि है; भौतिकता का तीव्र प्रभाव है इसलिए ।

19. कर्म की 3 अवस्थाएँ हैं; (1) बंध, (2) उदय, (3) सत्ता । वैदिक धर्म में इसे

1. क्रियामण कर्म, 2. प्रारब्ध कर्म, 3. संचित कर्म के रुप में पहचानते हैं ।

20. धर्म का अज्ञान ज्ञानावरणीय सघन कर्म नहीं । परन्तु वह लक्ष्यपूर्वक तोड़ने के पुरुषार्थ की कमी ही कारण रुप है ।

21. पुण्य-पाप का बंध, संग्रह, उदय और क्षय एक साथ अलग-अलग हो सकते हैं ।

22. सम्पूर्ण उपाधि का मूल शरीर है, शरीर यह आत्मा का महाबंधन है ।

23. निकाचित कर्म यानि समुचित पुरुषार्थ करने के बाद भी जो नहीं टूटे वह ।

अशुभ निकाचित होने के कारण - दोष की तीव्र रुचि ।

शुभ निकाचित होने के कारण - गुण की तीव्र रुचि ।

24. सभी कर्मों का उदय निमित्त की अपेक्षा रखते हैं ।

अनुकूल (Favourable) निमित्त कर्म फल देता है । प्रतिकूल (Unfavourable) निमित्त - कर्म के समान फल देता है । इसलिए कर्म के निमित्त को तोड़ सको तो उसके हाथ-पैर टूट जाएंगे तो कर्म योग्य विपाक नहीं बता सकेगा ।

25. नास्तिक की विशेष दया से आस्तिक की अल्प (कम) दया बहुत उच्च पुण्य बंधाती है ।

26. पाप की प्रवृत्ति होती है तो ही पाप कर्म बंधता है, ऐसा नहीं है, पाप के परिणाम आत्मा में निरन्तर रहे हुए हैं, इसलिए सतत पाप कर्म बंधते हैं ।

उदा. नींद में हिंसा की प्रवृत्ति नहीं है, परिणाम है, इसलिए हिंसा योग्य पाप बंधते हैं ।

27. जड़ कर्म-चेतन आत्मा में विकृतियाँ उत्पन्न करता है । इसलिए जड़ कर्म आत्मा के रोग का मुख्य कारण है ।

28. सिर्फ मानव की या प्राणी की दया के आचरण के बदले जीव मात्र की दया का भाव, आत्म परिणाम की रुचि से, उच्च कोटि का पुण्य बंधाता है ।

29. आजीवन महानीति-सदाचार पालन करने वाला भी पूर्ण दया की रुचि के बिना सातमी नरक में जाता है । उदा. चक्रवर्ती

30. संसार के सभी वैभवयुक्त पद-स्थान (Position) समकित दृष्टि के लिए जमा है, सुरक्षित (Reserve) हैं।

31. समय पर भूख लगना, समय पर खाना मिलना, पचने के बाद समय पर फ्रेश होने जाना, यह सब पुण्य से ही हो सकता है, अरे ! बिस्तर में करवट लेना भी पुण्य के प्रताप से ही होता है।

32. कर्मराज महाबलवान को निर्बल, महाबुद्धिशाली को बेवकूफ, महाधनाढ्य को भिखारी और महारुपवान को कुरुप बना सकता है।

33. पुण्य कर्म के उदय से मिली हुई शक्तियों का जीव जो दुरुपयोग करता है तो वे शक्तियाँ प्रकृति वापस खींच लेती है। जो सदुपयोग करता है तो प्रकृति, पर भव में पुन: देती है।

34. गुनाह करता है और फिर गुनाह को अच्छा मानें, उसको प्रकृति दंड देती है।

35. सम्यगदृष्टि गुस्से में हो तब भी वैमानिक देवलोक का ही आयुष्य बंध करता है। यह सम्यग्दर्शन का प्रभाव है।

36. जैन कुल के कुलाचारों को भी परिणाम पूर्वक पालन करने वाला जीव, कभी संभवत: तात्विक वैराग्य, श्रद्धा प्राप्त न की हो फिर भी 99.99% सद्गति में ही जाता है।

37. नयसार के जीव ने उच्च विवेक शक्ति और वैराग्य द्वारा उच्च पुण्य का बंध किया।

38. भाव दया अर्थात् आत्मा के सुख-दुख की चिंता। स्व आत्मा की चिंता करना (होना) वह स्वार्थ ही, वास्तव में परमार्थ है।

39. आत्मा के कल्याण में जगत का कल्याण है, कारण यह है कि एक जीव मोक्ष में जाता है, अर्थात् अनंत जीवों की अहिंसा, दया, मैत्री आदि होती है। स्व-कल्याण को भूल कर जो पर-कल्याण में लग जाता है वह जीव अधर्म करता है।

40. स्व की भावदया करने वाला ही अन्य की भावदया करने का अधिकारी बनता है। भावदया में सदा के आत्मिय दु:ख भी दूर हो जाते हैं। तीर्थंकर की भावदया पराकाष्ठा की श्रेणी की है।

41. विचार के आधार पर मुश्किल से 1% कर्मबंध होते हैं। भावात्मक व्यक्तित्व के आधार पर 99% कर्मबंध होते हैं। (रुचि)

42. जैन दर्शन में मात्र प्रवृत्ति और विचार को बहुत कम महत्व दिया गया है।

43. कसाई यदि सोया है (नींद निकाल रहा है) तो इससे वो अहिंसक नहीं हो जाता।

44. टी.वी. वह Idiot Box है जिस जीवन ने बिना लेन-देन के पाप की रुचि, तीव्र आवेश द्वारा घोर पाप बंधाती है। टी.वी. देखते समय कई जीवों को असंख्य भवों की तिर्यंचगति निरंतर बंध जाती है।

45. पाप को पाप न मानना, अर्थात् पाप बंध में गुणाकार करना।

जैन धर्म के कर्मवाद के रहस्य

जैन धर्म के कर्मवाद की विशेषताएँ रहस्यमय स्वरुप बनाती है। परन्तु सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ होने से अनुभवगम्य फल श्रुति आदि का विवेचन, एक सम्यग् मार्ग पर जाने की प्रेरणा मिलती है।

कर्म पुद्गल - (Maretial body) है, यह विचारधारा जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य कहीं भी देखने को नहीं मिलती। कर्म क्या है ? कर्म का उदय किस कारण से होता है ? कर्म के आठ करण क्या-क्या हैं ? कर्मों के आठ प्रकार और उसके बंध के हेतु क्या है ? केवली भगवंत को थकान क्यों नहीं ? गति का बंध निरंतर होता है, परन्तु आयुष जीव एक ही बार बांधता है, तो क्या कर्म बंध में गति की प्रधानता है ? प्रश्न ही प्रश्न है और उत्तर है -

कर्म का Team Work तथा कर्म का संचालन एक अद्भुत प्रकार से हुआ करता है। उसका गहराई से ज्ञान, कर्मवाद के रहस्यों के विषय को अच्छी तरह रसाभाव के साथ सुन्दर ढंग से संजोया है। जड़ कर्म की अपूर्व शक्ति को आघात करने वाला चेतन द्रव्य आत्मा की अनंत शक्ति है। जीव रत्नत्रयी के आधार पर 14 राजलोक के उच्चतम शिखर पर मोक्ष को प्राप्त करता है। कर सकता है। यह विचार जैन धर्म के कर्मवाद के रहस्यों में क्या क्या भरा है वह जानने के लिए स्वाध्याय प्रेमी को जीव को उत्सुकता होती है। यह आत्मीय आनंद की अनुभूति मय स्वाध्याय का रसास्वादन करने के लिए सभी को आमंत्रण है। रहस्यों को खोलो कुछ तो मिलेगा ही।

✻ मोह वृक्ष

तत्व का अज्ञान यह मोह का शरीर है, तत्व का ज्ञान चारित्र धर्म का शरीर है। समूह से, मोह परिणाम से ही आठों ही कर्म का बंध होता है। उसका बीज 'मिथ्यात्व' है। एक सिर्फ मोहनीय कर्म ही बंध में विषचक्र घोलता है। भगवान ने कर्म के बंध में, उदय में, कर्म की सत्ता में, तीनों में पुरुषार्थवाद की स्थापना की है।

5 निमित्त मुख्य रुप से कर्म के उदय में महत्व रखते हैं। (1) द्रव्य, (2) क्षेत्र, (3) काल, (4) भाव, (5) भव।

भाव का प्रभाव विशेष तीव्र और भव का प्रभाव अत्यन्त उत्कृष्ट होता है।

<u>संक्रमणकरण</u> :- शुभ को अशुभ में या अशुभ को अशुभ का रुपांतर होना।

संक्रांति - एक दूसरे में रुपांतर करना, बंधे हुए कर्म की शक्ति (रस) का रुपांतर, बंधे हुए कर्म की प्रकृति का रुपांतर। बंधे हुए अपयश को यश में करण द्वारा परिवर्तन।

सामान्य रूप में बड़े भाग के जीव पुण्य व पाप में ही रूपांतर करते हैं ! कारण ? <u>उनका पुरुषार्थ ही विपरीत दिशा में होता है।</u>

भौतिक सुख एवं दुःख का गणित, सम्यक् आंतरिक पुरुषार्थ से दूर ही रखता है। धर्म द्वारा भौतिक सुख की इच्छा करने वाले की बुद्धि भ्रष्ट है, ऐसा ज्ञानी कहते हैं (निदान शल्य)

✻ जो और जैसे परिणाम से अशुभ कर्म बंध हों वह और वैसे ही समान रुप से शुभ परिणाम बनते हैं तो अशुभ को शुभ में रुपांतरित कर सकता है।

✻ एक ही भव के तीव्र शुभ भाव अनेक भवों के अशुभ कर्मों को शुभ में परिवर्तन करने में सक्षम है। Vice a Versa

✻ <u>संसार की रसिकता सघन कर्मबंध कराती है।</u> अल्प क्रोध भी भयंकर बड़ा पाप बंधा देता है। वैराग्य युक्त जीव बड़े क्रोध से भी अल्प पाप बांधता है। वैराग्य

(तप, त्याग, संयम) की शक्ति प्रबल है। वैराग्य ही साधक का परिणाम है।

* सच्चे धर्म का काल अति अल्प है। (भाव चरित्र में अधिक से अधिक 7-8 भव ही हैं) जिससे भूतकाल के अनंत पापों की क्षपणा होती है। यह विधान सूचित करता है कि धर्म की शक्ति अचिंत्य है।

* रामबाण औषधि - अनंत भवों के पाप का प्रायश्चित, परिणामपूर्वक की 'विरति' है।

* परिणाम की तीव्रता या मंदता का आधार रुचि पर निर्भर है। गुण की रुचि पूर्वक का शुभ परिणाम तीव्र है, अरुचि हो तो मद। दोष की रूचिपूर्वक का अशुभ परिणाम तीव्र है। अरुचि हो तो मद।

<u>दृष्टांत</u> :- छोटी-सी अहिंसा की धर्म किया और साथ में उसके रुचि भी अहिंसा की रही तो तीव्र शुभ परिणाम।

* करोड़ों का दान करने के बाद भी पैसा ही पैसा प्राप्त करने का मन हो तो शुभ परिणाम अतिमंद।

* उपवास करे किन्तु रुचि तो भोग में ही है त्याग में अरुचि है-तो मंद शुभभाव।

* छोटी सी कीड़ी को मारता है, हिंसा की रुचि से मारे, हिंसा यह पाप है ऐसा उसमें न माने तो छोटी-सी हिंसा भी तीव्र अशुभ भाव है।

* समकित प्राप्त आत्मा - लोभी होते हुए भी पैसा इकट्ठा करने लायक नहीं है ऐसा दृढ़ता के साथ मानने वाला होने से मंद अशुभ परिणाम बांधता है।

* <u>निमित्त की महत्ता</u> - कर्म की कार्य शक्ति में यानि कर्म का विपाक बताने में निमित्त हाथ पैर समान कहे गए हैं।

<u>निमित्त</u> :- अनुकूल - सबल : कर्म का विपाक कर्म शक्ति हो उससे अधिक।

प्रतिकूल - निर्बल : कार्य शक्ति हो उससे कम विपाक।

मध्यम होता है : कार्य शक्ति हो उतना ही विपाक।

✻ लाख में एक कर्म का बंधन जिस रुप में बांधा है वह उसी रुप में पुनः उदय में आता है। हंसते हुए कर्म बांधे हैं वे रोते हुए भोगना पड़ते हैं।

'समयं गोयम मा पमायअे' (हे गौतम ! समय को प्रमाद से जाया मत करो) जिसके उदय से दुःखी होते हैं, संक्रमण के द्वारा सुखी हुआ जा सकता है।

✻ कर्म के 4 प्रवेश द्वार :- (5वाँ प्रमाद को भी शास्त्रों में गिनाया गया है)

1. मिथ्यात्व

✻ सत्य के प्रति पक्षपात का अभाव।

✻ सत्य का पक्षपात हृदय के साथ संबंध रखता है, अंतर चक्षु खुलने पर हृदय शुद्ध होता है।

✻ असत्य का पक्षपात रुप मिथ्यात्व दूर होने पर कर्मों के प्रवेश का प्रथम द्वार बंद हो जाता है।

✻ जब तक ममत्व का त्याग नहीं होता तब तक मिथ्यात्व के बंधन नहीं टूटते।

✻ भव स्थिति परिपक्व होती है और कर्मबन्ध मंद होते हैं, उसके बाद आनंद रूप धाम ऐसा आत्मप्रकाश, आत्म स्वरूप का प्रकाश उत्पन्न होता है, विनय की वृद्धि, द्वितीया के चंद्र समान बोधिबीज का अंकूर प्रस्फुटित होता है।

2. अविरति

✻ सत्य के जीवंत आचरण का अभाव।

✻ श्रद्धा समकित होते हुए भी, कर्मों का बुरा प्रभाव जीव पर आवेगमय पड़ता रहता है। इससे सत्य की राह प्राप्त नहीं कर सकता।

✻ यथाशक्ति अच्छे आचरण से जीवन परिवर्तन होता है और द्वितीय द्वार बंद हो जाता है।

✻ यह जीव के लिए देश विरति धर (श्रावक) कहलाता है। सर्वविरति धारण करे तो अविरति रुप द्वार संपूर्ण स्थिति में बंद हो जाता है।

3. कषाय -

✻ जीवन में उत्पन्न होने वाले अतदुरस्त कंपनें ।

✻ क्रोध, मान-अहंकार, माया-दंभ और लोभ-आसक्ति ।

✻ क्रोध - मंत्री ने स्कंदकसूरी एवं उनके 499 साधुओं को घाणी में पिल डाले थे ।

✻ मान - बर्तन में खटाई हो और दूध डाल दिया जाय तो फट जाता है उसी प्रकार गुणरुपी दूध मान रुपी कषाय में नहीं टिक पाता है ।

✻ लोभ - सर्व विनाश का मूल है । जहां इच्छा उत्पन्न हुई वहां उसका पोषण करने के लिए सभी कषाय उत्पन्न होते हैं, मन निरंतर दुर्ध्यान में रहता है ।

4. योग -

✻ मन, वचन, काया की प्रवृत्तियाँ

✻ योग से कर्म का आश्रव, कर्म के आश्रव से बंध, बंध से कर्म का उदय, कर्म के उदय से संसार । इसलिए संसार से मुक्ति प्राप्त करना है तो आश्रव का त्याग करना ही पड़ता है ।

''आगमिक व्याख्याओं'' पुस्तक में से

भगवान महावीर के 11 गणधरों को जो संशय थे उनको अपनी सर्वज्ञ लब्धि के द्वारा भगवान ने दूर किए ।

(1) इन्द्रभूति-आत्मा का अस्तित्व, (2) अग्निभूति-कर्म का अस्तित्व, (3) वायुभूति-आत्मा और शरीर का भेद , (4) व्यक्त स्वामी : शून्यवाद, (5) सुधर्मास्वामी- इस लोक और परलोक की विचित्रताएँ (6) मंडिक स्वामी-बंध और मोक्ष, (7) मौर्य पुत्र- देवों का अस्तित्व, (8) अकंपित स्वामी-नरक का अस्तित्व, (9) अचल भ्राता-पुण्य और पाप, (10) मैतार्य स्वामी-परलोक का अस्तित्व, (11) प्रभास स्वामी-निर्वाण का अस्तित्व ।

कर्म का अस्तित्व :- भगवान महावीर, अग्निभूति को समझाते हैं कि मैं कर्म रज को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, जबकि तुझे उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं है, फिर भी अनुमान से तू भी उसकी सिद्धि कर सकता है ।

सुख और दुःख का प्रत्यक्ष कर्म फल तुझे भी है, इसलिए कारण रुप । सत्ता कर्म का अनुमान हो सकता है । जैसे अंकूर रुप कार्य का कारण बीज होता है ।

Visible causes are corrupted. चंदन आदि सुख के हेतु हैं और सर्प, विष आदि दुःख के हेतु हैं, ये दृश्य कारणों को छोड़ अदृश्य कारण कर्म को मानने की क्या आवश्यकता किसलिए है ?

दृश्य कारण में <u>व्यभिचार</u> दिखाई देता है इसलिए अदृश्य कारण मानना अनिवार्य बन जाता है । वो इस प्रकार से - सुख-दुःख के दृश्य कारण समान रुप से होते हुए भी उनके कार्यों में तरतमता देखने में आती है । इसका जो कारण है वही कर्म है । जीवन का <u>आद्य बाल शरीर</u> वही कर्म <u>कार्मण शरीर</u> है जो देहांतपूर्वक है, क्योंकि वह इन्द्रियों से युक्त है । जैसे युवा देह, बाल देहपूर्वक है ।

अचेतन व्यक्ति द्वारा की हुई क्रिया का फल अवश्य प्राप्त होता है । जिस प्रकार खेती कार्य का फल धान्य निष्पति, उसी प्रकार, दानादि क्रिया का फल आगे जाकर सुख-दुःख रुप में उदय में आता है ।

<u>मूर्त कर्म :</u> कार्य के अस्तित्व से कारण की सिद्धि होती है, तो शरीर आदि कार्य मूर्त होने के कारण कर्म भी मूर्त ही होना चाहिए । जैसे परमाणु का कार्य घट है, मूर्त है, इसलिए परमाणु भी मूर्त है ।

<u>* कर्म का मूर्तत्व सिद्ध करने वाले अन्य हेतु :-</u>

(1) कर्म मूर्त है कारण कि उसके साथ संबंध होने से सुख आदि का अनुभव होता है; जैसे कि भोजन । अमूर्त आकाश के साथ संबंध होने से सुख आदि का अनुभव नहीं होता ।

(2) कर्म मूर्त है, कारण कि उसके संबंध से वेदना का अनुभव होता है जैसे अग्नि ।

(3) कर्म मूर्त है, कारण कि उसमें बाह्य पदार्थों से बल का आधार होता है। जैसे घट आदि पदार्थों पर तेल आदि बाह्य वस्तु का विलेपन करने से बलाधान होता है । इसी प्रकार

कर्म में भी माला, चंदन, वनिता आदि बाह्य वस्तुओं के संसर्ग से बलाधान होता है। इसलिए वह मूर्त है।

(4) कर्म मूर्त है, क्योंकि वह आत्मादि से भिन्न रूप में परिणामी है, जैसे दूध। ज्ञान अमूर्त है परन्तु मदिरा, विष आदि मूर्त वस्तुओं द्वारा उसका उपघात होता है। घी, दूध आदि पौष्टिक आहार द्वारा उसका उपकार होता है (बदाम)। इसी प्रकार मूर्त कर्म द्वारा अमूर्त आत्मा का अनुग्रह या उपकार हो सकता है।

जीव, कर्म परिणाम रुप है, इससे उपर्युक्त रुप में मूर्त है, इसलिए अनेकान्त भाव से विचार कर सकते हैं। आत्मा अनेकांत रुप में अमूर्त नहीं है, इस प्रकार मूर्त आत्मा पर मूर्त कर्म द्वारा होने वाले अनुग्रह और उपघात को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। देह और कर्म में परस्पर कार्य-कारण भाव है। कर्म और देह की परंपरा अनादि है।

जैन दर्शन

- प. पू. न्यायविजयजी म.सा.

मोहनीय कर्म के मुख्य दो भेद :-

दर्शन मो. और चरित्र मो.:-चारित्र में बाधा डाले वह चरित्र कर्म। (चा.मो. के 25 भेद)

जो श्रद्धा में विघटन उत्पन्न करें, वह दर्शन मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय।

जो तत्व की श्रद्धा में बाधक बने, वह दर्शन मोहनीय, मिश्र मोहनीय।

जो तत्व की श्रद्धा को बाधित करे, वह दर्शन मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय।

तत्व : कल्याणमय वस्तु, जिससे आत्म कल्याण को साधा जाए,वह तत्व कहा गया है।

दर्शन मोहनीय के अर्थात् मिथ्यात्व के पुद्गलों का उदय जब अंतमुहूर्त तक रुक जाता है तब जीव को उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

इस परिणाम (आत्मा का परिणाम) के अंतर्गत इसके प्रकाश में जीव उदय में आने वाले (अंतमुहूर्त बाद) मिथ्यात्व मोहनीय के पुद्गलों का संशोधन करने का काम करते है।

जितने पुद्गलों की मलीनता दूर हो जाती है वे शुद्ध हो जाते हैं, उनको सम्यक्त्व मोहनीय कहते हैं। जो आधे- अधूरे शुद्ध होते हैं वे मिश्र और जो शुद्ध होते ही नहीं वे मिथ्यात्व मोहनीय पुंज के समान रहते हैं। इस प्रकार दर्शन मोहनीय के 3 पुंज हुए।

ये 3 पुंज + 4 अनंतानुबंधी कषाय के उपशम से प्रकट होता है वह 'उपशम' समकित होता है।

दर्शन मोहनीय के 3 भेद

(1) सम्यक्त्व मोहनीय, (2) मिश्र मोहनीय (3) मिथ्यात्व मोहनीय

उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होते, (1) उदय में आता है तो निर्मल पुद्गल होने के कारण जीव क्षयोपशम सम्यक्त्वी बनता है (2) उदय होते मिश्र सम्यक्त्वी बनता है, (3) उदय में आने से फिर मिथ्यात्वी बनता है।

* उपशम समकित में मिथ्यात्व या दर्शन मोहनीय के पुद्गलों का विपाकोदय अथवा प्रदेशोदय कोई भी उदय होता नहीं।

* क्षयोपशम समकित में मिथ्यात्व मोहनीय का उदयगत पुद्गलों का क्षय एवं उदय में न आने वाले पुद्गलों का उपशम।

विपाकोदय :- जो कर्म पुद्गलों को फल दे वह उदय।

प्रदेशोदय :- जिन कर्म पुद्गलों के उदय से आत्मा पर प्रभाव पड़ता ही नहीं है।

* चारित्र मोहनीय के 25 भेद

चार कषाय - क्रोध, मान, माया, लोभ - इनके प्रत्येक के 4 भेद = 16+9 नौ कषाय।

1. अनंतानुबंधी कषाय :- मिथ्यात्व लाता है, 2. अप्रत्याख्यानावरण :- देश-विरति को रोकता है, 3. प्रत्याख्यानावरण :- सर्व विरति को रोके, 4. संज्वलन :- यथाख्यात चारित्र को रोके, वीतरागता को बाधित करे।

सर्वकर्म क्षय होते मोक्ष की स्थिति प्रकट हो उसके पूर्व, अंशतः कर्मक्षय रुप निर्जरा बढ़ते जाना आवश्यक है।

सर्वसंसारी आत्माओं में कर्म की निर्जरा का क्रम चालू ही रहता है, किन्तु

आत्मकल्याण रुप निर्जरा (सकाम) जीव के मोक्षाभिमुख होने के बाद ही होती है। सत्य मोक्षाभिमुखता सम्यग्दृष्टि की प्राप्ति से प्रारंभ होती है और उसके बाद मोक्ष साधना का विकास बढ़ते हुए 'जिन' अवस्था में पूर्ण होता है। उत्तरोत्तर परिणाम शुद्धि विशुद्धि की अधिकता की ओर में असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा बढ़ती जाती है, 'जिन' अवस्था में पहुंचाने से पूर्व की जीव की 10 दशाएँ हैं (Interesting Steps)

1. मिथ्यात्व टला, सम्यग् दृष्टि प्रकट हुई।
2. देश विरति के लिए उपासक दशा।
3. सर्वविरति प्रकट होने पर वीरत दशा
4. 'अनंतानुबंधी' कषायों का विलय होने पर 'अवन्त वियोजक' दशा।
5. दर्शन मोह का क्षय करने के लिए विशुद्धि प्रकट हो तो दर्शन मोहक्षपक दशा।
6. चारित्र मोहनीय प्रकृति का उपशम चालू रहता है, वह उपशमक दशा।
7. यह उपशम पूर्ण होने पर 'उपशांत' दशा।
8. चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय चालू रहता है तो वह 'क्षपक' दशा
9. क्षय पूर्ण होने पर 'क्षीण मोह' दशा।
10. सर्वज्ञता प्रकट हो वह 'जिन' दशा।

VERY IMPORTANT TO REMEMBER :

याद रखें, सुख-दुःख का संपूर्ण आधार मनोवृत्ति पर है, सुख-दुःख की भावना का प्रवाह, मनोवृत्ति के विचित्र चक्कर के अनुरुप घूमता रहता हैं।

आर्थिक मंदता की स्थिति में भी तात्विक (सत्यता) ज्ञान और उससे प्राप्त संतोष लक्ष्मी का जिसने संपादन किया वही सत्त्वशाली मानव स्वयं के मन या आत्माओं को स्वस्थ रख सकता है एवं प्रसन्नता को भी कम नहीं होने देता।

'मन साध्युं तेणे सघलु साध्युं' यह बात पूर्ण सत्य है।

<u>* चारित्र मोहनीय कर्म की भयानकता समझिए।</u> अनादिकाल से प्रवाहमान 70 क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की स्थिति वाला मदिरापान जैसा कर्म है।

आत्मा के अस्तित्व का भी अनुभव नहीं होने देता, आत्मा के शुद्धिकरण का सम्यग् ज्ञान भी नहीं होने देता, ऐसा है ।

<u>दो भेद :</u> (1) मिथ्यात्व मोहनीय और (2) चारित्र मोहनीय ।

मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के कारण आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान नहीं होता, इसके कारण 'अंधा पीसे, कुत्ता खाए' जैसी आत्मा की स्थिति हो जाती है ।

सम्यग्दर्शन नहीं होने देने में 4 अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्व की 3 प्रकृतियाँ मूल कारण हैं (दर्शन सप्तक कहते हैं)

आत्मा में जब अनिवृत्त पुरुषार्थ बल की प्राप्ति होती है, तब ये सातों कर्म प्रकृति के बादल बिखरने लग जाते हैं । जब ये सभी पूर्ण रुप से छंट जाते हैं तब जीवात्मा को अनुपम एवं अद्धितीय अनुभूति होती है ।

जैसे भूखे व्यक्ति को भोजन मिले, प्यासे को ठंडा पानी मिले, निर्वस्त्र व्यक्ति को गरम कपड़े पहनने को मिल जाए, उसकी जो अनुभूति होती है वैसा ही उपमायुक्त सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है ।

इसके साथ ही आत्म की अनंत शक्ति, पुण्य-पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, जीव-अजीव आदि जिन प्रणीत नव तत्व, संपूर्ण कर्म क्षय से मोक्ष, कर्म बंधन से आत्मा स्वयं

सम्यग्दर्शन - सम्यग्ज्ञान प्राप्त होने के बाद भी मोहनीय कर्म के कारण मोहनीय कर्म इसका प्रभाव बताता ही है, चारित्र मोहनीय कर्म के लंगोटिये मित्र के समान ज्ञानावरणीय चारित्र प्राप्त मानव को भी चलायमान करता रहता है ।

जैन धर्म 'मामेकं शरणं व्रज' का सिद्धांत नहीं स्वीकारता है, कारण कि आत्मा को कर्म का कर्ता और भोक्ता मानता है । स्व पुरुषार्थ से ही आत्मा मुक्त होती है । जिनेश्वर की जिनाज्ञा का निमित्त बल सहायता अवश्य करते हैं । स्वाध्याय में पुरुषार्थ करते रहना चाहिए।

।। जैन जयति शासनम् ।।

कर्म विचार

<u>कर्मवाद का सनातन नियम</u> :- जैसा करे वैसा भरे, जैसा बीज बोएगा वैसा फल पायेगा' जीवों को श्रद्धा किसमें ? सर्पक के विषय में । परन्तु दुष्ट कर्मों की भयानकता में इतना श्रद्धा नहीं । इसको कहते हैं सनातन नियम का अनादर होना ।

<u>मयणा सुंदरी : जो हो रहा है मेरे कर्मों के उदय से हो रहा है ।</u>

* कर्म उदय में आते हैं तो इनको किस प्रकार भुगतान करना ? समता से । समता से क्यों ? नए कर्मों का बंध न हो ! यानि इसका अर्थ क्या ? सुख भोग का उदय होने पर उसमें पूरी तरह आसक्त न हो । मन में भाव कैसे रहे ? अनासक्त भाव।

षट् रस भोजन जबरन हमारे मुख में नहीं आता, आसक्ति करवाती है । इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ, कर्णप्रिय संगीत, सुखमय स्पर्श, सुरभिमय सुगंध, सुंदरता मय स्वरूप देखना ।

प्रत्येक स्थूल भोग में विलासवृत्ति का उदय होता है, उसमें आसक्त होना न होना अपनी आत्म शक्ति के पुरुषार्थ की आवश्यकता है जो कर्म बंध के निमित्त से मुक्त रह सके तो ही अभयता प्राप्त हो सकती है ।

* सांसारिक जीवन की कोई भी घटना के पीछे सामान्यत: किस का बल होता है ? पूर्व कर्म का ।

* आपत्ति आती है - आपत्ति लाने वाला इच्छापूर्वक बर्ताव करता है तो वह भी दोष में पड़ता ही है । हत्या करने वाला नि:संदेह अपराधी है । जिसकी हत्या हुई उसका पूर्व कर्म भी साथ ही उदीयमान है ।

* किसी ने अपने संघ का बुरा किया इस बात को निरर्थक न समझें । बुरा करने वाला, संघ का अवगुण बोलने वाले ने अति अशाता वेदनीय कर्म बांध लिए ।

✻ कर्म उदय में आने पर 'हाय-हाय' न करें। उसको समझें कि 'यह ऐसा ही होता है।'

✻ जिस स्वादिष्ट खान-पान से संसारी व्यक्ति के मुंह में पानी आ जाता है उसी खानपान को देखकर ज्ञानी की आंख में पानी आना यह आवेदनीय अनासक्त भाव की बलिहारी है।

✻ प्रशस्त 'शम' भाव पुरुषत्व है; पुरुषार्थी बनना उपयुक्त है।

✻ रोग उत्पन्न हुआ, इसमें पूर्व कर्म बंध ही कारणभूत है किन्तु उसके लिए प्रयत्न ही न करें तो उसे 'प्रमाद' ही कहा जायेगा। विवेक .... विवेक .... विवेक ही रखना आवश्यक है।

✻ भाग्योदय समय अज्ञात है, मनुष्य का काम पुरुषार्थ करने का है। कारण ? आत्मा की सत्ता ही सर्वोपरि है। कर्मवाद का वास्तविक स्वरुप समझने वाला ही मन को स्वस्थ रख सकता है। उद्यम - पुरुषार्थ करते समय।

इच्छित फल प्राप्त होने पर खुशी में फूलें नहीं और फल न मिलने पर निराश न हों। यदि ऐसा होता है तो कर्मवाद का नियम उल्लंघन होना गिना जाता है।

✻ किसी पर आपत्ति आती है तो तुरंत उसकी मदद करना चाहिए। प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे के सहयोग से ही संसार में जीवित रहता है।

✻ दान के विषय में, भाव की प्रमुखता महत्वपूर्ण बन जाती हे -

भाव शुभ या अशुभ, वैसा ही उसका फल, विवेक बुद्धि आवश्यक है, विवेक दशवाँ भंडार है, 'विवेको दशमो निधिः'।

9 निधि :- नैसर्प : ग्राम-नगर, पांडुक : छोटे-बड़े द्रव्य, पिंगलक : आभूषण, सर्वरत्न : चक्रवर्ती के 14 रत्न, महापद्म : वस्त्र, काल : सभी कलाओं का ज्ञान, महाकाल : 7 धातु स्फटिक आदि, माणवक : युद्धनीति, दंडनीति, योद्धा, शस्त्र, शंखक : संगीत, वाद्य यंत्र, नृत्य की उत्पत्ति आदि।

✻ कर्मबन्ध से छूटने के लिए नासमझी के कारण निष्क्रिय बन जाते हैं वे मूर्ख हैं। बाहर से निष्क्रिय और भीतर से चहुँओर भ्रमण करता है वह दंभ का भोक्ता बनता है। प्रवृत्ति छोड़ने

से नहीं छूटती, स्वत: ही छूट जाती है। सत्प्रवृत्तिमय जीवन विकासशील जीवन बनता है।

* कर्म बंध के हेतु - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग। योग को आश्रव का हेतु और बंध का हेतु भी कहा है।

* मानसिक क्रिया से कर्मबंध होता है किन्तु सदाचारी जीव को इससे भय नहीं होता है; क्योंकि वह पुण्यकर्म का बंध एवं उच्च निर्जरा रुप पुण्य का बंध करते हुए आत्मकल्याण करता रहता है।

* कर्म जब अबाधाकाल पूरा करते हुए विपाक-फल बताते हुए उदय में आता है, तब उस क्रिया को रसोदय कहते हैं। फल के बिना बताए जब यह बिखर जाता है तब उसको 'प्रदेशोदय' कहते हैं।

अनंत कर्म का संग्रह साधना द्वारा प्रदेशोदय से नष्ट कर सकते हैं, जब सर्व कर्म नाश होते हैं तब मोक्ष सिद्धि मिलती है। हम जो कर्म बंध करते हैं, वे 'प्रदेशोदय' की अपेक्षा से भुक्तान करना पड़ते हैं, विपाकोदय- से नहीं।

* कर्म बंध होते ही, पुद्गल में जोश आ जाता है और उन कर्म की प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेश ये उसी समय निर्माण होते हैं।

योग :- प्रकृति से स्वभाव निश्चित होता है।

प्रदेश से कितने कर्मों का स्कंद बंधाता है यह निश्चय हो जाता है।

कषाय :- स्थिति से आत्मा के साथ रहने का समय।

रस से तीव्र या मंद, अनुकूल या प्रतिकूल फल देने वाली शक्ति।

<u>कषाय - 4</u> :- क्रोध, मान, माया, लोभ।

<u>पेटाभेद 4</u> :- 1. अनंतानुबंधी : मिथ्यात्व के साथी, सम्यग्दर्शन को रोके

2. अप्रत्याख्यानावरण : देशविरति को रोके।

3. प्रत्याख्यानावरण : सर्वविरति को रोके।

4. संज्वलन : वीतराग चारित्र को रोके।

कर्म पुद्गलों का प्रकार एक ही हैं । जीव पृथक-पृथक, प्रत्येक जीवों के कषाय रुप परिणाम निमित्त बनते हैं और भिन्न-भिन्न रस-बंध कराते हैं ।

जैसे एक ही घास खाने वाले प्राणी-भैंस, बकरी, गाय अलग-अलग हैं किन्तु घास का परिणाम अलग-अलग । चिकना दूध (गाड़ा), पतला दूध, मंद प्रकृति दूध आदि ।

✻ कर्म की 10 अवस्थाएँ

बंध, उद्वर्तना, अपवर्तना, सत्ता, उदय, उदीरणा, संक्रमण, उपशमन, निधत्ति, निकाचित ।

पूर्व जन्म - पुनर्जन्म :- जीव की विविध देह रुप धारण करने की परंपरा अनादि काल से चली आ रही है । आत्मा का पहला जन्म यानि आदि-प्रारंभ जैसा माना जा सकता है ।

पूर्व जन्म का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है । एक माता की 4 संतानों में अंतर होता है, जैसे धनवान और सुखी-अनीति या अनाचार में व्यस्त दिखाई देते हैं तो यह पूर्व जन्म के कर्मों का प्रभाव होगा - यह माना जा सकता है ।

सावधानी से चलते हुए भी ऊपर से ईंट पत्थर गिरना - पूर्व कर्म ।

मूल, वर्तमान के जन्म में नहीं, पूर्व जन्म में है ।

वर्तमान, भविष्य के भवों का मूल है ।

कर्म का नियम, निश्चित और न्यायमय विश्वशासन है ।

आत्मा की नित्यता समझने वाला मानता है कि अन्य का बुरा करना स्वयं का बुरा करने जैसा है । आत्मा, कर्म (पुण्य पाप), पुनर्जन्म, मोक्ष और परमात्मा ये पंचक समझने लायक है।

1. प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के कृत्यों के लिए जिम्मेदार है, किन्तु समाज के सामुदायिक कार्यों के परिणाम भी समाज को, समाज के सभी व्यक्तियों को भोगना पड़ता है, भविष्य की पीढ़ी को भी भुगतान करना पड़ता है ।

2. कर्मवाद का सनातन नियम :- करे तेवुं पावे अने वावे तेवुं लणे । (करे जैसा भरे, जैसा बोवे वैसा पावे) न चाहते हुए भी इस नियम की उपेक्षा होती है तब ही कर्मबंध होते हैं ।

सिर्फ रस, स्थिति कम होती है।

जीव को हठवादी होना चाहिए, किसलिए ? भोग के प्रति आसक्ति को दूर करने की हठ। ज्ञानी भोग-भोगते हैं किन्तु अनासकित से - जागृत अवस्था में रहकर और इस कारण से कर्म बन्ध बाधाकारक संयोग से मुक्त रहते हैं और परिणामत: अभयता के भोक्ता होते हैं।

3. व्यक्ति को स्वतंत्रता होना चाहिए भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक। परन्तु इसके साथ ही नीति-नियम के बंधन भी स्वीकार्य होना चाहिए। नीति-नियम यदि गलत रूढ़ियों के आधार पर बने हैं तो उनको शस्त्र रुप में प्रयुक्त नहीं करें। जहां शोषण हो रहा हो तो उसको रोकना चाहिए। वहां पूर्व कर्म की Argument का उपयोग न हो।

4. संसार में रहते हुए जीवन में कोई भी स्वयं के साथ घटने वाली जीवन घटना के पीछे पूर्व कर्म का बल अवश्य होता है। जैसे कि - भौतिक शारीरिक या आर्थिक विपत्तियाँ, आवेदनीय विपत्ति लाने वाला इच्छापूर्वक या षड़यंत्रपूर्वक व्यवहार करता है तो वह दोषयुक्त होता है।

* कोई मारने आता है तो उसका यदि प्रतिकार करो तो वह वैर वृत्ति नहीं कहलाती, किसी को दिए हुए पैसे यदि वो नहीं देता है तो उस पर दावा करने में वैर वृत्ति नहीं कहलाती है। यदि कोई तुम्हारी वस्तु लेकर जा रहा है तो उसको रोकना वैरवृत्ति नहीं कहलाती है।

* शठ, चोर, ठग, लफंगा, बड़बोला या गुंडे का सामना करना पड़े तो करने में दोष नहीं

* योग्य, उद्यमी, प्रयत्न, पुरुषार्थ का महत्वपूर्ण स्थान है।

* बीमार है तो दवाई करना ही पड़ती है।

* राम ने रावण से युद्ध किया था वह न्याययुक्त था।

* सर्प, विष आदि की भयानकता एवं दु:खकारकता पर जो विश्वास है वह दुष्कर्मों

की (अन्याय-अनीति) भयानकता-दु:खकारकता में जब पैदा होता है तब कर्मवाद में श्रद्धा हुई यह गिनाता है। (समझा जाता है) 'करे तेवुं पामे, वावे तेवु लणे'।

* प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के कृत्यों का स्वयं जिम्मेदार है, जो होता है हो रहा है - वह मेरे कर्मों के उदय से हो रहा है - मयणासुंदरी।

* ज्ञानी को रसयुक्त खान-पान देखकर आंखों में पानी आता है एवं अपने मुंह में पानी आता है। अनासक्ति प्राप्त करना पड़ेगी।

संसार में रहते हुए जीवन में जो घटना घटती है उसके पीछे सामान्य रुप में पूर्व कर्म बल रहता है; कोई मारने आता है उसका प्रतिकार करो तो उसमें कोई वैर वृत्ति नहीं, स्वयं की रक्षा के लिए उचित कदम उठाने मे कर्मशास्त्र भी सहारा देता है। पुरुषार्थी बनो, प्रशस्त पुरुषार्थ पुरुषत्व है। इसमें नए कर्म बंध नहीं होते।

5. भाग्यादेय अज्ञात है, पुरुषार्थ करना मानव कर्तव्य है। जमीन खोदने पर पानी होगा तो अवश्य मिलेगा। उद्यम करते रहो भाग्य होगा तो मिलेगा।

सर्वोपरि सत्ता किसकी ? आत्मा की : इसको लक्ष्य में लेकर शक्ति अनुरुप पुरुषार्थ करना पड़ता है। अशुभ कर्म भुगतना करते समय उच्च समभाव रहे यही पौरुषता है। ऐसे समय मन को स्वस्थ कौन रख सकता है ? कर्मवाद को अच्छे से समझने वाला हो, तो ही नए कर्मबन्ध से बच सकता है।

पूर्व जन्म में किए कर्म प्राय: इस जन्म में फलते हैं; उसी प्रकार इस जन्म में किए कर्म भी इसी जन्म में भी फलित होते हैं (भगवती सूत्र)

6. जीवन में रोग आता है पैसा जाता है, विपत्ति आती है आदि घटनाओं का मूल पूर्व कर्म हो सकता है और उस समय प्रयास करते हुए भी विपत्ति नहीं टलती तो दुर्ध्यान न करते हुए सहन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पूर्व कर्म को दोष देकर कुछ भी पुरुषार्थ न करे वह प्रमादी है।

जड़ता के दृष्टांत :-

आहार-विहार में बेध्यान : पुष्ट खुराक न ले, शक्ति हीन हो जाए। जुआ, सट्टा में पैसे बिगाड़े, आय से अधिक खर्च करे, परीक्षा में मेहनत ही न करे तो फैल होकर ही आएगा। डॉक्टर के पास जाकर दवाई न लें और भूत-प्रेत के चक्कर में बीमार पड़े।

ये सभी दृष्टांत जड़ता को दर्शाते हैं; इसमें कर्म को दोष नहीं दे सकते।

उद्यम पुरुषार्थ करते हुए इच्छित फल प्राप्ति हो जाए तो फूले नहीं और फल न मिलने पर निराश भी न हो। ऐसे करने से कर्म नियम का उल्लंघन कहलाता है।

किसी पर आपत्ति आई है, अन्याय हो रहा है, उसको शीघ्र सहायता करना चाहिए, उस समय कर्मवाद का प्रवचन देने नहीं बैठा जाता है।

प्रत्येक जीव एक दूसरे के सहयोग से ही संसार में जीवित है। परस्पर मानवीय प्रेम सहानुभूति द्वारा मिलजुल कर रहने में ही सुख-शांति है।

कर्मवाद का कहना है कि अनिष्ट कर्म में कर्मोदय में फर्क लाना मनुष्य के हाथ में होता ही है। जीव स्वयं की क्रिया द्वारा कर्मबंध करता है और उसी प्रकार स्वयं की क्रिया द्वारा ही कर्म को तोड़ भी सकता है।

पूर्व कर्म सभी अभेद्य नहीं होते हैं। 'निकाचित' कर्म भी श्रेणि तप द्वारा दूर किए जा सकते हैं। किन्तु उसमें उत्कृष्ट पवित्रता (भाव) और साधना की आवश्यकता है। (शत्रिंशिका)

विवेकबुद्धि का अभाव अंधश्रद्धा, गतानुगतिकता (रुढ़िवाद), अंधानुकरण (देखादेखी) अज्ञानता, लोभ, लालच आदि अनिष्ट प्रमाद के कारण बाधक बनते हैं, इच्छित परिणाम भी इसी कारण नहीं मिलते।

7. दान, पूजा, सेवा की : पुण्यबंध होगा, किसी को कष्ट हुआ, पाप बंध होगा पुण्य पाप का निर्णय करने की कसौटी बाह्य क्रिया नहीं है।

दान-पूजन करने वाला पापोपार्जन भी कर लेता है और परोपकारी डॉक्टर शल्य क्रिया करता है, कष्ट प्राप्त होता है किन्तु साथ ही पुण्य उपार्जन करता है। माँ-बाप, पुत्र की इच्छा

के विरुद्ध उसके हित के लिए डाँटते ही है ? भोले-भाले प्राणी (मानव) को ठगने के लिए दान-पूजादि की क्रिया करवाने वाला पाप ही बाँधता है । कसौटी यथार्थ होना चाहिए । भाव शुभ या अशुभ हो तो फल भी वैसा ही मिलेगा । परंतु मूढ़ विचार युक्त मनुष्य की मूर्खतापूर्ण प्रवृत्ति शुभ परिणाम वाली होने के बाद भी पाप बंधक हो सकती है । विवेक बुद्धि आवश्यक । उपयोग में (अप्रमत्त भाव में) धर्म माना गया है।

8. साधारण मानव नासमझी के कारण ऐसा समझता है कि पाप-लोहे की बेड़ी जैसा है और पुण्य सोने की बेड़ी जैसा है तो पाप करो या पुण्य कर्म बंध तो होता ही है । सारी पंचायती छोड़ो, जरूरी प्रवृत्तियाँ करो, अन्य गपशप कुछ नहीं निवृत्त अकर्मण्य बनकर मोक्ष की प्रतीक्षा करना उसमें क्या गलत है ? बिना आलसी, प्रवृत्ति वाला जीवन 'नवरो नाई पांटला मुंडे' वाली स्थिति उत्पन्न करेगा। बाहर से निष्क्रिय और अंदर से चारों ओर घूमता रहता है । कर्म बंध से छूटने के लिए निष्क्रिय बनने वाला अहंभोगी होता है ।

मन को शुभ प्रवृत्ति में निरंतर जोड़ने के बाद बाह्य प्रवृत्तियों पर ब्रेक लगा देना चाहिए । अशुभ से छूटने के लिए शुभ का आश्रय लेना चाहिए । इरादा (झोक) बदलने का है । अशुभ के प्रति का झोक (Inclination) जब तक नष्ट न हो तब तक शुभ प्रवृत्तियाँ त्याग नहीं हो सकती ।

शुभ के बंध से छूटने की प्रवृत्ति त्यागना जरूरी नहीं, प्रवृत्ति करने के भाव को शुभ में से शुद्ध रूप में बदलने की आवश्यकता है । प्रवृत्ति छोड़ने से छूटती नहीं है । स्वत: छूट जाती है। सत्प्रवृत्तियुक्त जीवन विकासमय बनता है ।

9. कर्म के दो अर्थ हैं :- 1. कोई काम, क्रिया या प्रवृत्ति, 2. जीव की क्रिया द्वारा 'कर्मवर्गणा' के जो पुद्गल आकर्षित होकर चिपकते हैं । उसके बाद पुद्गलों को 'कर्म' कहने में आते हैं । जो किए जाएं वह कर्म । जीव बध्ध कार्मिक पुद्गल वह कर्म । ये द्रव्य कर्म हैं । उससे उत्पन्न राग-द्वेषात्मक परिणाम वह 'भावकर्म'।

विभाव दशा में जीव कर्म का कर्ता है। द्रव्यकर्म और भावक्रम परस्पर कार्यकारण भाव संबंध से जुड़े हुए हैं, जैसे बीज और अंकूर।

10. कर्म पुद्गल आकर्षण के बाद बंधते हैं, पुद्गलों के आकर्षण का काम कौन करता है ? योग-मन-वचन-काया की क्रिया। इसलिए 'आश्रव' कहलाते हैं। बंध के हेतु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय (योग)। योग को 'आश्रव' का हेतु कहा है और 'बंध' का हेतु भी है, ऊपर बताए हुए बंध के 4 हेतु + योग आश्रव के भी हेतु हैं।

अब कौन से कर्म कैसे काम करने से बंधते हैं, उसका विवरण देखिए।

* ज्ञानावरणीय कर्म बंधन के कारण :- ज्ञानी का अनादर, ज्ञानवान व्यक्ति का उनके प्रति प्रतिकूल आचरण, द्वेषभाव, कृतघ्न व्यवहार, ज्ञान की पुस्तकों के प्रति असद् व्यवहार, विद्याभ्यास करते हुए को पढ़ने में विघ्न डालना, कलुषित भावना के (विरोधी हो तो) कारण दूसरे को ज्ञान के उपकरण नहीं देना, मिथ्या उपदेश आदि से ज्ञानावरणीय कर्म बंध होते हैं।

दर्शनावरणीय कर्मबन्ध के कारण :- श्रद्धा, श्रद्धावान, श्रद्धा के साधन आदि के साथ गलत व्यवहार (अनादर भाव) करना।

* सातावेदनीय कर्म बंध के कारण :- अनुकंपा सेवा, क्षमा, दया, दान, संयम के कारण साता वेदनीय कर्मबंध होता है, बाल तप से भी सातावेदनीय कर्म बंध होते हैं।

* असातावेदनीय कर्मबंध के कारण :- किसी को मारना (घात करना), शोक, संताप, दु:ख देने से दुर्ध्यान से दूषित आत्महत्या करने से, शोक-संताप दु:खग्रस्त रहने से असातावेदनीय कर्म बंध होते हैं।

* दर्शन मोहनीय कर्म बंध के कारण :- असत् मार्ग का उपदेश, सद्मार्गी के प्रति अपशब्द बोलना, साधु-संत-सज्जन-कल्याण साधन के मार्ग का अपमानजनक व्यवहार करने से दर्शन मोहनीय कर्म बंध होते हैं।

* चारित्र मोहनीय :- कषाय के उदय के साथ तीव्र अशुभ परिणाम के कारण चारित्र मोहनीय कर्म बंध होते हैं ।

* आयुष्य : महापरिग्रह, महाआरंभ, पंचेन्द्रिय घात, रौद्र परिणाम आदि से नरक का आयुष्य बंधता है, मायायुक्त प्रवृत्ति के दोष से तिर्यंच का आयु बंध होता है, अल्प आरंभ, अल्प परिग्रह, मृदुता-ऋजुता के गुणों से मनुष्य का आयु बंध होता है, संयम, मध्यम या रागयुक्त हो, तपस्वी रुप, बाल कक्षा हो उस अनुरूप देव आयु बंधता है ।

* नाम कर्म :- शुभ नाम कर्म बंध के कारण :- सरलता, मृदुता, सच्चाई, मेल-मिलाप कराने का प्रयत्न, सौजन्य आदि द्वारा शुभ नाम कर्म बंध होते हैं; इसके विपरीत दुर्जनता धारण करे, कुटिलता, शठता, ठगी, धोखा, चुगली आदि के कारण अशुभ नाम कर्म बंधते हैं।

* गौत्र कर्म - गुण ग्राहकता, निराभिमानता, विनय से उच्च गौत्र बंध होते हैं। परनिंदा आत्म प्रशंसा, अन्य के गुणों के छिपाना, निर्दोषता होने पर भी दोषों को बताना, जाति-कुल-मद का अभिमान से नीच गौत्र कर्म बंध होता है ।

* अंतराय कर्म :- 5 प्रकार से - दान, भोग, उपभोग, लाभ, वीर्य, इनमें अंतराय करना या विघ्न डलवाना इससे अंतराय कर्म का बंध होता है ।

* प्र.- जो कर्म प्रकृति के आश्रव हैं वे अन्य कर्म प्रकृति के बंधक हो सकते हैं या नहीं ?

उत्तर : प्रकृति के क्रम से बताए हुए आश्रव प्रकृति के अनुभाव (रस) बंध में ही निमित्त बनते हैं, शास्त्र सिद्धांत के प्रमाण से सामान्य रूप में आयुष्य को छोड़कर सात कर्म प्रकृतियों का बंध एक साथ समय-समय पर होते हैं; वो प्रदेश बंध के लिए ही हैं ।

आश्रव रस बंध के आश्रित हैं, यह मुख्य बात है । जिस प्रवृत्ति को करने से मुख्यत: जिस प्रकृति का 'रसबंध' कराती है वो प्रकृति का आश्रव गिनी जाती है। आश्रव सेवन करते समय प्रमुख रुप से उस प्रकृति का बंध होता है, बाकी प्रकृतियों

का प्रदेश बंध होता है।

<u>प्रदेश बंध योग द्वारा होता है, रस बंध कषाय द्वारा,</u> आश्रव को समझने से सद्आचरण, दुराचरण की समझ आती है।

<u>11. आयुष्य</u> : आयुष्य 4 प्रकार का होता है - मनुष्य, तिर्यंच, देव, नरक का आयु।

आयुष्य : चाबी वाली घड़ी की तरह है, दह रूप घड़ी - भय, शस्त्राघात, क्लेश, विष, वेदना, आत्महत्या आदि के कारण निर्धारित समय से पूर्व बिगड़ जाती है (खराब हो जाती है) तो बंद हो जाती है, उसी प्रकार मृत्यु-अकाल मरण का भोग बनती है।

<u>उदाहरण</u> :- लंबी रस्सी जल रही है और उसके घुटाल कर दिए तो शीघ्र जल जाएगी और गीले कपड़े को बीच में से पोला कर दो तो जल्दी सुख जाएगा। 1000 रुपये की गड्डी में से हमेशा 1 रुपया निकलता जाएग तो 1000 दिन तक चलेगा किन्तु 1 ही दिन में 1000 रुपये खर्च कर देंगे तो 1 ही दिन चलेगा।

ऐसा होने का कारण यह है कि पूर्व जन्म में आयुष्य कर्म का बंध ढीला होने से - निमित्त मिलते ही समय से पूर्व अकाल पूर्ण हो जाता है और गूढ़ कर्म बंध होते हैं तो अकाल पूर्ण नहीं होता। ये दो प्रकार से आयुबंध समझाया गया है।

<u>1. अपवर्तनीय आयुष्य</u> :- निमित्त के उपक्रम में शीघ्र भुगतान होता है; आयु का अपवर्तन होता है।

2. अनपवर्तनीय आयुष्य :- उपक्रम लगे या न लगे फिर भी नियत समय तक आयु का भुगतान होता है।

* जीव शाश्वत सनातन नित्य तत्व है, इसका जन्म या मरण नहीं होता है। सकर्मक स्वरुप में कोई भी योनि में स्थूल शरीर ग्रहण कर प्रकट होना वह <u>जन्म</u> और स्थूल शरीर का वियोग होना मृत्यु।

* जीव का आयुष्य काल की अपेक्षा से घट सकता है, परन्तु बढ़ता नहीं।

* पीछे के भव का आयु बंध चालू (वर्तमान) भव में ही होता है। ऐसा मोहनीय कर्म का प्रभाव रहता है तब तक चलता रहता है। इसी को भवभ्रमण कहते हैं।

12. जैन दर्शन में 'कर्म' अर्थात् क्या है उसकी समझ ?

कर्म यानि काम करना ये एक क्रिया हुई, परन्तु जैन दर्शन में 'कर्म' ये एक द्रव्यभूत वस्तु है, इसको समझना भी बहुत जरूरी है। मन, वचन और काया की क्रिया ये 'योग' कहलाती है। इस क्रिया के कारण कर्म के पुद्गल आत्म की तरफ आकर्षित होते हैं। आत्मा को स्पर्श और कषाय (राग-द्वेष) के बल से आत्मा से चिपक जाते हैं। राग-द्वेष अनादि काल से जीव के साथ लगे हुए हैं। इसी कारण कर्म का आत्मा के साथ चिपक जाना 'बंध' कहलाता है और यही कर्मबन्ध का चक्र अनादिकाल से चल रहा है। यही चक्र है, संसार-संसार चक्र।

कषाय मुक्ति :- किल मुक्ति रेव - कषायों से मुक्त होने में ही मुक्ति है -

संसार के अनेक प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। विवेक, बुद्धि ये इसको मिले हुए हैं। इसका सदुपयोग करे तो सदाचरण, सन्मार्ग पर चलते हुए वृद्धिमय बनता है। विशिष्ट पुरुषार्थ के द्वारा पुराने कर्म दूर होते हैं और नए कर्म बंध भी क्षीण होते जाते हैं एवं मोक्ष का का मार्ग प्रशस्त होता है।

मानसिक क्रिया से भी कर्मबन्ध होते ही हैं, किन्तु सदाचारी जीव को इससे भय नहीं होता। वह पुण्यकर्म का बंध एवं उच्च निर्जरा रुप पुण्य का बंध करता हुआ आत्म कल्याण की उपकारी होता जाता है।

कर्म - कर्म के पुद्गल जीव पर, हवा में उड़ती धूल, जिस तरह चिकनी दीवाल पर चिपकती है उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी चिपकते हैं। कषाय के कारण चिपकते हैं बंधते हैं। कषाय यदि नष्ट हो जाय तो कर्म 'योग' के कारण जीव पर कर्मरज आती है पर चिपकती नहीं। (अमूर्त जीव कर्म के योग के कारण मूर्त जैसा बन जाता है) जीव शरीर धारक है, सुख-दु:ख, वासना, भव भ्रमण सभी तत्व जीव के हैं, ये संबंध अनादिकाल से है।

कर्म बंधन के बाद - जैसे मदिरा का नशा तुरंत उत्पन्न नहीं होता है; बाद में नशा चढ़ता है। उसी प्रकार कुछ समय व्यतीत होने के बाद कर्मबंध अपना फल बताता है। फल बताने के बाद भोगना ही पड़ता है। अंत में जीव से कर्म छूट जाता है।

फल बताने के बाद जब छूट जाता है तो उसे 'प्रदेशोदय' कहते हैं। साधना के द्वारा प्रदेशोदय से कर्मपुंज नष्ट किया जा सकता है, जब सभी कर्म नष्ट होते हैं तब मोक्ष सिद्धि मिलती है।

प्र. :- जो कर्म बांधते हैं वे सभी भोगना पड़ते हैं ?

उत्तर :- 'प्रदेशोदय' अनुभव की अपेक्षा से भोगना ही पड़ते हैं, विपाकोदय से नहीं। शुद्ध अध्यवसाय के बल से प्रसन्नचंद्र राजर्षि ने नरकगति योग्य कर्म बांधने के बाद भी उनका नीरस करके प्रदेश को भेदकर कर्मों को क्षय कर लिया था।

विपाकोदय से ही यदि कर्मों को जर्जर करना होता तो मोक्ष प्राप्ति हो ही नहीं सकती। वर्तमान भव में कर्म बांधता ही रहता है और पूर्व भव के बंधे हुए कर्मों को छोड़ता भी जाता है। परंपरा का अंत विपाकोदय से नहीं हो सकता।

13. 'पूर्व जन्म - पुनर्जन्म' :- जीव के जन्मों की (भिन्न-भिन्न देह धारण करने की) परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है और यह मान्यता भी तर्क संगत प्रतीत होती है। आत्मा का प्रथम जन्म यानि आत्म का प्रारंभ जैसा नहीं माना जा सकता। कारण कि पृथक -की आत्मा अजन्मी हो और शुद्ध अजन्मी आत्मा का जन्म मानना पड़ता है। इस प्रकार समझने से जीवन का ध्येय जो शुद्ध आत्मा तरफ जाना है - ''वह फिर जन्म लेना पड़ेगा'' का तर्क से कलुषित हो जाएगी। देहधारण की कड़ी टूटने के बाद वह हमेशा के लिए टूटी ही रहेगी, ऐसा मानना सही लगता है।

एक ही मां की संतान में अंतर दिखाई देता है। क्यों ? वह पूर्व जन्म का प्रभाव ! इस युक्ति का पोषण करती है। अनीति एवं अनाचार में व्यस्त धनवान व्यक्ति स्वयं को सुखी मानता है। इसमें पूर्व जन्म का ही असर दिखाई देता है। ऐसा होते हुए भी जीव पुनर्जन्म में इस अनीति के कारण दु:ख और अनेक अनिष्ट संयोगों को धारण करने के लिए जैसे तैयारी कर रहा हो ऐसा मानने में कोई बाधा नहीं है। कमाई करने के लिए न्याय सम्पन्न होने से प्रशस्त मार्ग में आकर जीव पुण्योपार्जन करता है। फिर भी धर्म प्रभावना के लिए धन संग्रह नहीं

करना, इकट्ठा किया हुआ धन धर्म प्रभावना में खर्च करना चाहिए। अन्यथा सारी मेहनत कीचड़ में हाथ डालकर हाथ धोने जैसी स्थिति कही जाएगी।

उदाहरण :- अशिक्षित माता-पिता की संतान को विद्वान बनते देखा है, तो उसमें पूर्व जन्म के संस्कार ही कारण माने जाएंगे।

सावधानी से चलते हुए मनुष्य पर ऊपर से ईंट पत्थर गिरते हैं तो गंभीर घाव होता है; इसमें पूर्व कर्म का अनुसंधान कारण माना जाता है। मूल वर्तमान जन्म में नहीं, पूर्व जन्म में है। इसी कारण वर्तमान जीवन भविष्य के भवों का मूल है।

पंचक : आत्मा, कर्म (पुण्य-पाप), पुनर्जन्म, मोक्ष, परमात्मा ये पांच की श्रद्धा जीव को सच्चे मार्ग पर ले जाती है।

पूर्व जन्म अगर है तो याद क्यों नहीं आता ? यह प्रश्न उठता है लेकिन वर्तमान जन्म का भी क्या सभी कुछ याद रहता है ? विस्मृतियों का आवरण आ जाता है। आवरण के बाद भी किसी-किसी को बहुत कुछ याद भी रहता है।

मनुष्य में अपने कार्यों की जिम्मेदारी आने वाले समय से जुड़ी होती है। कभी अपराध आदि राजदंड भोगना पड़े ऐसा भी बनता है; उस समय पुनर्जन्म का सिद्धांत मानसिक शांति देता है

अपने जीवन में होने वाली आकस्मिक घटना भी किसके द्वारा हुई - कैसे हुई। ऐसे विचार में अदृष्ट कर्म के नियम तक पहुँचना ही पड़ता है।

कर्म का नियम एक ऐसा निश्चित और न्यायमय विश्वशासन है। प्राणी मात्र के कार्य को योग्य उत्तर देता है।

जन्मांतर वाद कार्य में शीघ्रता से कर्तव्य पालन कराता है। कारण कि कर्तव्य पालन कभी निष्फल नहीं जाता। सत्कर्म में जो प्रवृत्त रहता है उसको मृत्यु का भय नहीं रहता। वह आत्मा को नित्य मानता है, मृत्यु को देह विलय के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं मानता।

जो आत्मा की नित्यता को समझता है वह मानता है कि दूसरे का बुरा करना स्वयं का

बुरा करने समान है । वैर से वैर बढ़ता है, ऐसे आत्मवादी जीव सभी आत्माओं को अपने समान समझकर सभी के साथ मैत्री संबंध-सा अनुभव करता है । मैत्री के प्रकाश में राग-द्वेष की वासना घट जाती है ।

ईश्वर के अस्तित्व में संदेह करने वाला दु:ख में कठिन विपत्ति के समय में घबरा जाते हैं और इधर-उधर किसी की शरण ढूंढने लगते हैं ।

जीव की अंशत: शुद्धि ,पूर्ण शुद्धि की शक्यता को पुरवार करती है और पूर्ण शुद्धि प्राप्त हो जाती है तब परमात्म पद पा लिया ऐसा कहा जाता है, यही ईश्वर पद है ।

जीवों का प्रत्येक जन्म पूर्व जन्म की अपेक्षा से पुनर्जन्म ही है । भूतकाल के किसी जन्म को सर्वप्रथम जन्म मानने से, जीव पूर्व में अजन्मा था यह मानना पड़ेगा, ऐसा मानने से शुद्ध आत्मा को कर्म लग सकते हैं । यह भी मानना पड़ेगा । तो फिर आत्मा की मुक्ति का मतलब और अस्तित्व उड़ गया ऐसा होगा । देह धारण की परंपरा अखंड चलती है एवं देह की संलग्नता विलग होती है तो वह हमेशा के लिए विलग होती है । ऐसा मानना ही सुसंगत लगता है ।

अनीति और अनाचारी व्यक्ति सुखी दिखाई देता है, धर्मी दु:खी दिखाई देता है इसका स्पष्टीकरण यह है कि पूर्व जन्म के संस्कार से युक्त वर्तमान जिन्दगी निर्मित होती है । वर्तमान जिन्दगी के अनुरूप भविष्य की जिन्दगी निर्मित होती है । न्याययुक्त धन उपार्जन ही प्रशस्त और पुण्य मार्ग है; धर्म के लिए धन अच्छे-बुरे मार्ग से एकत्रित करना उचित नहीं । यह धर्म के लिए धन की इच्छा करने जैसा कार्य है । कीचड़ में पांव डालकर फिर धोने के समान है । कीचड़ में पांव गंदे करना ही नहीं, यही अच्छा है (सर्व विरति ही धर्म है)

धर्मार्थ यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य, दुरात स्पर्शनं वरम् ।।

न्यायोपार्जित द्रव्य से धर्म करने से, धर्म की पवित्रता बनी रहती है । पूर्व कर्म के अनुसंधान में जगत की विचित्रताओं का हल हो सकता है । अविद्धान और अशिक्षित माता-पिता की संतानें बहुत प्रकाण्ड विद्धान हो जाती है । सावधानी से चलने पर भी ऊपर से ईंट-पत्थर गिरे तो पूर्व कर्म का प्रभाव ।

इस प्रकार की युक्तियों से पूर्वजन्म है यह सिद्ध हो सकता है । ऐसी ही प्रामाणिकता पुनर्जन्म है यह भी सिद्ध किया जा सकता है ।

दुःखों का अंत ही नहीं आता (यह परिस्थिति) ऐसा जीव को कर्मवाद के प्रति दृढ़ श्रद्धा से निराश नहीं कर सकती और वह सत्कर्म में प्रयत्नशील रह सकता है । उसको मृत्यु का भय नहीं सताता । वह मृत्यु को दृढ़ता से देह परिवर्तन के अतिरिक्त कुछ नहीं मानता । आत्मा की नित्यता समझता है इसलिए 'दूसरे का बुरा करना वो अपना बुरा करने समान' समझता है । स्वयं आत्मवादी है । आत्मवादी जीव सभी को अपने जैसा ही मानता है इससे वह मैत्रीभाव से गर्भित जीव है, समभाव का पोषक है, किसी भी प्राणी के साथ विषयभाव नहीं रखता ।

आत्मा, कर्म (पुण्य, पाप), पुनर्जन्म, मोक्ष और परमात्मा । ये पंचक समझने की दृढ़ मान्यता जीव को आत्मवादी बनाती है ।

कर्म जड़ है किन्तु जीव की चेतना का विशिष्ट संसर्ग इसमें शक्ति उत्पन्न करता है । जड़ कर्म चेतना के संयोग के बिना कोई भी फल देने में समर्थ नहीं है । कर्म करो और फल मिले तो ठीक अथवा न मिले तो भी ठीक, यह इच्छा करने से कुछ नहीं होता । 'कर्मबंध' आत्मा में 'संस्कार' डालता ही है । इस प्रकार कर्म से प्रेरित जीव को कर्म का फल भोगना ही पड़ता है । ईश्वर की प्रेरणा से फल का भोक्ता नहीं होता । भगवत् गीता, 5 अध्याय, श्लोक 14 में भी बताया है, ईश्वर कर्ता नहीं, कराता नहीं और न ही सृजन करता है । उसी प्रकार कर्म के देने में प्रेरणा नहीं देता ।

न कतृत्वं न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभुः

न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते ।।

झूठ बोलने का पाप फल - गूंगा, बोबड़ा, मुख का रोगी होता है। दान देने में यश कीर्ति की कामना हो तो दान का लाभ, दान का आनंद उड़ जाता है। कर्म का नियम क्रिया-प्रतिक्रिया में है। अच्छे से अच्छा, बुरे से बुरा फल ये कर्म का अप्रतिबंधित शासन है। यह प्रकृति का नियम है - साधन और आने वाले सुसमय सद्उपयोग करके संघ सेवा आज ही कर लो तो आने वाले समय (भव) में इससे अधिक समय का योग अनुकूल आएगा।

*** परलोक की विशिष्ट धारणा :-** परलोक अर्थात् अन्य लोक, अपने अतिरिक्त अन्य लोक जहां रहते हैं।

दृश्यमान परलोक :- मनुष्यों के लिए पशु समाज और पशुओं के लिए मनुष्य समाज

दूसरा परलोक - मनुष्य की संतति, इस प्रकार परलोक को सुधारने संतति का श्रेय विचारने योग्य। अंत में जीवन शक्ति के वास्तविक तत्व का यथार्थज्ञान ही उत्तम रोशनी है, जो मंगल मार्ग पर सभी को आगे बढ़ाती है।

कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है तब प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाव (रस) इन चारों का निर्माण हो ही जाता है।

* प्रकृति से स्वभाव बंधता है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आदि निश्चित होते हैं।

* स्थिति से कर्म पुद्गल का जीव के साथ कहाँ तक संबंध रहेगा यह निश्चय होता है

* प्रदेश से जीव के साथ कार्मिक पुद्गल स्कंध कितने बंधे हैं यह निश्चय होता है।

* अनुभाव से तीव्र या मंद, मधुर या कठोर फल देने वाली शक्ति का बंध होता है।

मोदक (लड्डु) के दृष्टांत से चारों स्वरूपों को समझा जा सकता है।

प्रकृति बंध और प्रदेश बंध : 'योग' के कारण बंधाते हैं।

स्थिति बंध और अनुभाव बंध : 'कषाय' के कारण बंधाते हैं।

(अनुभाग या रस) : तीव्र-शुभ अशुभ, मंद-शुभ अशुभ।

कषाय की तीव्रता हो और कर्म प्रवृत्ति शुभ या अशुभ हो उस समय स्थिति का अधिक बंध होता है। कषाय की मंदता हो तो स्थिति कम बंधती है।

कषाय की तीव्रता (शुभ या अशुभ) जितनी अधिक, कर्मबंध की स्थिति उतनी अधिक अनुभाव (रस) अन्य प्रकार से होता है ।

कषाय तीव्र है, कर्म प्रकृति अशुभ है, अशुभ प्रवृत्तियों का रस अधिक बंधता है । शुभ प्रवृत्ति का रस कम बंधता है ।

कषाय मंद है, कर्म प्रकृति अशुभ है, रस कम बंधता है (अशुभ प्रवृत्ति का)

कषाय मंद है, कर्म प्रकृति शुभ है, रस अधिक बंधता है (शुभ प्रकृति का)

जीव कर्म पुद्गलों के ग्रहण करने के साथ ही कर्म पुद्गलों में एक विचित्र जोश आ जाता है ।

जीव में कषाय रूप परिणाम प्राप्त होते ही उसमें अनंतगुणा रस उत्पन्न होता है जो जीव के गुणों का हनन करता है । यह रस जीव के लिए भयंकर उपाधि है । शुभ रस से सुख और अशुभ रस से दु:ख मिलता है ।

एक ही प्रकार के कर्म पुद्गल भिन्न-भिन्न जीवों के कषायरुप परिणामों का निमित्त प्राप्त कर विभिन्न रसवाले बनते हैं । इसी को रसबंध, अनुभाव बंध या अनुभाग बंध कहते हैं । एक घास खाने वाले प्राणी - भैंस, गाय, बकरी आदि प्रत्येक के शरीर में घास का परिणमनअलग हो जाता है । चिकना दूध, पतला दूध, मंद प्रकृति का दूध जिस प्रकार होता है उसी प्रकार कर्म का - रस बंध का स्वरुप है ।

शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्य ।

योग शुभ हो और पुण्य कर्म अशुभ हो तो पाप कर्म बंधता है परन्तु शुभ योग के समय भी पाप प्रकृति का बंध होता है एवं अशुभ योग के समय भी पुण्य प्रकृति का बंध होता है । इसलिए शुभ योग हो किन्तु कषाय परिणाम मंद होता है तो पुण्य प्रकृतियों के अनुभव रस की मात्रा अधिक होती है और प्रकृतियों के रस की मात्रा कम होती है । अशुभ योग हो तो कषाय परिणाम तीव्र होता है जिससे पाप प्रवृत्तियों के रस की मात्रा अधिक होती है एवं पुण्य प्रकृति के रस की मात्रा कम होती है ।

मुख्यत: जो अनुभाव की होती है उसको लेकर सूत्र का विधान होता है ।

* कर्म की मुख्य 10 अवस्थाएँ :- बंध, उद्वर्तना, अपवर्तना, सत्ता, उदय, उदीरणा, संक्रमण, उपशमन, निधत्ति, निकाचना।

1. बंध :- कार्मण वर्गणा के पुद्गलों का जीव के साथ दूध-पानी सा या लोह-अग्नि के समान परस्पर एक रुप संबंध होना उसे बंध कहते हैं। आत्मा के सभी प्रदेश कर्मरज ग्रहण करते हैं, प्रत्येक कर्म के अनंत स्कंध आत्मा के समस्त प्रदेशों में बंधते हैं; यह कर्म की प्रथम अवस्था है, बंध के 4 भेद = प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश।

2-3 : उद्वर्तना, अपवर्तना :-

कर्म की स्थिति, रस बढ़ा : उदवर्तना हुई कहा जाता है।

कर्म की स्थिति, रस कम हुआ : अपवर्तना हुई कहा जाता है।

बुरे कर्मों को सत्चरित्र, भावोल्लास के बल से स्थिति एवं उसकी कटुता कम की जा सकती है। अपवर्तना हुई कहा जा सकता है।

घोर नरक में जाने वाले जीव जागृत हो गए और तपोबल से कर्मों का विध्वंस कर दिया, उसके दृष्टांत कहां नहीं है। ऐसे जीव परमात्म पद को प्राप्त कर गए - दृढ़ प्रहारी ने ब्राह्मण, स्त्री, भ्रूण, गाय की हत्या करने के बाद भी तपोबल से मुक्ति को प्राप्त कर लिया।

प्रमाद : निद्रा में आत्मा सोते सिंह के समान है, जब वह जागृत होती है तब मोह रुप मातंग (हाथी) को हरा कर कर्मों से विजित होती है।

उद्वर्तना में अल्प स्थिति का अशुभ कर्म बांधने के बाद फिर बुरा कार्य करे, आत्म परिणाम कलुषित करें तो इसके कर्म की स्थिति तथा रस बढ़ता ही जाता है।

अपवर्तना-उद्वर्तना के कारण कोई कर्म जल्दी फल देता है, तो कोई देर से, कोई कर्म का फल मंद होता है तो कोई कर्म का फल तीव्र मिलता है।

4. सत्ता : कर्म बंध होने के बाद तत्काल फल नहीं मिलता है तो वह सत्ता रुप में कर्म पड़ा रहता है। जितने समय तक सत्तारुप में रहता है उस समय को अबाधा काल कहते हैं। यह काल स्वाभाविक क्रम से या अपवर्तना द्वारा पूर्ण होते ही कर्म स्वयं का फल देने को तत्पर हो जाता है उसे कर्म का उदय कहते हैं।

5. <u>उदय</u> :- नियत समय में फल देने को तत्पर हो वह उदय ।

6. <u>उदीरणा</u> :- उसके समय से पूर्व फल देने में तैयार हो जाए उसे उदीरणा कहते हैं; उदीरणा होने के लिए -

1. विशेष प्रयत्न करना जरूरी है, जैसे आम को घास में रखकर समय पूर्व पका लेना ,

2. अपवर्तना द्वारा कर्म की स्थिति कम करना जरूरी है। अपवर्तना, सत्चारित्र, भावोल्लास के बल से किया जा सकता है ।

अकाल मृत्यु, आयुष्य कर्म की उदीरणा का कारण है । अमुक अपवाद के अतिरिक्त उदय और उदीरणा कर्मों का हमेशा चलता रहता है । उदीरणा जो कर्म उदय में होते हैं उससे ही होता है; उदय होते तब प्राय: उदीरणा होती ही है ।

7. <u>संक्रमण</u> : एक कर्म जब सजातीय अन्य कर्म की प्रकृति रुप हो जाती है तब 'संक्रमण' की क्रिया हुई कहलाती है । आठ कर्म मूल है, वे एक-दूसरे प्रकृति रुप होते नहीं हैं आवांतर भेद में सजातीय रुपांतर हो सकते हैं । दा. त. शाता-अशाता वेदनीय रुप हो सकते हैं ।

अपवाद :- आयुष्य कर्म की 4 प्रकृतियाँ एक दूसरे में रुपांतर नहीं होती । दर्शन मोहनीय कर्म, चारित्र, मोहनीय कर्म में संक्रमण नहीं होता ।

8. <u>उपशमना</u> :- उदित कर्म को उपशांत करना, उपशमन में उदय-उदीरणा नहीं होती । उसी प्रकार संक्रमण, उद्वर्तन, अपवर्तन, निधत्ति-निकाचना भी नहीं होता ।

9. <u>निधति</u> :- कर्मबंध की सघन अवस्था, यहां उदीरणा या संक्रमण नहीं होता परन्तु उद्वर्तना-अपवर्तना हो सकता है ।

10. <u>निकाचना</u> :- कर्म बंध की सबसे अधिक सघन अवस्था । यहां कोई क्रिया नहीं चलती । उदीरणा-संक्रमण-उद्वर्तना-अपवर्तना आदि नहीं होता । निकाचित कर्म उदय में आते हैं तब प्राय: अवश्य ही भोगना पड़ते हैं ।

आत्म तत्व विचार

व्याख्याता : श्रीमद् विजय लक्ष्मीसूरीश्वरजी महाराज

<u>कर्म उदय का प्रभाव :</u> मनुष्य के अपने स्वरुप को भुला देता है; भिखारी लाखों का मालिक बन जाता है; अशुभ कर्म के उदय होने पर व्यापार में लाभ नहीं होता, तेजी में मंदी आ जाती है; दुर्बुद्धि उत्पन्न होती है । सनतकुमार चक्रवर्ती को रोगों ने घेर लिया, हिटलर की तानाशाही अंत में बुरी दशा । इज्जत बचाने के लिए जहर पीना, कोर्ट में जाना आदि ।

<u>सनातन नियम</u> :- अच्छे का फल अच्छा, बुरे का फल बुरा, यह सनातन नियम है । शरीर के लिए जो पाप कर्म होते हैं वे विपाक सह जीव के साथ जाते हैं । शरीर यहीं रह जाता है । कर्म, दूसरे, तीसरे या आगे के भव में उदय में आते हैं तब फल बताते हैं ।

<u>मृगापुत्र :-</u> मृगावती रानी का पुत्र था । पूर्व भव में यह जीव 'अक्षादि राठौड़' नामक राजा था उसने मदांध होकर घने पाप कर्म किए, अनाचार का सेवन, जनता को झूठे-झूठे आरोप लगाकर दंडित किया, देव गुरु की निंदा की । इन पाप कर्मों के परिणाम स्वरुप मरकर नरक में गया । वहाँ से निकलकर मृगापुत्र बना । वह कैसा ? उसके हाथ-पावँ नहीं मात्र नरक चिन्ह मात्र थे, आंख की जगह सिर्फ गड्डे आंख नहीं, कान नहीं मात्र चिन्ह । मात्र मिट्टी के पिंड जैसा शरीर । उसको खिलाएँ-पिलाएँ कैसे किन्तु माँ की आत्मा दयामय, तरल खाद्य पदार्थ उसके शरीर पर डालती वह अंदर जाकर मवाद और पानी बनकर बाहर आता, मृगापुत्र का शरीर पिंड उसमें आलोट कर शरीर की चमड़ी से वह चूस लेता ।

शरीर से इतनी दुर्गंध आती थी उसके पास जाने वाला नाक पर कपड़ा ढंके बिना नहीं जा सकता था, देखकर रो पड़े या चिल्ला उठे । सम्यग्-दृष्टि आत्मा भी सुनकर कांप उठता । ऐसे निकाचित पाप कर्म उदय का परिणाम ।

प्रबल पुण्योदय हो तो उल्टा करते सीधा होते हैं ।

एक सेठ था; भविष्य जानने की इच्छा हुई; जोशी को कुंडली बताई, ''सेठजी आपके सभी ग्रह अत्यन्त अच्छे हैं; आप उल्टा काम करोगे तो भी सही होगा ।''

अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए सेठ राज दरबार में गया। राजा सभा में बैठे थे। सेठ ने आव देखा न ताव राजा के सिंहासन के पास पहुंचे और जोर थप्पड़ मार दी, जिससे मुकुट नीचे गिर गया। सैनिकों (अंगरक्षकों) ने तलवारें खींच दी। सेठ की गरदन पर तलवार पहुंचे उसके पूर्व ही राजा की दृष्टि मुकुट पर पड़ी, उसमें जहरीला सांप दिख गया। राजा ने तत्काल हाथ उठाकर सैनिकों को रोका। अपनी जान बचाने की दौलत राजा ने सेठ को 5 गांव इनाम में दिए।

अपने भाग्य पर किसी को ऐसा भरोसा है ? सुपात्र दान करना हो तो 100 के बदले 1000 दे सकतो हो ? ऐसा विश्वास है ?

'पुण्य पर भरोसा हो तो ऐसा लाभ मिले' भाग्य को बनाने वाला पुरुषार्थ है। फल भोगने में भाग्य और कर्म को तोड़ने में पुरुषार्थ प्रधान है। धर्म प्रवृत्ति में पुरुषार्थ कभी छोड़ना नहीं, कभी नहीं। तीर्थंकर की बताई हुई प्रवृत्ति का जोश कभी ठंडा न हो।

कुछ समय बाद सेठ का भाग्य अभी भी बलवान है। सेठ फिर राज दरबार में गया; राजा ने सम्मान दिया। सेठ ने राजा के पांव पकड़े और खींच कर सिंहासन से नीचे गिरा दिया। इतने में सिंहासन के पीछे से दिवाल गिरी खड्डा हो गया। राजा बच गया। सेठ को 10000 रूपये इनाम में दिए।

वस्तुपाल - तेजपाल - सोने का चरु जंगल में गाड़ने के लिए गए, खड्डा खोदा तो उल्टा उन्हें चरु मिल गया। यह पुण्य का ही फल है।

छः महीने बाद सेठ फिर पंडित के पास गया। भाग्य का पूछा तो उसने कहा सेठ अभी भी आपके ग्रह बलवान हैं। सेठ गांव के द्वार में प्रवेश कर रहा था और अपने लवाज़मे के साथ बाहर घूमने निकला था। सेठ को सामने मिला। सेठ ने जोर से धक्का दिया, राजा घोड़े से गिर गया, दांत में से खून निकलने लगा; इधर नगर का द्वार जीर्ण-क्षीर्ण हो रहा था, तत्काल गिर पड़ा। राजा आदि सभी बच गए।

सेठ को राजा ने आधा राज्य दे दिया। यहां प्रबल पुण्योदय का प्रभाव ही कहा जाएगा और क्या कह सकते हैं ? इस स्थान पर पुण्य न हो तो ?

सेठ के पास 66 करोड़ सोना मोहरे थीं; उसके तीन समान भाग कर दिए। एक भाग जमीन

में गाड़ दिया, एक भाग व्यापारिक जहाजों में लगा दिया, एक भाग व्यापार में लगा दिया।

एक दिन सेठ के पास सूचना आई; व्यापारिक जहाज सभी डूब गए। जमीन खोदी तो उसमें कोयले निकले, उसी समय दुकान में आग लगी और सारी बहियाँ जल गयी। पाप के उदय से सेठ निराधार हो गया।

कर्म बंध करते समय मानव सोचता नहीं है। सचेत-सावधान नहीं रहे, अब सिर पीटने से कुछ भी हाथ नहीं आ सकता।

पाप का उदय हो तो 'समता' से सहन करना चाहिए। अशुभ को शुभ समय में बदलने की शक्ति आत्मा में ही है। निमित्त को दोष मत दो, आर्तध्यान मत करो, पुण्य का कार्य अधिक से अधिक करो, लक्ष्मी को रहना ही पड़ेगा।

कुबेर सेठ का दृष्टांत - सात पीढ़ी तक चले इतना धन का अधिपति कुबेर सेठ नित्य लक्ष्मी देवी को प्रणाम करके उसकी कृपा मांगते हैं। एक दिन रात्रि के समय लक्ष्मीदेवी ने सेठ को उठाया, बोली - सेठ ! सात पीढ़ियों से मैं तुम्हारे साथ रहती हूँ अब मैं जा रही हूँ, इसलिए तुम्हारी आज्ञा लेने के लिए आई हूँ।

सेठ यह सुनते ही घबरा गया। ओह ! अब तो ऋद्धि-समृद्धि सारी जाने वाली है। सेठ लक्ष्मीजी से बहुत अनुनय-विनय करके रोकने की प्रार्थना की। लेकिन लक्ष्मीजी बोले - सेठ तुम्हारा पुण्य समाप्त हो गया है। जहाँ पुण्य नहीं है वहाँ मैं नहीं रह सकती। सेठ ने कहा - देवी! 3 दिन आप रुक जाओ फिर मैं आपको इजाजत दे दूंगा। 'तथास्तु' कह देवी अदृश्य हो गई।

प्रात:काल कुटुंब को एकत्रित किया। परिवार के सभी सदस्य उपस्थित हो गए। सेठ बोला-आभूषण, रोकड़ आदि जो भी धन है मेरे सामने ढेर कर दो। कुछ ही समय में आभूषण -रुपये आदि का बहुत बड़ा ढेर हो गया। 3 दिन सेठ ने सभी सामग्री दान कर दी। सिर्फ शयन करने का पलंग और एक दिन खाने जितना सामान रख लिया और निश्चिंतता से सो गया।

रात्रि में चौथे दिन लक्ष्मी देवी प्रकट हुई। सेठ को जगाया, बड़ी कठिनता से सेठ की नींद खुली। देवी को देखकर बोला - आप जाने के लिए आई हो - कल जाती हो तो आज - अभी चली जाओ।

लक्ष्मीदेवी बोली - 'मैं तो रहने के लिए आई हूँ। प्रबल पुण्य का कार्य करके मुझे यहां रहने को मजबूर कर दिया है।'

कुबेर सेठ ने 3 दिन में किया प्रबल पुण्य कार्य का फल तुरंत देख लिया। लक्ष्मी देवी ने सेठ से कहा - कल प्रात: मेरे मंदिर में जाना, वहां एक योगी मिलेगा, उसको घर लाकर भोजन कराना, जब वो जाने लगे, तब उसको लकड़ी की मारना, सोने का पुरुष हो जाएगा। जरुरत पड़े तब सोने का हाथ-पाँव काट कर उपयोग करना। हाथ-पाँव उसके वापिस आ जाएंगे। कुबेर निहाल हो गया।

याद रखिए, लक्ष्मी पुण्य के अधीन है।

प्र. प्रत्येक मानव एक समान क्यों नहीं ?

उ. स्थूल (जो दिखाई दे रहा है) जगत में से सूक्ष्म जगत में जाइए तो इसका कारण मिल जाएगा। वृक्ष की जड़ और बीज दिखाई नहीं देता है।

एक सुई की नोक पर लाखों जीवित कोष हैं, जीव रस में जीव केन्द्र (Nucleus) हैं, जीव केन्द्र में गुण सूत्र (Chromosomes) है। गुणसूत्र में संस्कार सूत्र (Genes) हैं; संस्कार सूत्र में माता-पिता के, कई पीढ़ियों के संस्कार भरे होते हैं। संस्कार वाहक (Gene) बहुत छोटा, परंपरा निर्वाहक है। 6 लाख संस्कार भरे हैं।

दो सगे भाइयों में फर्क होता है - क्यों ? इसके लिए (Gene) भी सूक्ष्म कर्म शरीर की ओर आगे देखना पड़ता है।

नाभि में आत्मा, उसकी परिधि में कषाय, कर्म संरचना, मोहनीय ज्ञानावरण, आदि कर्मों ने आत्मा को घेर रखा है। आत्म की निकट जल-दूध के समान पृथक-ऐसी आत्मा और कर्म है। आत्मा की शक्ति पर कर्म प्रकृति का आवरण आ जाता है।

कर्म में तीन शक्तियाँ : आवारक (आवारण) विकारक (मोहनीय) प्रतिरोधक (अंतराय) । कर्म के प्रभाव के कारण व्यक्तियों में अंतर दिखाई देता है।

कर्मवाद का नियम है कि कर्म के प्रति अपनी यदि जागृत अवस्था हो जाए तो कर्म के फल को बदलने का अधिकार अपने को मिल सकता है।

द्रव्य को बदलने से कर्म फल बदल जाते हैं।

क्षेत्र को बदलने से कर्म फल बदल सकते हैं (जैसे भरतजी का अरीषा (कांच) महल) काल को बदलने से कर्म फल बदल सकते हैं। (ध्यान के लिए रात्रि 2 से 4 का समय श्रेष्ठ)

स्वाध्याय – प्रथम प्रहर में प्रात: 6 से 9 श्रेष्ठ

ध्यान – दूसरे प्रहरी में 9 से 12, श्रेष्ठ।

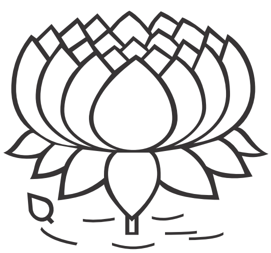

अप्पाणं – वोसिरामि ....

जिनज्ञा अनुसार आराधना करके,
सर्व कर्म क्षय कर, मैं मोक्ष सुख प्राप्त करुं
और सभी को मोक्ष सुख प्राप्त हो ...

पूर्व के अनंत भवों में, अनंत शरीर,
धारण किए, अनंत संबंध बनाए,
अनंत उपाधियाँ साधन-सामग्रियाँ
एकत्रित की, लेकिन वोसिराई नहीं ....

इस भव में भी आज तक
शरीर से अनंत पुद्गल, बड़ी नीति, लघुनीति
श्लेष्म आदि निसृत हुए, बेकार वस्तुएँ, घर का
कचरा, सब्जी आदि का कचरा पड़ा रहा,
और सम्मुर्च्छिम जीव उत्पन्न हुए, उसके सहभागी बने

पुद्गल वोसिराए नहीं, वे सभी
पुद्गल अब वोसिराता हूँ,
अरिहंत सिद्ध गुरुदेव की साक्षी से
त्रिविध-त्रिविध वोसिरामी,
वोसिरामी पच्चक्खाण पडिक्कमामि
निंदामि, गरिहामि
अप्पाणं वोसिरामि ....

'श्रद्धांध'

विभाग – ९

मन आदि मारना

‘श्रद्धांध’ भावे ‘निर्वाण’ अंतर मा : भावुक स्तवन

प. पू. युगभूषणविजयजी म.सा. द्वारा लिखित

‘मनोविजय और आत्मशुद्धि’

ग्रंथ में से संक्षिप्त संकलन

- मनोविजय और आत्मशुद्धि — 293
- मनोविजय के पांच सोपान — 295
- इन्द्रियों का स्वरुप — 297
- संसार का वास्तविक सत्य — 299
  शुभाशुभ भावों से ही शांति-अशांति
- आत्मशुद्धि हो तो ही समकित प्राप्ति — 301

महावीर निर्वाण

महावीर महावीर वीतरागी भाव मां,
भावना भावतां कर्मों बली जाय,
भवो भवना भव फेरा टली जाय ।।

कर्मों बले ने आतम उजले,
आतम उजलतां, जीवन झलहले,
महावीरनां ध्यान मां दुःखो गली जाय,
भवोभवना भव फेरा टली जाय ।

भावना भावतां .... ।

वैभव छोड़े ते पहेलां, वैभव ने छोड़ तूं ।
एकलो ज आव्यो, तो, एक लो जवानो तू ।
ज्ञानीनी वात, ज्ञान थी कली जवाय तो,
अंतर मां 'महावीर निर्वाण' फली जाय ।

भावना भावतां .... ।

''श्रद्धांध''
अक्टोबर 2002

मनोविजय और आत्मशुद्धि

✻ समकित में संपूर्ण मान्यता शुद्धि

मान्यता :- मन क्या मानता है ? क्या नहीं मानता है ?

बीड़ी पीना गलत है। मदीरा (Wine) पीना Health के लिये अच्छा है।

अच्छी मान्यताओं को सत्य कैसे करना ? गलत मान्यता को कैसे निकालना ?

✻ मन :- द्रव्य मन और भाव मन। उपयोग मन और लब्धि मन। (भाव मन के दो प्रकार) लब्धि मन के परिवर्तन के लिए मान्यता को प्रथम तत्वानुसारी करो।

लब्धि मन :- अंतर के अनंत भवों के संग्रह हुए भावों का समूह। भाव निमित्त के बिना व्यक्त नहीं होते। सत्य को असत्य, असत्य को सत्य माने। मान्यता से भरे हुए लब्धिमन में सम्यक्त्व को लाना है।

✻ धर्म अर्थात् क्या ? :- जो तुमको तुम्हारा स्वामी बनाने में साधन रुप हो, वह आत्मा को देह-इन्द्रिय-मन की पराधीनता से श्रावक के लिए ऊपर उठाए वह धर्म कौन सा ? - सामायिक।

✻ देह-इन्द्रिय-मन :- ये तीनों आत्मा से अलग हैं; इनका रटन करो, मन को जानो, पहिचानो और समझो। इन तीनों का त्याग करना चाहिए ? नहीं, साथ रख कर, भाव मन का कन्ट्रोल कम करते-करते मन को कंट्रोल में ले लो।

✻ भौतिक रिद्धि-सिद्धि में अस्थिरता - श्रेणिक राजा/अनाथी मुनि का उदाहरण।

✻ वृत्ति और परिणति, दोनों एक रुप हो जाए तो ही 12 भावना से मान्यता का संपूर्ण परिवर्तन किया जा सकता है।

✻ मनोविजय की साधना के 5 सोपान :- श्रद्धा, संकल्प, संवेग, समझ, साधना - मुझे मन को जीतना ही है, विचारों की स्थिरता, एकाग्रता, गंभीरता लाने की साधना के बारे में जानना - समझना।

✻ मंदिर में मस्तक (ललाट) पर तिलक करके अंदर जाते हैं। किस श्रद्धा के बल पर ?

अशुभ विचार, लब्धि मन की गंदगी की उत्पत्ति है। अभवि जीव मोक्ष नहीं जाता है, ये इसकी 'मान्यता' ही गलत है, इसलिए मोक्ष नहीं जाता।

* अनंता भवों की 'मान्यता' दृढ़ हो गई है। 'विषय कषाय में ही सुख है' लब्धि मन (अंत:स्थल को) पढ़ता ही नहीं है। उपयोग मन (समतल) को देखकर स्थूल कषाय, विषय में रमण करता है। पदार्थ को अंत से पहिचानो, उसकी प्रारंभिकता से नहीं।

* मान्यता बदलने की क्रिया अपुन बंधक अवस्था से प्रारंभ हो जाती है। कषाय आग होते हुए भी जीव उसका आलिंगन करने दौड़ता है।

* <u>मन का स्वरुप</u> :- रुचि और अरुचित के साथ 'मान्यता' बनाई गई है। रुचि-अरुचि के कारण पाप-पुण्य के अनुबंध चलते ही रहते हैं।

* <u>परिणति</u> :- लब्धिमन का प्रथम भाग 'मान्यता' और दूसरा 'परिणति'। मनुष्य की प्रकृति में बनाए गए शुभाशुभ भाव ही परिणति है। उपयोग मन में एक साथ दो विरोधी विचार नहीं हो सकते। लब्धि मन में अनेक विरोधी भाव एक साथ संग्रहित होकर पड़े रहते हैं।

* गंदगी, भूख, प्यास, थकान की प्रक्रिया देह, इन्द्रिय और मन में अनवरत चलती रहती है। भोग : नारक में तीव्र, पशु में इससे कम, मनुष्य में इससे कम, देवों में इससे भी कम। सबसे अधिक भूख प्यास, थकान, गंदगी दुर्गति में है।

* जड़ जगत का वेधक सत्य :- भौतिक जगत में दूसरी कोई सुख नाम की चीज नहीं है।

    ❁ शरीर :- 24 घंटे - भूख, प्यास, थकान, गंदगी।

    ❁ इन्द्रिय :- शरीर से हजारों, लाखों गुना अधिक भूख-प्यास आदि।

    ❁ मन :- 24 घंटे उगलते ज्वालामुखी जैसी भूख-प्यास आदि।

    ❁ जहां तक मोह के परिणाम हैं तब तक मन की भूख है।

* मन को मारना, मन की मृत्यु, मन में दु:ख-संताप से मुक्ति उसका नाम वीतरागता।
* प्रकृति में परिवर्तन शक्य है, धर्म के साथ प्रकृति में परिवर्तन लाना ही पड़ता है। तो ही धर्म आत्मसात हुआ माना जाता है।
* मन और मस्तिष्क, मानव मन, द्रव्य मन, भाव मन।
* भाव मन के 2 प्रकार - Conscious mind, subconscious mind.
* मन की मान्यता और कर्मबन्ध, मान्यता का Storage लब्धि मन।
* धर्म आत्मा को, देह-इन्द्रिय-मन की पराधीनता से मुक्त करता है।

  देह - इन्द्रिय-मन तीनों से आत्मा अलग है, यही रटते रहो।

  उदाहरण - प्रसन्नचंद्र राजर्षि, ईलायची कुमार, श्रेणिक राजा ने किया।

  देह का राग, एकत्व भावना आदि से 'मान्यता' में परिवर्तन लाइए।
* जैसा पुरुषार्थ वैसी प्रवृत्ति, पुरुषार्थ कौन कराता है ? मन के भाव। गुणों में सुख का अनुभव न हो तब तक मान्यता नहीं बदलती।

मनोविजय के पांच सोपान

महावीर नहीं बनना हो तो महावीर की आज्ञा संपूर्ण माननी पड़ेगी।

* अभवि जीव मोक्ष क्यों नहीं जाता है ?

  मूल में मान्यता ही गलत है, 50%, 90%, 99% माने यह नहीं चलता है। मिथ्यात्व का सघन आवरण।

  दा. त. स्थूलिभद्र के पिता शकटाल, मिथ्यात्वी वररुचि विद्वान ने मूल में शकटाल की पत्नी को साधा, नंदराजा की 'मान्यता' को ही बदल दिया, मन की नाड़ी बुद्धि को ही पकड़ना चाहिए।
* जीव को विषय कषाय में ही सुख मालूम होता है। अनंत काल से यह मान्यता दृढ़ हो गई है, कषाय में आग है; उसका आलिंगन नहीं होता। हम पदार्थ को प्रारंभ से ही देखना

सीखे हैं। ज्ञानी पदार्थ को अंत से पहचानने का कहते हैं। अंत:स्थल पढ़ते ही नहीं ; समतल को ही पढ़ते हैं।

* मान्यता बदलने की क्रिया अपुनर्बंधक अवस्था से प्रारंभ होती है :- द्विबंधक, सुकृतबंधक, अपुनर्बंधक, मार्गाभिमुख, मार्गपतित, मार्गानुसारी, चरमयथा प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, अंत:करण, समकित।

* मन का स्वरुप दर्शन :- अच्छे में रुचि, बुरे में अरुचि, जीव की मान्यता रुचि-अरुचि के साथ बुनाई गई है, पाप-पुण्य के अनुबंध रुचि-अरुचि के कारण चलते ही रहते हैं।

* अशुभ भाव लब्धिमन की गंदगी का उभरना कारक है :- मान्यता जितनी अशुभ उतना ही जीव के पाप-पुण्य का अनुबंध तीव्र होता है।

* रुचिकर काम में समय चला जाता है, आत्मा पीछे रह जाती है। 'स्वद्वेषी' बन गए हैं।

* लब्धि मन का प्रथम भाग मान्यता, दूसरा भाग परिणति-प्रकृति में बुने गए शुभाशुभ भाव।

* उपयोग मन में एक साथ विरोधी विचार नहीं कर सकते। लब्धिमन में विरोधी विचार नित्य रहते हैं। वहाँ उदारता भी होती है साथ ही लोभवृत्ति भी।

* देह - इन्द्रिय मन :-

देह : शरीर की गंदगी, थकान, भूख-प्यास का काम चलाऊ निवारण करना, उसका नाम देह सुख है।

84 लाख योनि के सभी जीवों का मूल स्वरुप यही है। सिर्फ योनि के अनुरुप स्वरुप बदलता है। सबसे ज्यादा भूख-प्यास-थकान, गंदगी (1) नारक में सबसे अधिक, (2) पशुओं में उससे कम, (3) मनुष्य में इससे कम, (4) देवों में सबसे कम।

एक तरफ देह में भूख-प्यास-थकान-गंदगी आदि दु:खों की उत्पत्ति और संचय अनवरत चलता रहता है। दूसरी तरफ उसके Temporary Relief उपाय जैसी भोग की क्रिया जिससे सुख का आभास होता रहता है।

इस जड़ जगत का वेध सत्य है, भौतिक सुख की प्रक्रिया के साथ यह अबाधित नियम है।

इन्द्रियों का स्वरुप

* शरीर की भूख से ज्यादा हजार लाख गुना भूख इन्द्रियों की है। आंख, कान, नाक, जीभ स्पर्शन की मांग कभी पूरी नहीं होती।
* शरीर की भूख यदि सिगड़ी जैसी है तो इन्द्रियों की भूख भट्टा एवं बॉयलर के समान है। इन्द्रियों की गंदगी भी कैसी ?
* आंख में से सफेद मल, चमड़ी से पसीना, नाक में से श्लेष्म कोई भी अच्छी वस्तु इनके सम्पर्क में लाते ही वे भी गंदी हो जाती है।
* महाराजा, देवता, शालिभद्र जैसे सेठ, अनुत्तर देव सभी के सुख में यही 4 कारण ही हैं। भूख, प्यास, थकान, गंदगी, इन्द्रियों की भूख विकराल है।
* मन का स्वरुप : जानने जैसा मुख्य। मन की भूख कल्पनातीत है। अच्छा खाकर पेट में डालो तो तृप्ति होती है, किन्तु 'स्वाद' का संग्रह करने की मन की भूख नित्य बनी रहती है। कषाय मन की भूख के अलग-अलग प्रकार है।
* मन सुलगती और दबी आग जैसा है। सुलगती अग्नि में से ज्वाला समान उपयोग मन के कषायों का है। दबी अग्नि रुप लब्धिमन की परिणितियाँ हैं। जो-जो संस्कार अंदर दबे पढ़े हैं वे दबी अग्नि जैसे हैं।
* Master key जो आपको अहं में फुला सकती है। तुम्हारे से सब कुछ करवा सकती है। मन की भूख की तृप्ति के लिए जीव बैल के जैसा काम करने के लिए तैयार हो जाता है। आवाज घसी हुई (Scratchy) हो परंतु प्रशंसा के लिए हो तो मन तृप्त होता है, कान तृप्त नहीं होते।

* काम, विषय-मन की भूख है। अपेक्षा, अनुकूलता, अंदर की भूख है। लोभ-महाभुख है। 24 घंटे लावा रस के समान धधकती रहती है।
* अपना मन Departmental Store जैसा है। एक-एक Section में इच्छाएँ सीमा पार से मिलती हैं। मन की भूख कब तक ? जब तक मोह परिणाम हो। मन को मारना, मन के संताप से मुक्ति, उसका नाम वीतरागता। देह-इन्द्रिय-मन से अतीत मोक्ष, यानि सुख की पराकाष्ठा।
* टीवी देखने पर मन की भूख बढ़ती है। टीवी जलाती है। लब्धि मन की शुद्धता के लिए प्रथम मान्यता, फिर परिणति शुद्धि।
* धर्म आंतरिक, परिवर्तन करना चाहता है, आंतरिक परिवर्तन में प्रकृति ही आएगी।

सामायिक, पूजा, प्रतिक्रमण, दान, दया, तप, त्याग इन सभी में मान्यता पश्चात् प्रकृति, परिणति साथ जोड़ लाना पड़ती है। प्रकृति में धर्म के साथ परिवर्तन लाना पड़ता है तभी धर्म आत्मसात हुआ कहा जाएगा।

मोक्ष में अमनस्क योग है। इसका अर्थ आगे बढ़ते 'मन' का भी त्याग करना पड़ता है।

अपनी वृत्तियों को जानो, पहिचानो, समझो। इन वृत्तियों पर अंकुश लगाना सीखो। धर्म के विकास के लिए यह एक बहुत मजबूत अंत्र है।

* अमनस्क योग की सिद्धि-साधना का अंतिम योग।
    * वर्तमान में मन की मलिनता को निकालने के लिए प्रयत्न करना - अमनस्कता की दशा को जानना।
    * निकट की वस्तु मन है, उसमें ध्यान दीजिए।
* लब्धिमन के 4 विभाग : 1. मान्यता, 2. परिणति, 3. रागद्वेष के अज्ञात भाव, 4. संस्कारात्मक भाव।
* <u>राग-द्वेष के असंख्य परिणाम, अज्ञात भाव :</u>
    * राग अंदर प्रकट होकर सुलगता रहता है मात्र ऊपर से विचार का ढक्कन आ जाने से ऊपरी सतह पर नहीं आता।

* कषाय 24 घंटे उकलते पानी के घड़े के समान धधकते रहते हैं। अज्ञान भाव - जो देखा नहीं किन्तु पढ़ा या जाना हो वे भाव अज्ञात होते हुए भी वे राग लब्धिमन में संग्रहित होते रहते हैं। अविरति के 24 घंटों में कर्मबंध चालू रहता है।

संसार का नित्य सत्य

शुभाशुभ भावो से ही शांति - अशांति

* संस्कार रुप भाव - लब्धिमन का चौथा विभाग :
    * अनंत काल की रुढ़ विशेषता, पूर्वजन्म के अनुभव रुप संस्कार अंकित हो गए हैं आत्मा के पटल पर।
    * जीवायोनि 84 लाख ही है, मर्यादित है। भव भ्रमण अनंत काल का इसलिए प्रत्येक योनि में गए बिना छुटकारा नहीं है।
    * जीव जन्म लेता है तब अनंत जन्मों के संस्कार भी साथ लेकर आता है।
    * धर्म का मूलभूत लक्ष्य आत्मा का परिवर्तन है।
* मानस परिवर्तन की कला = आत्मावलोकन।
    * अशुभ भाव, परिणाम, संस्कार में विकृति वह मिथ्यात्व है।
    * विवेक का अंधापन वह मिथ्यात्व।
    * संसार में <u>रस</u> दर्शन मोहनीय कर्म से पैदा होता है।
    * चारित्र, मोह, कर्म, <u>राग</u> पैदा करते हैं।
* चित्त शुद्धि का प्रथम सोपान :- आत्मा की अनंत शक्ति पर श्रद्धा।
* सर्जन से प्रसन्न होते हैं परंतु सर्जक को कौन ध्यान में रखता है ?
* जीव को एक बार समकित होने के बाद चारित्र मोहनीय या अन्य कोई कर्म आत्मा की मोक्ष मार्ग की साधना नहीं रोक सकता। कर्म दिखाई नहीं देता। स्थूल, जड़ है वह तो दिखाई देता है, परन्तु सूक्ष्म की दुनिया, जड़ पुद्गल से कई गुना विशाल है।

* जो कर्म में मानता है वह ऐसी वैसी तरह जीवित रह ही नहीं सकता। तुम्हारे पुरुषार्थ के बिना दूसरा कोई तुम्हें पाप बंधा नहीं सकता। दोष भी पुरुषार्थ ही निकालता है। पुरुषार्थ के लिए संकल्प बल की आवश्यकता है।

* संसार का निश्चित सत्य यही है कि 'शुभ भाव से निश्चित शांति और अशुभ भाव से निश्चित अशांति मिलेगी।'

  आत्म शक्ति पर सदृहणा प्रकट हो तो आत्मवीर्य उल्लसित होता है, अफसोस यही है कि इसका अंशत: भी विश्वास नहीं है।

* दृढ़ मनोबल युक्त व्यक्ति का अन्य व्यक्ति पर, गहरा प्रभाव पड़ा है। अन्यथा समवसरण में बाघ-बकरी साथ नहीं बैठते।

  चित्त शुद्धि की श्रद्धा से, केवलज्ञान भीतर ही है, श्रद्धा चाहिए।

जीव की दशा :- जन्म लिया जब से देह के साथ इतने घुल मिल गए कि देह की भिन्नता भूल गए। अरे ! आत्मा सिर्फ देह-इन्द्रिय से ही अलग नहीं है किन्तु मन से भी भिन्न है। मन और आत्मा दोनों स्वतंत्र है। मन का सुख अलग, आत्मा का अलग।

मन शुद्ध हुआ यानि आत्मा शुद्ध हो गई। ऐसे दोनों एक नहीं है। भाव मन की चेतना (उपयोग मन) मोहात्मक है, अशुद्ध है। आत्मा की चेतना शुद्ध चेतना-ज्ञान चेतना है, शुद्ध है।

* आत्मा का अनुभव करने का उपाय है ?

  आत्मा की अनुभूति के बिना एक भी क्षण नहीं है। परन्तु शुद्ध आत्मा की अनुभूति नहीं है। जो है वह प्रतिक्षण अशुद्ध आत्मा की ही है। चींटी को शक्कर के आकर्षण की ललक उसकी आत्मा की संवेदना है, तृष्णा का अनुभव है; तृष्णा का राग चेतन को होता ही है। परन्तु विकृत चेतना का अनुभव है।

* 11-12वें गुण स्थानक में वीतराग दशा है, वहां मोहात्मक चेतना नहीं, ज्ञानात्मक चेतना है, परन्तु वह कर्मबंधन का कारण नहीं है। 11वें गुणस्थानक से जीव पड़ता है, पर वीतरागता है, वहां कषाय व्यक्त नहीं होते। निमित्त योग से कषाय है, शक्ति रुप है।

11वें गुण स्थानक में साधक के मन में राग का अंश मात्र नहीं होता । Inactive राग से कर्मबंध नहीं होते ।

आत्म शुद्धि हो तब ही समकित प्राप्ति

❊ समकित कब आता है ?

आत्म शुद्धि होती है तब आता है । चित्त शुद्ध होने से मन शांत, स्वस्थ, निर्मल जरूर बनता है, परन्तु आत्म कल्याण नहीं कर सकता । मन शांत होता है किंतु संसार से विरक्त नहीं होता तो वह आध्यात्महीन है ।

❊ आत्म शुद्धि यानि क्या ?

विकारों में दुःख का संवेदन । विकृति समूल नष्ट होती है तो ही आत्म शुद्धि का अंश आता है । मान्यता रुप में मन शुद्ध होना चाहिए । जो विषयों में दुःख का अनुभव करे, उसी में आत्म शुद्धि की योग्यता होती है ।

❊ चित्त शुद्धि, आत्म शुद्धि का साधन है । देह, इन्द्रिय, मन अलग कर दिए किन्तु आत्म शुद्धि जो अब पृथक करना है, कितनी गंभीर बात है । आत्म शुद्धि के बाद चित्त शुद्धि (मन शांत, स्वस्थ, निर्मल बने) तुरंत आ जाती है; ऐसा नियम नहीं है । जल्दी या धीरे भी हो सकता है । युगलिक चित्तशुद्धि वाले, देवलोक में एक बार जाए फिर क्या ?

❊ 'नदी घोल पाषाण न्याय' से शांत स्वभावी के कर्म हलके हो जाते हैं । सद्गुण के विकास से चित्त शुद्ध होती, दोष हल्के हो जाते हैं ।

❊ आत्म शुद्धि के लिए दोष समूल नष्ट होना जरूरी है ।

❊ शाखा प्रशाखा युक्त गहन वृक्ष की जड़ (मूल) पर प्रहार नहीं होता । मोह के विकारों को गलत नहीं माना है, संसार बुरा नहीं माना तो चित्त शुद्धि होकर भी आत्म शुद्धि अभी नहीं हुई । मेरा भाई, मेरा परिवार आदि मूल जड़ तो कटी नहीं ।

❊ क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक इन तीनों में से किसी भी भाव द्वारा किया गया मोहनीय कर्म का किंचित नाश, कुछ अंश में आत्म शुद्धि प्रकट करता है ।

* मोक्ष मार्ग की प्रथम भूमिका अपुनर्बंधक अवस्था, जो क्षयोपशम के भाव से प्रकट होती है। मोहनीय कर्म की उ. स्थिति कभी भी फिर न बांधे, कारण ? आत्मा में से यह दोष हमेशा के लिए नष्ट हो गया है।
* सभी दोषों का मूल कहां है ? मोह में। मोह एकदम हरा हरा क्यों है ?
  मोह के मूल का अभी तक अनंत रुप से पोषण हो रहा है। वह मूल क्या है ? मिथ्यात्व।
* मिथ्यात्व का मूल क्या है ? 'ग्रंथि समकित' में ग्रंथि भेद होने के बाद मिथ्यात्व का मूल बिखर जाता है।
* ग्रंथि का मूल क्या है ? संसार का सहज राग, हठाग्रह, संसार की रसिकता। जो इसको तोड़ सकता है, वह अपुनर्बंध अवस्था को करता है, करता है और करता ही है।
* 84 लाख योनि का अवलोकन किया है ?
  राजा इन्द्र या चक्रवर्ती सभी को दु:ख है, अन्यथा वैराग्य नहीं लेते।
* जन्म यानि क्या ? देह, इन्द्रिय मन का संयोग ही जन्म है, जन्म दु:ख का निमित्त है, मृत्यु का प्रश्न भी जन्म के लिए ही निदान है।
* संसार रुपी रोग का निदान क्या ? मोह, जड़ के प्रति आकर्षण आदि भावों को धीरे-धीरे निर्बल और क्षय करना ही है।
* दुनिया में राग-द्धेष दो प्रकार के हैं - (1) कृत्रिम, (2) अकृत्रिम, सच्चा राग।
  1. कृत्रिम - कामचलाऊ, औपचारिक जड़ के ऊपर का राग, व्यक्ति के प्रति का राग द्धेष, शरीर के प्रति का राग।
  2. असली, सहज, बिना प्रयत्न के होने वाला राग भौतिक सुख बुद्धि का।
* राग-द्धेष की तीव्रता यही मिथ्यात्व की गांठ। इसके प्रभाव से विवेक चला जाता है। एक बार मिथ्यात्व की गांठ बिखर जाती है तो वह फिर से नहीं बंधती।
* श्रावक के मन में पैसे के साधन से होते धर्म से ऊँचा धर्म करने जैसा है वह मन में दृढ़ होना चाहिए।
* सुख की निंदा शास्त्र में है ही नहीं। जो सुख नहीं मिला उसे प्राप्त कराने के लिए ही धर्म है।

* अनंत काल से जीव को राग का असद् अभिनिवेश–असद् आग्रह है।
* दान देते समय क्या भाव होता है ? खाली हो गए या कुछ प्राप्त किया ?
* आत्मा को अनंतानंत काल से आग्रह असद् आग्रह बंध गया है। यह अगर न टूटे और मन को शांत कर दो, कषायों को कमजोर कर दो , चित्त शुद्धि कर लो, तो भी यह सब 1 अंक के बिना 0 शून्य जैसा है।
* रागद्वेष में कड़वाहट का अनुभव होना चाहिए, तो ही सहजता से राग टूट जाता है।
* भगवान की आज्ञा अर्थात् क्या ? जो एकांत में सुखकारी होती है, संसार में सत्य निर्णय लेने के लिए आवेग शून्य तटस्थ बनना ही पड़ता है।
* आत्मा का श्रेष्ठ स्वभाव क्या है ? ज्ञान।

  गुण = आनंद और दोष = दुःख का समीकरण समझना है।
* राग–द्वेष ऊपर से छोड़ते हो, भीतर से छूटता है ?

  छोड़ी हुई वस्तु की चाह, आकर्षण ही बुरा लगना चाहिए, तो ही आत्म शुद्धि का अंश प्राप्त हुआ समझा जाएगा।
* **V. Imp. THOUGHTFUL ANALYSIS :-** दोष का मूल कर्म में, कर्मों का मूल मोह में, मोह का मूल ग्रंथि में, ग्रंथि का मूल सहज राग, सहज राग का मूल संसार का रस, कदाग्रह (हठाग्रह) है।
* तत्व का संवेदन यानि क्या ? तत्व की अनुभूति अर्थात् तत्व का संवेदन। तत्व का संवेदन प्रकट हो जाय ऐसा जीव ही आत्म शुद्धि के अधिकार वाला होता है। मोक्ष की सत्य क्रिया करने वाले के लिए प्रथम गुणस्थान कहा है, इसकी पहिचान है :- अपूर्वकरण, अपूर्व आलोचना।
* मोक्ष जाने के लिए सकाम निर्जरा के अतिरिक्त विकल्प नहीं है, वैराग्य उसका प्रारंभिक साधन है।
* दान देते समय, प्रभु दर्शन करते समय अश्रु बिंदु गिरे, गुणों का बहुत संग्रह हो,

किन्तु संसार की असारता का तत्व संवेदन का हो तो अभी चित्त शुद्धि हो गई लेकिन आत्म शुद्धि आयी नहीं है।

* तत्व संवेदना में क्या करना ? आंतरिक जागृति ! जो भाव जैसा है, उसकी वैसी ही अनुभूति होना उसका नाम तत्व संवेदन। ध्यान में हैं और फोन आया चमड़ी पर छेद होता है, वेदना, अफसोस, भीतर में ध्यान नहीं है।

  जीवन में जैसे Analysis करते हैं वैसे तुम्हारे हृदय के भावों का विश्लेषण Analysis करोगे तो उसमें से तत्व संवेदन प्रकट होगा और फिर समकित का मार्ग खुल जाएगा।

* लेश्या और ध्यान के संबंध में लेश्या जीव की प्रकृति के साथ बंधी हुई है। शुभ ध्यान आता है तो उपयोग मन शुद्ध हो जाता है और शुभ लेश्या आए तो लब्धि मन शुद्ध होता है, इन दोनों से मन शुद्धि होती है।

* शुभ ध्यान के बिना समता नहीं आती, शुभ लेश्या के बिना शुभ ध्यान नहीं आता। नास्तिक जो सरल प्रकृति का हो तो शुभ लेश्या अवश्य आ सकती है। शुभ ध्यान का तो नास्तिक है इसलिए प्रश्न ही नहीं उठता।

* स्वार्थी स्वभाव वाले की लेश्या अशुभ ही गिनी जाती है, कारण - प्रकृति ही स्वार्थ की है, चाहे वो लीन होकर भक्ति करता दिखाई देता हो।

* सभी धर्म करने का अंतिम फल तो आत्मा को शुभ ध्यान में स्थिर करना ही है। इसके लिए शुभ लेश्या अनिवार्य है।

* प्रत्येक अपेक्षा अशुभ भाव ही कहलाती है। मोहनीय कर्म मूल कारण है। शुभ लेश्या प्राप्त करने के लिए चिंतन-मनन विचारों के द्वारा संशोधन का पुरुषार्थ जरुरी है।

* जो जाना है उस सत् तत्व को पुनः पुनः चिंतन करना। भावित होने के लिए Repeatition करो। एक ही बात को आत्मा में हर वक्त लाते रहो। परमात्मा एवं धर्म के अतिरिक्त किसी की शरण में नहीं जाना यह दृढ़ मन हो जाए, दृढ़ श्रद्धा के भाव संचित हो जाए तो ही भावित हुए कहा जाएगा।

विभाग – १०

- ''श्रद्धांध'' का भावगीत : केवल ज्ञान — 306
- मोक्ष का स्वरुप समझिए — 307
- आत्मा का विकास क्रम : उपसंहार — 318
- शुक्ल ध्यान के द्वारा केवल ज्ञान की क्रिया — 319
- केवल ज्ञान का स्वरुप — 320

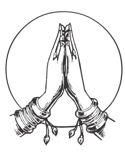

टहुके भाव गीत समता नु

केवलज्ञान

(राग - बहार)

छोड़ीने संसार सजाव्या तार,
वगाड़्यु संगीत तें वैराग्य;
ताल लीधो संग रत्नत्रयी नो,
साज मधुर तन ताम्बुर नुं ।।छोड़ी ने...।।
लय मां वहेतो श्वास सुगंधी,
उच्छवासे प्रसरे छे सुरभि;
ध्यान मां मग्न रह्या जिन महावीर,
टहुके भावगीत समता नुं. ।।छोड़ी ने ...।।

आश्रव निरोध कर्म निर्जरा,
द्वादश तप करी आत्म सर्भरा;
प्रगट्युं केवलज्ञान अनुपम,
अतिशय तेज भा-मंडल नु ।।छोड़ी ने ...।।
देव-दुंदुभी गाजे गगनमां,
क्रोड़ देवता प्रभु चरण मां,
स्थाप्युं शासन समवसरणमां,
उर मृदंग बाजे ''श्रद्धांध'' नुं. ।। छोड़ी ने ...।।

''श्रद्धांध''

नवम्बर 06, 2001

सर्वथा सहु सुखी थाओ, समता सहु समाचरो,

सर्वत्र दिव्यता व्यापो, सर्वत्र शांति विस्तरो ।

मोक्ष का स्वरुप समझिए

- प. पू. गणिवर्य युगभूषणविजयजी

मोक्ष कब होता है ? मोक्ष क्या है ? वहाँ क्या होता है ? वहाँ क्या करते हैं ? वहाँ समय कैसे निकलता है ? वहाँ आनंद किससे मिलता है ?

इन्द्रियों से जो सुख मिलता है वह वहाँ नहीं है - तो ऐसा वहां क्या है जो अव्याबाध सुख का अनुभव कराता है ।

वहाँ जीव किस आधार से अनंतकाल तक रहता है ? शक्ति होते हुए भी वह वापिस क्यों नहीं आता ?

* मिथ्यात्व के साथ पायदान का संघर्ष :-

मिथ्यात्व के दो किल्ले - 1. भावभिनंदी रुप, 2. कदाग्रह (हठाग्रह)।

2 गुणों की प्राप्ति से अपुनर्बंधक अवस्था :

1. तात्विक वैराग्य, 2. सत्य की खोज ।

अपुनर्बंधक अवस्था प्राप्त होने पर 'मुक्ति का अद्वेष' गुण की प्राप्ति ।

अपुनर्बंधक अवस्था - मुक्ति की प्राथमिक योग्यता, मोहनीय आदि कर्म की उत्कृष्ट स्थिति फिर नहीं बांधने वाला जीव ही अपुनर्बंधक होने पर उत्कृष्ट स्थिति वाले कर्मबंध की शक्ति समूल नष्ट हो जातीहै । यह लाभ हमेशा के लिए प्राप्त हो जाता है ।

दर्शन मोहनीय कर्म की गांठ ढीली हो जाती है । भौतिक सुख उपर के जीव का सहज राग, उसमें पूर्ण सुख की बुद्धि अंशत: टूट जाती है, जीव ने अब संसार के मूल पर प्रहार किया है ।

* शुभ भावमय गुणों की भूल भुलैया ।

शुभ भावमय स्वयं के गुणों को देखकर आत्मा स्वयं विकास मान लेती है तो वह दर्शन मोहनीय कर्म की भूल भूलैया में फंस गया यह समझ लेना ।

तप करने से वासना शांत होती है; कषायों का उपशमन होता है, किन्तु अपुनर्बंधक अवस्था तक नहीं पहुँचे तो अध्यात्म का एक्का नहीं बना क्योंकि अभी मुक्ति का द्वेष है।

* मुक्ति की तात्विक जिज्ञासा की प्राप्ति - चरमयथा प्रवृत्तिकरण :-

कर्म क्षय से ज्यादा कर्म बंध की योग्यता तोड़ने का महत्व बढ़ जाता है। अपुनर्बंधक अवस्था आ गई इसलिए मोहनीय की 70 क्रोड़ा क्रोड़ी सागरोपम की स्थिति नहीं बांधते किन्तु 68-69-67 क्रोड़ा क्रोड़ी की योग्यता नहीं तोड़ी।

संसार के आवेग घटते जाते हैं वैसे-वैसे बड़ी शक्ति टूटती जाती है। जैसे राग द्वेष की दृढ़ ग्रंथि पर प्रहार करते हैं वैसे ही 69-68-67 क्रोड़ा-क्रोड़ी कर्म बंध की योग्यता नष्ट करता है। जब वह 1 क्रोड़ा-क्रोड़ी कर्मबंध की योग्यता नष्ट करता है। जब वह 1 क्रोड़ा-क्रोड़ी से भी कम ऐसा कर्मबंध की योग्यता नष्ट करता है, तभी जीव चरम यथा प्रवृत्ति करण को प्राप्त करता है। तब जीव तात्विक जिज्ञासा का अधिकारी होता है।

* ओघ दृष्टि-योग दृष्टि :- शुभ भाव, शुद्ध भाव

आंतरिक निर्मलता है, किन्तु हमेशा के लिए नहीं। अभी ओघ दृष्टि की निर्मलता है। योग दृष्टि की निर्मलता शुद्ध भाव से ही मिलती है और यही जीव शुद्ध भाव होने से गुण स्थानक को प्राप्त कर सकता है।

शुभ भाव-पुण्यबंध का साधन, शुद्ध भाव-कर्म निर्जरा का साधन, दोनों में भेद कितना? अनंत गुणा।

शुद्ध भाव में प्रवेश किस प्रकार होता है ? उसका आधार रुप साधन शास्त्र, युक्ति और अनुभव द्वारा , त्रिवेणी संगम चाहिए।

* चरम यथा प्रवृत्तिकरण यानि क्या ?

जीव ने अनंत बार कर्म की स्थिति और रस 1 को. को. से न्यून किया किन्तु स्थिति बंध की योग्यता को नष्ट नहीं किया इसलिए आध्यात्म में प्रवेश नहीं हुआ। यदि यथा प्रवृत्तिकरण में ये योग्यता टूटे तो वह चरम यथा प्रवृत्तिकरण होगी। यही

अपूर्वकरण हुआ कहा जाता है । इसके बाद जीव सम्यक्त्व प्राप्त करे या न करे परन्तु संसार में कितना ही भ्रमण करने के बाद भी 1 को. को. सा. से अधिक स्थिति का बंध नहीं करता । अर्धपुद्गल परावर्तन काल में मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

यहां जीव को संसार का उच्च से उच्चतम सुख भी दुःख रुप लगता है । जीव संसार का सच्चा स्वरुप समझने के बाद ही मोक्ष का सत्य स्वरुप समझ सकता है । मुक्ति की जिज्ञासा तभी ही प्रकट होती है ।

* चरम यथा प्रवृत्तिकरण में,

पुद्गल में सुख का एकांत राग जो था वह टूट जाता है । मोक्ष स्वरुप का बोध प्राप्त होता है । मुक्ति की तात्विक जिज्ञासा प्रकट होती है । सोपान की भूमिका तैयार होती है ।

जो जीव भौतिक सुखों में ही एक तरफा सुख मान लेता है, वह नियम में तत्व से मोक्ष का द्वेषी है । ऐसे जीव संयोग से कभी मुक्ति के लिए जीवन अर्पित कर दे, मुक्ति की उत्कट अभिलाषा और हृदय स्पर्शी हो जाय, उसके लिए पुरुषार्थ भी करते हैं । फिर भी मोक्ष द्वेषी कारण पौद्गलिक सुखों में ही सुख का अनुभव करता है ।

उनका मोक्ष की भूमिका में राग होना कृत्रिम है, जिसको संसार के प्रति सहज राग हो तो मुक्ति के प्रति सहज द्वेष होता ही है । चरमावर्त में भी तत्व से द्वेष हो सकता है । अपुनर्बंधक अवस्था में जीव को तत्व से मुक्ति का अद्वेष होता है, चरम यथा प्रवृत्तिकरण में जीव को तत्व से मुक्ति के प्रति जिज्ञासा होती है ।

* <u>तात्विक और अतात्विक इच्छा :-</u>

भौतिक सुखों में एक तरफा सुख बुद्धि होने पर वे जीव तत्व से मुक्ति के द्वेषी होते हैं । मोक्ष सहज रुचिभाव वह तात्विक । मोक्ष के प्रति अद्वेष होने पर मोक्ष के स्वरुप का बोध, पश्चात् मुक्ति की तात्विक इच्छा प्रकट होती है । मोक्ष में देखने का बहुत है और भोगने का कुछ नहीं, भोग सुख को भोगने वाले के अभाव में सुख होने की बात बुद्धि में आती ही नहीं, उसको मोक्ष की सच्ची जिज्ञासा ही नहीं है ।

मोक्ष की अतात्विक इच्छा प्रकट स्वरुप अनार्य धर्म में देखने को मिलती है। ईसाई धर्म में क्षमा गुण उत्कृष्ट परंतु जीव गुणठाणा के बाहर होने से पुण्यबंध ही कराता है। जो एक ही बार मोक्ष की तात्विक जिज्ञासा प्रकट हो जाती है तो उसी समय से असंख्यात गुना अकाम निर्जरा होने रुप लाभ आत्मा को प्राप्त हो जाता है।

संसार का सुख दुःख रुप लगे वही जीव मोक्ष स्वरुप का श्रवण करने और उसकी जिज्ञासा करने योग्य बनता है। भौतिक सुख की इच्छा होना और इच्छा को अच्छा मानना इन दोनों के बीच बहुत अंतर है। सम्यग् दृष्टि जीव को भौतिक सुख की इच्छा हो तो भी अनासक्त रहता है।

*** मोक्ष का स्वरुप**

1. नकारात्मक और 2. हकारात्मक (विधेयात्मक)

दुःख और सुख की सामग्री का अभाव (देह, इन्द्रिय, मन)

पौद्गलिक और सुख की सामग्री का अभाव (रस, गंध, स्पर्श, शब्द रुप)

जन्म का दुःख नहीं - इन्द्रिय साधन नहीं।

मरण का दुःख नहीं - देह नहीं।

वृद्धावस्था नहीं - मन नहीं।

रोग का दुःख नहीं - अच्छा रस नहीं।

आधि का दुःख नहीं - अच्छी गंध नहीं।

व्याधि का दुःख नहीं - अच्छा स्पर्श नहीं।

उपाधि का दुःख नहीं - अच्छे शब्द नहीं।

वेदना का दुःख नहीं - अच्छा रुप नहीं।

भय का दुःख नहीं - भोग सामग्री का संपूर्ण अभाव।

दुःख नहीं, दुःख की सामग्री नहीं - रुचिकर लगता है।

सुख नहीं, सुख की सामग्री नहीं - रुचिकर लगा ? जो लगे तो ....

जीव के दर्शन मोहनीय कर्म का किंचित क्षयोपशम् हुआ है अर्थात् अंतर चक्षु खुलना प्रारंभ हो गए हैं।

विधेयात्मक स्वरुप : सुख की आत्मिक संवेदना, सुख की उत्पत्ति आत्मा से ही है । पुद्‌गल का अभाव - सुख की अनुभूति । औदयिक भाव में सुख- नींद, नशा, हठयोगी, खेचरी मुद्रा कहते हैं ।

संवेदना अंतर्मुखी होने पर सुख का अनुभव होता है, जो संवेदना क्षीण हो गई हो तो सुखानुभूति नहीं होती ।

जड़ के गुण धर्म की संवेदना में जड़ की आधीनता रहती है । आत्मा के गुणों का संवेदन औदयिक भाव से नहीं किन्तु क्षय, उपशम, क्षयोपशम भाव से होता है ।

दर्शन सप्तक : 4 अनंतानुबंधी + 3 दर्शन मोहनीय ।

आत्मा की 9 महाशक्तियाँ हैं । नो मैं 9 चैतन्य शक्तिया आत्मा में हैं । मोक्ष आंतरिक प्रवृत्तियों से परिपूर्ण है, खाली नहीं है ।

अनंतज्ञान	=	निरावृत दशा होने पर नि:सीम ज्ञान उत्पन्न होता है ।
अनंत दर्शन	=	निरावृत दशा होने पर नि:सीम दर्शन शक्ति उत्पन्न होती है ।
अनंत चारित्र	=	आत्म रमणता, चेतना गुण अन्य में जाने नहीं देती ।
अनंत विवेक	=	अच्छे-अच्छे स्वरुप का सतत ध्यान ।
अनंत दान	=	दान देने का अद्धितीय गुण स्वीकार कर अनंत लाभ प्राप्त करें ।
अनंत लाभ	=	स्वगुणों का दान अपनी आत्मा को तात्विकता से कौन करता है ?
अनंत भोग - अनंत उपभोग	=	आत्मा के वैभव का भोग-उपभोग ।
अनंत वीर्य	=	जड़ में पुरुषार्थ का प्रयोजन नहीं रहता है । कर्मों पर संपूर्ण सत्ता तो केवली अवस्था से ही होती है ।

इसीलिए सच्चा साधक समवसरण जैसे बाह्य वैभव से आकृष्ट नहीं होते । उसको आंतरिक गुणों की महानता ही आकर्षित करती है । (सुलसा सती) समवसरण देखने नहीं गई । सिद्ध भगवंत मोक्ष में ज्योति में ज्योति मिलती है उस प्रकार रहे हुए हैं । प्रत्येक आत्मा का व्यक्तित्व स्वतंत्र होता है । गुणों की समानता होती है ।

शक्ति से दोनों समान हैं, परंतु केवलज्ञानियों ने साधना .... नहीं, सहज स्वभाव से, लक्ष की अधीरता, अरिहंतों को नहीं होती, अपूर्णता अप्राकट्य के आभारी है -

	अरिहंत	सिद्ध
*	कृतकृत्य नहीं	कृतकृत्य हैं
*	अपूर्ण दशा में है, साधक है	सर्व कर्म क्षय कर लिए
*	देहमय हैं इसलिए सांसारिक हैं	अशरीरि है इसलिए संसारी नहीं है
*	बंधन सुख दुःख भी है	बंधन, सुख, दुःख नहीं है।
*	पुण्यानुबंधि पुण्य की पराकाष्ठा	
*	सिद्धि-फल का बीज रुप है	फल के वेदक हैं
*	विश्व के श्रेष्ठ उपकारक हैं।	उपकार से परे है।
*	तीर्थंकर की लक्ष्मी सिद्ध पद में समा जाती है	सिद्धपद की लक्ष्मी तीर्थंकर पद में समाती नहीं है।
*	सव्याबाध सुखी	अव्याबाध सुखी

(मन, वचन, काया की पीड़ा संभव है।)

श्री महावीर को छः माह तक खून की दस्त (रक्तातीसर) हुई।

<u>मोहजन्य तीव्र तमन्ना - दुःख गर्भित नियाणा</u>

हे भगवन् ! दुःख में तेरी याद आती है, इसलिए दुःखी ही रखना।

तात्विक धर्म को प्राप्त करो - सुख में भी धर्म याद आता ही है।

<u>मुंड केवली :-</u> सर्वज्ञ है परन्तु उपदेश देने का काम ही नहीं है। पांच समवाय (प्रकृति के 5 कारण) काल, स्वभाव, भवितव्यता, कर्म और पुरुषार्थ। इसके विरुद्ध जाने का केवली का स्वभाव ही नहीं, स्वतंत्र कोई लक्ष्य नहीं। कर्मानुसार पर्यायों में वर्तन करे, समुद्रघात द्वारा अंतिम कर्म क्षय कर मोक्ष चले जाते हैं। तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं होने से उपदेश नहीं देते।

ब्राह्मी सुंदरी मुंड केवली थे (आदिनाथ भगवान की पुत्री)। उत्तम स्थिति का निर्मल चारित्र पालनकर केवलज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद 1000 वर्ष तक भरत क्षेत्र में विचरते रहे किन्तु एक भी जीव को उपदेश नहीं दिया। बाहुबली के पास केवलज्ञान से पूर्व गए थे।

सिद्धों की वीर्य शक्ति	संसारी का वीर्य
सदैव आत्मा के गुणों के रसास्वादन में गंभीरता, प्रशांतता, और मग्नता का आनंद,	पुद्गल के गुणों को मनाने दर्शन मोहनीय कर्म की सघन आवृत्ति के लिए संवेदन झूठ है।
आत्मा के गुणों को भोगने में निरंतर क्रियाशील-आत्मानंदी,	कामानंदी।
सिद्धों का दान अक्षय है, दान देने से कम नहीं होता, लाभ अनंत है बिना इच्छा का, भोग अयत्न है, बिना परिश्रम, उपभोग थकान का अहसास नहीं करात, वीर्य अप्रयासी है।	गुण रुप, समृद्धि अनन्त है

आत्मा के भोग में एकान्तिक सुख है, पुद्गल के भोगों में एकान्तिक दुःख है, मोक्ष में शून्यता या निष्क्रियता का मानना घोर अज्ञानदशा है, मूर्खता है। पुद्गल में सुख नहीं, आत्मा में सुख है। यह अनुभवपूर्वक लिए गए निर्णय के बिना जीव को गुण स्थानक संभव ही नहीं, नित्य मोक्ष स्वरुप की भावना का चिंतन करने से अनंत गुणा कर्म निर्जरा होती है, मोक्ष तत्व का अपूर्व चिंतन निर्जरा का श्रेष्ठ साधन है, पुण्यानुबंधी पुण्य का हेतु है।

''शुद्ध चित्तं ऋपोऽहं' का जाप करना

अप्रयासी वीर्य :- आत्मा सिद्ध दशा में भोग उपभोग किसका करेगी ?

सहभावी गुणों का, क्रमभावी गुण-विशुद्ध पर्याय का भोग आत्मा प्रत्येक समय में करती है। आत्मा के अंदर अपूर्व स्फूर्ति, थनगनाट, उत्साह आदि बिना प्रयास के सहज अनुभव होता है।

घाती कर्मों का संघर्ष :- समकित प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ।

समकित प्राप्त करने के लिए उसके अनुरुप ज्ञान, दर्शन, चारित्र और विवेक शक्ति विकसित करना पड़ती है, दानांतराय तोड़ना पड़ती है, लाभांतराय का क्षय करना पड़ता है। (समकित प्राप्ति में ये कील (कांटा) रुप है) । भोग - उपभोग क्षय करना पड़ता है, वीर्यातराय का क्षयोपशम करना पड़ता है।

ये नौ की शक्तियों का संचार आवश्यक है, इसके लिए प्रबल पुरुषार्थ चाहिए तो ही अवरोध दूर होंगे।

* आत्मा के विधेयात्मक गुण :-

अहिंसा : संपूर्ण अहिंसा मोक्ष में ही है, अयोगी केवली को भाव (कठोरता कषायजन्य परिणाम) हिंसा नहीं पर द्रव्य हिंसा चालू ही रहती है।

सूक्ष्म निगोद के जीव को संपूर्ण द्रव्य अहिंसा परंतु वहां भी भाव हिंसा ही है, ऐसा ज्ञानियों का कहना है। कोई भी जड़ वस्तु जो वर्तमान में दिखाई दे रही है वह भूतकाल के किसी भी जीव का कलेवर है। मोक्ष का जीव जगत की सभी जीवों को अभयदान देते हैं।

सत्य :- प्राकृतिक हितकारी नीति-नियमों का अनुसरण करना उसी का नाम सत्य है। जीव ने अनादिकाल से दूसरे के घर में प्रवेश करने का प्रयास किया, इसी से आत्मा परेशान हुई। केवलज्ञानी को मन से असत्य नहीं है, किन्तु वचन और काया का असत्य है। (पुद्गल को अपना समझने का असत्य) देह होने से देह का पालन-परद्रव्य में आचरण होने से द्रव्य असत्य है।

* संपूर्ण सत्य प्रतिष्ठित मात्र सिद्ध ही है :-

अचौर्य :- पुद्गल को ग्रहण नहीं करना, पुद्गल कभी किसी का मालिक नहीं बन सकता। सिद्ध में संपूर्ण अचौर्य है।

मालिकी :- वस्तु तुम्हारी इच्छानुसार वर्तन करें।

ब्रह्मचर्य :- दूसरे का भोगना वह अब्रह्म है। सिद्धों में संपूर्ण ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह :- पुद्गल को धारण नहीं करता, मोक्ष में संपूर्ण अपरिग्रह है।

※ समकित : मन की रुचि बदलना चाहती है, मन की भ्रमणा को टालना चाहिए।

1. पुद्गल में सुख नहीं ऐसी अनुभूति।

2. पुद्गल की दुनिया अन्य (पर) की है स्व की नहीं।

3. पर-परिणति में रमण करना, यह मेरा स्वभाव नहीं आदि।

※ सम्यक्त्व प्राप्त जीव को किस में सुख दिखाई देता है ? संयम में।

लब्धि संपन्न महात्मा को एक इन्द्रिय में पांचों इन्द्रियों की सुख-शक्ति आ जाती है। कान से देखे, आंख से सुने। केवली मोक्ष की पूर्णता देख सकते हैं, किन्तु अनुभव नहीं कर सकते, सिद्ध मोक्ष की पूर्णता का अनुभव कर सकते हैं।

आत्मा के अनंत गुणों में मुख्य गुण वीतरागता।

मोहनीय कर्म के क्षय होने पर ही आत्मा को अनंत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इस कारण सिद्ध भगवंत नरक के दुःखों को देखकर भयभीत नहीं होते और स्वर्ग में असीमित भौतिक सुखों को देखकर आनंदयुक्त नहीं होते। आवेश रहित दशा है।

मोह का विजय करने की अपेक्षा में केवली ओर सिद्ध दोनों समान हैं। वीतरागता को समझने के लिए केवली का मानस समझना आवश्यक है, जैसे-आदिनाथ भगवान के समय भरत-बाहुबली का युद्ध हुआ, उस समय इसी कारण से उन्होंने कोई भी हित शिक्षा नहीं दी। वे निर्लिप्त रहे।

भगवान में पर के कल्याण की भावना नहीं होती, किन्तु पर-कल्याण करने की शक्ति-प्रभाव तो रहता ही है। कषाय-युक्त जीव ज्ञान का आनंद नहीं मना सकता, सच्चा आनंद कषाययुक्त जीव ही मना सकता है (अनुभव कर सकता है)

*※ अन्य स्वरुपात्मक गुणः-*अगुरुलघु, अमूर्तरुप, अजरामर रुप, अव्याबाध रुप।

अगुरुलघु :- अर्थात् समानता भेदभाव रहितता।

मोक्ष में गोत्र कर्म का क्षय होने से अगुरुलघु गुण प्रकट होते हैं, सर्जन आत्मा का ही है। जड़ में वह शक्ति ही नहीं। वैज्ञानिक एक मच्छर या मक्खी कभी बना नहीं सकते। ये

सभी पर्यायों की आत्मा, खेल-खेल में सर्जन कर सकते हैं। यही आत्मा की अनंत शक्ति का आभास कराते हैं।

मोक्ष में विशिष्ट पुण्ययुक्त तीर्थंकर केवली और पुण्यरहित कुर्मापुत्र। (जिनका ठिगना कद, कुरूप शरीर था और 6 माह तक केवली होने पर भी किसी मालूम नहीं पड़ी।) ऐसे असमानता एकदम नष्ट हो जाती है। कोई ऊँच-नींच नहीं रहती।

<u>अमूर्तता :-</u> मूर्तता उसको होती है जिनके सभी संवेदन पुद्‌गल आधारित होते है, संसारी जीव प्रतिघाती मूर्तता लिये होते हैं। आकाश अमूर्त है -पानी या कीचड़ से निर्लेप रहता है। आत्मा अमूर्त-होने से एक स्थान पर अनंत आत्माओं के साथ रह सकती है। एक दीपक या 1000 दीपक सभी का प्रकाश जैसा होता है वैसा ही होता है। अरुपी स्वरुप नाम कर्म के क्षय होने पर प्राप्त होता है।

<u>अजरामरता :-</u> तीर्थंकर और इन्द्र सभी अशाश्वत हैं, अनित्य हैं। अजर और अमर सिद्ध आत्माएँ ही हैं। आयु कर्म के क्षय से यह गुण प्रकट होता है।

<u>अव्याबाधता :-</u> वेदनीय कर्म के क्षय से आत्मा का अव्यबाध पीड़ा रहित सुख प्रकट होता है। इस सुख से आत्मा कभी बोर नहीं होती। इन्द्रियों के सुख बासी हो जाते हैं। नित्य नूतनता की चाह रहती है। सिद्ध जीवों के ज्ञान और दर्शन पुद्‌गल के सच्चे हैं, परन्तु वेदन बिल्कुल नहीं। इसलिए सम्पूर्ण सुख अनुभवित होता है।

भौतिक सुख वस्तु से नहीं, वस्तु के गुणधर्म से नहीं, परन्तु गुणों के संवेदन से है। सम्यक्त्व प्राप्त जीव के पास ऐसा अपूर्व विज्ञान है वैसा जगत में अन्य किसी के पास नहीं। इसी से उसको अपूर्व प्राप्ति का आनंद है।

सम्यग्‌दृष्टि जीव को भाव शुद्धि के कारण उसकी सभी क्रियाएँ अनंतगुणी विशेष फलदायी होती है।

<u>* पहले गुण स्थानक की प्रधान द्रव्य क्रिया के 4 लक्षण :-</u>

1. अपूर्व प्राप्ति का आनंद, 2. क्रिया मार्ग में सूक्ष्म आलोचन

3. भव का तीव्र भय, 4. विधि का तात्विक बहुमान।

संसार की प्रत्येक प्रवृत्तियों में श्रम लेने का आता ही है, संसार अर्थात् संघर्षमय जीवन। यहां शक्तिशाली होने के लिए कसरत करनी पड़ती है। मोक्ष में बिना एक्सरसाईज के अनंत बल है। पुद्गल के बिना भोगे सुख कहाँ ? ये ग्रंथी वहां टूट जाती है। जीव बोधि बीज प्राप्त करता है। तब से क्रमशः मार्गाभिमुख हो जाता है। मिथ्यात्व की गांठ पर वज्र प्रहार होता है।

प्रथम गुणस्थानक यह भी आत्मा का प्रबल पुरुषार्थ है, उसमें पुद्गल और आत्मा संबंधी अति भारी परिवर्तन प्रारम्भ हो जाता है।

साधना समय में जो कष्ट (परिषह-उपसर्ग) गुण की पुष्टि करते हैं वे ही सहन करना चाहते हैं। पुद्गल के सुख प्राप्त करने की लालसा ही अत्यधिक तकलीफ पहुंचाती है। नुकसानदायक है। कर्मजन्य सुख की नहीं।

विकृति, मन के परिणाम से आती है, उसको समूल नष्ट करना है और परम शुद्ध भाव भी मन के परिणामों से प्रकट होते है। इस प्रकार मन, कर्मबंध और मोक्ष दोनों का कारण है। क्रिया परिणाम सिद्ध करने का साधन है। क्रिया बिना जरुरी नहीं। मोक्ष मार्ग में आंतरिक परिणाम का ही केन्द्र स्थान है। इसलिए क्रियावाद को शुद्ध परिणामवाद के साथ संकलित कर आचरण करना है।

अधिगम से सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले जीव संख्यात गुना हैं।

निसर्ग से सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले जीव अरबों-खरबों में एक होता है।

* गुणों का अद्वेष यानि ?	-	चरमावर्त काल
* उससे तात्विक वैराग्य प्रकट होता है मुक्ति का अद्वेष आता है	-	अपुनर्वंधक, योग की प्रथम भूमिका अर्थात् प्रथम गुण स्थानक में जीव का तात्विक प्रवेश।
* मुक्ति की तात्विक जिज्ञासा	-	चरम यथा प्रवृत्तिकरण
* मुक्ति की तात्विक इच्छा प्रकट हो	-	बोधि बीज की प्राप्ति प्रथम योग दृष्टि।

आत्मा का विकास क्रम

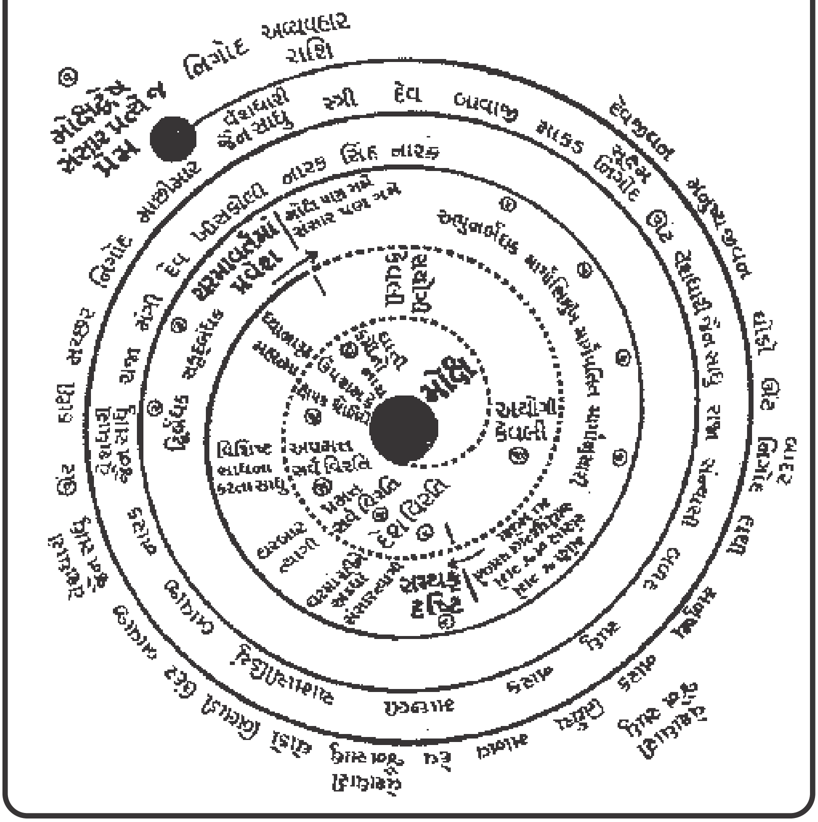

मुनिश्री नंदीघोषविजयजी म.सा. द्वारा लिखित जैन दर्शन

<u>उपसंहार</u>

मोक्ष में मौन ही है। उसमें सुख लगना चाहिए। मोक्ष में नृत्य नहीं है, भोजन नहीं इसलिए भोजन-नृत्य आदि प्रवृत्ति में दु:ख का आभास होना चाहिए।

सिद्ध भगवंतों ने प्राप्त करने लायक प्राप्त कर लिया है, छोड़ने जैसा छोड़ दिया। मनाने जैसा मनाते हैं करने जैसा ही करते हैं। वहाँ उत्कृष्ट गुणों का आनंद विलास है। अरुपि तत्व दृष्टि बनाना पड़ती है। यह सब संवेदन की अपुर्व स्थिति को समझने के लिए है।

समकिती जीव मोक्ष के लिए अधीर हो जाए यह संवेग है। <u>मुक्ति की तात्विक जिज्ञासा को प्रकट कीजिये, तो वह उत्कंठा जागृत करेगा।</u>

शुक्ल ध्यान द्वारा केवलज्ञान की क्रिया

आत्मा का ऊर्ध्वगमन

1. मोहनीय कर्म का प्रशांत या क्षीण अवस्था का अति सूक्ष्म साधन का प्रथम भेद है। पृथकत्व वितर्क सविचार (भेद प्रधान चिंतन विचरण सहित) ध्यान। यह ध्यान विचरण सहित होते हुए भी एक द्रव्य विषयक होने से मन को स्थिर करने वाला है।

परमाणु आदि जड़ या आत्मरुप चेतन ऐसे एक द्रव्य में उत्पत्ति, स्थिति, नाश, मूर्त्ततत्व, अमूर्त्तत्व आदि अनेक पर्यायों का विविध दृष्टि बिंदु द्वारा भेद प्रधान चिंतन एवं एक 'योग' से दूसरे 'योग' ऊपर अथवा शब्द ऊपर से 'अर्थ' ऊपर और अर्थ पर से 'शब्द' ऊपर का चिंतन।

2. एकत्व वितर्क अविचार ध्यान :- एक ही पर्याय के ऊपर चिंतन, विचरण आदि का अभेद प्रधान ध्यान ध्येय से अभेद होता है। मन, वचन, काया के त्रियोग में से एक ही योग पर पुर्णतः दृढ़ होकर प्रवर्तमान रहते हैं। यह ध्यान अत्यन्त प्रखर होता है। संपूर्ण जगत के पदार्थों में अस्थिर रुप में भ्रमणशील मन को ध्यान द्वारा किसी एक अणु पर्याय पर लाकर स्थिर किया जाता है।

यहाँ मोह आवरण का संयोग पूर्णतः दूर हो जाने से संपूर्ण ज्ञान-दर्शन-अंतराय का आवरण हट जाता है और केवलज्ञान प्रकट हो जाता है।

3. सूक्ष्मक्रिया ध्यान :- केवली भगवंत का मृत्यु समय का ध्यान है, श्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म शरीर क्रिया ही शेष रहती है। 'योग निरोध' के कार्यक्रम में सूक्ष्म शरीर योग के आश्रय से वचन और मन के सूक्ष्म योगों का निरोध किया जाता है।

4. समुच्छिन्नक्रिय ध्यान :- यहां आत्म प्रदेशों का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। देह पवित्र आत्मा का उर्ध्व गमन। शुक्ल ध्यान के प्रथम दो भेद हैं, उनकी साधना से क्या फल मिला ? उपयोग में स्थिरता आई, योग में स्थिरता आई, मोह आवरण का संयोग पूर्णतः छूट जाने से केवल ज्ञान।

केवलज्ञान का स्वरुप

केवल ज्ञान प्रकट होता है उसकी प्रक्रिया

1. वीतराग ज्ञान
2. निर्विकल्प ज्ञान
3. सर्वज्ञ ज्ञान

यह तीनों केवल ज्ञान के भावों का प्रकार हैं।

वीतराग ज्ञान : मतिज्ञान यानि वीतराग ज्ञान की विकृति। 12वें गुण ठाणें में भी सर्वज्ञ निर्विकल्प दशा प्राप्त होने के पूर्व अधिकारी निर्विकल्प दशा होती है।

कारण ? छद्मस्थ अवस्था है। मतिज्ञान तो अभी उपस्थित ही रहेगा।

विकार विकल्प दूर होता है और मतिज्ञान अधिकारी बनते ही वीतरागता प्रकट होती है। अभी तक आवरण है, छद्मस्थता है।

आवरण विकल्प दूर होता है तब रावरण हुआ जाता है, इसलिए ज्ञान अखंड, अक्रमिक बनता है।

वेदन विकल्प दूर होने पर सुख, दु:ख, वेदन का अभाव होने पर आनंद वेदन में निमग्न आत्मा की अनुभूति अनंत रस की वीतरागता के कारण आवरण और वेदन विकल्प हट जाते हैं।

विभाग – ११

धर्मकथानुयोग

'श्रद्धांध' के दो स्तवन

- मेघकुमार - 10 श्रेष्ठ श्रावक — 324
- 'अंतगढ़' सूत्र की महाआत्माएँ — 325
  चंपक सेठ, अनुपमा देवी, मयणा-श्रीपाल,
  श्रीयक, परदेशी राजा आदि
- नमि राजर्षि कथा — 328
- राजा गुणसेन और अग्नि शर्मा तापस — 330
  कार्तिक सेठ और गैरिक तापस
- त्रिशला - देवानंदा — 333
- भूख का दु:ख - रोचक कथा — 334
- बादशाह अकबर — 335
- तामली तापस और 'प्राणमां' दीक्षा — 338
- महेश्वर दत्त और गांगीला — 339
- पुण्य शुभ कर्म है, मोह नहीं — 341
- श्रेणिक राजा को सम्यक्त्व प्राप्ति — 343
- हालरवा और माताएँ — 344
- आगम के उदाहरण — 347
- आत्मा की ओर दृष्टि करें — 354
- सुभाषित — 355
- धन्ना अणगार — 356

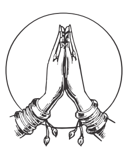

महावीर ....

मन मारुं मोह्युं रे महावीरमां,
अहिंसाना आतम एवा महावीरमां
भरत चक्रवर्ती पुत्र महावीरमां
ऋषभदेवना पौत्र महावीरमां .... मन ....

नयसारना भवे मुनियो ने भोजन कराव्युं,
नवकार मंत्रे समकित धराव्युं,
वीरडानुँ सींचन कर्युं भवरणमां
मन मारुं खोयुं रे महावीर मां .... मन ....

मरिचिना भवमां चारित्र वगोवीयुं
वासुदेव ने भवे काने शीशु रेडावियुं
समकित झणहव्युं नंदन मुनिना भवमां
पुरुषार्थनी बलिहारी रे जिन शासन मां .... मन ....

उपसर्गो सह्यां तप करी कर्मों खपाव्यां
समतानी टोचे तीर्थंकर पद पाया
अनेकांत दृष्टि ए जीवों ने उजाल्या
खोवायुं ‘श्रद्धांध’ मन ‘जीन’ महावीर मां .... मन ....
भरत चक्रवर्ती पुत्र महावीरमां,
अहिंसाना आतम एवा महावीर मां ...

‘श्रद्धांध’

06/05/2002

ध्यान

मंदिरनी अधखुली बारीमांथी
	रोकतो रह्यो वरसादनी
आवती भीनाशने ....
	भगवानना ध्यानमां ....
कांच परनां सरकतां बिंदुओ
	दीपकनी ज्योत समीप आवी
भल्यु सुरभिमय आकाश मां ...
	जीव ने वलग्युं
लागणी नुं धुम्मस ....।

वरसाद हवे ना अटके तो सारूं ....
	हूँ खोवाई गयो छूं,
दीपकनी बुझाती
	ज्योतनां
		अंतरमां
			कशे क्यांक
				मोक्षनी केड़ी पर ?
					ध्यान मां .... !!!

'श्रद्धांध'

मेघकुमार - 10 श्रेष्ठ श्रावक

* आचारांग सूत्र में बताया गया है :- निर्जरा के हेतु को 'धूत' कहा गया है। धूतवाद ये कर्म निर्जरा का सिद्धांत है। शरीर, उपकरण, स्वजन, पुत्र-पुत्री, माता-पिता, बंधु ये सब 'पर' हैं। इन सबके ''ममत्व'' का त्याग करने से ही धूत साधना-कर्म निर्जरा होती है। (1) पूर्वगह छोड़कर स्वजनों के ऊपर का ममत्व भाव का प्रकंपन, (2) कर्म धूत-कर्म पुद्गलों में प्रंकपन, (3) शरीर-उपकरण धूत, (4) गौरव धूत और (5) उपसर्ग धूत।

* भगवती सूत्र :- रचनाकार श्री सुधर्मास्वामी।

* ज्ञाता धर्मकथा सूत्र :- आचारांग सूत्र बाल पोथी है तो ज्ञाता धर्म कथा सूत्र वैराग्य पौथी है। इस सूत्र के प्रत्येक अध्ययन-सुखशीलता, कामभोग, विषय कषाय, मोह, प्रमाद को कम कर संयम में स्थिरता का पाठ सिखाते हैं।

* मेघकुमार के 3 भव में - पैर की विशेषता :-

* सुमेरुप्रभ हाथी के भव में परवशता के कारण पैर उठा सकता नहीं स्वयं के मन में उत्पन्न अनुकंपा भाव से खरगोश पर पांव नहीं रखना।

* मेरुप्रभ हाथी के भव में स्ववशता के कारण पैर मुड़ता नहीं था।

* मेघकुमार - मेघमुनि के भव में स्थविर मुनियों के पैरों की ठोकर और पैरों से उछली रेत संथारे में गिरी वह सहन नहीं हुआ।

* उपासक दशांग सूत्र : धन सम्पन्न, समृद्ध और वैभवशाली श्रावकों की आचार संहिता, सीमित परिग्रहयुक्त, निवृत्तमान होते ही संयम की राह पर जाने वाले थे।

10 श्रावक :- आनंद, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुंडकौलिक, शकडालपुत्र, महाशतक, नंदिनी पिता और शालिही पिता।

धर्म करने वाले व्यक्ति को प्रतिकूलता नहीं आती ऐसा नहीं है, परन्तु धर्म श्रद्धा व्यक्ति

को प्रतिकूल स्थिति में सहन करने की क्षमता और बुद्धि देकर धर्म में दृढ़ बनाती है। श्रावक दृढ़ धर्मी और प्रिय धर्मी थे।

सुरादेव श्रावक, रोग उत्पन्न होने की धमकी से विचलित हो गए। किन्तु पत्नी की प्रेरणा से प्रायश्चित किया। चुल्लशतक श्रावक, संपति नष्ट करने की धमकी से विचलित हो गए, पत्नी की प्रेरणा से प्रायश्चित किया। इन उदाहरणों का सार यह है ....

शरीर, संबंध और संपत्ति मन को अस्थिर करती है; यह नबली कड़ी है।

* नियतिवाद व्यवहार में अनुचित ही है :-

सकडालपुत्र की मिट्टी द्वारा बर्तन पकाने की सभी क्रिया पुरुषार्थ जन्य है, ऐसा महावीर प्रभु ने समझाया और सर्वभाव नियत ही है, उसका खंडन करके बता दिया।

व्यवहारिक जीवन में नियतिवाद को स्वीकारना उचित नहीं है। नियतिवाद स्वीकारने से व्यक्ति निष्क्रिय बन प्रमादी हो सकता है। 'जो होना होगा वह होगा' इस विचार के द्वारा या श्रद्धा द्वारा कार्य नहीं होता। एकांतवाद को स्वीकार न करते हुए पांच समवाय - काल, स्वभाव, नियति, पुर्वकृत कर्म और पुरुषार्थ स्वीकारना सभी प्रकार से युक्त है।

* साधु का महाव्रत स्वीकारना, रत्न खरीदने के समान कहा है।

* श्रावक के 12 व्रत स्वीकारना, स्वर्ण खरीदने के बराबर कहा है।

शक्ति अनुसार खरीदो। रत्न या सोना।

अंतगड़ सूत्र की महा आत्माएँ

90 अध्ययनों में 90 जीवों का अधिकार है। 51 चरित्र 22वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के शासन के और 39 चरित्र महावीर स्वामी के शासन के हैं। 51 चरित्र में कृष्ण वासुदेव के परिवारों का वर्णन है। जैसे उनके 10 काका, 24 भाई, 8 पत्नी, 2 पुत्रवधूएं, 4 भतीजे, 2 पुत्र और 1 पौत्र का समावेश है। भगवान के समवसरण में आएं, धर्म श्रवण करें, माता-पिता की आज्ञा से दीक्षा लें, जरा - मरण की अग्नि में मानव जीवन भस्म हो उसके पूर्व अगुरुलघु आत्मा को बचाए, मुनिवेश धारण कर अंतिम समय में संलेखना करके

अंतिम श्वासोच्छ्वास द्वारा आठ कर्म क्षय कर सिद्ध होते हैं।

ये महात्मा चरम शरीरी होते हैं, इसी भव में मोक्ष जाने वाले होते हैं। अंत समय में अंतमुहूर्त में केवल ज्ञान प्राप्त कर, धर्म देशना दिए बिना ही मुक्ति पद प्राप्त कर लेते हैं। अंतगड़ सूत्र यानि संसार का संपूर्ण अंत कराते,अं त:करण की यात्रा के अध्ययन।

चंपक सेठ :- 'अनुबंध' को समझाने वाला सुंदर दृष्टांत।

धन्यपुर नगर, चंपक सेठ अत्यन्त धार्मिक व्रतधारी श्रावक नित्य प्रतिक्रमण पर्व दिन में पौषध, उसके बाद गुरु महाराज को भात-पानी का लाभ देने की विनंती। गोचरी का समय हो जाए तब फिर विनंती करने जाना, गोचरी वोहराने के बाद त्रिकाल वंदना करना (यदि साधु भगवंत गोचरी नहीं लेते हैं तो स्वयं भी नहीं खाना, ऐसी दृढ़ता से आचार पालन करना)।

अंतर के उमड़ते भावों से साधु भगवंत को आहार देना। एक दिन मुनि को पात्र में घी वोहराते हुए धार बराबर पात्र में जा रही है। सेठ वोहराने के भाव में तन्मय था और उस समय अनुत्तर विमान की गति का बंध हो रहा था, मुनि यह सब देख रहे थे।

आखिर मानव स्वभाव वश एकदम भावधारा टूटी, पात्र के ऊपर दृष्टि गई, पात्र पूरा भरा हुआ देख सेठ के विचारों ने पलटा खाया। सेठ सोचने लगा - 'यह साधु है कि क्या है ? ऐसा लगता है ये समझता नहीं। मना नहीं करता है।'

मुनि भगवंत ने कहा 'ऐसे कैसे नीचे गिर गए ?' सेठ मुनि की भाषा न समझते हुए उसने मना किया। नीचे कहाँ ? मैं तो यहीं खड़ा हूँ।

साधुजी ने समझाया, सोने जैसे दान करते हुए तुमने लांछन लगा दिया। दान देते समय भाव धारा चढ़ती रहने देना चाहिए। देवलोक की उच्चगति बंधको रोक दिया। भयंकर पश्चाताप हुआ, गुरु के पास आलोचना ली, आयु पूर्ण कर 12वें देवलोक में गए।

दान देते समय कभी भी अतिचार नहीं लगाना, अन्यथा सुख अल्प ही मिलता है। पुण्य न मिले तो फिर मोक्ष की बात ही क्या ?

दृष्टांत – सबके लिए सब कुछ संभव है ।

✻ तेजपाल सेठ की पत्नी अनुपमादेवी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लिया, वहां दीक्षा लेकर केवलज्ञानी के रुप में विचरण कर रहे हैं । आयु पूर्ण होने पर मोक्ष जाएंगे ।

✻ हेमचन्द्राचार्य के संसारी शिष्य कुमार पाल राजा सिर्फ 3 भव करके मोक्ष जाएंगे ।

✻ बाह्य रुप से गृहस्थावस्था में रहे हुए कूर्मापुत्र, आंतरिक भावों से उच्च कक्षा को स्पर्श कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । केवली अवस्था में 6 माह तक उन्होंने माता-पिता की सेवा की । उनके केवलज्ञान की किसी को मालूम नहीं पड़ी ।

अचरमावर्त में जीव को संसार ही अच्छा लगता है, मोक्ष नहीं, नियति पक्की ।

चरमावर्त में संसार भी अच्छा लगता है, मोक्ष भी अच्छा लगता है, पुरुषार्थ किया ।

अर्धचरमावर्त में संसार अच्छा नहीं लगता, मोक्ष ही अच्छा लगता है । पहले भगवान फिर सारी दुनिया, नवकार गिनना अच्छा लगता है, नोट गिनना है किन्तु अनमने भाव से । गुरु महाराज अच्छे लगते हैं, पत्नी साथ रहती है किन्तु अनमने भाव से व्यवहार निभाना है, पर साथ रहना अच्छा नहीं लगता ।

✻ मयणा सुंदरी की श्रीपालजी से शादी हुई उसी रात्रि में पूछा – कल सुबह क्या करेंगे ?

मयणा ने यह नहीं कहा कि – पहले वैद्य के पास जाकर कोढ़ रोग दूर करने का उपाय पूछेंगे या मामा के यहां जाकर रहेंगे या बहिन के यहां जाकर रहेंगे । नहीं ! मयणा ने उत्तर दिया – 'कल प्रातः सबसे पहले प्रभु आदिनाथ के दर्शनादि करेंगे।' मयणा श्रीपाल के पहले भगवान और हमारे ? भगवान का नंबर आखरी में ।

अर्धपुद्गल, परावर्तन में प्रवेश करना है तो प्रथम नबंर देव-गुरु-धर्म का । गुणों की तरफ आकर्षण संसार के प्रति अनासक्ति भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न ।

✻ श्रीयक – बहिन साध्वी यक्षा के कहने से उपवास किया, मृत्यु को प्राप्त हो गया (स्थूल भद्रजी की 7 बहनों में से 1)

विज्ञान का पायदान : पदार्थ,

धर्म का पायदान : आत्मा ।

रसोईघर (भोजनशाला) में भोजन करने के बाद पचाने के लिए 24 घंटे चाहिए। मंदिर में धर्मक्रिया करने के बाद धर्म को पचाने के लिए 24 घंटे चाहिए।

तत्वज्ञान की स्पर्शना के लिए आत्मा को पूर्ण श्रद्धा के साथ स्वीकारना चाहिए। रायपस्सेणी सूत्र आगम में केशी गणधर प्रदेशी राजा का संवाद आता है -

प्र. - मैं आत्मा नहीं मानता, संदूक में से मनुष्य का शव मिला किन्तु छिद्र क्यों नहीं ? केशी : शंख की आवाज बिना छिद्र किए ही बाहर आती ही है ना।

प्र.- संदूक में शव मिला साथ में कीड़े भी तो थे। वे बिना छिद्र किए कैसे अंदर चले गए।

उ. अग्नि लोह खंड के गोले के अंदर प्रवेश करती है वैसे।

मुख्य संदेश - सत्य बात जानने को मिलती है तो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। कठोर भाषा : आत्मा की कोमलता का नाश कर देती है, सब्जी काट कर नहीं, सब्जी सुधार कर दूंगी। साबुन के टुकड़े दो नहीं साबुन का कुछ भाग दो, भगवान ने मेरे पति को मार डाला इत्यादि।

जो व्यक्ति वीतराग परमात्मा के सन्मुखसामने जाए, श्रद्धामयी भाव हो तो उसको अपूर्व लाभ प्राप्त होता है। 'तित्थयरा में पसियंतु'। सूर्य ठंड भी उड़ाता है और गर्मी भी बरसाता है। विधि सहित क्रिया होती है तो ही लाभ मिलता है।

नमि राजर्षि की कथा

- विजय लक्ष्मी सूरि विरचित 'उपदेश प्रासाद' से उद्धृत ...

अवन्ति :- देश, सुदर्शन :- नगर, राजा :- मणिरथ, छोटा भाई :- युगबाहु, पत्नी :- मदन रेखा।

मदन रेखा अत्यन्त रुपावान थी, उसके चंद्रयशा नामक पुत्र था, युगबाहु का बड़ा भाई राजा मणिरथ मदन रेखा के रुप में कामातुर होकर युगबाहु की हत्या कर दी। उस समय युवराज युगबाहु की पत्नी मदनरेखा गर्भवती थी। पति की हत्या हुई देखकर मदन रेखा अपने शील की रक्षा के लिए जंगल में चली गई। वहां पुत्र जन्म हुआ जो आगे जाकर नमि राजर्षि हुए।

मदन रेखा ने पुत्र की अंगूली में पति के नाम की अंगूठी पहना दी, रत्न कंबल में लपेट

कर पास में सरोवर (तालाब) में शरीर शुद्धि के लिए गई, इतने में एक हाथी आया और उसने रानी को सूंड में लेकर आकाश में उछाल दिया। नभोमंडल में जाते जुए 'मणिप्रभ' विद्याधर ने उसे हाथों में झेल लिया। अवधि ज्ञान से देखकर उसने मदन रेखा को बोला - तेरे पुत्र को पद्मरथ राजा ले गया और पुत्र रहित उसकी पत्नी को सौंप दिया है। उसने उसको सांत्वना दी और स्वयं को पति रुप स्वीकार करने का आग्रह किया। मदन रेखा ने कहा - पहले मुझे नंदीश्वर द्वीप की यात्रा करा दो फिर जैसा होगा देखेंगे।

विद्याधर और मदन रेखा नंदीश्वर द्वीप गए, वहां दर्शन वंदन कर 'मणिचूड़' नामक राजर्षि जो पूर्व में (गृहस्थी में) चक्रवर्ती थे उनकी धर्मसभा में उपदेश सुनने के वंदन करके बैठ गए। नंद्धीश्वर द्वीप पर मदन रेखा का पति युगबाहु मरकर पांचवे देवलोक में उत्पन्न हुआ था वह अवधि ज्ञान के बल से वहां दर्शन करने आया। दर्शन वंदन करने के बाद पत्नी मदन रेखा को देखकर उसको वहां से उठाकर मिथिला नगरी में ले गया। उसको अपना स्वरूप दिखाकर पहिचान कराकर पुत्र का स्वरुप बता दिया कि वह यहाँ है। पद्मरथ राजा के वहाँ उसको छोड़ दिया। पुत्र को भी माँ का परिचय कराकर चला गया। अब वहाँ मदन रेखा आराम से रहने लगी। उसके पुत्र का नाम नमि रखा गया था। नमिकुमार युवावस्था को प्राप्त हो गया तो 1008 कन्याओं के साथ उसकी शादी हो गई। समय पर पद्मरथ राजा ने नमिकुमार का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

एक समय नमिराजा का हाथी भाग गया और चंद्रयश के राज्य में पहुंच गया तो चंद्रयश ने हस्तिशाला में रख लिया। नमिराजा को मालूम पड़ी तो हाथी को लेने के लिए नमिराजा ने चंद्रयश पर (बड़े भाई) पर चढ़ाई कर दी। दोनों में से किसी को नहीं मालूम कि हम दोनो भाई हैं। माँ के कहने से नमिराजा स्वयं पड़ाव में जाकर भाई के चरणों में नमनपूर्वक मिला, अंगूठी दिखाई तब उसे विश्वास हो गया। उसने अपने छोटे भाई का राज्याभिषेक कर दिया और स्वयं ने दीक्षा ले ली।

शरीर में रोग का आना - बिन बुलाए मेहमान जैसा है। एक दिन अचानक नमिराजा के शरीर में दाह ज्वर उत्पन्न हो गया। राजा को चैन नहीं पड़ रही थी। सभी प्रकार से हकीम, वैद्य आदि का इलाज करवा लिया, लेकिन शांति नहीं मिली। अंतिम उपाय यही बचा कि चंदन का शरीर पर विलेपन किया जाए। सभी रानियों ने चंदन घीसना प्रारंभ किया। उनके कंकण (हाथ में पहने कंगन) की बहुत तेज आवाज आने लगी। राजा को तेज आवाज सहन नहीं होने लगी तो रानियों ने एक कंगन रखकर सब खोल दिए। घिसाई तो चालू ही रही। राजा को

लगा कि आवाज बन्द हो गई तो घिसना बंद हो गया या क्या हुआ ? मंत्री से पूछने पर मालूम हुआ कि एकएक कंगन से आवाज बंद हो गई। राजा के मन मस्तिष्क में मंथन चालू हो गया। ओह ! अेकाकि कंगन कितना श्रेष्ठ है ? विचार चलते-चलते चारित्र मोहनीय का बंध टूट गया।

राजा निद्राधीन हो गया और स्वप्न आया। स्वप्न में अपने को मेरु पर्वत पर खड़े देखा। जाति स्मरण ज्ञान हो गया। पूर्व भव देखा। उत्कृष्ट पुण्यबंध का हेतु चारित्र पालन कर अनुत्तर विमान वासी देव हुआ, उस समय मेरु पर्वत पर गया था आदि ....। निद्रा खुली नमिराजा की चारित्र लेने के उत्कृष्ट भाव हुए। रोग ठीक हो गया और चारित्र लेकर घर से प्रस्थान कर दिया।

इन्द्र महाराज की इच्छा हुई कि नमि राजऋषि की परीक्षा की जाए। त्याग में कितने दृढ़ हैं। ब्राह्मण रुप में मुनि के पास आकर प्रश्न किया - तुम्हारा अंत:पुर जल रहा है, नगर में अग्नि ज्वाजल्यमान है, सभी को सुखी करके फिर चारित्र लो तो ठीक है। अभी तो अंत: पुर जल रहा है तो उसकी व्यवस्था करो। चारित्र दया पालने के लिए है। पहले जलने वाले पर दया करके बचाओ।

प्रत्येक बुद्ध नमि राजर्षि ने उत्तर दिया - मैं सुख में हूँ, सुख से जी रहा हूँ, क्योंकि मेरा कुछ नहीं है। मिथिला नगरी जल रही है, उसमें मेरा तो कुछ भी नहीं जल रहा है।

उत्तराध्ययन सूत्र की अनेक युक्तियों से मुनि ने ब्राह्मण को निरुत्तर कर दिया। तब इन्द्र ने अपना स्वरुप प्रकट किया। नमस्कार कर उनकी स्तुति करने लगा :-

अहो ते निज्जिओ कोहो, अहो माणो पराइओ ।
अहो ते णिरक्किियां तिरक्कयां माया, अहो लोहो वसीकओ ।।

भावार्थ - अहो ! आपने क्रोध को जीत लिया, अहो ! मान का पराजय कर दिया, माया का आपने तिरस्कार कर दिया, अहो ! आपने लोभ को वश कर लिया है। आपका जीवन धन्य है। पुन: पुन: नमन करते हुए इन्द्र अपने स्थान पर चले गए और नमि राजर्षि विचरण करते हुए अनुक्रम से केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष गए।

नमि राजर्षि ने इन्द्र की अनेक युक्तियों के सामने धर्म का त्याग नहीं किया, जिससे ज्ञाता सूत्र में महावीर ने उनकी प्रशंसा की है। ऐसे नमि राजर्षि सभी भव्यआत्माओं के सुख के करने वाले हों।

राजा गुणसेन और अग्नि शर्मा तापस

प. पू. कीर्तियशसूरिजी म. ''साधू संत के प्रति उचित आचरण'' में से

राजकुमार गुणसेन ने अग्नि शर्मा की बहुत विडंबना करी थी, फिर भी तापस अग्निशर्मा, गुणसेन को कल्याण मित्र मानता था।

क्षमा, नम्रता, तप, त्याग, तितिक्षा आदि अपने स्वयं के गुणों की मुल में गुणसेन कुमार को अग्निशर्मा तापस मानता था।

वर्षों व्यतीत हो गए, राजकुमार गुणसेन राजा बन गया। एक दिन राजा को जानकारी मिली कि - पास के वन आश्रम में महा तपस्वी तापस आए हुए हैं। दर्शन की इच्छा हुई। राज परिवार के साथ दर्शन करने गया। अग्नि शर्मा तापस के दर्शन हुए। राजा गुणसेन ने पूछा - इतना दुष्कर तप और व्रत लेने का निमित्त क्या है ? उत्तर में अग्नि शर्मा ने कहा - दूसरे की तरफ से पराभव, कदरुपता, दरिद्रता का दु:ख और राजपुत्र गुणसेन मेरे वैराग्य-तपस्या आदि के निमित्त बने हैं।

प्र. :- राजपुत्र गुणसेन कल्याण मित्र कैसे बना ?

उत्तर :- अग्नि शर्मा ने गुणसेन को कुमार अवस्था का वृतांत याद कराया।

प्र. :- हे भगवंत ! मैं ही गुणसेन हूँ। मैंने तो आपकी बहुत विडंबना की फिर मैं कैसे कल्याण मित्र हुआ ?

उत्तर :- हे राजन् ! आपने यदि विडंबना न की होती तो मैं नगर छोड़कर नहीं जाता, मुझे कुलपति नहीं मिलते। उनके संसर्ग में मैंने यह साधना मार्ग स्वीकार नहीं किया होता, इन सब का मूलभूत कारण आप ही हो इसलिए आप कल्याण मित्र हैं।

प्र. :- गुणसेन ने पूछा - भगवन् ! आपका पारणा कब आने वाला है ?

उत्तर :- पाँच दिन बाद।

गुणसेन ने कहा - आपके पारणे का लाभ मुझे दीजिए।

उत्तर :- तपस्वी ने कहा - पारणे के दिन में अभी देर है, कौन जाने पाँच दिन के अंतराल में क्या हो ?

प्र. :- यदि कोई विघ्न न आए तो यह लाभ मुझे देना।

उत्तर :- आपका आग्रह है तो आपकी प्रार्थना मैंने स्वीकार कर ली है।

गुणसेन के मन में कोई पाप नहीं था, परन्तु पारणा के दिन असह्य दर्द उठा और राजा बेचैन हो गया। राजा के परिवार के सभी लोग घबरा गए। हलवाई, मंत्री, सेवक सभी

चिंतातुर हो गए । इधर अग्नि शर्मा तापस राजा के आंगन में आया लेकिन किसी ने सत्कार नहीं किया । राजा की बेचैनी में सभी इधर-उधर भागमभाग में लग रहे थे, किसी को मालूम नहीं पड़ा । बिना बोले ही वापिस चले गए । अगला मास क्षमण प्रारंभ हो गया और साधना प्रारंभ हो गई ।

गुणसेन स्वस्थ होकर तापस से क्षमा मांगी । अगले पारणे के लाभ की विनंती की फिर दूसरी बार युद्ध में जाने का योग आ गया । तापस आकर लौट गया । फिर तीसरी बार ऐसा ही हुआ गुणसेन को क्षमा करते रहे ।

ज्ञानियों ने इस क्षमा को दबी हुई अग्नि (सुप्त ज्वालामुखी) जैसी कहा है । अग्नि शर्मा तापस कषायों से घिर गए । मन में विचार उठा - गुणसेन ने तीन-तीन बार ऐसा क्यों किया ? फिर इसने मेरी विडंबना करने की ठानी है ऐसा लगता है ? ऐसा विचार आते ही निदान कर लिया (निदान = अमूल्य वस्तू को कम मूल्य में दे देना) मेरे तप का प्रभाव हो तो मैं इसे भवोभव मारने वाला बनूं ।

अनंतानबंधी क्रोध संज्वलन जैसा दिखाई देता है । निमित्त नहीं मिलता इतने उपशांत होकर दबा पड़ा रहता है, निमित्त मिलते ही भड़क उठता है ज्वालामुखी के समान ।

अनंतानुबंधी क्रोध आदि के कारण (अग्नि शर्मा जैसे तापस के समान) सर्व गुण उन्मार्ग में ले जाने वाले बने । इनकी सरलता भी उन्मार्ग पर ले जाती है । ज्ञान वैभव और उसका बोध भी उन्मार्ग की तरफ ले जाने वाला बनता है ।

कार्तिक सेठ और गैरिक तापस

सौधर्म देवलोक के इन्द्र का पूर्व भव यानि कार्तिक सेठ । कल्पसूत्र के प्रवचन में कार्तिक सेठ की कथा आती है ।

* सम्यक्दृष्टि - कार्तिक सेठ अपने समकित को निष्कलंक रखते थे ।

* गैरिक तापस मिथ्यादृष्टि होने पर भी गांव की जनता पूजा सत्कार करती थी, किन्तु कार्तिक सेठ कभी भी नहीं गए न उसके स्वागत सत्कार के सहभागी बने । तापस को इस बात से बहुत रुष्टमान था कि सारी जनता आती है, सेठ नहीं आता ।

* गैरिक तापस के मासक्षमण का पारणा था - राजा ने पारणे का निमंत्रण दिया । तापस ने राजा से कहा - कार्तिक सेठ भोजन परोसे तो पारणा करुं । राजा ने सेठ को संदेश भेजा । राजा का दिल न दुखे इसलिए सेठ ने स्वीकार किया । तापस खुश हो गया । सेठ ने भोजन परोसा तो तापस ने नाक पर अंगुली फेर कर इशारा किया तेरा नाक कट गया ।

✻ कार्तिक सेठ का विचार मंथन चला - मेरा कैसा प्रमाद कि मैं संसार में रहा, चारित्र ले लेता तो आज इस मिथ्यात्वी गैरिक का अपमान न सहना पड़ता। राजाज्ञा का पालन करना पड़ा।

✻ इस विचारधारा के साथ ही कार्तिक सेठ ने उस समय मुनिसुव्रत स्वामी का विचरण काल था, उनके पास जाकर चारित्र ले लिया। द्वादशांगी श्रुत का अभ्यास करके, संलेखना - अनशन करके समाधिमरण से देवलोक जाकर इन्द्र बने।

ध्यान में रखने योग्य :- गुण किसको कहा जाता है ? तात्विक गुण यानि क्या ? आत्म विकास तात्विक गुण के आधार पर ही होता है या अतात्विक गुण के आधार पर ? बगुला भी ध्यान तो करता है, क्या उसे गुण कहा जाता है ? अपनी छाप जमाने के लिए नीति-नियम पालन करे तो क्या उसको गुण कहा जाता है ?

काम और अर्थ का ही उद्देश्य हो तो धर्म क्रिया भी गुण भी नहीं कहा जा सकता।

त्रिशला-देवानंदा

धर्मकथानुयोग (भगवती सूत्र : भाग- 2)

त्रिशला माता ने पूर्व भव में शाता वेदनीय कर्म का सघन बंध किया था, इसलिए जिन्दगी के अंतिम क्षण तक भी उनको सभी तरफ से शांति समाधि रही।

देवानंदा ने जेठाणी रुप में पूर्व जन्म में देराणी (त्रिशला) को बहुत रुलाया था। मारा भी, देवर से भी मार पिटवाई, बहुत शोक संतप्त, और कष्ट दिलवाकर भयंकर असाता वेदनीय कर्म का बंधन किया, जो देवानंदा के भव में भोगना पड़ा।

आयुष्य कर्म :- कीड़ी को मारने वाला मैं यदि बिल्ली बनु तो चूहा या कबूतर को पकड़ फाड़े बिना नहीं रह सकता। मेरी जीवन रक्षा की सारी साधना बेकार हो जाएगी।

पूर्व क्रोड़ वर्ष तक उच्च संयम पालने वाले, मासक्षमण जैसे महान तपस्वी साधु आयु बंध करते समय सीढ़ी से नीचे गिरे और मोक्ष जाने के बदले पीछे के भव में देव या मानव न होकर चंडकौशिक नाग बना।

नहीं ! अपने को ऐसी भूल नहीं करना। अनशनी - श्रावक को उच्च स्थान पर जाते-जाते अंत समय में बेर (फल) दिखाई दे गए और उनमें आसक्ति हो गई एवं (मरण समय) मृत्यु समय मर कर बोर बना।

रानी के लंबे और लहराते चमकीले काले बालों में आसक्त बना राजा मर कर रानी के बाल में 'जूं' बनकर जन्म लिया।

भूख का दु:ख - रोचक कथा

भूख के दु:ख को तप के द्धारा निर्जरा से दूर किया जा सकता है। इसका दृष्टांत रोचक तरीके से आश्चर्य उत्पन्न करने वाला है।

कौरव-पांडव के युद्ध में कौरव वंश का नाश हो गया। अपने 100 पुत्रों के मृत्यु के दु:ख में दु:खी हुई गांधारी ने ऐसा रुदन-आक्रंदन प्रारंभ कर दिया कि चारों दिशाएँ रो उठी। सुंदर और बहादुर राजकुमारों के युवा योद्धाओं की अकल्पनीय दशा हो गई थी। रो-रोकर हिचकियाँ भर-भरकर थक गई। कितना समय बाद रो-रोकर पछाड़ खाते-खाते थक जाने पर भूख लग गई, भूख ऐसी लगी कि रहा न जाए। आस-पास देखा, रणभूमि में क्या मिले ? दूर एक आम का पेड़ दिखाई दिया। पूरा पेड़ आम्रफलों से लदा-लूम दिखा, पेड़ के पास पहुंची। फलों की खुशबू से भूख के कारण मन विह्वल हो गया। आस-पास देखा पत्थर आदि कोई ऐसी वस्तु दिखाई नहीं दी जिसे फैंककर फल गिराया जा सके। ऊँचे कूद-कर फल पकड़ने की चेष्टा भी निष्फल हो गई। भूख क्या कराती है ? देखिए :-

जब अन्य कुछ भी उपाय नहीं दिखा तो राजमाता गांधारी थकी हारी भूख से पागल रणभूमि से अपनी संतानों के शवों को खींच कर पेड़ तक लाई और उनके ऊपर चढ़कर फल उतारे। यह भूख का दु:ख।

परम कृपालु, निर्ग्रंथ, घोर तपस्वी परमात्मा द्धारा आचरित, उपासित तीव्र तप को अनेक पुण्यात्माओं ने अनुसरित किया और अभी भी कर रही हैं। तप के द्धारा रोग, संताप, और कर्मों का नाश होता है, लब्धि-सिद्धि की प्राप्ति होती है। प्रभु ! फरमाते हैं कि तुम भी बाह्य-आभ्यंतर दोनों प्रकार के तप करना, प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान, कार्योत्सर्ग-ये छ: प्रकार के तप करना।

(मालकौंस) मने महावीर ना गुण ....

अनशन उणोदरी, वृत्ति, संक्षेप रस त्याग, संलीनता, काय क्लेश;
षट् बाह्य तपनी महिमा विशेष, करावे अंतर तपमां प्रवेश।
प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान अने कायोत्सर्ग;
षट् आंतर तपनी महिमा विशेष, छोड़ावे अंतरना राग ने द्धेष ॥
जे जाणे तपना आ बार भेद, ते माणे निर्जरा कर्म नो छेद,
जाए जीवनो भवोभवनो मेद, द्धादश तपनो छे महिमा विशेष ॥

''श्रद्धांध''

बादशाह अकबर

अकबर राजा का दृष्टांत : प्रेरणा पत्र, वर्ष 18, अंक 9 , दिस. 16, 2011

सत् चरित्रों का श्रवण करना चाहिए । अनंत उपकारी, अनंत कल्याणकारी, गुरु भगवंत श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म.सा. ने ''ललित विस्तरा'' ग्रंथ में जीव के चरमावर्त में प्रवेश बाद आध्यात्मिक विकास के लिए कर्तव्य स्वरुप गुणों का वर्णन किया गया है ।

चरमावर्ती जीव का योग मार्ग में प्रवेश हो उसके लिए आर्य संस्कृति में सुनने का अपूर्व योग रखने में आया है ।

* पारायण में वांचन, कथा श्रवण के लिए हजारों लाखों मनुष्य आते हैं और उसके लिए सारी व्यवस्थाएँ की जाती हैं ।

* जीवन में श्रवण द्वारा शांति व समाधि प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ।

* जिन शासन में प्रत्येक जैन के लिए व्याख्यान श्रवण कर्तव्य रुप में बताया है । प्रात: दो कर्तव्यों में 1. पूजा, 2. प्रवचन श्रवण करने में 'प्रवचन' श्रवण को प्रधान कर्तव्य कहा है ।

* कहीं-कहीं प्रवचन के समय पूजा करने का निषेध भी किया गया है, ऐसा करने का मुख्य कारण यह है कि - जिनवाणी अंतर हृदय में उतरेगी तो जीवन में धर्म के बीज (बोधि बीज) का वपन होगा ।

* प्रवचन के बाद प्रभावना की व्यवस्था भी रहती है ।

* प्रभु देशना देवों द्वारा रचित समवसरण से प्रसारित होती है । देवदुंदुंभि का नाद करके जनता को जागृत करने का प्रयास होता है । जैनों के उपाश्रय वैभवमय होते हैं; जो समवसरण की याद दिलाते हैं । यह सब देखकर हृदय में आनंद उत्पन्न होने से धर्म बीज, योग बीज और सम्यक्त्व बीज का रोपण होता है ।

* प्रभावना बच्चों को आकर्षित करने के लिए की जाती है । एकांतवाद से ग्रसित हो यह न कहें कि लालच देकर धर्म तरफ आकर्षित करने के लिए प्रभावना दी जाती है ।

संक्षिप्त में जीवन में धर्म-प्रवेश के लिए, महापुरुषों के चरित्र श्रवण करना जरूरी है ।

अकबर राजा का दृष्टांत

हिन्दुस्तान के राज सिंहासन पर अकबर बादशाह ने 425 वर्ष पूर्व में राज्य किया था। श्री हीरसूरीश्वरजी महाराज के प्रवचन श्रवण से बादशाह का हिंसामय जीवन का सूर्य अस्त हो गया। अकबर के जीवन का मध्यान्ह अति हिंसा, व्यभिचार और क्रूरतामय था। स्वयं पूर्व भव में मुकुंद नामक सन्यासी था, धर्म में अनुरक्त था। किन्तु एक बार राजा की सवारी और ऐश्वर्य देखकर राजा बनने का नियाणा (निदान) कर लिया।

जीव दया से मिला हुआ पुण्य, तप और संयम का धन सम्राट बनने के लिए सौदे में चला गया। नियाणा करने से धर्मसता को सौदा मंजूर करना पड़ा, भौतिक आशंसा, धर्म करने के लिए अनुकूलताओं की होना चाहिए।

चंपा श्राविका के छ: माह के उपवास अकबर के लिए कौतुहल का विषय था, जानने पर उसका सिर झुक गया। हीरसूरिजी का मिलना हुआ।

<u>अकबर का हिंसामय आचार :-</u>

✻ रोज भोजन में 500 चिड़ियों की जीभ पकाई जाती थी।

✻ सेना के लिए 20,000 वाघर (चिड़िया) तैयार रहती थी।

✻ 114 मिनारों पर प्रत्येक मिनार पर 500 हिरण के सींग लटके रहते थे।

✻ पक्षी और पशुओं की हत्या करने के लिए 5000 हत्यारों की नियुक्ति थी।

✻ 36000 हिरण का शिकार किया था, उनकी खाल और 1 सोना मोहर अपने प्रत्येक शेख को ईनाम में दिया।

✻ गंग कवि को अपनी गुलामी नहीं करने के बदले हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया।

✻ नहीं जैसे गुनाह में भी कई ब्राह्मणों की क्रूर हत्या करवा दी, उनकी जनोइयों का वजन साढ़े 74 मण हुआ था।

✻ हत्यारों के द्वारा निरन्तर 10 माह तक बेरहमी से पशुओं की हत्या (कत्ले आम) करवाई।

✻ 12000 चीते और 500 बाघ बाड़े में बंद कर रखे थे।

* 800 रुपवान स्त्रियाँ (रखेल रूप में) को अपने मनोरंजन के लिए रखी थी।

* 20000 शिकारी कुत्ते पाल रखे थे।

<u>राजदरबार का वैभव :-</u>

दरबार में 7000 गायक, 11000 गाने वाली स्त्रियाँ थी, 30,000 घोड़े, 1000 हाथी, 16000 सुखासन, 15000 पालकियाँ, 8000 नगाड़े, 300 वैद्य, 500 पंडित, 500 प्रधान, 20000 कारकून और 10000 उमराव का मालिक था।

इन सबसे अधिक प्रभु की वाणी सुनकर आत्मसात करने की शक्ति अनंतगुणी है; यह धर्म के प्रति ज्ञान उत्पन्न (समझना) हो उसके लिए ही जैन साधु भगवंत प्रवचनों में ऐसा वर्णन करते हैं।

<u>* अकबर-बीरबल :-</u>

अमेरिका में रहते हुए हम यहाँ का अनुकरण करेंगे तो पायमाली कैसी होगी ?

अकबर को बीरबल की मजाक करने की सूझी। अकबर ने कहा - मेरे को एक स्वप्न आया - मैं और तू दोनों घोड़े पर बैठ - घूमने निकले। रास्ता संकरा था। दोनों तरफ बड़े-बड़े कुण्ड थे। एक तरफ इत्र के कुंड और दूसरी तरफ विष्ट (मल) के कुंड। मैं इत्र के कुंड में पड़ा और तू विष्टा के कुंड में, ऐसा कहकर बीरबल हंसने लगा।

बीरबल ने कहा - फिर क्या हुआ ? आपका स्वप्न आगे बढ़ा या नहीं ? मुझे भी यही स्वप्न आया; दोनों जब बाहर निकले तो मैं आपको चाटने लगा और आप मुझे चाटने लगे।

समझकर अनुसरण कीजिए ताकि भावप्राणों को भस्मसात न कर सके। इस भव में करने जैसा कोई भी काम हो तो वह कर्म के बंध को तोड़ने का ही काम है। ''सूत्र कृतांग'' का सार 'कर्म का उच्छेद करो' कर्म की निर्जरा करके बंधन तोड़ो। मोक्ष की साधना करो, सभी एक ही हैं।

कर्म का उच्छेद कैसे होगा? <u>'विवेक द्वारा'</u>। सम्यक् विवेक कर्म का उच्छेद

करता है। गलत को गलत तरीके से, सत्य को सत्य के हिसाब से जानना वह 'ज्ञान विवेक' मानना और अपनाना वह 'दर्शन विवेक', गलत को गलत मानकर त्याग कर दो। सत्य को सत्य मानकर जीवन में आचरण करना वह 'चारित्र विवेक' है।

ऐसा विवेक 'आप्त अरिहंत' के उपदेश द्वारा ही प्रकट हो सकता है। आगम ही आप्त वचन है और उनके द्वारा प्रकट होता है।

तामली तापस एवं 'प्राणमां' दीक्षा

(भगवती सूत्र सार संग्रह भाग - 1 में से)

गौतम स्वामी गणधर भगवंत ने, प्रभु महावीर से 'इशानेन्द्र' की उत्पत्ति संबंधी किए प्रश्नों का खुलासा करने हेतु पूछा था, उसका सार यह है।

ताम्रलिप्ति नगरी, तामली नामक मौर्यपुत्र गृहपति अत्यन्त धनाढ्य था। समृद्धि बढ़ती गई, फिर वैराग्य हुआ। स्वजन-संबंधी, जाति वाले सभी ने अनेक पदार्थों से सत्कार-सन्मान कर, स्वयं के वरिष्ठ पुत्र को कुटुंब का भार सौंपकर उन्होंने 'प्राणमा' नामक दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षा के साथ ही आजीवन तक छठ-छठ की तपस्या का अभिग्रह किया। हाथ ऊँचे रख, सूर्य की ओर देख खड़े रहकर आतापना लेते हैं। ऊँच-नीच-मध्यम कुल में से भिक्षा लेते हैं। पारणे के दिन ऐसा अभिग्रह किया कि, ''दाल, सब्जी, बिना चावल भिक्षा में लेना। भिक्षा में लाए चावल को पानी द्वारा इक्कीस बार धोकर खाना और पारणा करना।

इस दीक्षा को प्राणमा दीक्षा कहने का कारण यही है कि वह व्यक्ति जिस को देखे उसे अर्थात् ईन्द्र, स्कंदक, रुद्र, शिव, कुबेर, पार्वती, चंडिका, राजा, सार्थवाह, कौआ, श्वान, चांडाल आदि सभी को प्रणाम करे। निम्न को निम्न स्तर से और उच्च को उच्च स्तर से प्रणाम करे।

तामली तापस ने घोर तपस्या की, शरीर को सूखा दिया। उसके बाद सर्व उपकरणों चाखंडी, कुंडी आदि दूर कर, ईशान कोने में आहार-पानी का त्याग कर 'पादोपगमन' नामक अनशन किया।

इसी समय 'बलिचंचा' नामक की राजधानी ईन्द्र रहित थी। वहाँ के देवों ने अवधिज्ञान द्वारा तामली बाल तपस्वी को देखा। बलिचंचा के इन्द्र बनने हेतु स्वीकृति प्रदान करने की प्रार्थना की। तामली ने मना किया। तत्पश्चात् तामली ने साठ हजार वर्ष तक दीक्षा पाली, दो मास की संलेखना कर देवलोक गमन किया। ईशान कल्प में स्वयं ईशानेन्द्र रुप में उत्पन्न हुआ। बलिचंचा के देव-देवियों ने ज्ञान द्वारा देखा। तामली का देह जहाँ मृत्यु को प्राप्त हुआ था वहां उसकी खूब हिलना की। यह बात ईशान देवलोक के देव-देवी ने ज्ञान द्वारा जानी। तामली ईशानेन्द्र ने क्रोधायमान, लेश्या से बलिचंचा को जलाकर अंगारे जैसी कर दी।

बलिचंचा के देव-देवी ने क्षमा याचना की, ईशानेन्द्र ने लेश्या पुनः खींच ली। दो सागरोपम से अधिक का आयु पूर्ण कर, च्यवी, महाविदेह से सिद्ध बनेंगे।

महेश्वर दत्त एवं गांगीला

महेश्वर दत्त : पत्नी गांगीला, ग्राम विजयपुर :-

पिता - धंधा रोजगार में व्यस्त। मेरा पुत्र, मेरी पत्नी, मेरा कुटुम्ब, मेरा व्यवहार। अंतिम समय आया। महेश्वर दत्त ने अंतिम ईच्छा पूछी, भैंसों की सार संभाल, श्राद्ध के दिन भैंस की बलि ? स्वयं भी मरकर भैंस बना, उसकी भैंस के ही पेट से जन्मा।

माता - मेरा घर, मेरा व्यवहार, मेरी मिल्कियत-जेवर। मृत्यु के बाद 'कुत्ती' रुप जन्म हुआ।

पत्नी गांगीला - खूब रूपवान परंतु विषयों में लिप्त। एक दिन पर पुरुष के साथ पकड़ी गई। महेश्वर दत्त ने उस पुरुष को चाबुक से मारा और मर गया। वह पुरुष समतावान था। क्रोध नहीं किया और मरकर गांगीला की कुक्षि से पुत्ररूप में जन्मा।

संसार की विचित्रता देखो, पिता पुत्र एवं माता पत्नी।

श्राद्ध के दिन आए। पाड़ा (भैंस) मिला नहीं, घर के पाड़े का ही बलिदान। बलिदान के समय कुत्ती बर्तन चाट रही थी। महेश्वर दत्त ने लकड़ी से चोट मारी। कुत्ती की कमर तोड़

दी। उधर से ज्ञानी महात्मा निकले। मस्तक मुंडाया था। महेश्वर दत्त ने पूछा क्यों मस्तक मुंडाया है ? सुनेगा क्या ? हाँ ?

हे भद्र ! आज तेरे पिता का श्राद्ध है ना ? हाँ। पाड़े का वध ? यह तेरे पिता थे। कुत्ती यह तेरी माता है। तेरा पुत्र यह गांगीला के साथ रहा हुआ परपुरुष है।

वह देह नहीं पर आत्मा। महल एवं महल में रहने वाले जुदा हैं। जैसे म्यान एवं तलवार। महात्मा ने कल्याण का मार्ग बताया एवं महेश्वर दत्त को संसार पर धिक्कार आने पर कल्याण मार्ग द्वारा आत्मा का कल्याण किया।

- **भरत चक्रवर्ती** -
- **बाहुबली** - भरत के छोटे भाई, असाधारण बाहुबल। 'वीरा गज थकी नीचे उतरो' इन शब्दों ने केवलज्ञान दिलाया।
- **अभयकुमार** - श्रेणिक राजा के पुत्र, माता-सुनंदा, मुख्यमंत्री-असाधारण बुद्धिशाली।
- **ढंढणकुमार** - श्रीकृष्ण की ढंढणा रानी के पुत्र।
- **श्री यक** - शकडाल मंत्री के पुत्र, स्थुलिभद्र के लघु भ्राता।
- **अतिमुक्त मुनि** - पिता - विजयराजा, माता - श्रीमती रानी, छः वर्ष दीक्षा।
- **नागदत्त** - यज्ञदत्त तथा धनश्री सेठानी के पुत्र, सत्य के प्रभाव से शूली का सिंहासन। किसी की वस्तु कभी नहीं लेते।
- **नागदत्त (2)** - देवदत्ता के पुत्र, नाग की क्रीड़ा में अति प्रवीण थे।
- **मेतार्यमुनि** - चांडाल के वहाँ जन्मे थे। श्रेणिक के जमाई थे। 28 वर्ष दीक्षा। सोनी ने चमड़े की वाघर (मेढ़) बांधी जवला की चोरी का अभ्याख्यान, असाध्य पीड़ा में आंखे बाहर, समभाव से सहन किया, केवलज्ञान।
- **स्थूलभद्र** - शकडाल मंत्री के ज्येष्ठ पुत्र, कोशा गणिका से मोहित हुए।
- **वज्रस्वामी** - पिता धनगीरी, माता सुनंदा, पिता की उनके जन्म पूर्व दीक्षा।

पुण्य तो शुभ कर्म है, मोह नहीं

(धर्म तीर्थ : 2)

श्रेयांसकुमार के जीव ने निर्नामिका के भव में केवली भगवंत द्वारा समकित प्राप्त किया। निर्नामिका का संसार अति दु:खमय था। सगी माँ भी उसे दु:ख देती थी। समकित प्राप्ति के पश्चात् *तत्वबुद्धि आई और सैंकड़ों दु:ख वहीं के वहीं हल्के हो गए। विपरित परिस्थितियों में धर्म जो साहस, सत्व देता है वह निकट के स्वजन भी नहीं दे सकते।

इधर ऋषभदेव प्रभु की आत्मा ने धना सार्थवाह के भव में बोधीबीज प्राप्त कर चौथे महाबल राजा के भव में समकित प्राप्त किया। पांचवा भव ललितांग देव के रुप में हुआ। तब पटरानी स्वयंप्रभा देवी का च्यवन होने पर अति विरह हुआ। उन्हें समग्र देवलोक में स्वयंप्रभा देवी की भ्रमणा हुआ करती है।

तीर्थंकर का जीव होने के पश्चात् भी निमित्त मिलने पर कैसी असर होती है ? स्वयंप्रभा देवी के स्थान पर जन्म लेवें ऐसा पुण्य संचति करने वाला जीव कौन है ? उसे देखने पर परम देव मित्र के उपयोग से निर्नामिका दृष्टिगत हुई। ऋषभदेव के जीव ने नियाणा किया, निर्नामिका को चाहा और वह स्वयंप्रभा बनी। दोनों ने परस्पर स्नेह संबंध बांधा जो नौ भव तक चला। स्नेहराग बन गया। अनुकूल पात्र में प्रारंभ में कामराग होता है, सानूकुल सहवास बढ़ता है, कामराग स्नेहराग में परिवर्तित हो जाता है, जिसकी श्रृंखला भवोभव चलती है। गुण सम्पन्न जीव पर स्नेह बंधे तो जोखम कम रहता है।

कर्म का सिद्धांत है, अतिशय स्नेह हो तो उसका योग कराता है। भगवान ऋषभदेव की आत्मा ने दीर्घकाल तक श्रेयांसकुमार के साथ संबंध से जुड़े रहे। अनुराग के कारण दोनों का प्रत्येक भव में मिलन हुआ। परंतु दोनों योग्य जीव होने के कारण एक-दूसरे के अहित का कारण नहीं बने। अवसर आने पर हितपोषक बनते हैं; फिर भी प्रारंभिक भवों में रागादिवस काम-भोग की भी प्रवृत्ति थी, वह भी जैसे-जैसे आगे बढ़ने पर घटने लगी। भरत चक्रवर्ती, बाहुबली, ब्राह्मी, सुंदरी इन चारों के साथ भी पूर्व भव का संबंध है।

* तत्वबुद्धि : ममत्व से दूर

ऋषभदेव प्रभु की साधना का सर्वोच्च परिणाम जीवा वैद्य के नवमें भव से शुरु हुआ। पुण्य यह शुभ कर्म है, मोह नहीं। क्रिया के दृढ़ सेवन से गुण आत्मसात होते हैं। धर्म आत्मा में जुड़ जाना चाहिए। ऋषभदेव प्रभु का जीव वज्र नाभ चक्रवर्ती रुप में जन्म लेता है, इस भव में आगे श्रेयांसकुमार का जीव सारथी बनता है। वज्रनाभ के पिता का जीव वज्रसेन तीर्थंकर का जीव है तथा इस प्रकार उनका जीव तीर्थंकर के पुत्र रुप में जन्मे हैं। ब्राह्मी एवं सुंदरी की आत्मा ने पीठ व महापीठमुनि के भव में थोड़ी भूल के कारण स्त्रीवेद का बंध किया।

यह समग्र विवेचन जीवन के अगम्य खास हिस्सों पर अति महत्व का प्रकाश डालता है। उत्तमोत्तम महापुरुषों के जीवन चरित्रों का इतिहास, संसारी जीवन में दोष रुप, गिनाते अशुभ भावों से संताकुकड़ी में रमण करता है। निमित्त जो शुभ मिले और उन्हें अत:करण से, श्रद्धामय शुभ भावनाओं से संवारें तो अधिक समय में भी एक-दूसरे के पूरक बनकर उभय के जीवन को प्रकाशित करते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है। ऐसी घटनाओं को हंसदृष्टि से, क्षीर नीर के विवेक से विश्लेषण करने का कहा गया है।

असत्य का उपयोग सत्य के लिए होता ही नहीं है। बाह्य दीपक अंदर के भाव अंधकार को दूर करने के प्रतीक समान हैं। निमित्तों बाह्य दीपक के समान है। उभय के जीव को घातक होवे ऐसा अनुष्ठान आचरण भी सावधानी एवं समझ मांग लेता है। संसार की रीति ही ऐसी है। शुभ निमित्त संसार बढ़ाते हैं पश्चात् भी दीर्घकाल में एक दूसरे के गुणपोषक बनकर संसार घटाने में शक्तिमान बनते हैं।

शास्त्र का कथन है, अनेक जीव प्रारंभ में भावहीन क्रिया करते-करते भी अभ्यास से भाव पैदा होने पर अंत में भाववृद्धि से मोक्ष तक पहुंच गए। मोक्ष तो दूर है परंतु ध्येय को ध्यान की लगन में संसार को पुण्य के मार्ग पर एक-दूसरे के सान्निध्य की सुवास से संचारित रखे तो ज्ञानी कहते हैं - पुण्यमय शुभकर्म मोह नहीं। सान्निध्य की सुवास को अधिक सुवासित करते रहिए।

श्रेणिक राजा को सम्यक्त्व की प्राप्ति

राजगृही नगर में मंडित कुक्षी नामक एक मनोहर उद्यान था। यह मगध के राजा श्रेणिक का प्रिय उद्यान था।

दूर वृक्ष के नीचे युवान मुनि ने सुखासन में स्थिर बैठे हुए किसी व्यक्ति को देखा। उसके मुख का तेज कुछ अगम्य था। श्रेणिक राजा तीन प्रदक्षिणा देकर नम्र भाव में खड़े रहे। ध्यानपूर्ण होते मुनि ने देखा। धर्मलाभ कहा। श्रेणिक ने प्रश्न पूछने की आज्ञा मांगी।

मुनि ने कहा, बातें दो प्रकार की होती हैं - सदोष और निर्दोष।

<u>सदोष</u> - भक्तकथा, स्त्रीकथा, देशकथा, राजकथा की बातें।

<u>निर्दोष</u> - ज्ञान की वृद्धि हो, श्रद्धा की पुष्टि हो ऐसी बातें पूछना हो तो पूछो।

श्रेणिक ने पूछा - किन बलवानों कारणों से आप त्याग मार्ग की ओर आकर्षित हुए ?

मुनि ने कहा - मैं अनाथ था, इस हेतु संयम ग्रहण किया।

श्रेणिक - मैं आपका नाथ बनने को तैयार हूँ, राजमहल पधारो।

मुनि - जो आपके अधिकार में नहीं है वह आप कैसे दे पाओगे ? आप स्वयं ही अनाथ हो। चन्द्र उष्णता को दे सकता है ? सूर्य शीतलता को दे सकता है ?

श्रेणिक - मैं अंग एवं मगध का राजा श्रेणिक हूँ। मेरे राज्य में हजारों कस्बे, लाखों गांव हैं। हजारों हाथी-घोड़े, असंख्य सैनिक एवं रथों के स्वामी, रूपाली स्त्रियों से भरा हुआ अंत:पुर, 500 मंत्री हैं।

मुनि - मैं जानता हूँ तभी तो कहता हूँ कि आप अनाथ हो।

श्रेणिक - इस प्रकार मिथ्या वचन का उच्चार न करें। मुझे कहें मैं किस प्रकार अनाथ हूँ।

मुनि - मेरे पूर्व भव का कुछ भाग तुम्हें बताता हूँ। जिससे आपको समझ में आएगा। छठे तीर्थंकर पद्मप्रभु से पावन बनी कौशांबी नगरी में मेरे माता-पिता रहते थे। प्रभूर्व धन संचय था। मैं लाड़ला पुत्र था। युवान होने पर सुंदर कुलवती कन्या के साथ लग्न हुआ। अत्यंत खुशी के साथ जीवन यापन करता था।

एक बार आंख दुखने लगी, सुजन आ गई। अत्यन्त पीड़ा हुई। अनेक वैद्यों को बुलाया, परंतु कोई मेरे रोग को दूर नहीं कर सका। रोग मुक्त करने वाले को मेरे पिता आधी सम्पत्ति देने के लिए तैयार थे। माता अत्यन्त बैचेन। कोई दु:ख में से दूर कर सके ऐसा कोई नहीं। यही मेरी अनाथता। मुझे लगा कि दु:ख निवारण के कोई और अन्य उपाय होना चाहिए।

मेरे दु:खों का कारण पूर्व कर्म होने चाहिए, उसका मुझे ज्ञान हुआ। एक श्रमण ने मुझे समझाया, कर्म के हेतु को छोड़ क्षमा से कीर्ति को प्राप्त कर, सुखी हो जाएगा। ऐसा संकल्प किया और विचारते-विचारते निद्रा आ गई। वेदना शांत हो गई, रोग धीरे-धीरे जाने लगा।

मुनि ने कहा, जिनेश्वर देव का शासन जयवंत है, उनके उपदेश में श्रद्धा रखें। यही कल्याण का मार्ग है।

श्रेणिक ने यह सुनकर बौद्ध धर्म का त्याग कर जैन धर्म को स्वीकार किया। मुनिवरों के संग से उपदेश से समकित प्राप्त किया जा सकता है, दृढ़ भी हो सकता है।

हालरडुं एवं माताओं

✻ हालरडे में परम पद की याद दिलाती माताएँ

✻ अनसुया हालरडा गाती है ;

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि

'तु शुद्ध है, तु बुद्ध है, तु संसार की माया से रहित है।'

✻ माता मदालसा - कुरु यत्नम् अजन्मनि।

पुन: जन्म लेना न पड़े ऐसे परमपद की मेहनत करना।

✻ राजा के मस्तक के बाल को संवारते समय रानी कह रही है, 'राजन्! दूत आया!' राजा चहुँओर दृष्टि करते हैं परन्तु दूत दिखता नहीं। तब रानी राजा के मस्तक से सफेद बाल निकालकर राजा के हाथ में रखती है। 'यह रहा दूत! और सफेद बाल ने राजा में परिवर्तन किया। साधुता की साधना करने निकल पड़ें।'

✻ बारह व्रत ग्रहण करने के पहले सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन, ग्रहण करना आवश्यक है। उपधान करो, दीक्षा लो या चतुर्थ व्रत स्वीकारो, सर्वप्रथम समकित की प्राप्ति आवश्यक ही है। समकति स्वीकारे बिना जिनशासन में प्रवेश नहीं मिलता।

व्यवहार सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् निश्चय से प्राप्त करना है। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म को भगवान, गुरु, धर्म के रुप में स्वीकारना वह व्यवहार से सम्यग्दर्शन है। प्रभु के वचन पर अकाट्य श्रद्धा कहीं भी शंका का नाम निशान नहीं। देव-गुरु-धर्म के प्रति बहुमान।

सच्चे हैं वीतराग, सच्ची है वाणी, आधार है आज्ञा, बाकी धूलधाणी।

* <u>पू. आ. श्री आर्यरक्षित सूरीश्वरजी महाराज का जीवन वृतांत :</u>

ब्राह्मण कुल में जन्म, दशपुर नगर में रहता उनका पूरा कुटुम्ब वैदिक धर्म में मानता था। उनकी माता 'रुद्रसोमा' जिनमत की अनुयायी एवं परम श्राविका थी।

<u>'हितोपदेश ग्रंथ' में माता रुद्रसोमा के विषय में :-</u>

रुद्रसोमा विशिष्ट शुभ कर्मोदय परिणति से पूर्व से ही जीव-अजीवादि पदार्थ को जानने वाली, पुण्य-पाप का ज्ञान प्राप्त करने वाली, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध एवं मोक्षादि तत्वों का विचार करने में विशारद थी। निर्ग्रंथ प्रवचन के विषय में सम्यक् प्रकार से अर्थ को प्राप्त करने वाली, अर्थ को ग्रहण करने वाली। अस्थि-मज्जा में धर्मानुराग के रंग में रंगी हुई थी। <u>मोक्षसुख की अभिलाषा में</u> समय व्यतीत करती थी। पिता सोमदेव ने लघु वय में ही आर्यरक्षित को काशी अध्ययन हेतु भेजा। अध्ययन-स्वाध्याय कर <u>14 विद्या के पारंगत बनकर</u> युवान वय में अपने नगर में पुनः आए समग्र नगर में स्वागत हुआ। राजा द्वारा राज्यसभा में सम्मान हुआ।

आर्यरक्षित ने स्वयं की माता को राज्यसभा में नहीं देखा। माता के प्रति उनका वात्सल्य अनुपम था। पूरा नगर आया मेरी माँ क्यों नहीं आई ? घर आए। माँ सामायिक स्वाध्याय में लीन थी। माता का सामायिक में स्पर्श नहीं कर सकते थे। दूर से ही माता के चरणों में मस्तक झुकाकर नमस्कार किया।

''माँ, तुम्हें क्या अच्छा नहीं लगा ? समग्र गाँव आया है और तुम क्यों नहीं आईं ?'

'मात्र हिंसा मे प्रवर्तित कुशास्त्र के परिशीलन रूप एवं परिणाम से दुर्गति में ले जाने वाली विद्याभ्यास कर आया है तो तेरी माँ को कैसे अच्छा लगेगा ?'

14 विद्या अध्ययन कर आए उनके नाम : शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, निरुक्त, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, ज्ञान विस्तार, धर्मशास्त्र, पुराण। यह विद्याएं कभी मिथ्यात्व वर्धक हो सकती हैं परंतु नास्तिकता पोषक तो ना ही हैं।

माँ ने कहा – तू दृष्टिवाद पढ़े तो मुझे आनंद मिले।

परन्तु माँ यह मुझे कौन पढ़ाएगा ?

"तेरे मामा दीक्षित हुए हैं। आर्य तोसली पुत्र उनका नाम है। उनके पास जा वह तुझे दृष्टिवाद पढ़ाएंगे। इतना ध्यान रखना कि वह तुझे जो कहे तू करना। आर्यरक्षित समझ गए। घर में पिता, सभी स्वजन वैदिक मार्ग के अनुयायी एवं माँ जैन धर्म के सम्यग्दृष्टि थे। विघ्नों को स्वयं देखने के पश्चात् भी माँ के प्रति अपूर्व वात्सल्य होने से सब कुछ सहन करने के लिए तैयार होकर अगले दिन प्रातः शीघ्र 'तोसली पुत्र' गुरु के पास जाने को निकल पड़े।

याद रहे, राजा का मान-पान ठुकराया, पिता की तथा स्वजनों की धमकियाँ सहन की। माँ कहे वही सत्य ऐसी श्रद्धा भी थी।

मार्ग में मामा महाराज को मिलने जा रहे एक परिचित स्वजन मिले। 'यह गन्ने तुम्हारे लिए भेंट लाया हूँ।' साढ़े नौ गन्ने थे। दृष्टिवाद के साढ़े नौ भाग का ज्ञान प्राप्त होगा ऐसा संकेत मिला।

'इक्षुवाटक' गन्ने की वाटिका में 'तोसली पुत्र' महाराज विराजमान थे, वहां गए। विधि का ज्ञान नहीं था कि वंदन किस प्रकार करना। बाहर खड़े रहे, वहां एक 'ढड्ढर' नामक श्रावक आया। मस्तक पर पगड़ी, कंधे पर खेस। उपाश्रय के द्वार पर 'निसीहि' बोलकर अंदर गए। ईरियावही कर गुरु भगवंत को द्वादशावर्त वंदन किया एवं गुरु की आज्ञा प्राप्त कर बैठ गए।

एक ही बार निरीक्षण कर आर्यरक्षित ने अंदर जाकर यही विधि की। परंतु सभा को प्रणाम नहीं किया और बैठ गए। 'भगवन्त, मुझे श्रावकत्व के परिणाम अभी ही आए हैं। मैं रुद्रसोमा का पुत्र दृष्टिवाद के अध्ययन हेतु आपके पास आया हूँ।'

'दृष्टिवाद का अध्ययन कराऊँ, परंतु इसके लिए संसार छोड़ना पड़ेगा। साधुत्व जीवन, अंगीकृत करना होगा, क्या इस हेतु तेरी तैयारी है ?'

माँ ने कहा गुरु जो कहे वह करना।

गुरु ने भी देखा, यह बालक एक बड़ा श्रुतधर बनेगा। इस हेतु बातचीत की। साधुवेश धारण किया, दीक्षा ली।

इसके परिणामस्वरुप संघ पर अति महान उपकार हुआ। जो आर्यरक्षित सूरि बने।

आर्यरक्षित सूरि ने 1. चरण करणानुयोग, 2. द्रव्यानुयोग, 3. धर्मकथानुयोग, 4. गणितानुयोग, आगमों को (अनुयोग-व्याख्या या व्याख्यान) चार अनुयोगों में विभक्त करके अल्प क्षयोपशम वाले साधकों के लिए श्रुत साधना सरल सुगम की। वह कोई छोटा उपकार नहीं है।

आगम के उदाहरण

(ज्ञाता धर्मकथा : छट्ठवां अंगसूत्र)

* तीन अलग-अलग गति में एक ही जीवात्मा का महावीर प्रभु के साथ संगम हुआ।

  मानव का भव - नंद मणियार, सांसारिक हेतु से अट्ठम पौषध किया।

  तिर्यंच का भव : मेंढक का।

  देव का भव : दुर्दुरांक देव।

तिर्यंच के भव में पश्चाताप के साथ तप एवं भगवान के दर्शन की प्रबल इच्छा द्वारा सद्गुरु रुप भगवान मिले। देव का भव प्राप्त हुआ। श्रावक नंद मणियार ने भ. महावीर स्वामी के उपदेश से समकित प्राप्त किया था। एक बार चतुर्दशी के प्रतिक्रमण के बाद श्रावक रात्रि में धर्मध्यान कर रहा था, उस समय प्यास के कारण आर्तध्यान किया। प्रात: अनेक जीवों के पानी के विरह को दूर करने हेतु से कुंए, वाव, तालाब बनवाना शुरु किया। रागदशा के कारण कुंए में मेंढक बने।

* अनिवार्य संयोगों में स्वयं के प्राण बचाने के लिए धना सार्थवाह ने स्वयं की ही पुत्री का मांस रुधिर पकाकर आहार किया था। इतना होने पर भी उसके पीछे देह टिकाने का

एकमात्र हेतु होने से आहार में अनासक्त भाव टिकाने का यह एक उत्तम उदाहरण है।

* 1000 वर्ष की तप-संयम की साधना का फल तीन दिन में भोगासक्ति में रहकर कुंडरिक मुनि ने गुमा दिया और सातवीं नरक में गए तथा संसार से उदासीन ऐसा उनके भाई पुंडरिक राजा तीन दिनों में दीक्षा का वेश धारण कर सर्वार्थ सिद्धवासी बन गए।

दोनों भाइयों की अंतिम समय में शारीरिक वेदना समान होने के पश्चात् भी, दूसरे भव में 33 सागरोपम की समान स्थिति होने के बाद भी, आत्म परिणाम अनुसार जीवों की गति, उत्पत्ति, निम्न एवं उच्च स्थान में होती है।

'आगम' के उदाहरण (सातवां उपासक दशांग सूत्र)

* भगवान महावीर के एक लाख उनसाठ हजार (1,59,000) उत्कृष्ट श्रावकों में सर्वश्रेष्ठ 10 श्रावक थे। दसों श्रावक ने 12 व्रत, 11 प्रतिमा का पालन किया। 20 वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन किया। उसमें भी अंतिम 6 वर्ष गृहस्थ प्रवृत्ति में से निवृत्ति लेकर आत्मसाधना की। अंत में 1 माह का संथारा कर समाधिमरण प्राप्त किया। प्रथम देवलोक गमन, वहां 4 पल्योपम का आयुष्य, वहां से महाविदेह में जन्म एवं वहाँ से सिद्ध बनेंगे।

* **10 श्रावकों के नाम :** आनंद, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुंडकौलिक, सकडालपुत्र, महाशतक, नंदिनी पिता, शालिही पिता।

आनंद श्रावक की दृढ़ता, कामदेव की व्रत की दृढ़ता, कुंडकौलिक की तत्व की समझ, सकडालपुत्र की सरलता, महाशतक की पत्नि से प्रतिकूल संयोग होने के बावजूद भी धर्मोपासना में दृढ़ता प्रेरणादायी थी।

* **मुनिदर्शन हेतु पांच अभिगम :** (Discipline)

सचित्त त्याग, अचित्त का विवेक, मुख पर रुमाल अथवा मुहपत्ती, हाथ जोड़ना, मन की स्थिरता धारण करना।

कामदेव श्रावक को धर्मसाधना में देवकृत उपसर्ग आया। देव ने पिशाच, हाथी एवं सर्प का वैक्रिय रुप कर धर्म श्रद्धा से विचलित करने का प्रयत्न किया, परंतु देव सफल नहीं हुआ। कामदेव प्रियधर्मी एवं दृढ़धर्मी श्रावक थे। स्वयं महावीर भगवान के मुख से उनकी प्रशंसा होती थी।

चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक एवं सकडालपुत्र चारों को देवकृत उपसर्ग हुए। देव ने क्रमश: तीन बार पुत्र वध किए तब तक भी श्रावक चलित नहीं हुए।

चुलनीपिता को मातृवध की धमकी भी दी वं उससे चलित होकर व्रत भंग हुआ। माता ने प्रेरणा देकर प्रायश्चित करवाया।

कुंडकौलिक की श्रद्धा समझपूर्वक की होने से देव के विकृत कथन से चलित नहीं हुए। नियतिवाद का युक्तिपूर्वक खंडन कर देव को निरुत्तर किया।

✻ उत्कृष्ट प्रकार के श्रावकों की प्रतिमा :-

1. प्रथम छ: आगार रहित तथा शंका कांक्षादि पाँच अतिचार रहित सम्यक्त्व नाम की पहेली प्रतिमा एक माह तक धारण करें।
2. पूर्व की (प्रथम प्रतिमा) सहित बारह व्रत पालन रुप दूसरी प्रतिमा दो माह धारण करें।
3. पूर्व की क्रिया सहित सामायिक नाम की तीसरी प्रतिमा तीन माह धारण करें।
4. पूर्व की क्रिया सहित चार माह तक पर्व के दिनों में पौषध नाम की प्रतिमा धारण करें। (पर्व - अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा एवं अमावस्या यह चार पर्वणी)
5. पूर्व की क्रिया सहित पांच माह तक पर्वणी के पौषध में रात्रि के चारों प्रहर कायोत्सर्ग रहकर कायोत्सर्ग नामक पांचवी प्रतिमा धारण करें।
6. पूर्व की क्रिया सहित छ: माह अतिचार दोष रहित ब्रह्मचर्य का पालन करें वह छट्ठी प्रतिमा।
7. पूर्व की क्रिया सहित सात माह सचित्त का वर्जन करने रुप सातवीं प्रतिमा।

8. पूर्व की क्रिया सहित आठ माह समग्र आरंभ न करने रुप आठवीं प्रतिमा आरंभ त्याग।

9. पूर्व की क्रिया सहित नौ माह सेवक द्वारा कोई आरंभ न करवाने रुप नवीं प्रतिमा।

10. पूर्व की क्रिया सहित दुस माह स्वयं के निमित्त से बनाया भोजन न करने पर दुसवीं प्रतिमा।

11. पूर्व की क्रिया सहित बारह माह मुंडन अथवा लोच कर रजोहरण तथा पात्रादिक ग्रहण कर, काया द्वारा धर्म का पालन कर, साधु की तरह विचरण एवं कुटुम्ब में प्रतिमाप्रपनस्य, श्रावकस्य भिक्षां देहि बोलकर भिक्षा मांगे।

यह ग्यारह प्रतिमा अतिचार रहित वहन करते पांच वर्ष पांच माह होते हैं। यह प्रतिमाएँ कार्यशुद्धि एवं मन शुद्धि करते आनंद श्रावक को अवधिज्ञान हुआ।

आगम के उदाहरणों : (आठवां अंतगड़ सुत्र)

अंतगड़ सूत्र में, अणगार - साधु धर्म को स्वीकार कर जो महात्माएं चरम शरीरी हैं, उसी भव में मोक्ष जाने वाले हैं। अंतकाल में अंतमुहुर्त में ही केवलज्ञान प्राप्त कर, धर्मदेशना दिए बिना ही मुक्ति प्राप्त करने वाली आत्मा को अंतगड़ केवली कहते हैं।

बावीसवें तीर्थंकर श्री अरिष्टनेमी के शासन में 51 (इक्यावन) महात्माएँ एवं चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी शासन के उनचालीस (39) महात्माएँ अंतगड़ केवली हुए, उनका वर्णन इस आगम में है।

इक्यावन महात्माएँ कृष्ण वासुदेव के ही परिवार जन थे। अंतगड़ केवली में कृष्ण महाराजा के दस काका, पच्चीस भाई, आठ पत्नी, दो पुत्रवधू, तीन भतीजे, दो पुत्र, एक पौत्र थे, यह सभी यादव कुल के राजवंशी थे। श्री अरिष्टनेमि भगवान के समवसरण में आए, धर्मश्रवण करे, माता-पिता की आज्ञा से दीक्षा ग्रहण करे। जैसे कोई व्यक्ति घर में अचानक आग लगते समय अल्प वजनी एवं बहुमूल्यवान वस्तुओं को लेकर बाहर निकलता है, उसी प्रकार जरा-जन्म-मरण की अग्नि में मानव जीवन भस्म हो उसके पहले अगुरुलघु आत्मा

को बचा लेता है। मुनिवेश में उत्तम साधुत्व के आचार-तप-ज्ञान-ध्यान कर अंतिम समय में संलेखना कर अंतिम श्वासोच्छावास द्वारा आठों कर्म का क्षय कर सिद्ध बनते हैं।

रसिक जानकारियाँ :- आगम सूत्र में से ...

- ✻ समवायांग सूत्र : भगवान ऋषभ से तीर्थंकर महावीर का विशेष अवधान रुप, अंतर, एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम था।
- ✻ भगवती सूत्र : आगम के रचनाकार सुधर्मास्वामीजी थे। उसका संकल्न ई.स. पाँचवी शताब्दी में श्री देवर्धीगणि क्षमाश्रमण ने किया।
- ✻ मेघकुमार के मिथ्यात्वी जीव ने मात्र जीवों के प्रति अनुकंपा के भाव से समकित पाया था।
- ✻ मल्लीनाथ तीर्थंकर का स्त्रीवेद में जन्म लेना अवसर्पिणी काल की आश्चर्यकारक घटना है।
- ✻ स्वयं के तीनों भव अलग-अलग होने के पश्चात् तीनों भव में भगवान महावीर मिले। (1) मानव का नंद मणियार का भव (2) तिर्यंच का मेंढ़क का भव एवं (3) दुर्दुशांक देव का भव।
- ✻ भगवान के दर्शन की प्रबल इच्छा हो तो तिर्यंच का भव भी अवरोध रुप नहीं।
- ✻ नंदिफल वृक्ष के फल मीठे, छाया मधुरी, देखने में मनमोहक फिर भी विषैला होता है। किंपाक फल जैसा ही विषैला। मात्र दिखावा से सावधान रहें।
- ✻ आगम सूत्रों में जहाँ-जहाँ राजकुमारों को संयम लेने के भाव जागृत होते हैं, वहाँ राजकुमार स्वयं की 8 (आठ) या 32 (बत्तीस) पत्नियों से आज्ञा नहीं माँगते। माता-पिता से आज्ञा लेते हैं। यह बात आज के युग में उल्लेखनीय है।
- ✻ शरीर, संबंध एवं संपत्ति यह तीनों अपनी कमजोर कड़ियाँ हैं। इसके कारण ही धर्माराधना, साधना में अवरोध आता है।
- ✻ महावीर प्रभु के समय में श्रावकों की जीवनशैली, खान-पान, रहन-सहन, सहज, सरल एवं पथ्यकारी थी। लोगों में आभूषण धारण करने की रुचि थी। मालिश विधि में

शतपाक तेल एवं सहस्त्रपाक तेल, हरे जठीमध (Licorice) का घोल एवं बाल धोने में आंवले उपयोग करते थे। श्रीमंत संख्या में कम परन्तु बहुमूल्य आभूषण पहनते थे। पुरुषों में अंगूठी पहनने का विशेष प्रचलन था। भोजन के पश्चात् मुखवास की प्रथा थी। कन्या के लग्न में दहेज दिया जाता था।

* आत्मा अरुपी है। ज्ञान गुण की उपलब्धि भी अरुपी दृश्य में ही होती है। जड़ पदार्थ रुपी होते हैं, इस हेतु ज्ञान उनका गुण नहीं हो सकता।
* साधु का महाव्रत रत्न खरीदने के बराबर कहा जाता है। रत्नपूर्ण ही खरीदना पड़ता है। श्रावक के व्रत स्वर्ण खरीदने के बराबर कहा जाता है। शक्ति अनुसार खरीद लो।

अंतगड़ सूत्र के आधार पर

अणगार-साधु धर्म स्वीकारके, जो महात्मा चरम शरीर है, उसी भव में मोक्ष जाने वाले है और अंतकाल में अंत:मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करके, धर्मदेशना दिए बिना ही मुक्ति को प्राप्त करने वाले, संसार को संपूर्णत: अंत करने वाले जीव हैं, वह अंतकृत केवली कहे जाते हैं।

कृष्ण वासुदेव के ही परिवार के 51 (इक्यावन) चरित्रवान आत्माओं ने अंतकृत केवली पद को प्राप्त किया है। उसमें श्रीकृष्ण के 10 काका, 25 भाई, 8 पत्नी, 2 पुत्रवधू, 3 भतीजे, 2 पुत्र, 1 पौत्र की समावेश है। इन समस्त महात्माओं ने अरिष्टनेमि भगवान के समवसरण में आकर धर्मश्रवण प्राप्त कर, दीक्षा अंगीकार कर मुक्ति का पाया है।

* श्रीकृष्ण वासुदेव ने उत्कृष्ट रसपूर्ण धर्मदलाली करके तीर्थंकर नामकर्म निकाचित किया था। वे आगामी चौबीसी में 12वें तीर्थंकर अममनाथ स्वामी बनेंगे।
* पाँच माह तेरह दिनों में ग्यारह सौ इकतालीस (1141) व्यक्तियों की बेधड़क हत्या (978 पुरुष + 163 स्त्रियाँ) करने वाला अर्जुन माली, सुदर्शन सेठ की श्रद्धा के सु-दर्शन से प्रभावित होकर, अणगार बना। छट्ठ पारणे, छट्ठ करके, अद्भुत समता, सहनशीलता, क्षमाभावना, धैर्य आदि की पराकाष्ठा को पाकर, मात्र छ: माह में, अष्ट कर्मों का क्षय कर <u>भगवान महावीर के पहले ही मोक्ष प्राप्त किया।</u>

* आठ वर्ष के अतिमुक्त कुमार ने वैराग्य भाव जागृत होते माता-पिता के समक्ष इस प्रकार आज्ञा मांगी - "हे माता-पिता ! मैं जानता हूँ वह नहीं जानता एवं जो नहीं जानता वह मैं जानता हूँ ।" अद्भुत विनय एवं आंतरदृष्टि ! अर्थात् मेरी मृत्यु कब होगी, मैं कहां जाऊँगा, तत्वज्ञान से मैं अज्ञात हूँ, और इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए संयम ग्रहण करने की इच्छा रखता हूँ।

* अनुत्तरोपपातिक दशांग आगम सूत्र में स्वयं महावीर भगवान द्वारा जिसकी अप्रतिम प्रशंसा हुई थी वह धन्ना अणगार, दीक्षा के प्रथम दिन ही आजीवन छट्ठ के पारणे आयम्बिल करने की प्रतिज्ञा लेकर, आठ माह में अजोड़ तपस्या, उत्कृष्ट भाव से कर, एक माह की अंतिम साधना कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । एकाभवतारी बन सिद्धदशा प्राप्त करेंगे ।

* तपस्वी गुणीजनों के गुणानुवाद निःसंकोच करें, प्रमोद भावना में कभी प्रमाद न करें । धन्ना अणगार की प्रशंसा, गुणानुवाद तीर्थंकर ने भी स्व मुख से किया । प्रेरणा लेकर हम भी धन्य पलों से मनाना सीखें ।

* विपाक सूत्र आगम में : जो देय, दाता एवं प्रतिग्राहक पात्र तीनों शुद्ध हो तो वह दान जन्म मरण के बंधन को तोड़ने वाला बन जाता है ।

  * दान - शुद्ध द्रव्य, निर्दोष वस्तु, शुद्ध परिणामी धन ।
  * - दाता - पवित्र, गोचरी के नियमों के आधीन रहते श्रावक ।
  * लेनार - महातपस्वी, अणगार, श्रमण ।

  ऐसी त्रिकरण शुद्धि एवं विशुद्ध भावना उर्ध्वगति के पंथ पर ले जाती है । सुबाहुकुमार की धर्मकथा ऐसी ही घटना को प्रेरणा देती है ।

* उववाई उपांग सूत्र आगम में : भगवान महावीर के देह वैभव एवं गुण वैभव का वर्णन एक पच्चीस (25) लाईन के वाक्य से एवं गुणों का वर्णन 63 लाईन के दीर्घतम वाक्य रचना से किया है ।

आत्मा की ओर दृष्टि करें

'जिनाज्ञा' मासिक पत्र में से - प. पू. अजीतशेखरसूरीश्वरजी म.

निष्फल एवं नकारे विचार, अनन्य एवं अति भयंकर रोग है । इन्हें दूर करने के उत्तम उपाय हैं ?

हाँ ! चित्त को शास्त्रों के अत्यधिक अध्ययन, वांचन, मनन, परावर्तन में लगा देना चाहिए । शास्त्र-सूत्र-अर्थ-आदि कंठस्थ होकर उनका मन में बारम्बार परावर्तन शक्य न तो भी वांचना में से डायरी में थोड़ा-थोड़ा लिख लेना, एवं उसे बार-बार पढ़कर कंठस्थ करने का प्रयत्न करना एवं फिर परावर्तन करना । बस, चित्त उसमें लगा रहने से निष्फल-निष्काम विचार बहुत कम हो जाऐंगे ।

दूसरे उपाय से विचारों तो, जगत के बड़े पदार्थ या छोटी-छोटी वस्तु, इसमें कोई एक भी दुनिया का या आस-पास का देखने का था विचारने का होता है ? ना, तो हम किसलिए देखने-विचारने का लेकर बैठ जाए और फालतु दुःखी होते हैं ?

जो जड़ पदार्थ है वह बाहर का विचार नहीं कर सकते, वैसे ही मुझे जड़ के प्रति बअलबत्त विशेषता ध्यान रखना है । आत्मा की ओर दृष्टि करके विचारते रहने की आदत डालना है ।

*** ज्ञानी भगवंत हमें मूर्ख रुप कैसे समझ गए ?**

1. **जिस प्रकार मिली हुई चंदन की लकड़ी को जलाकर कोयला बनाकर बेचते हैं वह मूर्ख है, उसी प्रकार अति मूल्यवान मनुष्य भव का समय जो आत्म चिंतन रुप विशिष्ट धारण करता है वह घर, परिवार, दुनिया की चिंता में जलाकर, चंदन के कोयले तैयार करने के बराबर है ।**
2. **जिस प्रकार चिन्तामणी छोड़कर काँच को पकड़े वह मूर्ख है । वैसे दान, शील, तप, भाव, विविध अनुष्ठान रुप चिन्तामणी है, पुण्य उपार्जन करने वाले है । चिंताएँ दूर करने वाले हैं, यह छोड़कर गाँव प्रपंच, पंचात, टीवी, बिस्तर में पड़े रहने का आलस्य आदि काँच पकड़ने के बराबर है ।**

3. जिस प्रकार राख प्राप्त करने के लिए रुपए/डॉलर की नोटो को जला देना मूर्खता है, उसी प्रकार सुकृत के बदले में वाह-वाह से संतोष मानना यह अहम् का पोषण करने के बराबर है।

4. जिस प्रकार मक्खन के लिए पानी का मंथन करे वह मूर्ख है, उसी प्रकार इस भव में प्रसन्न स्वस्थ रहने के लिए नए-नए उपकरण बसाने की दौड़ जैसी मूर्खता है।

सुभाषित

प्रबुद्ध जीवन मासिक, पर्युषण अंक

सितम्बर-अक्टूबर 2012

आचारांग के सुभाषित वाक्य :-

* अट्टे लोए - मनुष्य पीड़ित है।
* खणं जाणाहि पंडिए - पंडित, तु क्षण को समझ, Time is Precious.

* सव्वेसिं जीवियं पीयं - सभी को जीवन प्रिय है।
* णत्थि कालस्सणा गमो - मृत्यु किसी भी क्षण आ सकती है।
* जे एग्गं जाणाई से सव्वं जाणाई - जो एक को जानता है वह सभी को जानता है।
* जे सव्वं जाणाई से एग्गं जाणाई - जो सभी को जानता है वह एक को जानता है।

* सव्तो अमत्तस्स णत्थि भयं - आप्रमादी को किसी भी प्रकार का भय नहीं।
* तमेव सच्चं णिसेकं जं जिणेहं पवेईयं - जिनेश्वर प्रणीत तत्व ही सत्य है, उसमें शंका करना नहीं।

धन्ना अणगार

'प्रबुद्ध जीवन सामयिक'

'अनुतरोपपात्तिक सूत्र' लेख में से

<u>धन्ना अणगार</u>

'अनुत्तरोपपातिक सूत्र' आगमों में नवां अंग सूत्र है । जिसमें धन्यकुमार जो धन्ना अगणार बने उनकी रोचक कथा का वर्णन है ।

काकंदी नगरी, भद्रा नाम की सार्थवाही का पुत्र धन्य कुमार । भद्रा सार्थवाही एक साधन सम्पन्न सन्नारी, प्रचुर धन संपत्ति, विपुल गौधन, अनेक दास-दासियों की संपदावाली एवं समाज में सम्मानयुक्त नारी थी ।

धन्यकुमार समृद्ध परिवार में जन्मे थे । सुंदर देह, पांच धाय माताओं : (1) क्षीर धात्री (2) मज्जन धात्री, (3) मंडन (श्रृंगार) धात्री, (4) खेलन धात्री एवं (5) अंतर धात्री (गोद में लेकर घूमे) द्वारा पालन पोषण, 32 कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ ।

माता की ओर से धन्यकुमार को प्रीतिदान में सोना, चांदी, मोती, गौकुल, घोड़ा, हाथी, दासी आदि का ऐश्वर्य 32-32 के प्रमाण में मिला था । जिसे धन्यकुमार ने प्रत्येक पत्नि को दे दिया था ।

महावीर प्रभु काकंदी में पधारे । धन्यकुमार चलकर भगवान के दर्शन को जाते थे । उपदेशामृत पीते वैराग्यवासित बन अणगार बने । <u>जिस दिन दीक्षा अंगीकृत की उसी दिन भगवान की आज्ञा लेकर जीवन पर्यंत निरंतर छट्ठ तप तथा पारणे में आयम्बिल करने की प्रतिज्ञा ली । अद्भुत आहार अनासक्त जीवन दर्शन ।</u>

आयम्बिल का आहार संसृष्ट हाथ से अर्थात् खड़े हुए या आहार से लिप्त हाथ से दो तो ही कल्पे । क्योंकि वह आहार उज्जित आहार अर्थात् जो अन्न प्रायः कोई इच्छता नहीं, फेंक देने योग्य वैसा ही <u>निःरस आहार लेने की प्रतिज्ञा ।</u>

गोचरी में पानी ना मिला, पानी मिला और भोजन न मिला हो, फिर भी अदीन, प्रसन्न चित्त, कषाय मुक्त, विषाद रहित, उपशम भाव में समाधिभाव रखकर स्थिर रहते। संयम निर्वाह हेतु ही आहार लेते थे।

प्रखर तपस्वी आंतर एवं बाह्य तप की उत्कृष्ट साधना से आत्मा प्रतिदिन तेजस्वी बनते गये। शरीर कृश, बाहर से एक-एक अंग सूखा हुआ पश्चात् मुख का तेज अग्नि के समान दैदिप्यमान। मांस एवं रक्त मानों हो ही नहीं। मात्र अस्थि, चमड़ी, नसें दिखती। ऐसी तपस्या का वर्णन साहित्य में कम ही अध्ययन करने को मिलता है।

घोर तेजस्वी अणगार के छाती की अस्थियाँ मानों गंगा की लहरों के समान अलग-अलग प्रतीत होती थी। करोड़ के मणके मानो रुद्राक्ष की माला के समान, भुजाएं सुखे हुए सर्प के समान हाथ घोड़े की ठीली लगाम की तरह लटक गए थे। शरीर इतना खत्म हो गया था कि धन्ना अगणार चलते तब अस्थियाँ परस्पर टकराने के कारण कोयले से भरी गाड़ी की तरह आवाज करती थी।

शरीर था पश्चात् भी अशरीर जैसे बन गए थे। फिर भी आत्मा, तप के प्रखर तेज से अत्यन्त तेजस्वी बन गई थी। ऐसे तपोधनी अणगार की स्वयं भगवान महावीर ने उनके गौतम इन्द्रभूति प्रमुख 14,000 श्रमणों में धन्य अणगार को महादुष्कारक, महानिर्जराकारक कहकर सम्बोधित सम्मानित करते थे।

आठ माह की अजोड़ तपस्या कर एवं एक माह की अंतिम साधना के बाद सर्वार्थ सिद्ध विमान में धन्ना अणगार उत्पन्न हुए हैं। वहां 33 सागरोपम स्थिति पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर वहां से सिद्ध बनेंगे।

धन्य हो धन्ना अणगार को

जैनम् जयति शासनम् ।।

पुत्र-पुत्री मोह के उदाहरण :

कृष्ण वासुदेव के लघु भ्राता गजसुकुमाल को अरिष्टनेमि भगवान की देशना से वैराग्यभाव उत्पन्न हुआ । कृष्ण ने सोमिल ब्राह्मण की पुत्री सोमा नाम की कन्या का परिणय गजसुकुमाल के साथ करने हेतु अंतःपुर में रखा । माता देवकी गजसुकुमाल के पुत्र मोह के कारण अनुकूल-प्रतिकूल, रागात्मक प्रलोभन, संयम मार्ग कठिन है आदि अनेक प्रकार के योग से भोग की आकर्षित करने की युक्तियाँ करती । गजसुकुमाल ज्ञानगर्भित वैराग्य के दृढ़ रंग में रंगाते 'महाकाल' नाम के श्मसान में भिक्षु महाप्रतिमा की आराधना करते हैं । गजसुकुमाल 16 वर्ष की उम्र में अंतगड़ केवली बने ।

सौमिल ब्राह्मण का सोमा के प्रति पुत्रीमोह भी तीव्र ही था । इस कारण मोहांध बनकर नवदीक्षित गजसुकुमाल मुनिराज के ताजा मुंडित मस्तक पर धधगते खेर के अंगारे गीली मिट्टी की पाल बांधकर रख दी ।

एक अति मूल्यवान शिक्षा भूले नहीं । ममत्व एक परिग्रह है । ममत्व को जैन धर्म में कर्मबंध का कारण माना है । ममत्व के त्याग से संधूरित साधना (कर्म निर्जरा का हेतु) होती है ।

विभाग – १२

जिन आगम तारे – भव पार उतारे

- 'श्रद्धांध' का स्तवन : 'तारा' विना मारूं जीवन अधुरुं 360
- जिन आगम के बारह अंग 361
- बारह अंगों की संक्षिप्त जानकारी 362
- आगम में मोक्ष मार्ग का निर्देश 367
- आत्मा के आठ भेद 368
- माकंदी पुत्र अणगार के प्रश्न 369
- अध्ययन, आध्यात्म, श्रुतज्ञान 372
- आज की बात 'चित्तशुद्धि' 373
- कितनों के शरण स्वीकारें ? 374
- भगवती सूत्र : आगम का पांचवा अंग 376

  इन्द्रियों, मतिज्ञान, छः द्रव्य, कूटस्थ
  सम्यक्त्वी जीव, भवांतर निह्नववाद
  आत्मा के सात अद्भुत विशेषण,
  कर्म प्रकृति-आठ प्रकार से कर्म बंधन,
  कर्म आदि, कर्म की विविध अवस्थाएँ
  वेदना एवं निर्जरा, 'प्रमाद' के आठ प्रकार
  क्रिया के पांच प्रकार, कांक्षा मोहनीय कर्म,
  हँसना अच्छा या खराब ? पृथ्वीकाय,
  वायुकाय, वनस्पतिकाय, निगोद अल्प
  एवं लम्बे आयुष्य का कारण
  जीवों का आहार, छद्मस्थ जीव
  शुभाशुभ पुद्गलों एवं नियाणा
  जयंति श्राविका के प्रश्न
- जीव के निकलने के पांच रास्ते 408
- विवेक आदि दर्शनवाद की चर्चा 413
- प्रशस्त क्षेत्र, तिथियाँ 415

तारा बिना मारूं जीवन अधुरूं

तारा विना, मारूं जीवन अधूरुं
तारा संगाथ मां, पूरूं ने मधुरुं ।   तारा विना ।

तारी तासीर छे, अतीत नी बारी,
भीनी संवेदना, स्पर्शे अति भारी,
दिल चहे भवोभव, तारो साथ करुं,
तारा संगाथ मां, पूरुं ने मधुरुं ।   तारा विना ।

तू मले, धरती ऊपर स्वर्ग उतरे,
मन नां आकाशे, मेघधनुष प्रसरे,
तारा संगाथे, 'सिद्धशिला' सर करुं,
तारा संगाथ मां, पूरुं ने मधुरुं ।   तारा विना ।

हंस शमणा नो, समर्पण नी पांखो,
ऊर्जा 'श्रद्धांध' की, तुझ भीनी आंखों,
दृढ़ छे विश्वास-दम, पुरुषार्थ करुं,
तारा संगाथ मां, पूरुं ने मधुरुं ।   तारा विना ।

– 'श्रद्धांध'

जिन आगम के १२ अंग

अनन्त करुणा सागर, गुणों के रत्नाकर, दर्शन के दिवाकर भगवंत ने जगत के जीवों के कल्याण के लिए द्वादशांगी रुप वाणी की प्ररूपणा (रचना) की।

इसमें प्रथम अंग – आचारांग सूत्र 18,000 पद प्रमाण है।

सभी तीर्थंकरों ने सर्वप्रथम आचारांग का ही उपदेश दिया है। महाविदेह क्षेत्र के वर्तमान विहरमान तीर्थंकर भी सर्वप्रथम आचारांग का ही उपदेश देते हैं।

मोक्ष का आव्याबाध (बाधा रहित) सुख प्राप्त करने के लिए आचार जरूरी है। इस सूत्र में ऐसे गहन भाव भरे हैं, जैसे गागर में सागर। आचारांग आध्यात्म की अमूल्य निधि है। इस सूत्र में साधु के आचार क्या हैं ? उनके करने जैसा क्या है ? संतों को सतत जागृत रहने के लिए यह प्रथम सूत्र अत्यन्त शिक्षाप्रद है। यह सूत्र माता समान, दाहिने पांव समान है।

दूसरा अंग : सूयगडांग सूत्र – इस सूत्र में साधु को शिक्षा दी गई है। यह सूत्र बांया अंग के समान है और इसे पिता की उपमा दी है।

जो साधक आधाकर्मी आहार करते हैं, उनकी दशा वैशालिक मछली जैसी होती है। ढंक और कंख नामक पक्षी पानी के बहाव में आई हुई वैशालिक मछली को अपनी तीक्ष्ण चोंच द्वारा उसे बिंध देते हैं और उसका मांस खाते हैं। मछली तड़पती हुई, चिल्लाते हुए मृत्यु की शरण में चली जाती है।

आधाकर्मी आहार : दोषित आहार

ढंक और कांख पक्षी : आहार खाने से बंधे कर्म

मछली को चोंच में पिरोना : जीव को पिरोना

तीसरा अंग : ढाणांग सूत्र : यह दाहिनी पिंडली समान है, जिसमें 1 से 10 बोल का वर्णन आता है।

चौथा अंग : समवायांग सूत्र : यह बांयी पिंडली समान है।

पांचवा अंग : मैया भगवती सूत्र : यह दाहिनी जंघा के समान है।

इसको विवाह पन्नति भी कहते हैं। इसमें 36,000 प्रश्न गौतम स्वामी ने पूछे और भगवान ने उतने ही उत्तर उनको दिए। अपने प्रिय शिष्य का संबोधन -'हे गौतम ! मेरे अंतेवासी ! ऐसे स्नेह भरे शब्द से संबोधित करते थे। गौतम स्वामी कितने भाग्यशाली थे। कितने विवेक-विनय और गुरुभक्ति में लीन होंगे। मेरे प्रभु की आज्ञा - यही मेरा जीवन और यही मेरा प्राण है। ऐसे गुणों के प्रभाव से वे भगवान के अंतेवासी बने होंगे। गुरु को अर्पण हो जाए उसे तर्पणता (तृप्ति) मिलती है।

छठा अंग : ज्ञाता सूत्र : यह बांयी जंघा समान है।

सातवां अंग : उपासक (श्रावक) दशांग (10) सूत्र : यह दाहिने कंधे समान है।

आठवां अंग : अंतगढ़ सूत्र : यह बांये कंधे समान है (केवलज्ञान बाद तुरंत सिद्ध होने वाले)

नवमां अंग : अनुत्तरोपपातिक सूत्र : यह दाहिनी भुजा समान है।

दशवां अंग : प्रश्न व्याकरण सूत्र : यह बांयी भूजा समान है।

ग्यारहवां अंग : विपाक सूत्र : यह गरदन के समान है।

बारहवाँ अंग : दृष्टिवाद सूत्र : यह मस्तक समान है।

12 अंगों का संक्षिप्त विवरण

लेखक : संग्राहक : पू. आ. भ. श्री पुण्योदयसागर सूरीश्वरजी

मुनि श्री महाभद्रसागरजी

1. आचारांग : माता समान, दाहिने पांव रुप, प्रमाण : 1800 पद।

श्रुत स्कंध :- 2 :- (1) ब्रह्मचर्य , अध्ययन, (2) आचारांग 16-अध्ययन।

वर्णन - गोचरी जाने की विधि, साधु जीवन की उपयोगी जानकारी, पृथ्वी आदि छः काय के जीवों का निरुपण।

2. सूयगडांग (सूयगड) : पिता समान, बांया अंग समान।

प्रमाण : 36,000 पद, 21,000 श्लोक।

श्रुतस्कंध : (1) गाथा षोडशक-16 अध्ययन (2) आर्द्रकुमार-गोशाला विषय में आदि।

वर्णन : 363 पाखंडी विरोध के, ऋषभदेव के 98 पुत्रों के प्रश्न-समाधान, महावीर के गुणों के विषय में।

3. (ठाणांग) स्थानांग :- दाहिनी पिंडली समान,

प्रमाण - 72,000 पद, 3700 श्लोक।

श्रुत स्कंध - (1) 10 अध्ययन है।

वर्णन - 1 से 10 अंक में आती, जगत के द्रव्य की यादी, 9 आत्माओं ने तीर्थंकर नामकर्म बांधे, वे हैं श्रेणिक सुलसा आदि, जैन भूगोल।

4. समवायांग :- बांयी पिंडली समान। प्रमाण -

श्रुतस्कंध - 2 : (1) अध्ययन में कुल 135 सूत्र हैं (2) 12 अंगों का संक्षिप्त स्वरूप।

वर्णन - 1 से 100, 200, 300, 400, 1 लाख, 10 लाख सागरोपम स्थिति पदार्थों की यादी भगवान महावीर ने प्ररुपित की है।

5. भगवती :- (व्याख्या प्रज्ञप्ति, विवाह पन्नति)

प्रमाण : 2,66,000 पद, 41 शतक, 100 अध्ययन, 1000 उद्देशा।

श्रुतस्कंध - 2 : दाहिनी जंघा समान, जयकुंजर हाथी से सूत्र की समानता।

वर्णन :- 36,000 प्रश्न, जयंती श्राविका के प्रश्न, अन्य प्रश्न।

6. ज्ञाता धर्म कथांग (नाया धम्मकहा) :- बांयी जंघा समान।

श्रुत स्कंध - 2 :- (1) ज्ञाता श्रुत स्कंध - 19 अध्ययन, (2) धर्मकथा, श्रुतस्कंध-10 वर्ग, द्रौपदी ने जिनपूजा की उसका अधिकार, इन्द्र-इन्द्राणियों के वृतांत।

वर्णन :- ढाई दिन हाथी के भव में मेघकुमार, रूपक कथाएं, मल्लिनाथ भगवान का जीवनदर्शन, नंद मणियार का जीवन वृत्तांत।

7. उपासक दशांग (उवासग दशा) :- दाहिने कंधे समान

उपासक :- श्रावक-10।

प्रमाण : 57,600 पद, 812 श्लोक।

श्रुतस्कंध - 2, प्रथम अध्ययन, आनंद श्रावक, दूसरे से 8 अध्ययन-कामदेव श्रावक आदि को चलायमान करने के लिए देवों द्वारा उपसर्ग, आनंद, कुंडकौलिक, तेतलि पिता, नंदिनी पिता को देवों के उपसर्ग नहीं हुए।

वर्णन :- आनंद आदि 10 श्रावकों का अधिकार, कामदेव, सद्दाल पुत्र।

8. अंतकृत दशांग (अंतगड़ दशा) :- 8 वर्ग, 82 अध्ययन, बांये कंधे समान।

प्रमाण - 11,52,000 पद, 850 श्लोक।

श्रुत स्कंध :- (1) श्रेणिक की रानी, महासेना, कृष्ण-100 ओली (2) श्मशान में काउसग्ग ध्यान गजसुकुमाल का जीवन वृत्त (3) अइमुत्ता मुनि और अर्जुन माली।

वर्णन - अंतकृत=केवलज्ञान प्राप्त कर तुरंत आयु पूर्ण कर 8 कर्म को क्षय करके सिद्ध हुए, यादव वेष विभूषण, श्री अंधक विष्णु के गौतम आदि 8 पुत्र शत्रुंजय पर अंतकृत।

9. अनुत्तरोपपातिक दशांग :- (अनुसरो ववाई दशा) 3 वर्ग, 33 अध्ययन, दाहिनी भुजा समान।

प्रमाण - 23,04,000 पद।

श्रुतस्कंध - भगवान महावीर ने अपनी धर्म पर्षदा में प्रशंसा की धन्ना कांकदी अणगार, 8 माह की चारित्र पर्याय में छट्ठ के पारणे आयंबिल।

वर्णन - श्रेणिक की रानी धारिणी के जाली आदि 7 पुत्र। चेल्लणां का वेहल्ल, वेण 2 पुत्र, नंदा रानी के पुत्र अभयकुमार का चरित्र।

10. प्रश्न व्याकरण (महा वागरणम्) :- बांई भुजा समान।

प्रमाण :- 4,60,800 पद

श्रुतस्कंध :- 1 श्रुतस्कंध है। 10 अध्ययन, 108 प्रश्न, 108 अप्रश्न, 108 प्रश्नाप्रश्न, विद्यातिशय महाचमत्कारी विद्यामंत्र।

वर्णन :- बहुत से भाग वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, हिंसा आदि 5 आश्रवों का वर्णन, अहिंसा आदि 5 संवर का वर्णन, नागकुमार आदि भुवनपति देवों के साथ वार्तालाप।

11. विपाकसूत्र (विवाग सूयम) :- गरदन समान।

प्रमाण :- 92, 16,000 पद

श्रुतस्कंध :- (1) दुःख विपाक श्रुतस्कंध (2) सुख विपाक श्रुत स्कंध, दोनों के 10-10 अध्ययन, युगबाहु तीर्थंकर ने दान दिया, उसका उल्लेख।

वर्णन :- मृगापुत्र का अधिकार, असह्य पीड़ा से ग्रसित जीव, गौतम स्वामी देखने जाते हैं, दान धर्म की महिमा।

12. दृष्टिवाद (दिट्ठिवाओ) :- मस्तक समान। वर्णन - अनुपलब्ध हैं।

* 45-आगम में, 12 अंग + 11 उपांग + 10 पयन्ना + 6 छेद सूत्र + 4 मूल सूत्र + 2 चूलिका का समावेश किया गया है।

10 पयन्ना :- 1 चउसरण, 2. आतुर प्रत्याख्यान, 3. महाप्रत्याख्यान, 4. भक्त परीक्षा, 5. तंदुल वैचारिक, 6. संसारक, 7. गच्छाचार, 8. गणिविद्या, 9. देवेन्द्रस्तव, 10. मरण समाधि।

10 पयन्नाओं में प्रथम चउसरण और दूसरा आतुर प्रत्याख्यान आता है। तीर्थंकर देव द्धारा अर्थ से बताया हुआ श्रुत का अनुसरण करके प्रज्ञा प्राप्त मुनि जिसकी रचना करे उसको प्रकीर्णक अथवा पयन्ना कहते हैं। इसकी औत्पातिकी आदि चतुर्विध (चार बुद्धि :- औत्पातिकी, कार्मिणी, वैनैयिकी, पारिणामिकी) बुद्धि निधान मुनिवर श्रुत अनुसार ग्रंथरूप में प्ररूपणा करते हैं (रचना करते हैं)

आतुर या आऊर पच्चक्खाण में आऊर - रोग से ग्रसित आत्मा, इसमें बालमरण, बाल

पंडित मरण एवं बाल पंडित मरण, इन तीन मुख्य विषयों पर विवेचन किया गया है। इसके अन्तर्गत देशविरति, धर्म का स्वरूप, अतिचार, आलोचना, हिंसादि, विरति, प्रतिक्रमण, निंदा आदि समाविष्ट है, संथारा की विधि का भी वर्णन है।

तंदुल वैचारिक पयन्ना का विवरण आश्चर्य यउत्पन्न करे ऐसा बौद्धिक विचार है। शरीर की अशुचि भावना का विषय मुख्य रूप से लिया गया है।

मनुष्य का गर्भकाल, गर्भस्थ जीवन की गति, गर्भ के अंतर्गत जीवन का विकास क्रम, आहार, अंगरचना, गति, प्रसव विषयक निरुपण, प्रसवकाल, प्रसव वेदना, मनुष्य की 10 दशा, युगलिक धर्म, शतायु वर्ण वाला जीव का आहार एवं अशुचि भावना, स्त्री के शरीर आश्रित निर्वेद वैराग्य उपदेश - आदि का वर्णन है।

Detailed gynecological explanation is astounding and highly surprising.

मनुष्य के जीवन में कुल कितने श्वासोस्वास है और कितने तंदुल (चावल) प्रमाण आहार करते हैं, इन मुख्य विषयों का वर्णन करते मूंग, घी, मीठा, वस्त्र आदि के उपभोग का वर्णन किया गया है।

<u>संथारा धारण करने वाले महापुरुष :</u>

आर्या पुष्पचूला के धर्माचार्य अर्णिका पुत्र, सुकोमल ऋषि, उज्जैन के अवंतिसुकुमाल, चाणक्य, काकंदी नगरी के अभयघोष राजा, चिलातीपुत्र गजसुकुमाल आदि, संथारा करने वाले गुरु श्रमण संघ, संपूर्ण जीव राशि से क्षमायाचना करते हैं।

'आयरिय उवज्झाए' सूत्र की तीन गाथाएं इस विषय में सुप्रसिद्ध हैं।

आगम में मोक्ष मार्ग का निर्देश

श्री नम्र मुनि लिखित लेख से उद्धृत

जगत के 80% जीव दिशा बिना की दौड़ वाले हैं संसार में रह कर कितनी ही गति या प्रगति करें किन्तु वह टेम्परारी ही होती है क्योंकि वह लक्षविहीन होती है।

जीवन टेम्परारी है, जीव परमानेन्ट है (जीवन अस्थिर है, जीव स्थिर है)। आत्मा मूल रूप से सभी की समान है, आत्मा की दृष्टि से सभी आत्मा समान क्षमतावाली है, कोई फर्क न होते हुए भी बहुत फर्क है।

भवोभव से अपने जीवन को दिशा देते रहे हैं, भगवान ने उस भव में जीव को दिशा दी थी। जीवन की दिशा बार-बार बदलती रहती है। महावीर ने जीवन की दिशा निश्चित की और वह दिशा एक ही थी एवं दशा भी एक ही थी।

महावीर की दिशा थी - मैं अपने को पहिचानता हूँ, मैं मुझ से मिलूँ।

हम नित्य जिसे मिलते हैं, वह मैं हूँ ही नहीं। जिससे मुझे मिलना है, उससे आज तक मैं मिला ही नहीं।

जो स्वयं से मिलता है, उसे दूसरे से मिलने का कुछ रहता ही नहीं। जो स्वयं से मिलता नहीं है वह जगत सभी को मिलने जाता है। संसार में से, जगत में से जो कुछ मिलता है वह तो मिला हुआ ही है, और जो मिला हुआ है उसे तो हमेशा खोना है।

मैं मुझसे मिलूँ, मेरे अंतर में से कुछ प्राप्त करूं। मुझसे प्राप्त करूं, जिससे सम्पूर्ण जगत प्रकाशित करूं, ऐसाबोध जहाँ से मिले उस ग्रंथ का नाम 'आगम', आगम अगम को एक्टीव कर देता है।

अगम :- इन्द्रियों से जिसको गम ही न पड़े। 8 रूचक प्रदेश।

आत्मा जब संपूर्ण शुद्ध हो गई तब महावीर भगवान बने। अभी भी हमारी आत्मा के असंख्य अशुद्ध प्रदेशों के मध्य, शरीर के मध्य भाग में आठ ऐसे प्रदेश (पार्टिकल्स) हैं, जो संपूर्ण शुद्ध हैं, (रूचक प्रदेश)। ये सिद्ध भगवान के जैसे ही रूचक प्रदेश हैं।

अनंत शक्ति, ज्ञान, दर्शन रूप हैं। असंख्य अशुद्धि के मध्य आठ शुद्ध प्रदेश नगण्य बन गए हैं। आठ प्रदेश Passive हो गए हैं। इसको एक्टिव करने वाला ग्रंथ है 'आगम'। शुद्ध होने लग जाए तब सिद्धि निकट आ जाती है। आगम मोक्ष दिलाता है।

आत्मा के 8 भेद

गौतम स्वामी महावीर प्रभु को प्रश्न पूछते हैं कि - हे भंते ! आत्मा के कितने प्रकार हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में स्याद्वाद का प्ररुपणा की करने वाले भगवान महावीर ने पर्यायास्तिक नय की अपेक्षा से आत्मा के 8 भेद कहे हैं। वे इस प्रकार हैं :-

1. द्रव्यात्मा, 2. कषायात्मा 3. मन-वचन-काया रुप योगात्मा, 4. उपयोगात्मा, 5. ज्ञानात्मा, 6. दर्शनात्मा, 7. चारित्रात्मा, 8. वीर्यात्मा।

विभिन्न पर्यायों को लेता जाय एवं छोड़ता जाय व द्रव्यात्मा, अथवा कषायादि पर्यायों को गौण करता है तब शुद्ध द्रव्य रुप स्वयं के स्वभाव को प्राप्त की हुई आत्मा वह द्रव्यात्मा है।

द्रव्य और पर्याय दोनों तत्व पदार्थ मात्र में रहे हुए ही हैं, इसलिए दोनों दृष्टि से देखे बिना मुक्ति नहीं। एक दृष्टि से द्रव्यास्तिक नय की। दूसरी पर्यायास्तिक नय की। आत्मा नित्य है, यह भाषा व्यवहार द्रव्य की दृष्टि से सत्य है।

आत्मा अनित्य है, यह भाषा व्यवहार पर्याय की दृष्टि से सत्य ही है। इस प्रकार दोनों प्रकार से भाषा व्यवहार सापेक्ष भाषण है, जो सर्वथा सत्य है।

आत्मा नित्य ही है या आत्मा अनित्य ही है, यह निरपेक्ष भाषण असत्य है, भगवान ने ऐसे व्यवहार को सर्वथा असत्य एवं प्रपंचयुक्त कहा है, कारण कि इससे संसार के क्लेश, संघर्ष वितंडावाद पैदा होता है।

दुनिया खूबसूरत है, हमें जीना आया नहीं,

हर चीज में नशा भरा है, हमें पीना आया नहीं।

आठों ही आत्माएँ परस्पर संबंधित हैं।

द्रव्यात्मा कषायात्मा होती भी है, न भी होती है। परन्तु कषायात्मा नियम से द्रव्यात्मा होती है। मोहकर्म से घिरी आत्मा नियम से कषायात्मा होती है। सिद्धात्मा योग बिना होने से योगात्मा नहीं किन्तु द्रव्यात्मा है ही। योगात्मा है वह भी नियम से द्रव्यात्मा है, सम्यग् दृष्टि जीव ज्ञानात्मा है, सिद्ध के जीव ज्ञानात्मा है। और नियम से द्रव्यात्मा होती ही है। केवली जीव उपयोगात्मा है।

1. चारित्रात्मा सबसे कम और संख्यात है, 2. ज्ञानात्माएँ अनंत हैं, सिद्ध एवं समग्र दृष्टि की अपेक्षा से, 3. उससे अनंतगुणा कषायात्मा 4. उससे विशेषाधिक योगात्मा, अयोगी की अपेक्षा से वीर्यात्मा विशेष अधिक, उपयोगात्मा, द्रव्यात्मा, दर्शनात्मा संख्या समान है।

माकंदी पुत्र अणगार के प्रश्न

भगवती सूत्र सार : भाग - 3

राजगृही नगर के बाहर 'गुणशील' नामक चैत्य उद्यान था। भगवान महावीर नगरी में पधारे। समवसरण की रचना की गई, पर्षदा आई धर्मोपदेश दिया।

उस काल, उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ये माकंदी पुत्र अणगार थे, स्वभाव से भद्रपरिणामी, उपशांत, क्रोध-मान-माया-लोभ को क्षीण करने वाले, मार्दव-आर्जव गुण को आत्मसात करने वाले, गुरु की आज्ञानुसार संयम मार्ग पर चलने वाले, विनय-विवेक से परिपूर्ण पर्युपासना करते थे। वे मुनि समवसरण में आकर वंदन-नमन कर प्रश्न पूछने लगे :-

स्थावर जीव मनुष्य अवतार प्राप्त कर मोक्ष जाते हैं ?

हे प्रभु ! पृथ्वीकाय, अप्पकाय एवं वनस्पति काय के जीव कापोत लेश्या में रहते हुए - वहां से मरकर सीधे मनुष्य अवतार को प्राप्त कर सकते हैं क्या ? अंत में घाती कर्मों का नाश कर, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जा सकते हैं ?

यथार्थवादी प्रभु महावीर ने कहा कि - ''माकंदीपुत्र अणगार ! वे जीव मानव जन्म प्राप्त कर सभी कर्मों का क्षय करके निर्वाण प्राप्त करते हैं, कृष्ण लेश्या वाला भी, ये तीन प्रकार के जीव मनुष्य जन्म में आकर मोक्ष प्राप्ति में भाग्यशाली हो गए। अग्निकाय एवं वायुकाय के जीव इस प्रकार मनुष्य भव प्राप्त नहीं कर सकते।

****

चरम अर्थात् जिसका सर्वदा अंत हो जाए

दा. त. केवली भव्यात्मा स्वयं के जीवन में शेष रहे वेदनीय, गौत्र और नाम कर्म तीनों अघाती कर्मों की निर्जरा करके और अंतिम आयुष्य कर्म को अंतिम समय में वेदन करते कर्म को 'चरम' कहा जाता है। इसका हमेशा के लिए अंत हो जाता है।

✻ <u>क्रियाएँ 5 प्रकार की हैं</u> - 1. कायिकी, 2. अधिकरणिकी, 3. परितापनिकी, 4. प्राद्वेषिकी, 5. प्राणातिपातिकी।

✻ किसी भी स्थान पर वायुकाय के बिना अग्निकाय अकेला नहीं रह सकता। कैसी भी हवा (वायु) या अग्नि हो तो सचित होती है। वायुकाय के बिना अग्निकाय प्रज्ज्वलित नहीं रह सकती।

✻ <u>पृथ्वीकाय जीव आदि :-</u>

पृथ्वीकाय, अपकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय जीव के विषय में - पृथ्वीकाय की सात लाख योनियाँ होती हैं। सभी अलग-अलग आहार वाला, उसका परिणमन करने वाले, कृष्ण-नील-कपोत तेज लेश्या धारण करने, मिथ्या दृष्टि वाला, मति अज्ञान और श्रुत-अज्ञान वाले होते हैं।

केवल कर्मयोग के मालिक, साकार उपयोग (ज्ञान) और निराकार उपयोग (दर्शन) दोनों पृथ्वीकाय जीवों के होते हैं। ज्ञान अस्पष्ट होता है। अभाव नहीं होता, अन्यथा जीव का लक्षण घटता ही नहीं।

आहार में द्रव्यरूप सर्वात्म प्रदेशों से, क्षेत्र से असंख्यात प्रदेशावगाढ़, काल से

जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम काल में तथा भाव से वर्ण-गंध-रस और स्पर्शवंत पुद्‌गल लेता है।

ग्रहण किए हुएआहार को शरीर और इन्द्रिय रूप से परिणाम आ सकता है तथा आहार किए हुए का असार भाव मल के समान नष्ट हो जाता है, अनाभोग रुप आहार करते ही हैं। उसी प्रकार से दृष्टि या अनिष्ट स्पर्श का वेदन अनाभोग पूर्वक होता है, परन्तु स्वयं को संवेदन नहीं होता।

18 पापस्थान भी पृथ्वीकाय जीव को होते हैं। पृथ्वीकाय जीव अन्य स्थान में रहे हुए पृथ्वीकाय के जीवों का हनन करता है फिर भी अहिंसा का अहसास नहीं होता। दा. त. लाल मिट्टी और काली मिट्टी का मिश्रण भी परस्पर घातक बनता है।

* पृथ्वीकाय के जीवों की गति : दा. त. नरक गति को छोड़ शेष मनुष्य, तिर्यंच या देवगति में से निकल कर पृथ्वीकाय में जाना।

नरक गति में से सीधे पृथ्वीकाय में नहीं जा सकते।

देवगति में से सीधे पृथ्वीकाय में जा सकते हैं।

जघन्य से अंतर्मूहूर्त एवं उत्कृष्ट से 22000 वर्ष की स्थिति कही है। समुद्‌घात 3 कहे हैं। वेदना, कषाय, मारणांतिक (समुद्‌घात कर मरते हैं) पृथ्वीकाय मरकर नरक एवं देवलोक में नहीं जाते। परन्तु मनुष्य या तिर्यंच गति में जाते हैं। इसी प्रकार अप्‌काय जीवों का स्वरूप जानना।

अप्‌काय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति 7000 वर्ष की जानना।

तेउकाय जीवों की तीन अहोरात्रि की जानना।

तेउकाय मरकर तिर्यंच गति में एवं 3 लेश्याएं जानना।

वायुकाय के 4 समुद्‌घात जानना - वैक्रिय, वेदना, कषाय, मरणांतिक। बादर निगोद वनस्पतिकाय का आहार 6 दिशा का जानना।

ऊपर बताए हुए 5 स्थावर सभी सूक्ष्म-बादर-पर्याप्त-अपर्याप्त-चार प्रकार से जानना।

अवगाहना - पर्याप्त सूक्ष्म निगोद की सबसे से कम ।

अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकाय की अवगाहना असंख्यात गुणा अधिक है ।

अपर्याप्त बादर वायु काय की, पर्याप्त बादर अग्निकाय की,

अपर्याप्त बादर अप्काय की, अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय की,

अपर्याप्त प्रत्येक वनस्पतिकाय तथा बादर निगोद की अवगाहना क्रमशः असंख्यात गुणा बढ़ती है ।

पांच स्थावर जीवों में वनस्पतिकाय के जीव सबसे सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हैं, बादर की अपेक्षा से भी वनस्पति काय ही सबसे अधिक बादर, बादरतर है ।

अध्ययन, आध्यात्म, श्रुत ज्ञान

''जिनाज्ञा'' में से उदधृत से

लेखक :- प.पू. रत्नभानुविजयजी म.

दशवैकालिक निर्युक्ति - 21वाँ श्लोक

अज्झपस्सायणं कम्माणं अवचओ उवचिआणं ।

अणुवच्चओ अ नवाणं, तम्हा अज्झयणमिच्छन्ति ।।

अर्थ - (श्री श्रुतज्ञान) पूर्व संचित कर्मों का ह्रास और नए कर्म बन्ध का निरोध करने के लिए आध्यात्मा का अनायन प्राप्ति कराने वाला होने से 'अध्ययन' कहा जाता है ।

5 ज्ञान में 'श्रुतज्ञान' ही 'बोलने वाला ज्ञान है।' सिर्फ श्रुत ज्ञान का ही लेना या देना हो सकता है । मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यावज्ञान और केवलज्ञान चारों ही मौन हैं। चारों के ज्ञान को समझने के लिए श्रुतज्ञान का ही आधार लेना पड़ता है ।

गुरु-शिष्य ज्ञान लेते-देते हैं; इसलिए सिर्फ श्रुतज्ञान ही संभव है । गुरु शिष्य को श्रुतज्ञान देते हैं उसके साथ दूसरा ज्ञान स्वतः प्राप्त करने की कला सीख लेते है । इसी कारण से निसर्ग सम्यक्त्वी से अधिक अधिगम सम्यक्त्वी जीवों में असंख्य गुण होते हैं । अधिगम सम्यक्त्व प्राप्ति का मूल गुरु मुख से प्राप्त किया हुआ श्रुत ज्ञान तो है ही ।

प. पू. भद्रबाहु स्वामीजी 'अध्ययन' शब्द की व्याख्या सबसे पहले समझाते हैं 'अज्झप्पसा' :- अध्यात्मा की प्राप्ति जिससे होती है वह अध्ययन।

'आध्यात्म' यानि क्या ? सरल भाषा में कर्मरज से मलिन आत्मा का शुद्ध स्वरूप आत्मा की ओर प्रयाण (प्रस्थान) यही आध्यात्म।

आध्यात्म :- शुद्ध स्वरुपी आत्मा की प्राप्ति जिससे होती है वह आध्यात्म।

आध्यात्म आत्मा में 'विवेक' पैदा करता है, विवेकी मनुष्य - हेय, ज्ञेय और उपादेय का भेद जानता है। विवेकी जीव आश्रय का निरोध कर, पूर्वकृत कर्मों को शुद्ध करने का प्रयत्न प्रारंभ कर देता है। पूर्व संचित कर्मों का क्षय और नए कर्म संचय का निरोध। इसके मूल में श्रुतज्ञान ही है।

इसीलिए आध्यात्म शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के लिए श्रुत ज्ञान की उपासना एवं तत्व की भावना अनिवार्य अंग कहा है; याद रहे - जैन शासन में प्रत्येक व्यवहार में श्रुत ज्ञान, केवलज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण कहा है।

आज की बात 'चित्तशुद्धि'

प. पू. आ. जयघोषसूरीश्वरजी म. की हितशिक्षा का सारांश

* जो चित्तशुद्धि होती है तो बाह्य परिबल शुभ मिलता है एवं आंतरिक परिणति भी उज्ज्वल बनती है।

* शुभ निमित्त, शुभ योग, शुभ भावना, चित्त शुद्धि से मिलते हैं। जैसे-जैसे अशुभ हो तो वह आभ्यंतर और बाह्य स्तर छूटता जाता है। चित्त विशुद्धि से अशुभ विकल्प छूटते हैं, किन्तु बाह्य भूमिका में आसन्निमितो से भी आत्मा दूर रहती है।

* चित्त शुद्धि कैसे मिलती है ?

शुद्धि, स्यात् ऋतुभूतस्य :- जो सरल बनता है वह नम्र बनता है, उसको शुद्धि मिलती है। सरल बनने के लिए 'अज्ञान' एवं 'वक्रता' दोनों का त्याग करना पड़ता है। अज्ञान समर्पण से जाता है। अगीतार्थ साधु भी जो भूल करे और वह गीतार्थ को समर्पित होगा तो

गीतार्थ द्वारा दोष की शुद्धि हो जाएगी, वह दोष एवं उस विषयक अज्ञान दोनों दूर हो जाएंगे।

ज्ञान को समर्पित हो जाने से ज्ञान प्राप्त होगा। शुद्ध ज्ञान से वक्रता सहज रूप से दूर हो जाती है। ऐसा सरल, ऋजु आत्मा शुद्धि के योग्य है, उसी को चित्त शुद्धि मिल सकती है।

अन्य दर्शनों में बताया है कि चित्तशुद्धि, मूलाधार चक्र से लेकर सहस्त्रार चक्र तक सातों चक्रों को गति देता है। शरीर के ये चक्र गतिमान होते हैं या नहीं इनको वेग मिलता है या नहीं किन्तु चित्तशुद्धि से मोक्ष के प्रति की बाह्य और आभ्यंतर दोनों, मूल आधार-शुभ अध्यवसाय स्वत: शुभ सामग्री दोनों वेगयुक्त होकर आ मिलती है।

सरल बनकर चित्त की विशुद्धि कर अपनी आत्मा शीघ्र परमपद प्राप्त कर सिद्धशिला में स्थान ग्रहण करे ऐसी प्रार्थना।

कितने का शरण लिया ?

आगम को जानो : सूयगडांग सूत्र

कितनों का शरण लिया, पर न लिया एक अरिहंत का।

कहीं सांप्रदायिक झगड़ा हो गया, तुम कहीं फंस गए, तुम्हारे चारों ओर आधा पौन किलो मीटर का रास्ता ऐसा है कि तुमको यदि कोई देख ले तो जला डाले, काट डाले, मार डाले, बचने की कोई स्थिति नहीं है और ऐसे में कोई सज्जन मिल जायें, चाहे वो उसी जाति का हो परन्तु तुमको विश्वास हो जाए कि ये मुझे बचा लेगा, भाई मुझे बचा लो, उसको दया आ गई और उसने कह दिया चलो आ जाओ, लेकिन यदि किसी ने तुझे देख लिया तो तुझे भी मारेगा, मुझे भी मार डालेगा। ये देख भोयरा है, इसमें अंदर उतर जा। बहुत दिनों से बंद वह भोंयरा (तलघर) न खिड़की न द्वार, न वेंटिलेशन, अंधेरा घुप्प, चामचिड़ियों के घर हों, भयंकर बदबू आ रही हो, दिन में एक बार खाने का देकर चला जाए, ऐसा भोयरा हो फिर भी तुम उसमें उतरोगे न? क्योंकि

वह शरणगाह लगेगा। जैसा तैसा कैसा भी है ? मेरे को तो बचा रहा है। जिसको भय लगेगा वह तो ऐसा शरण स्वीकार करेगा। जिसको भय नहीं लगेगा वह ऐसा शरण स्वीकार नहीं करेगा।

* शास्त्रों में 4 शरण बताएं हैं, किन्तु आपके कितने शरण हैं ?

कोर्ट की प्राब्लम आई ?	-	वकीलम् शरणं गच्छामि
बाल बढ़ गए ?	-	हजामम् शरणं गच्छामि
कपड़े गंदे हो गए ?	-	धोबीम् शरणं गच्छामि
बीमार हो गए ?	-	डॉक्टरम् शरणं गच्छामि
बहि-चौपड़े बदलना है ?	-	सी.ए. शरणं गच्छामि
थके-मांदे आए घर ?	-	पत्नीम् शरणं गच्छामि
वृद्ध हो गए ?	-	पुत्रम् शरणं गच्छामि
अधिक अस्वस्थ हो गए ?	-	स्वजनम् शरणं गच्छामि

ऐसे कोई भी व्यक्ति जहां तक आधारभूत लगेगा, शरण भूत लगेगा, वहां तक संसार नहीं छूटेगा, ज्ञानी भगवंतों ने उसका बंधन रूप परिचय कराया है।

पू. उपाध्यायजी ने 'अध्यात्मसार ग्रंथ' में भव स्वरूप अधिकार बताया है। उसमें संसार को समझाने के लिए 20-20 उपमाएँ दी हैं, उसमें एक उपमा में कहा है :-

मोह ने मजबूत पांसा बनाया है और उसे तुम्हारे गले में डाला है। उसका पल्लू (एक किनारा) उसके हाथ में है, उस पासे को चिकनाहट से तर कर रक्खा है, इसलिए वो गले में अच्छा लग रहा है, किन्तु जितना चिकनाहट से अच्छा लगता है, उतनी ही उसकी गठान मजबूत होती जाती है और मृत्यु बहुत शीघ्र आती है।

गले दत्वा पाशं तनयवनिता स्नेह घटितं। पुत्र और पत्नि के स्नेह में अनुरक्त डोरी स्नेह के बंधन में चेतना को लिप्त करती है। जिसको बंधन से डर लगता है, उसे ही देव-गुरु-धर्म का शरण अच्छा लगता है। संसार से डर कर आया प्राणी आगम की शरण में आ जाए और यही प्राणी इसका अध्ययन करने लायक है।

भगवती सूत्र : आगम का पांचवा अंग

41 विभाग हैं, जिनको 'शतक' कहा जाता है।

शतक के अन्तर्गत विभाग को 'उद्देशक' कहा जाता है।

इस अंग में 100 अध्ययन हैं, 10,000 उद्देशक हैं, 36000 व्याकरण के प्रश्न हैं और 2 लाख 88 हजार पद हैं।

भगवती सूत्र में केवलज्ञानी ने गणधर द्वारा पूछे गए प्रश्नों का समावेश किया है। मुख्य प्रश्नकार : इन्द्रभूति (गौतम स्वामी), अग्निभूति, वायुभूति, मंडितपुत्र, माकंदी पुत्र, रोहक, जयंती श्राविका, उसी प्रकार अन्य तीर्थिको अर्थात् अन्य सम्प्रदायिक भी थे।

प्रमुखता से तो इस सूत्र में गौतम एवं भगवान महावीर के प्रश्न-उत्तर हैं।

भगवती सूत्र का पारायण पर्युषण के दिनों के अतिरिक्त होता है।

भगवती सूत्र में गणितानुयोग की प्रधानता है, फिर भी द्रव्यानुयोग, चरितानुयोग और कथानुयोग भी पूर्ण रूप से देखने को मिलता है।

✻ भगवान महावीर ने गौतमस्वामी के पूछे प्रश्न के उत्तर में बताया कि लोकस्थिति (संसार-मर्यादा) आठ प्रकार की होती है (शतक-1, उद्देश्य-6)

✻ वायु आकाश के आधार पर रही हुई।

✻ उदधि (समुद्र) वायु के आधार पर रहा हुआ है।

✻ पृथ्वी समुद्र के आधार पर रही हुई है।

✻ जीव (त्रस-स्थावर) पृथ्वी के आधार पर रहे हुए हैं।

✻ अजीव (जड़ पदार्थ) जीव के आधार पर रहे हुए हैं।

✻ अजीव को जीवों ने और जीवों ने कर्मों को संग्रहित कर रखा है।

✻ आकाश सभी वस्तुओं का आधार होने से आधार बिना का है। आकाश के जीव 'खर' भाग के उपर तिरछा लोक में रहते हैं।

इन्द्रियाँ, मतिज्ञान, छः द्रव्य

* इन्द्रिय द्वारा आत्मा को ज्ञान होता है, इन इन्द्रियों को आत्मा ने ही अपने हिसाब से रची हुई है। देव-देवी या ईश्वर ने नहीं रची। इन्द्रियों का विषय ग्रहण सर्वथा नियत होता है।

* अंधेरे में आम का स्पर्श करने से मालूम होता है कि आम है, सूघने से मीठी-खट्टे का आभास होता है। रंग पीला होगा ऐसा अनुमान हो जाता है। यह सब मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अपाय, धारणा, 4 प्रकार में 'धारणा' के आभारी हैं। अवधान-प्रयोग में धारणा शक्ति की लब्धि ही चमत्कारी बनती है।

* जीव नाम कर्म के उदय से प्राणों को ग्रहण करता है। जिसके प्राण नहीं वह अजीव है।

* <u>छः द्रव्य</u> :- जीव, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, एवं काल। ये छः ही छः द्रव्य नित्य, अवस्थित और अरूपी हैं।

* नित्य : इनके मूल स्वभाव का व्यय नहीं होता, वे प्रत्येक द्रव्य अपने अपने स्वरूप में स्थिर रहने वाले हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय कभी नहीं बनना।

* <u>अवस्थित</u> : संख्या में हानि-वृद्धि कभी नहीं होती, परस्पर परिणमन नहीं होता इसलिए अवस्थित है।

* <u>अरूपी</u> :- पुद्‌गलास्तिकाय के अतिरिक्त सभी द्रव्य अरूपी हैं, रूप-मूर्त, चार गुणों से युक्त रूप, रस, गंध, स्पर्श।

कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं जो गुण (स्वभाव) बिना का हो, अर्थात् गुण द्रव्य को कभी छोड़ता नहीं है।

धर्म-अधर्म-आकाश अखंड और क्रियारहित एक-एक द्रव्य ही है, जीव पुद्‌गल क्रियावान है। क्रियायुक्त-एक आकार से दूसरे आकार में एवं एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने वाले द्रव्य, परमाणु आदि रहित, मध्य बिना के, अप्रदेशी पुद्‌गल परमाणुओं से बना

हुआ, स्कंध अवयववाला होता है। उसमें छेदन-भेदन होने पर जो बचे वह परमाणु।

जैन शासन परमाणु का छेदन-भेदन में नहीं मानता।

कूटस्थ, सम्यक्त्वी जीव, भवांतर

* <u>कूटस्थ :- स्थिर रहने वाला</u>

  सम्यक्त्वी जीव का आत्मबल इतना प्रबल होता है कि अपने शुद्ध भावों द्वारा आने वाले भव में नरक गति, विकलेन्द्रिय एवं एकेन्द्रिय जाति तथा नपुंसक वेद जैसे अत्यन्त पाप भोगने के स्थान प्राप्त नहीं हो सकते। यह है सम्यक्त्व का चमत्कार।

* <u>सम्यक्त्वी जीव :-</u> अनन्तानुबंधी कषाय, मध्य के 4 स्थान(न्यग्रोध, आदि, वामन, कुब्ज) इसी प्रकार चार संघयण (ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच, किलीका) नीच गौत्र, उद्योतन नामकर्म, अशुभ विहायोगति, स्त्रीवेद आदि जो निंदनीय एवं आर्तध्यान कराने वाले स्थान हैं, उसका भी बंध नहीं करते। कारण :- ऐसे बंध में अनंतानुबंधी कषाय मुख्य कारण होता है। संकलन रूप में :-
* अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय बांधता नहीं है।
* न्यग्रोध आदि, वामन, कुब्ज के बीच के चार संस्थान नहीं बांधता है।
* ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच, कलिका, चारसंघयण का बंध नहीं करता।
* नीचगौत्र, उद्योतन नामकर्म, अशुभ विहायोगति, स्त्री वेद का बंध नहीं करता।
* निंदनीय एवं आर्तध्यान कराने वाले स्थान का भी बंध नहीं करता।
* ये स्थान अनंतानुबंधी कषायों के कारण बंधाते हैं, इसलिए बंध नहीं करता।

भवांतर किसलिए ?

भवांतर करने के लिए मर्यादा इस प्रकार बताई है:- जो अगला भव प्राप्त करना है तो उसके लिए उस भव का आयुष्य कर्म पहले बांधना पड़ता है, उसके बाद उस गति के

लिए नामकर्म और उस गति में ले जाने वाला आनुपूर्वि नाम कर्म उपार्जन करना पड़ता है, शेष सात कर्मों का बंध जीवात्मा निरंतर करता रहता है। क्योंकि जहां क्रिया है वहां कर्म है।

मन की विचार धाराओं में और मुख्य रूप से भाव मन में एक समय के लिए भी स्थिरता नहीं। कारण ? कि गत भवों में भोगे हुए पदार्थों की स्मृति एवं इस भव में पदार्थ प्राप्त करने की तत्परता इन दो कारणों से मन स्थिर नहीं रहता। द्रव्य मन को स्व-आधीन करने के लिए सालंबन ध्यान करने के उत्तम साधन स्वीकार करने के बाद भी भाव मन को स्थिर करना अत्यन्त दुर्लभ है।

जिस लेश्या को ग्रहण करके जीव मृत्यु को प्राप्त करता है उसी लेश्या का रूप लेकर वह जीव उत्पन्न होता है।

1. प्रथम, अगले भव का आयुष्य का बंध।

2. उसके बाद, गति के लिए नाम कर्म का बंध।

3. उस गति में ले जाने वाला आनुपूर्वि नामकर्म का बंध।

निह्नववाद

भगवान के सिद्धांतों के विरुद्ध अपने मत का दृढ़ता के साथ प्रतिपादन करे उसे निह्नव कहते हैं।

* निह्नववाद :- अपने कदाग्रह के कारण आगम द्वारा प्रतिपादित तत्वों का परंपरा के विरुद्ध अर्थ करे वह निह्नव कहलाता है। जैन दृष्टि से यह मिथ्यात्व का प्रकार है। सूत्रार्थ का विवाद किया जाता है, किन्तु जो अपना कदाग्रह रखता है तब वह निह्नव में परिणीत हो जाता है।

8 प्रकार के निह्नव मत :-

1. जमाली :- उसने अपने मन के विचारों का प्ररूपण किया, प्रभु महावीर का जमाई था एवं शिष्य भी था। महावीर भगवान का कहा सूत्र 'क्रियामाण कृत' - अर्थात् जो करने वाला कार्य उसे किया गया कहते हैं, जमाली ने उसके विरुद्ध अपना मत स्थापित किया। व्यवहार भाषा का भगवान महावीर का वाक्य 'कडेमाणे कडे' कराता हो तो वह कार्य किया

गया कहलाता है, जमाली को यह गलत लगा और उसने अपना मत रखा कि - जो कर लिया गया उसे ही कार्य कहते हैं भगवान की बात गलत है। यह कहकर अपना मत स्थापित किया।

2. तिष्यगुप्त :- वसु नामक 14 पूर्वधर मुनि का शिष्य था, एक समय ऋषभपुर में था। जीव प्रादेशिक मत का प्ररुपण किया। प्रभु महावीर ने गौतम के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा कि - जीव के असंख्यात प्रदेश हैं, उसमें से एक प्रदेश भी कम हो जाए तो उसको जीव नहीं कह सकते। तिष्यगुप्त ने इसका यह अर्थ निकाला कि जिस प्रदेश के बिना जो जीव जीव नही कहला सकता तो उस चरम प्रदेश को ही जीव क्यों नहीं मान लेते ?

3. अव्यक्त मत - 'आषाढ़ी' नामक आचार्य ने ऐसा मत फैलाया कि कोई साधु है या देव ऐसा निश्चित नहीं कहा जा सकता, इसलिए किसी साधु को वंदन नहीं करना ऐसी एकांत दृष्टि का प्रचार किया।

4. सामुच्छेदिक निर्भव :- समुच्छेद - जन्म होते ही अत्यन्त नाश। 'अश्वमित्र' नामक साधु ने यह मत कायम किया कि - 'अनुप्रवाद पूर्व का अध्ययन करते समय यह पढ़ने में आया कि उत्पन्न होते ही जीव नष्ट हो जाएगा' की संदेह में मत की हठवादिता।

5. गंग :- द्वैन्क्रय निह्नव :- एक समय में दो क्रिया का अनुभव हो सकता है, सिर पर सूर्य की गर्मी एवं पांव में नदी के जल की ठंडक का अनुभव कर यह मत फैलाया। गुरु ने समय की सूक्ष्मता समझाने का प्रयास किया किन्तु अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा।

6. रोहगुप्त :- अथवा षडुलूक निह्नव। उसने त्रैराशिक मत प्रवर्त्ताया। जीव अजीव एवं नो जीव। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, नामक षट् पदार्थ का उलूक गौत्र का होने से 'षडुलूक रोहगुप्त' के नाम से कहलाए और उनका मत भी षडुलूक मत कहलाया।

7. गोष्ठामाहिल :- जीव और कर्म का बंध नहीं परन्तु स्पर्श मात्र होता है; इसको 'अबद्धिक' निह्नव भी कहते हैं।

8. बोटिक :- शिवभूति। वस्त्र कषाय का कारण है, परिग्रह रूप है अत: यह त्याज्य है।

आत्मा के 7 अद्भुत विशेषण

1. <u>चैतन्य स्वरूप</u> :- स्वरूप-गुण, स्वरूपी-गुणी।

* स्वरूपी आत्मा एवं स्वरूप चैतन्य गुण दोनों भिन्न है, अभिन्न भी हैं।

* सर्वथा भिन्न नहीं और अभिन्न भी नहीं, कारण ? कारण यह है कि वस्तु मात्र का स्वरूप (गुण) स्वयं के स्वरूप को (गुणी को) छोड़कर नहीं रह सकता, इसलिए अभिन्न है। फिर स्वरूपी द्रव्य होता है, तब स्वरूप गुण होता है इसलिए भिन्न है।

* आत्मा अपनी अनंत शक्ति के माध्यम से ही शरीर, इन्द्रियाँ तथा मन का संचालन करने में समर्थ है, आत्मा के बिना उपयोग के इन्द्रियाँ अकिंचित्कर है, इसलिए आत्मा चैतन्य स्वरूपी है। प्रति समय उपयोगवंत है।

2. <u>परिणामी आत्मा</u> :-

* आत्मा कर्मबंध के योग से एक अवस्था को त्याग कर दूसरी अवस्था स्वीकार करती है, जिसे 'परिणामी' कहते हैं।

* आत्मा को कूटस्थ नित्य (किसी भी समय जिसमें परिवर्तन नहीं होता) और क्षणिक धर्मी मानने वाले, कर्मों का भोग आत्मा करती है यह किस प्रकार घटित होगा ? इसलिए यह मान्यता गलत है। सुख और दुःख का अनुभव फिर होगा ही नहीं।

* आत्मा द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है, पर्याय (शरीर) की अपेक्षा से अनित्य है, जीव द्रव्य नित्य रहता है, किन्तु किए कर्मों को भोगने के लिए एक शरीर नाश होता है और दूसरा शरीर धारण करता है, इन कारणों से ही आत्मा परिणाम धर्मी है।

3. <u>कर्ता</u> :- आत्मा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग से बनते कर्मों का कर्तृत्व धर्मयुक्त है और जो कर्ता है वह भोक्ता भी है। आत्मा अपने पाप-पुण्य के फलों को भोग सकती है।

4. <u>साक्षात् भोक्ता</u> :- स्वयं के लिए पुण्य पाप के कर्मों को पुरुष प्रत्यक्ष भोगने वाला है; चैत्यन्यमय आत्मा के प्रयत्न के बिना कुछ भी कार्य नहीं कर सकते; इससे आत्मा में कर्तृव्य एवं भोकतृत्व भी है।

5. <u>स्वदेह परिमाण</u> :- जैन दर्शन का उत्तर है कि आत्मा शरीर व्यापी है, सर्वत्र व्याप्त नहीं है, आत्मा के गुण शरीर में ही दिखाई देते हैं, आत्मा के ज्ञानादि गुण, सुख, दु:ख के पर्याय शरीर में ही मालूम होते हैं।

आत्मा में संकोच तथा विस्तार की शक्ति रही हुई है जिससे चींटी और हाथी जैसे शरीर में अबाध रूप से रह सकती है, परन्तु अन्य के दु:खों का संवेदन अपने को नहीं होता, आत्मा शरीर व्यापी होने से उसके किसी भी स्थान में यदि वेदना होती है तो उसका अनुभव आत्मा को होता है।

6. <u>प्रति शरीर भिन्न</u> :- पूरे ब्रह्मांड में एक ही आत्मा नहीं हो सकती, किन्तु प्रत्येक चेतन शरीर में जो आत्मा बसी हुई है, वह भिन्न-भिन्न है। जो पूरे संसार में एक ही आत्मा मानते हैं तो सभी के शरीर, सुख-दुख, ज्ञान, इच्छा, राग, द्वेष और मोह-माया भी एक जैसे होने चाहिए। ऐसा अनुभव नहीं होता। प्रत्येक शरीर में आत्मा पृथक-पृथक मानने से ही संसार का प्रत्यक्ष व्यवहार सत्य रूप में अनुभवित होगा।

7. <u>पौद्गलिक अदृष्ट</u> :- आत्मा अजर, अमर, अछेद्य, अभेद्य है। परंतु कर्म के आवरण के कारण वर्तमान में ऐसा अहसास होता नहीं है। <u>पौद्गलिक अदृष्ट</u> ऐसा - कर्म माया, प्रकृति, वासनारूपी मिट्टी के भार से आत्मा रूपी तूंबड़ा ढंक गया है। नए-नए शरीर में वेदनाएँ भोगना पड़ती हैं, भावांतर में भटकना पड़ता है, आदि अदृष्ट पुद्गल का प्रभाव है।

आत्मा के स्वरूप को न जानने वाले, विपरीत बोलने वाली या असत्य बोलने वाली आत्मा अगले भव में गूंगापन, जड़बुद्धि, लंगड़े-लूले अंग, तोतला, बोबड़ा बोलना एवं दुर्गंध युक्त मुख को प्राप्त करने वाली होती है। ऐसा शास्त्रीय कथन है।

कर्म प्रकृति : आठ प्रकार से कर्म बन्धन

क्षमाश्रमण प.पू. पूर्णानंदजी म.सा.

* <u>कर्म प्रकृति :-</u> मोहनीय कर्म जब उदय में आता है; तब जीव <u>वीर्यता</u> से उपस्थान (परलोक के प्रति गमन) करता है । वीर्यता के 3 भेद हैं - बालवीर्यता (अविरति जीव) पंडित वीर्य (सर्व विरति जीव), बाल पंडित वीर्यता (देशविरति जीव) । उपस्थान बाल वीर्यता से होता है ।

मोहनीय कर्म जब उदय में आता है, तब जीव अपक्रमण भी करता है, (उत्तम गुण स्थान से ही नतर गुण स्थान में जाता है) वह भी बालवीर्यता से एवं संभवत: बाल पंडित वीर्यता से ।

<u>किए पापकर्म भुक्तान नहीं किए, अनुभव किए बिना नरक, तिर्यंच, मनुष्य एवं देवगति के जीवों का मोक्ष नहीं होता ।</u> कर्म के दो भेद बताए हैं, प्रदेश कर्म एवं अनुभाग कर्म, इसमें प्रदेश कर्म अवश्य भोगना पड़ता है, अनुभाग कर्म कुछ भुक्तान होता है, कुछ नहीं होता ।

वीर्यता का अर्थ है प्राणीमय । 'बाल' का अर्थ है, जिस जीव को सम्यक् अर्थ का बोध नहीं हुआ एवं सद्बोध युक्त विरति न हो तो वह जीव बाल यानि मिथ्या दृष्टि जीव कहलाता है।

जो जीव सर्व पापों का त्यागी होता है वह पंडित अर्थात् सर्वविरति हो वह पंडित उसी प्रकार अमुख अंश से विरति होने से पंडित और अमुख अंश से न होने से बाल 'बाल पंडित' अर्थात् देश विरति जीव ।

<u>* आठ प्रकार से जीव कर्म बंध कैसे करता है ?</u>

इसके उत्तर में प्रभु ने फरमाया है कि - जब ज्ञानावरणीय कर्म का उदयकाल चल रहा हो तब दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव भी नियमा होते हैं । इसके विपाक में दर्शन मोहनीय कर्म (तत्व को अतत्व के रूप में मानना और Vice Versa यह मिथ्यात्व है) भी होता है, तब जीवात्मा आठ प्रकार से कर्म बांधती है ।

शास्त्रीय वचन है कि - मोहनीय कर्म के उदयकाल में तथा उदीकरण-काल में उत्तम कर्म यानि नए कर्म बांधता ही है । जैसे बीज तत्व नष्ट नहीं हुआ तो अंकूर प्रति समय में उत्पन्न होता रहता है ।

* जीवों का जैसा अध्यवसाय होता है वैसा ही पुद्गल का कर्मरूप परिणाम होता है एवं पुद्गलों का जैसा उदय होता है वैसी ही परिणति होती है ।

प्र. : गौतम स्वामी ने पूछा कि कितने स्थान द्वारा ज्ञानावरणीय आदि कर्म बंध होते हैं ?

उत्तर :- भगवान ने फरमाया कि - हे गौतम ! राग व द्वेष इन दो कारणों से कर्म बंध होता है । क्रोध, मान, माया, लोभ ये राग-द्वेष से पृथक नहीं हैं । चारों कषाय राग-द्वेष में समाविष्ट हो जाते हैं ।

संग्रहनय :- क्रोध, मान-द्वेष रूप, लोभ व माया - राग रूप समस्त वस्तुओं का एकीकरण है, पू.अ.वा.वन. एकेन्द्रिय जीव है ।

व्यवहारनय :- माया, क्रोध, मान-द्वेष रूप, लोभ-राग रूप ।

ऋजुसूत्रनय :- वर्तमान स्थिति को ही स्वीकार करें ।

क्रोध :- अन्य के विनय समय में द्वेष रुप ; क्रोध - अन्य के क्रोध समय में रागरुप

मान :- अन्य के गुण के समय द्वेषरुप, मान-अहंकार पुष्टि के समय राग रुप,

माया :- अन्य को ठगने समय द्वेषरुप, माया - अन्य का ग्रहण समय राग रुप,

लोभ :- शत्रु का अस्वीकार समय द्वेष रुप, लोभ - राग रुप

शब्द नय :- शब्द को महत्व दें, क्रोध और लोभ का समावेश मान एवं माया में हो जाता है, अन्य का उपघात करने वाला लोभ होता है तो द्वेष एवं मूर्छारुप लोभ होता है तो राग ।

* जीवात्मा के प्रति प्रदेश में 4 घाती कर्मों की धूल चिपकी हुई है, वह सभी जीवों को वे कर्म भुक्तान करने पड़ते हैं (क्षीण घाती केवली के अलावा)

* आयुष्य, नाम, गौत्र और वेदनीय कर्म संसार के चरम समय तक केवली भगवंतों को भी भोगना पड़ते हैं ।

* सीमातित विषय वासना, भोग विलास, परिग्रह की ममता।

* जीवात्मा प्रति समय ज्ञान, दर्शन, उपयोग वाला होता हुआ भी जब सामग्रीवश राग तथा द्वेष की लेश्याओं में वृद्धि होती है, तब कर्मों का बंध होता है।

सामान्य एवं विशेष अध्यवसायों से बांधे हुए कर्म फल की प्राप्ति समय उदय में आए हुए अन्य से उदय में लाए हुए एवं स्व तथा पर निमित्त को लेकर उदय में आते हैं।

दा. त. मनुष्य और तिर्यंच के जीव में 'निंद्रा' नामक दर्शनावरणीय कर्म विशेष प्रकार से उदय में होता है। जब नारकी जीव और देवों के निंद्रा का उदय अपेक्षा से बहुत कम होता है।

<u>अन्य के कारण कर्म का उदय :</u> कोई मनुष्य पत्थर फैंके या तलवार अथवा लकड़ी से अपने ऊपर हमला करे तब अपने को अशातावेदनीय कर्म उदय में आता है।

कर्म का 10 प्रकार से रसोदय होता है। 5, द्रव्येन्द्रिय द्वारा और 5 भावोन्द्रिय से।

<u>* इन्द्रियों के विषय में :- इन्द्रियों के दो भेद : 1. द्रव्येनिद्रय एवं 2. भावेन्द्रिय।</u>

द्रव्येन्द्रिय :- इन्द्रियों के आकार रूप में बनता है वह (उसके दो भेद)

1. <u>निवृत्ति</u> :- बाह्य रुप इन्द्रियों का आकार दिखाई देता है, वह निवृत्ति और अंदर का आकार वह अभ्यंतर निवृत्ति।

2. <u>उपकरण</u> : अभ्यंकर निवृत्ति, इन्द्रिय की ग्रहण शक्ति वह उपकरणेन्द्रिय।

<u>भावेन्द्रिय</u> : कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा से उन-उन विषयों को ग्रहण करने के परिणति विशेष वह भावेन्द्रिय, आत्मा के साथ संबंध रखती है।

1. आत्मा की विषय ग्रहण करने की शक्ति वह - लब्धि भावेन्द्रिय।

आत्मा स्वयं उपयोग युक्त होकर विषयों को ग्रहण करे वह उपयोगेन्द्रिय सीमातीत विषय वासना, भोग विलास, परिग्रह की ममता तथा अतिउत्कृष्ट पापों के कारण जीव एकेन्द्रिय का अवतार प्राप्त करता है; इसमें पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय जीवों का समावेश होता है।

✻ <u>प्रदेश और अनुभाग</u> :-

प्रदेश अर्थात् कर्म पुद्गल, जीव के प्रदेश में कर्म पुद्गल ठूंस-ठूंस कर भरे हैं वे प्रदेश कर्म कहलाते हैं, और वे ही कर्म प्रदेश का अनुभव कराता रस एवं तद्रुप जो कर्म है उसका नाम अनुभाग कर्म । इन दोनों में प्रदेश कर्म का भुक्तान निश्चित है । कर्म प्रदेश का विपाक अनुभव नहीं होता, फिर भी कर्म प्रदेश नियम से नष्ट हो जाते हैं । अनुभाग कर्म भुक्तान होता है और न भी होता है ।

पुद्गल भूतकाल में थे, वर्तमान में है एवं भविष्यकाल में भी जरूर रहेगा, पुद्गल का अर्थ परमाणु के समान किया गया है ।

भगवान ने फरमाया कि - हे गौतम ! पुद्गल परमाणु तीनो काल में शाश्वत् है, क्योंकि जो सत् होता है वह क्षेत्र ओर काल को लेकर तिरोभासी रूप में अर्थात् रूपांतर अवस्था प्राप्त कर सकता है । परन्तु समूल नष्ट नहीं हो सकता । मिट्टी की मटकी बनती है, जब फूट जाती है तो ठीकरे के रूप में हो जाती है, समय निकलते मिट्टी द्रव्य रूप में परिणित हो जाती है - कारण - मिट्टी द्रव्य, 'सत्' है, सत् यानि सम्पूर्ण नष्ट नहीं होती । दीपक का प्रकाश एवं अंधकार दोनों, जैन दर्शन में पुद्गल द्रव्य रुप माना है । किसी भी समय पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और जीव सर्वथा नष्ट नहीं होते । जीव तथा पुद्गल के बिना संसार भी नहीं और संसार भी जीव एवं पुद्गलो से खाली नहीं ।

<u>पुद्गल का चमत्कार</u> :- उड़द की दाल मन ललचाकर आसक्ति जगाती है, जीव इन्द्रिय के भोग तथा लालच को जीवन का सर्वस्व मान बैठे तब पुद्गल पदार्थ चमत्कार बताने को तैयार रहता है ।

<u>पुद्गल छोड़ने के नहीं हैं । उसके प्रति का लालच छोड़ने का है । स्त्री को छोड़ना नहीं उसके प्रति का दुराचार छोड़ दो । श्री मंताई या सत्ता छोड़ने की नहीं । उसके प्रति रही साध्य भावना त्याग कर साधन भाव पैदा करने का है ।</u>

कर्म आदि

भगवती सूत्र सार संग्रह - लेखक - स्व. पू. विद्याविजयजी म.

कर्मों का प्रवाह निरंतर चालू रहता है, बंधे हुए कर्म स्वयं की स्थितियों का क्षय होते ही प्रवाह चालू, उसका प्रारंभ हो जाता है।

उदीरणा का अर्थ :- भविष्य में दीर्घ समय से उदय में आने वाले कर्म दल सद्ध्यान, स्वाध्याय तथा सात्विक तपस्या के बल से आत्मा के विशिष्ट अध्यवसाय को खींचकर, उदयावलिका में प्रवेश कराने की आत्मा की विशेष शक्ति उदीरणा है।

अशुभम्जी :- अशुभ/अशुद्ध विचारों में हर समय कर्मदल को आत्मा के प्रदेशों में इकट्ठा करता है, कर्म उपार्जन करता है।

शुभम्जी :- सम्यग्दर्शन, अष्ट प्रवचन माता के पालन द्वारा राग-द्वेष, विकथा, प्रमाद से दूर रहता है, प्रतिक्षण परमात्मा के ध्यान में लीन रहता है, शुभ/शुद्ध विचारों में दीर्घकाल से उदय में आने वाले कर्म क्षय करते हैं। अत: बांधे हुए कर्म का उदय दो प्रकार से होता है :-

1. कर्म स्वयं की स्थिति पूर्ण होने पर उदय में आते हैं।

2. अनिकाचित कर्म उदीरणा से कर्मों के फल भोगे बिना ही कर्म प्रदेशों को क्षय कर देता है, आत्म प्रदेश से निकलने का, अलग होने का प्रारंभ हो जाता है।

अप्रमत अवस्था आत्मा में अप्रतिम शक्ति प्रकट करती है, दीर्घकाल के कर्मों को कम स्थिति (जल्दी क्षय होने) वाले कर सकती है।

अशुभ कर्मों का, तीव्र रस, पश्चाताप, प्रायश्चित, दुष्कृत्यों की पुन:पुन: आलोचना द्वारा मंद रस वाला कर सकता है। इसको अपवर्तना कहते हैं। जो हमेशा अशुभ/अशुद्ध भाव-भाते रहते हैं तो उदवर्तना करण होता है, मंद रस तीव्र बन जाता है।

तात्पर्य :- शुभ/शुद्ध भावना में रहना सीखो।

* बांधे हुए अशुभ कर्मों का रसमंद किया जा सकता है, यह भावना तीव्र हो तो अशुभ कर्मों के मूल को भी काटा (नष्ट) किया जा सकता है।

* शुभ ध्यान/शुद्ध ध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी ईंधन समूह को जलाकर राख किया जा सकता है।

* जीवात्मा जन्म के प्रथम समय से ही स्वयं के आयुष्य कर्म के दलों का दर्द भोग रहा है। कोई 70 वर्ष में मृत्यु प्राप्त करता है परन्तु आयुष्य कर्म के सर्व दल को एक साथ वर्ष में नहीं भोगा जाता, प्रतिक्षण आयुष्य कर्म क्षय होता रहता है।

* पराधीनता के कारण बिना इच्छा के भूख-प्यास सहन करता है। ब्रह्मचर्य पालन करता है, क्योंकि अनुकूल संयोग नहीं मिला हाडमारी आदि द्वारा बिना इच्छा से तकलीफ सहता है। इसको <u>अकाम निर्जरा</u> के कारण कर्म क्षय हुआ कहा जाता है।

* पराधीनता होने पर भी प्रत्याख्यान, गुरु उपदेश आदि श्रद्धा से और इच्छापूर्वक सहन करने से <u>सकाम निर्जरा</u> द्वारा कर्म क्षय होता है।

कर्म की विविध अवस्थाएँ

कर्म साहित्य एवं आगमिक प्रकरणों से

1. <u>बंध</u> - 4 प्रकार से - प्रकृति, स्थिति, प्रदेश, अनुभाग (रसबंध)

2. <u>सत्ता (संचित)</u> :- कर्म का क्षय हो तब तक आत्मा के साथ चिपके रहें वह अवस्था, फल दिए बिना विद्यमान पड़े रहते हैं।

3. <u>उदय (प्रारब्ध)</u> :- फल देने की अवस्था का नाम उदय, उदय होने के बाद फल देकर कर्म निजर्रा, क्षय प्राप्त होते हैं

4. <u>उदीरणा</u> :- नियम समय से पूर्व उदय में आने वाली अवस्था, जिस कर्म का उदय चल रहा होता है, उसकी सामान्यत: उदीरणा।

5. <u>उदवर्तना (उत्कर्षण)</u> :- बद्ध कर्म की स्थिति और रस में अध्यवसाय, विशेष के कारण वृद्धि होना।

6. <u>अपवर्तना (अपकर्षण)</u> :- मुख्य कारण (अध्यवसाय) द्वारा स्थिति और रस में कमी होना।

7. संक्रमण (आवापगमन) :- एक प्रकार के कर्म पुद्गलों की स्थिति आदि का अन्य प्रकार के कर्म पुद्गलों की स्थिति आदि में परिगमन होना वह संक्रमण कहलाता है। सजातीय प्रकृति में ही संक्रमण होता है।

8. उपशमन (तनु) :- कर्म कि जिस अवस्था में उदय या उदीरणा का संभव नहीं उस अवस्था को उपशमन कहते हैं, इस अवस्था में उद्वर्तना, अपवर्तना, संक्रमण हो सकता है।

9. निधत्ति :- जिसमें उदीरणा एवं संक्रमण का सर्वथा अभाव हो वह अवस्था। उद्वर्तना और अपवर्तना हो सकती है।

10. निकाचना (नियति) :- जिसमें उद्वर्तना, अपवर्तना, संक्रमण और उदीरणा इन चारों अवस्थाओं का संभव नहीं वह अवस्था। जिस रूप में कर्म बंधाया उसी रुप में अनिवार्यत: भोगना पड़ता है।

11. अबाध (अनुदय) :- कर्म बंध होने के बाद निर्धारित समय तक किसी भी प्रकार का कर्म फल न देना यह कर्म की 'अबाध' अवस्था है, कर्म के इस समय को अबाधकाल कहते हैं। (अनुदय काल)

* अपवाद :- आयु कर्म की 4 प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता।

दर्शन मोहनीय का चरित्र मोहनीय में संक्रमण नहीं होता।

दर्शन की घातक, चारित्र की घातक।

दर्शन मोहनीय का तीन उत्तर प्रकृतियों में संक्रमण नहीं होता।

कर्म स्वयं की स्थिति बंध के अनुसार उदय में आते हैं और फल देकर आत्मा से अलग हो जाते हैं, इसका नाम निर्जरा है, जिस कर्म की जितनी स्थिति में बंध हुआ है उतनी ही अवधि तक क्रमश: उदय में आते हैं।

कर्म की पराकाष्ठा का उदय निगोद में है, उसके बाद एकेन्द्रिय में है।

कर्मों का प्रदेश :- जीव स्वयं की कायिक आदि क्रियाओं के द्वारा, जितने कर्म प्रदेशों (कर्म परमाणु) का ग्रहण करता है, उतने कर्म प्रदेश विविध प्रकार के कर्मों में विभक्त होकर आत्मा के साथ बद्ध हो जाते हैं।

आयु कर्म :- सबसे कम प्रदेश।

नाम कर्म :- इससे कुछ अधिक प्रदेश।

ज्ञाना. - दर्शना - अंतराय कर्म :-इससे भी अधिक प्रदेश

मोहनीय - वेदनीय :- सबसे अधिक प्रदेश।

कर्मों की स्थिति :-

कर्म	उत्कृष्ट	जघन्य
ज्ञाना. दर्शना.	30 क्रो. क्रो. सा.	अंत:मुहूर्त
वेदनीय	30 क्रो. क्रो. सा.	12 मुहूर्त
मोहनीय	70 क्रो. क्रो. सा.	अंत: मुहूर्त
आयु	33 सागरोपम	अंत: मुहूर्त
नाम	20 क्रो. क्रो. सा.	8 मुहूर्त
गौत्र	20 क्रो. क्रो. सा.	8 मुहूर्त
अंतराय	30 क्रो. क्रो. सा.	अंत: मुहूर्त

वेदना और निर्जरा : द्रव्यानुयोग

वेदना एवं निर्जरा का सहचर्य :- वेदना मात्र निर्जरा युक्त ही होती है और निर्जरा मात्र वेदनायुक्त ही होती है। किए कर्म भुक्तान करना ही है, उसको वेदना कहते हैं और जो भुक्तान हो चुके हैं (कर्म) वे आत्मप्रदेश से पृथक हो जाते उसको निर्जरा कहते हैं।

मोह वासित आत्मा बिस्तर में पड़े-पड़े हाय-हाय करते कर्म भोगते हैं, जबकि ज्ञानवासित आत्मा हंसते-हंसते कर्म भुक्तान करती है।

प्रतिभा सम्पन्न मुनिराज कर्म की निर्जरा के लिए जान बुझकर विशेष कष्ट सहन करते हैं, इसलिए उनको वेदना भी ज्यादा और निर्जरा भी ज्यादा।

इहभविक, पारभविक, उभयभविक :- भगवती सूत्र भाग 1, पृष्ठ 24

इस भव में प्राप्त किया हुआ सम्यग्ज्ञान (या सम्यक् दर्शन) आने वाले भव में साथ न जाए - यह इह भव, भवांतर में साथ जायें वह पारभविक एवं 3-4 भव तक ज्ञान संस्कार बने रहें वह उभयभविक।

✻ देश विरति और सर्व विरति चारित्र वर्तमान भव तक ही होता है तो वह भाग्यशाली जीव देवगति में ही जाते हैं।

✻ तपस्या भी इह भावक होती है, आने वाले भव्य में साथ नहीं जाती।

भाग्य से ही सब कुछ मिलता है, तथा मोक्ष भी भाग्य बिना नहीं मिलता। True or False ?

False :- जैन धर्म की यह मान्यता नहीं है , अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष, पुरुषार्थ की आराधना के लिए उत्थान, कर्म, बल, वीर्य एवं पुरुषार्थ अत्यन्त और अनिवार्य आवश्यकता जैन शासन मानता है।

आत्मा को स्वयं ही व्यवहारिक अर्थ तथा काम प्राप्त करने के लिए उत्थान करना पड़ता है, उसके लिए शारीरिक क्रियाएँ करते हैं, कुछ बल का उपयोग करते हैं तथा वीर्य प्रकट करते हैं और अंत में पुरुषार्थ करते हैं और उसके बाद ही पदार्थ प्राप्त करने के लिए सिद्ध होते हैं।

भाग्यवाद अकेला काम नहीं आता।

गणधर – ये जीव 8 प्रकार से कर्म बंध कैसे करते हैं ?

भ. महावीर – जब ज्ञानावरणीय कर्म का उदय रहता है, तब दर्शनावरणीय कर्म का अनुभव नियमत: होता है, इसके विपाक में दर्शन मोहनीय कर्म भी होता है, तब यह जीव 8 प्रकार से कर्म बंध करता है।

अतत्व को तत्व रुप में मानना और तत्व को अतत्व मानना मिथ्यात्व ही है। शास्त्रीय वचन है कि मोहनीय कर्म के उदयकाल में तथा उदीरणाकाल में उत्तर कर्म यानि नया कर्म जीव बांधता ही है।

मिथ्यात्व के बीज में अविरति, कषाय, प्रमाद, योग के अंकूर हर समय उत्पन्न होते रहते हैं। जीव का जैसा अध्यवसाय वैसा ही पुद्गल कर्म से परिणत होते हैं और पुद्गल का जैसा उदय होता है वैसी ही जीव की परिणति होती है।

गौतम :– कितने स्थानों द्वारा ज्ञानावरणीय कर्म बंध होते हैं ?

भ. महावीर :– हे गौतम ! राग–द्वेष ये दो कारण से कर्म बंध होते हैं।

संग्रहनय प्रमाण :- क्रोध और मान (आत्मा को अप्रियात्मक होने से) द्वेष रुप है। लोभ और माया (आत्मा को प्रियात्मक होने से) राग रुप है।

यही कथन व्यवहार नय के प्रमाण में ऐसा विश्लेषण करते हैं।

माया पर उपघात के लिए प्रयोग किया जाता है, वह द्वेष के अभाव में नहीं बनते। क्रोध और मान तो अप्रियात्मक होने से द्वेष ही हैं, लोभ अर्थ के प्रति मूर्ख के कारण राग है।

		राग		द्वेष
संग्रह नय		माया और लोभ		क्रोध, मान
व्यहवार नय		लोभ		क्रोध, मान, माया
ऋजुसूत्र नय	मान	माया	लोभ	क्रोध
	अहंकार के उपयोग समय में राग	दूसरे का ग्रहण करते समय प्रिय अत: राग	स्वार्थ साधना करते लोभ-राग	मान-मात्सर्य के कारण, पराये के गुणों के प्रति दोष, माया पराये को ठगते समय द्वेष,लोभ-शत्रु के देश, भूमि जीतने के समय द्वेष

शब्द नय :- क्रोध और लोभ का समावेश मान और माया में ही हो जाता है। अन्य को हानि पहुँचाते समय माया का उपयोग, स्वयं का मान, क्रोध के समान है एवं इसके प्रति लालच लोभ है।

जिस समय कर्म बंधते हैं उसी समय बंधाते कर्म वर्गणा के पुद्गल ग्रहण करता यह जीव आनाभोगिक वीर्य (आत्मिक परिणाम) द्वारा ज्ञानावरणीय कर्म आदि सभी कर्मों को अलग-अलग स्थापित करता है।

जिस प्रमाण में आहार लेते हैं, तभी ही उस खाए हुए आहार में से कुछ पुद्गल रक्त के लिए, मांस के लिए हड्डियों के लिए, मज्जा के लिए शुक्र धातु के लिए निर्णीत हो जाता है।

खाए हुए सम्पूर्ण आहार का रक्त नहीं बनता किन्तु रक्त योग पुद्गल का ही रक्त बनता है, बाकी का आहार जो रस रुप बना है, वह है - विष्टा, मूत्र, पसीना, नख, बाल, नाक, आंख का मेल द्वारा बाहर निकल जाता है।

प्रमाद के 8 प्रकार = 5 प्रकार से क्रिया

* प्रमाद :- कषाययुक्त भावना, विकथा करने का कुतुहल, आहार संज्ञानी की लालसा, स्वप्नशीलता तथा वैषयिक भाव।

प्रमाद 8 प्रकार का बताया गया है :-

1. अज्ञान, 2. संशय 3. मिथ्याज्ञान, 4. राग, 5. द्वेष, 6. मतिभ्रंश, 7. धर्म में अनादर, 8. योग एवं दुर्ध्यान।

* 5 प्रकार क्रिया जो की जाती है :-

1. कायिकी :- जीव वध करने के लिए शरीर संबंधी हलचल, गमनागमन आदि। जीवन में राग-द्वेष-मोह-कुतुहल-अंनतानुबंधी क्रोध मान-माया-लोभ और अज्ञान का जोर दबदबा रहता है, तब पराघात करता है।

2. अधिकरणिकी :- जिसके द्वारा जीव नीच गति की ओर जाता है वह अधिकरण। पराघात के लिए तीर-बरछी-तलवार-लकड़ी-छुरी। जीवों को फंसाने के खड्डा-जाल आदि द्वारा होती क्रिया।

3. प्राद्वेषिकी :- द्वेषमय जीव मारना दृष्टभाव, घृणाभाव करना।

4. परितापनिकी :- जीव को परिताप (पीड़ा) करें।

5. प्राणातिपातिकी :- जीवों के प्राण हरण की क्रिया।

कांक्षा मोहनीय कर्म

कांक्षा मोहनीय कर्म उदय होने पर जीव मात्र को जिनेश्वर देव के वचनों के प्रति देश से या सर्व से शंका उत्पन्न होती है। दूसरे दर्शन ग्रहण करने की इच्छा होती है। धर्म अनुष्ठान द्वारा फल प्राप्ति में संदेह होता है।

गीतार्थ गुरुओं के समागम में आकर शंका आदि दोषों को टालना चाहिए।

"जिनेश्वर देव ने जो कहा यही सत्य है - इस श्रद्धा को स्थिर करना चाहिए।" इससे आत्म दर्शन का लाभ एवं अरिहंत देव की पहचान सत्य रूप में होती है।

कांक्षा मोहनीय कर्मबंध का कारण प्रमाद व योग है। मुख्य कारण प्रमाद है।

प्रमाद :- मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद के उत्पादक योग, योग की उत्पत्ति वीर्य से है। (वीर्य = लेश्यायुक्त जीव का मन-वचन-काया रुप साधन युक्त आत्मप्रदेश का परिस्पंदन रुप व्यापार)। वीर्य का उत्पादक शरीर एवं शरीर का उत्पादक जीव दल।

हंसना अच्छा या बुरा ?

स्वाभाविक हंसना शारीरिक दृष्टि से अच्छा हो सकता है; किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना है। कारण :-

* अनेक सांसारिक कार्य लाभ एवं हानि तथा राग-द्वेष से संयुक्त हैं, लाभ होने पर जीव भावुक रुप से मुस्कुराता है। जैसे 5 लाख के लाभ से केस(दावा) मेरे पक्ष में आया तो उसके अनुमोदन करते मुस्कुरा दिए और ऐसा 'अनुमोदन' हो ही जाता है।

* व्रत में अतिचार न लगे, तो भी हानि या लाभ के मुस्कुराहट अथवा व्यंग्य अध्यात्मिक जीवन में चंचलता लाता ही है।

* अपने शत्रु पर हमला हुआ - यह जानकर 'कांटे से कांटा निकला' इस न्याय से हंसे बिना (व्यंग्य होते हुए भी) नहीं रहा जाता।

* कभी राग-वश या कभी द्वेष-वश और कभी कुतुहल के कारण हंसना हो तो उससे आध्यात्म दूषित होता है।

* हंसना अनिवार्य या स्वाभाविक हो तो भी मन को विचलित करता है, विकथा किए बिना नहीं रहता (स्त्री कथा, देश कथा, राजकथा, भक्तकथा)।

* हंसने में क्रूरता, वैर भाव, व्यंग, मजाक, निर्दयता, ठगना, शत्रुनाश आदि का आनंद लेश्याओं की गड़बड़ी से होता है।

हंसने वाला एवं प्रत्येक क्रियाओं में उतावलापन करने वाला 8 प्रकार के कर्मों को बांधता है । सम्यग्ज्ञान, समिति, गुप्ति का निश्चित अभाव होता है एवं इस कारण से छद्मस्थता समाप्त नहीं हो सकती ।

साधक को पदार्थ कुतुहल न करा सके उसके लिए निष्परिग्रही ही रहने का आग्रह रखने का कारण पदार्थ वैकारिक (विकार भाव में) भाव में खींच न ले जाय ।

केवल ज्ञानी को हास्य या उतावलापन नहीं होता, केवलज्ञानी को संसार की माया विशेष प्रत्यक्ष होती है (छद्मस्थता से) फिर भी किसी भी प्रकार का पदार्थ हंसी उत्पन्न नहीं कर सकता । क्योंकि इनको मोहनीय कर्म समूल नष्ट हो गए हैं ।

पृथ्वीकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, निगोद

प्र. :- पृथ्वीकाय के कितने शरीर होते हैं ? लेश्या कितनी होती हैं, सम्यग् दृष्टि होते है क्या ?

उत्तर :- पृथ्वीकाय के औदारिक, तेजस व कार्मण तीन शरीर होते हैं । लेश्या 4 होती हैं।

प्र. :- पृथ्वीकाय सम्यग् दृष्टि होते हैं ?

उत्तर :- नहीं ! निश्चित मिथ्या दृष्टि है, ये अज्ञानी जीव होते हैं, दो अज्ञान ही होते हैं एवं केवल काययोगी हैं । (मति अज्ञान-श्रुत अज्ञान)

प्र. :- वायुकाय के कितने शरीर ?

उत्तर :- चार : औदारिक, वैक्रिय, तेजस एवं कार्मण ।

प्र. :- पृथ्वीकाय श्वासोश्वास लेते हैं ?

उत्तर :- प्रभु महावीर ने कहा कि - पृथ्वीकाय जीव बाहर एवं अंदर के उच्छवास (छोड़ना) को लेते हैं और छोड़ते हैं । ये जीव, भाव से वर्ण-गंध-रस-स्पर्श वाले बाहर के द्रव्य को अंदर श्वास में लेते हैं । एवं वैसे ही द्रव्य बाहर छोड़ते हैं ।

वायुकाय के श्वासोच्छ्वास :

वायुकाय के जीव वायुकाय को ही श्वासोच्छ्वास में लेते हैं और छोड़ते हैं (श्वास = सांस लेना, उच्छ्वास= छोड़ना) अनेक लाख बार मर कर पुन: अन्यत्र जाकर उसी वायुकाय में उत्पन्न होता है । वायुकाय के जीव स्वयं की जाति या परजाति के जीवों से टकरा

कर मरते हैं, टकराए बिना नहीं मरते। वायुकाय जिस वायु को श्वास एवं उच्छ्वास में लेते छोड़ते हैं, वह निर्जीव है, जड़ है।

कायस्थिति :- पृथ्वीकाय तथा वायुकाय स्वयं की कायस्थिति के असंख्य रुप के और अनंतता के कारण मरकर फिर उसी काया में उत्पन्न हो जाते हैं। एकेन्द्रिय आदि चार प्रकार के जीवों की कायस्थिति असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी की है। जब वनस्पति काय जीवों की कायस्थिति अनंत उत्सर्पिणी - अवसर्पिणी की है। अर्थात् विषय वासना के वश हुआ जीव जो वनस्पति में जन्म लेता है तो अनंतकाल तक वापिस ऊपर नहीं आ सकता।

सभी जीव मुक्त हो जाएंगे तो संसार खाली हो जाएगा ?

नहीं ! कारण कि पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय (षट्काय जीव) जीवों से भरा ये संसार है।

इस संसार में त्रसकाय (बे. त्रे. चउ, पंचेन्द्रिय) में नरक, देव, जरायुज, अंडज, पोतज तथा तिर्यंच जीवों की संख्या चराचरा संसार में ये प्रमाण है।

सबसे कम त्रसकाय, इससे असंख्यात गुणा तेजस्काय, इससे कुछ अधिक पृथ्वीकाय, इससे और अधिक अप्काय, इससे भी अधिक वायुकाय, इससे अनंतगुणा वनस्पतिकाय जीव है।

वनस्पतिकायकाय जीवों के व्यावहारिक एवं अव्यावहारिक भेद :-

व्यावहारिक :- पृथ्वीकाय आदि जीव। अव्यवहारिक :- निगोद आदि जीव। निगोद के जीव कहाँ रहते होंगे ? संसार में असंख्य गोलक हैं। एक-एक निगोद स्थानक में असंख्य निगोद जीव हैं। ये अनंतानंत जीव एक ही स्थान में रहते हैं, ऐसे असंख्य निगोद स्थान हैं, जो एक गोलक में रहते हैं; भवितव्यता के परिपाक से निगोद का जीव अव्यवहार राशि में से बाहर आता है और व्यवहार राशि में प्रवेश करता है।

संशयरहित पदार्थ जिससे पहचाना जाता है उसे 'प्रमाण' कहते हैं। सम्यक्ज्ञान प्रमाण है, विपरीत ज्ञान अप्रमाण है। जैसे - पदार्थ जिस स्वरुप में हैं, उससे अन्य प्रकार का ज्ञान होना वह विपरीत ज्ञान हैं; जैसे -

आत्मा :- चैतन्य स्वरुप परिणामी, कर्ता, साक्षात् भोक्ता, स्वदेह परिमाण, प्रति शरीर भिन्न और अपौद्‌गलिक, अदृष्टवान है।

फिर भी विपरीत ज्ञान के कारण :-

नैयायिक दर्शन :- आत्मा को जड़ स्वरूप में मानता है, शरीर व्यापी नहीं मानता।

सांख्य दर्शन :- स्थिर रहने वाला (कूटस्थ्य नित्यवादी दर्शन) आत्मा को अपरिणामी मानता है, आत्मा को कर्ता तथा भोक्ता नहीं मानता।

अद्धेतवादि :- आत्मा को व्यापक मानते हैं।

नैयायिक :- आत्मा को अदृष्ट एवं अपौद्‌गलिक नहीं मानता।

अल्प एवं दीर्घ आयुष्य का कारण

अल्प (कम) एवं दीर्घ (लंबा) आयुष्य का कारण जीव कम जीने का कारणरूप 3 कारणों से कर्म बांधता है।

1. प्राणों को मारना :- प्राण 10 हैं। पांच इन्द्रिय+आयुष्य+मनोबल+वचनबल+कायबल+श्वोच्छ्वास। कषाय और प्रमादवश हम जिस जीव की हिंसा कर रहे हैं, उसको पीड़ा हो रही है। वह हमको श्राप दिए बिना नहीं रह सकता। शत्रुभाव के कारण श्रापयुक्त शब्दों का प्रभाव द्धारा आते भव में अल्प (कम) आयु वाले होते हैं।

2. झूठ बोलकर :- झूठ बोलने वाले का हिंसा से घनिष्ठ संबंध है। उसकी भाव लेश्याएँ बुरी ही होती हैं। झूठ के माया एवं प्रपंच के साथ सीधा संबंध है । जातिमद, कुलमद, ज्ञानमद, संप्रदायमद, क्रियावाद, वितंडावाद अरिहंतपद के बाधक हैं। सत्य के बिना चारित्र की आराधना अधूरी है।

3. श्रमण-ब्राह्मण को अप्रासुक और अनेषणीय खान-पान देना। अप्रासुक=सचित्त, अनेषणीय=अकल्पनीय, जिसके द्धारा साध्वाचार स्खलित होता है।

कभी भी शून्य से सर्जन नहीं होता और सर्जन का शून्य में विसर्जन नहीं होता। यह त्रिकाल बाधित नियम है।

आत्मा शाश्वत है उसकी पूर्णता क्या ?

दुनिया पूर्ण शाश्वत है। कोई भी वस्तु का अस्तित्व शून्य में है ही नहीं। एक परमाणु को लाखों वैज्ञानिक बारह माह तक मेहनत करते हैं तो भी उसका विसर्जन शून्य में नहीं कर सकते। यह अटल-सनातन सिद्धांत है। इसलिए आत्मा शाश्वत है।

जीव योनि सिर्फ 84 लाख ही कही है। उसके सभी पेटा विभाग ले लिये जाएं तो भी अंक असंख्य का ही आता है; परंतु काल तो अनंत है, इसलिए एक योनि में अनंत बार गए बिना मुक्ति नहीं।

जीवों का आहार

<u>नारकी जीवों का आहार :-</u>

आभोग निवर्तित : इच्छापूर्वक का आहार

अनाभोग निवर्तित : अनिच्छा का भोजन

अचित्त आहार करने वाले नारकी जीवों को <u>आभोग</u> निवर्तित आहार अंसख्य समय के अंतमुहूर्त बाद होता है। <u>अनाभोग</u> निवर्तित आहार निरंतर होता है।

इस अनिच्छा का भोजन प्राय: अनंत प्रदेश, परमाणुवाला, नील वर्ण का दुर्गंधमय, तीखा-कड़वा रसयुक्त, स्पर्श में भारी, कर्कश, ठंडा एवं रूक्ष होता है।

अपने निकट रहे हुए पुद्गलों को पूरे शरीर से खाता है। जो पुद्गल है उसके असंख्य भाग से खाता है और अनंत भाग का सिर्फ आस्वादन करता है। खाए हुए आहार के परिणाम में पाँच इन्द्रियों में अनिष्टता, अकांतता एवं अनमोज्ञता का ही परिणमन होता है।

देवों के भोग्य पुद्गल के वर्ण में पीला, श्वेत, सुगंधी, खट्टा तथा मधुर रस युक्त स्पर्श में हलका, कोमल, चिकना एवं उष्ण होता है।

अनाभोग आहार सदैव (अनिच्छा वाला आहार)

<u>आभोग आहार :-</u>

पहला देवलोक सौधर्म : (ज. 2 से 9 दिन बाद) से लेकर (उ. 2 हजार वर्ष बाद)

बारहवां देवलोक अच्युत : (ज. 21 हजार वर्ष बाद, उ. 22 हजार वर्ष बाद)

पृथ्वीकाय के जीव हमेशा आहार के अभिलाषी रहते हैं।

दो इन्द्रिय जीव असंख्य समय अंतमुहूर्त में इच्छापूर्वक आहार करते हैं।

छद्मस्थ जीव

छद्मस्थजीव 10 पदार्थों को नहीं जानते।

1. धर्मास्तिकाय, 2. अधर्मास्तिकाय, 3. आकाशस्तिकाय, 4. शरीर रहित मुक्त जीव, 5. परमाणु पुद्गल, 6. शब्द, 7. गंध, 8. वायु, 9. यह जीव जिन होगा या नहीं ? 10. यह जीव सभी दु:खों का नाश करेगा या नहीं।

<u>छद्मस्थ</u> :- अवधिज्ञान आदि विशिष्ट ज्ञान रहित जीव।

* जीव का मोक्ष प्राप्ति का भाव, जब सिर्फ एक पुद्गल परावर्त काल बाकी रहता है तब जागृत होता है। उस काल को चरम पुद्गल परावर्त काल अथवा चरमावर्त काल कहते हैं।

असंख्य वर्ष	:	1 पल्योपम
10 क्रो. क्रो. पल्योपम	:	1 सागरोपम
20 क्रो. क्रो. सागरोपम	:	1 काल चक्र
अनंत काल चक्र	:	1 पुद्गल परावर्तकाल।

इस चरम पुद्गल परावर्त काल में जीव को मार्गानुसारी, सम्यकदर्शन, श्रावक धर्म एवं साधु धर्म की आराधना के लिए आत्म दृष्टि प्राप्त होती है।

यदि जैन धर्म की आराधना प्राप्त नहीं होती तो 2000 सागर तक त्रस योनि में रहकर फिर स्थावर योनि में जाना पड़ता है।

अकाम निर्जरा के कारण अनंतकाल चक्र पूरे होने के बाद त्रस योनि में जीव आता है एवं यदि सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हो तो फिर 2000 सागरोपम काल भटकने के बाद स्थावर योनि में

चला जाता है।

बालवीर्य :- बाल = मिथ्यादृष्टि, वीर्य।

बाल पंडित वीर्य :- बाल किंचित अंश में विरति यानि बाल पंडित (देश विरति वाला) पंडित वीर्य : सर्व विरति जीव।

कर्म बंध होने पर कर्म की प्रकृति, स्थिति, रस एवं प्रदेश इसी समय निश्चित होता है। प्रदेश अर्थात् कर्म के पुद्‌गल, जीव प्रदेश में जो कर्म पुद्‌गल ओतप्रोत है, वे प्रदेश कर्म कहलाते हैं, यही कर्म प्रदेशों का अनुभव होता रस वो ही अनुभाग कर्म।

कर्म प्रदेश का विपाक अनुभवित नहीं होता फिर भी कर्म प्रदेशों का नाश तो नियम से होता ही है। अनुभाग कर्म भुक्तान होते भी हैं और नहीं भी।

छद्मस्थ मनुष्य केवल संयम से, केवल संवर से केवल ब्रह्मचर्य से एवं केवल प्रवचन माता से सिद्ध-बुद्ध यहां तक कि सर्व दुखों का नाश करने वाला हुआ नहीं, होता नहीं। कारण - सिद्ध-बुद्ध तो अंतकर है, अंतिम शरीरवाला है, वे उत्पन्न ज्ञान दर्शन धर, अरिहंत, जिन केवली होने के बाद ही सिद्ध होते हैं।

'छद्मस्थ' का अर्थ 'अवधिज्ञान' रहित जीव समझना। मात्र केवलज्ञान रहित को ही 'छद्मस्थ' न समझें (भगवती सूत्र, पृष्ठ 58)।

शुभाशुभ पुद्‌गल एवं नियाणा

परमाणु - जिसके दो टुकड़े न हो सके वह परमाणु है, Indivisible matter is the smallest atam which can not be further deivided.

इस परमाणु में वर्ण-गंध-रस एक-एक एवं स्पर्श चार होते हैं। स्निग्ध (चिकना), रूक्ष (रुखा), शीत और उष्ण। ये चार स्पर्श सूक्ष्म परिणाम वाले अणु में स्कंध ही होते हैं, संपूर्ण संसार के निर्माण का मूल कारण परमाणु है।

चारों स्पर्श में से स्निग्ध एवं रूक्ष ये दो परमाणु योग्यतानुरुप इकट्ठे होते हैं (मिलते हैं) तब द्वयणुक स्कंध बनते हैं। उसमें दूसरे परमाणु मिलने पर तीन अणु स्कंध बनते हं। ऐसे करते-करते अनंतानंत परमाणुओं का स्कंध सूक्ष्म या बादर परिणाम वाले बनते हैं। बादर परिणाम वाले स्कंध में आठ स्पर्श होते हैं। बादर स्कंध नेत्रों से ग्राह्य है, सूक्ष्म स्कंध ग्राह्य नहीं

है, अचाक्षुष है।

चार स्पर्श एवं सूक्ष्म परिणामी होते हैं वे सूक्ष्म स्कंध हैं। आठ स्पर्श तथा बादर परिणामी बादर स्कंध है, बादर स्कंध ही चाक्षुष है।

परमाणु मात्र कारण रुप होते हैं, स्कंध होते कार्य बन जाता है। स्कंध कारण एवं कार्य दोनों रुप में होता है, स्कंध टूटने पर परमाणु बनते हैं।

पुद्गल में प्रति क्षण परावर्तन होता रहता है, परिवर्तन भाव अनादिकाल से अनंतकाल तक होता रहता है और होता रहेगा। पुद्गल का परिवर्तन भाव अवश्यंभावी होता है।

पुद्गल जीव के आश्रित हैं, जीव कर्मों के आश्रित या आधीन होने से नियाणा के अधीन बन जीव मात्र स्वयं के योग पुद्गलों को ग्रहण करता है, राग-द्वेषयुक्त बांधे हुए या बंध गए नियाणा को भुक्ता न करते समय जब परिपक्व हो जाते हैं तब वे जीव को उसी पुद्गल परिवर्तन भाव भाग्य में मिलते हैं।

दा. त. एक जीवात्मा ने पूर्व भव में किसी जीवात्मा के साथ प्रेम भाव से नियाणा बांधा, उसके परिपक्व होने का समय आ गया। संयमी-सदाचारी-धार्मिक-समताशील-निरोगी अवस्था को भोगने वाले उसके माता-पिता हैं। जिस समय पूर्व भव का शुभ अनुबंध वाला जीव माता की कुक्षि में आने वाला हो, उस समय शुक्र और रज के पुद्गल का, परिवर्तन-परिणमन-संमिश्रण सात्विक ही होता है। तामसिक या राजसिक नहीं होता। मैथुन मात्र में गर्भाधान कराने की क्षमता वाले पुद्गल होते हैं और साथ में माता-पिता सशक्त, समता एवं सात्विक वृत्ति वाले हों तथा मैथुन समय पूर्णत: सात्विकता ही रहे; उस समय तिरोभूत (दूर) न हो, मैथुन कर्म में बलात्कार-क्रोध भाव, वैर भाव-भय रास्ता का प्रादुर्भाव होता नहीं, मैथुनकर्ता पिता को आर्त्तध्यान का अभाव हो तो उस समय शुक्र के परमाणु सात्विक भाव में परिणमन करते हैं; जीव स्वाभाविक भाव से गर्भ में प्रवेश करता है। प्रेम भाव तथा सात्विक भाव में बंधा हुआ नियाणा शुक्र या रज के मिश्रण में सात्विक रहता है और जन्म लेकर नियाणा फल भोगता है।

इसी प्रकार राग-द्वेष युक्त बांधे या बंधे हुए नियाणा का फल भोगने का समय परिपक्व

होने पर जीव को वैसे ही पुद्गल परिवर्तन भाव में भाग्यमय होता है । वैर का नियाणा बांधा हुआ हो तो मैथुन समय समताशील, सदाचारी, धार्मिक, निरोगी माता-पिा भी वैर युक्त भाव में आसक्त होकर मैथुन सेवी बनते हैं और जीव गर्भ में आता है । कारण कि वैरभाव युक्त बांधा नियाणा में जीव अनुरक्त होने से सात्विक शुक्र या रज संमिश्रण में जन्म नहीं ले सकता ।

दा. त. - त्रिपुष्ट वासुदेव की आत्मा पूर्व में महावीर/नयसार की आत्मा है, वासुदेव के पिता पुरुष वेद के मद में होने से अपने पुत्री के साथ ही शादी करके संसार की माया रच डाली। उसी की कुक्षि में जन्म लिया और तामसिक पुद्गल परवर्तन में जन्म लेकर त्रिपृष्ट वासुदेव हुआ (महावीर प्रभु का 18वां भव) मृत्यु प्राप्त कर 7वीं नरक में गया । 16वें भव में बांधा हुआ नियाणा राग-द्वेष के भाव में होने से अशुभ कर्मों को नियाणापूर्वक भुक्तान किया।

जो खुराक खाते हैं उसका सब रक्त नहीं बनता, रक्त बनने के लिए जिस पुद्गल में जितनी क्षमता होगी उतना रक्त बनेगा । चाहे वो खुराक दूध,मलाई, मेवा, मिष्ठान्न क्यों न हो । बाकी की खुराक मल-मूत्र-पसीना-कफ-नख-बाल आदि द्वारा बाहर आ जाता है । योग्य पुद्गलों से ही रस निर्माण होता है । जिसमें से कुछ ही अंश का रक्त बनता है ।

पुद्गल परावर्तन 7 प्रकार का है :- औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण, मन, भाषा और श्वासोच्छ्वास परावर्त । सम्पूर्ण जीव राशि 7 परावर्त में आ जाती है । सूक्ष्म-बादर-पर्याप्त-अपर्याप्त-एकेन्द्रिय जीव से लेकर संमूर्च्छिम या गर्भज पंचेन्द्रिय जीवों को औ. पुद्गल से औ. शरीर प्राप्त होता है, देव-नारक आदि जीवों के वैक्रिय शरीर, सिद्ध शिला में प्रवेश करने के एक समय पहले अनंत जीवों को तेजस और कार्मण शरीर होता है । वे तेजस एवं कार्मण पुद्गल परावर्त के कारण होते हैं । पुण्यकर्म के भाग्यशाली जीवों को ही मन, वचन और श्वासोच्छ्वास पुद्गलों की प्राप्ति होती है । गाय, हाथी, कुत्ता, घोड़ा आदि पंचेन्द्रियत्व होते हुए भी एक अक्षर मात्र नहीं बोल सकते ।

शुभाशुभ नियाणा बांधने के कारण राग द्वेष के सट्टा बाजार में सत्कर्म एवं पुण्य कर्मों का

सट्टा खेलने वाले जीव जन्म-मरण के चक्कर में भटकते रहते हैं।

जयंति श्राविका के प्रश्न

महावीर प्रभु चतुर्विध संघ के साथ कौशांबी नगरी में पधारे एवं चन्द्रावतरण चैत्य उद्यान में रचित समवसरण में विराजकर धर्मोपदेश दिया। राजा उदायन ने अपने परिवार एवं राज कर्मचारियों को पूरी नगरी सजाने का आदेश दिया। राजा उदायन की भुआ जयंती श्राविका भगवान का आगमन सुनकर अपना पुण्योदय समझ मानव-जीवन को सफल बनाने के लिए रथ में बैठकर धर्मोपदेश सुनने पहुंच गई।

तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान की देशना के अंत में - विधवा, महाविदुषी, जीवाजीवादि तत्व के ज्ञानी, जैन साधु-साध्वीजी की परम उपासक, जिन शासन की आराधना में सदा जागृत, सुंदर, उत्तम व्यक्तित्व को धारण करने वाली जयंती श्राविका ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया और भगवान ने उत्तर दिया उसका संक्षिप्त संकलन निम्न रूप में :-

प्र. :- जीव भारी कैसे हो जाता है ? प्रभो ! क्या कर्म करने से जीव भारी होता है ? वजनदार बनता है ?

उत्तर :- हे जयंती श्राविका ! प्राणातिपात, मृषावाद एवं मिथ्यात्व नामक पापस्थानक के सेवन से, सेवन कराने से, मन, वचन, काया से अनुमोदन करने से जीव भारकर्मी बनता है।

जिस प्रकार वजनदार वस्तु पानी में डालने से नीचे जाती है, उसी प्रकार भारकर्मी जीव तिर्यंचगति, नरक गति की अधोगति में ही जाती है, ऐसे जीव मनुष्यगति में यदि चले भी जाते हैं तो भी नीच कुल में लेकर मजदूरी करते हुए भी दरिद्रता के कारण भूखे ही सोता और भूखा ही उठता है। अर्थ और काम साधन उपलब्ध नहीं होते पूरा दिन आर्त्तध्यान में व्यतीत होता है।

पूर्व भव में कभी कुछ पुण्य बंध हो तो अच्छे प्रमाण में संपूर्ण साधन मिलने के बाद भी पारिवारिक क्लेश, संघ क्लेश, जानी दुश्मन एवं अहं तथा क्रोध में जलने वाले बनते हैं।

भयंकर जिव्हा की क्लेशकारी भाषा से रौद्र ध्यान में रहता है। पुण्य कर्म के साधन होने के बाद भी सुख नहीं भोग सकता, यदि भोगाता है तो भी उसमें आशीर्वाद प्राप्त नहीं हो सकता।

प्र. :- हे प्रभो ! जीव को भव सिद्धि रूप स्वाभाविक है या पारिणामिक ?

उत्तर :- भव सिद्धत्व स्वाभाविक ही होता है। पारिणामिक नहीं। जीव का चैतन्य स्वाभाविक है। बालत्व, यौवन, वृद्धत्व, स्थूलत्व, कृत्व ये सभी पारिणामिक भाव है। ये सभी आकर वापिस समूल रुप से चले जाते हैं। चैतन्य में वृद्धि या ह्रास भले ही होता है किन्तु जीव में से चैतन्य कभी जाता नहीं। किसी के द्वारा या कोई भी कारण नहीं जा सकता।

पत्थर में मूर्ति या स्तंभ आदि पर्यायों में बदल जाता है, किन्तु मूल कठोरता नहीं जाती। भावों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय या कालद्रव्य का चमत्कार काम करता है, ईश्वर का नहीं।

भवसिद्धि यानि जो जीव आज, कल, दो, तीन पांच या संख्याता, असंख्याता या अनंत भव करके भी सिद्धि प्राप्त करेंगे, वे भव सिद्धिक जीव कहलाते हैं। अभव्यसिद्धिक किसी भी काल और किसी भी सहायता से भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।

मोक्ष की मर्यादा में आने के लिए पाप स्थानकों का मार्ग बंध करना पड़ता है, अरिहंत के स्व-स्वरुप का साक्षात्कार करना पड़ता है, अतः सम्यग्दर्शन निश्चय रुप में होना चाहिए।

भगवान महावीर को काल लब्धि का परिपाक नहीं हुआ इस कारण सम्यक्त्व प्राप्त करने के बाद 21 भव तक मोक्ष की मर्यादा भूमि में नहीं आ सके। तीसरा भव मरिची के भव में शिष्य संपत्ति के लोभ में दर्शन मोहनीय के चक्कर में पड़ गए। संयम भ्रष्ट हो गए। बीच के 12 भव तक खोए हुए सम्यक् दर्शन को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सके। 16वें भव में चारित्र प्राप्ति हुई परन्तु मोक्ष मर्यादा से दूर क्रोधावेश में आकर नियाणा बांध लिया। 18वें भव में नियाणा का फल भोगा और 7वीं नरक में गए। 20वें भव में सिंह का भवकर चौथी नरक में गए। नयसार के भव के बाद 21वें भव तक अत्यंत भयंकर अनंतानुबंधी कषाय और मोहनीय संबंधी कर्म भुक्तान के बाद 22वें भव में मोक्ष की मर्यादा में आए। इस कारण पाप स्थानक का मार्ग बंद हो गया। संवर के द्वार खुल गए। स्व-हृदय में विराजित अरिहंत

स्वरुप का साक्षात्कार कर सके; उसके बाद उत्तरोत्तर आगे की श्रेणि में चढ़ते-चढ़ते 27वें भव में काल लब्धि और भाव लब्धि का समागम हुआ। अनंत सुखों के भोक्ता भवसिद्धिक बन गए। जैसे भवसिद्धिक स्वाभाविक है वैसे अभव्य सिद्धिक भी स्वाभाविक है।

प्र. :- हे प्रभो ! तथा प्रकार के स्वभाव के कारण भव सिद्धिक मोक्ष जाने के बाद क्या संसार खाली हो जाएगा ?

उत्तर :- हे श्राविके ! अनंतानंत जीवों से भरा यह संसार किसी काल में भी खाली हो सके ऐसा नहीं है। उदाहरण देकर भगवान ने समझाया - अभी तक अपने सिर पर से अनंतानंत समय का भूतकाल चला गया है; एक समय घट रहा है वह भविष्यकाल भी अनंतानंत है, वर्तमान एक ही समय का है। ऐसे तीन काल के समय से भी - हे श्राविके, जीव राशि अनंतानंत गुणा बहुत बड़ी है, इसलिए जीवों से कभी खाली नहीं होता - संसार।

प्र. - संसार सर्जक कौन है प्रभु ?

उत्तर - जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी निश्चित है। संसार अनादिकाल का और अनंतकाल तक रहने वाला होने से यह किसी से उत्पाद्य नहीं है, जो स्वयं मरण चक्र में फंसे हुए हों वे संसार सर्जक किस प्रकार हो सकते हैं ? ब्रह्मा यदि सर्जक हो, विष्णु रक्षक एवं शिव सुख-शांति दायक हो तो स्वयं जन्म-मरण के चक्र में कैसे चडे ?

जीव मात्र को स्वयं के शुभाशुभ कर्म भोगना पड़ते हैं; इसलिए जीव स्वयं ही संसार का सर्जक, रक्षक और मारक है। माता-पिता के पूर्व के ऋणानुबंध पूर्ण कर नए माता-पिता के साथ ऋणानुबंध प्रारंभ हो जाता है, उसी समय माता की कुक्षि में जन्म लेने वाला जीवात्मा माता-पिता के संभोग में शुक्र एवं रज का मिलन होने पर संतान स्वत: नो महीने कैद हो जाता है।

प्र. :- हे प्रभो ! सुप्तत्व (निंद्रा) को अच्छा कहा जाता है या जागृत्व को अच्छा कहा जाता है ?

उत्तर :- हे श्राविके ! कुछ जीव सुप्त ही रहे तो अच्छा है और कुछ जागृत रहें तो अच्छा है, आठ प्रकार के जीव सुप्त ही रहें तो अच्छा है।

1. <u>अधर्मानुगा</u> :- अधर्म्य खान-पान, रहन-सहन एवं भाषा व्यवहार में तत्पर।

2. <u>अधार्मिक</u> :- सम्यक्श्रुत और सम्यक् चारित्र रहित।

3. <u>अधर्मेष्ठा</u> :- सम्यक् श्रुत और सम्यक् चारित्र के प्रति श्रद्धा रहित, धार्मिक के प्रति तथा उनके सद्अनुष्ठानों में उपेक्षा भाव रखने वाले।

4. <u>अधर्माख्यायी</u> :- धर्म एवं धर्म प्रसंगों को विकृत कर पाप भाषा बोलने वाले।

5. <u>अधर्मप्रलोकी</u> :- धार्मिक व्यवहार का अपलाप कर, हिंसा-असत्य-चोरी-मैथुन एवं अपरिग्रह रुप अधर्म को ही धर्म मानने वाले।

6. <u>अधर्मरागी</u> :- देव-गुरु-धर्म के प्रति राग का दिवाला निकालकर, प्रपंची, खुशामदी और वाचाल मनुष्यों को चाहने वाला।

7. <u>अधर्मसमुद्दाचारी</u> :- अधर्म, आचार-विचार में ही जीवन पूरा करने वाला।

8. <u>अधर्मजीविका</u> :- भयंकर पाप-बंध हो ऐसा व्यापार-व्यवहार करने वाला। जिसके सिर पर सदा शत्रुओं का साया रहता है, वे जीव भावांतर में महादु:खी ऐसे जीव सुप्त ही रहें तो वे बहुत से पापों से बच जाऐंगे; अन्य जीव उसके हिंसा स्वभाव से वंचित रह सकते हैं।

इसके विपरित जो भाग्यशाली धर्म में रक्त, धार्मिक वातावरण उत्पन्न हो ऐसी भाषा का प्रयोग करें, अहिंसक भाव के मालिक हों, वे जागृत रहे तो अच्छा है, अहिंसक सत्यवादी एवं प्रामाणिक मानव सबसे प्रथम धार्मिक है।

<u>प्र. :- निर्बल अच्छे या सशक्त अच्छे ?</u>

उत्तर :- जीव मात्र की वृत्तियों के पूर्णज्ञाता प्रभु महावीर स्वामी ने कहा कि जीवन व्यवहार में हिंसा, असत्य, क्रूरकर्मिता और माया-प्रपंच में रहे हुए मानव निर्बल अच्छे, उसमें उनका ही कल्याण है। जो भाग्यशाली अहिंसक, सत्यवादी, परोपकारी हैं अन्य के लिये जीने वाले हैं वे मन, वचन, काया से सशक्त बनें ये अच्छा है।

जागरणशीलता के साथ धार्मिकता, सदाचार, परोपकार की भावना रखने वालों की देवता भी प्रशंसा करते हैं, किन्नरियाँ उनके गीत गाएगी एवं संसार की स्त्रियाँ भी रास गरबा गाएगी।

दक्षता : निपुणता, अपने सिर आए कार्यों को शीघ्रता से करना, बिना विलंब किए कार्य करने की निपुणता। आलस्य – प्रमाद कार्य करने में समझ नहीं, दक्षता नहीं। इस प्रकार दक्ष एवं आलस्य भय जीवों का सुंदर विवेचन भगवान ने जयंती श्राविका के प्रश्न 'दक्ष अच्छे या आलसी' के उत्तर में समझाया।

सारांश :- धर्मे न्याय सदाचारे, पुण्ये पवित्रकर्मणि।
सर्वेषां हितकार्ये च, दक्षो जनः प्रशस्यते।
जिनाज्ञा पालने चैव, गुरोः ऋणाद्विमोचने।
वैरत्यागे दयादाने दक्ष, जनः प्रशस्यते।।

प्र. :- जयंति श्राविका का अंतिम प्रश्न – श्रोतेन्द्रिय के वश पड़ा जीव कौन सा कर्म बांधता है ?

उत्तर :- हे श्राविके ! शिथिल रुप से बांधे हुए सात कर्मों को वह दृढ़ बंधने वाला करके अनंत संसार में परिभ्रमण करने वाले होते हैं।

सम्यक्ज्ञानी की लगाम और सम्यक् चारित्र की चाबुक के बिना इन्द्रिय रुप घोड़ा मोहरुपी मदिरापान के नशे में पागल जैसा हो जाता है।

संसार के अनंतानंत जीवों से कर्णेन्द्रिय प्राप्त पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या कम होती है। अगणित पुण्यकर्मों को लेकर जीवात्मा को कर्णेन्द्रिय प्राप्त होती है; जिससे वे पंचेन्द्रिय संज्ञा से युक्त बनते हैं। इन्द्रियों के वशवर्ती आत्मा किसी भी समय कषाय रहित नहीं हो सकती। सोचिए :-

1. यह शरीर जो प्राप्त किया है वह किराए के मकान जैसा है, इसलिए इसको कभी भी बदलना पड़ेगा।

2. जो है वह मेरा नहीं तो मोह क्यों ?

3. यह शरीर अशुचित से युक्त है; इसको सभी प्रकार से समझाने के बाद भी वह नष्ट होने वाला है।

4. रक्त संबंध रखने वाले माता-पिता भी कुछ कर्मवश शत्रु बन सकते हैं परन्तु तीर्थंकर देव, गणधर, आचार्य, नित्य श्रेयस्कर होते हैं।

जीव के निकलने के 5 मार्ग

देव उ. आयु - 1 सागर श्वासोच्छ्वास 15 दिवस (अर्ध मास), आहार 1000 वर्ष

2 सागर श्वासोच्छ्वास एक माह, आहार 2000 वर्ष

33 सागर श्वासोच्छ्वास 16½ माह आहार 33000 वर्ष।

* मरण - जीव निकलने के 5 मार्ग हैं :-

1. पांव से निकले तो नरक में जाता है।

2. जंघा में से निकले तो तिर्यंच में जाता है

3. छाती में से निकले तो देवगति में जाता है,

4. सिर में से निकले तो मनुष्यगति में जाता है,

5. सर्वांग में से निकले तो सिद्धगति में जाता है।

दो प्रकार का मरण - जिसकी प्रभु महावीर ने भी प्रशंसा नहीं की और न ही करने की अनुमति दी है।

1. परिषह से पराजित हो व्रत भंग करके जो मृत्यु को प्राप्त होता है।

2. इन्द्रिय के वश में जो मृत्यु प्राप्त कर ले।

1. निदान मरण (ऋद्धि आदि की कामना कर मृत्य प्राप्त करे)

2. तद्भव मरण (फिर उसी भव में आना पड़े वह)

1. (गिरि पतन) पर्वत से गिरना, 2. (तरु पतन) पेड़ से गिर कर मरना।

1. (जलप्रवेश) जल में झंपापात, 2. (अग्निप्रवेश) अग्नि में जल जाए।

1. विष खाकर, 2. स्वयं शस्त्र का वार कर मरना

दो मरण ऐसे हैं जो मरना ही पड़ता है, ऐसा हो जाए। उसकी अनुमति नहीं दी गई फिर भी आज्ञा दे दी गई है।

1. (वैहायस) पेड़ पर लटक कर फंदे द्वारा मरना।

2. गिद्ध जैसे जीवों को शरीर सुपूर्द कर देना।

दो मरण ऐसे हैं जिसकी भगवान महावीर ने हमेशा प्रशंसा की है और साधुओं को अनुमति भी दी है।

1. पादपोपगमन :- निर्हारिम / अनिर्हारिम

2. भक्त प्रत्याख्यान :- निर्हारिम /अनिर्हारिम।

* चार अंत क्रिया कही हैं, ऐसा मरण जिससे पुन: जन्म-मरण रहे ही नहीं।

1. अल्प कर्मवाला जीव घर छोड़ संयम ग्रहण करे। संयम और समाधि की वृद्धि कर वह रुक्ष (रुखा) हो जाए। संसार से किनारा करने की इच्छा वाला उपधान करता है, दु:ख को क्षय करे, तपस्वी हो किन्तु कठिन वेदना में नहीं पड़ता, दीर्घकाल के दीक्षा पर्याय के बाद सर्व दु:खों का अंत कर मोक्ष जाए।

दा. त. भरत चक्रवर्ती :- पूर्व भव में हलुकर्मी सर्व सिद्धार्थ में थे, आरीसा (कांच) भवन में वैराग्य, गृहस्थावस्था में केवलज्ञान, फिर दीक्षा लेकर पूर्व लाख वर्ष तक संयम पालकर मोक्ष गए।

2. जीव बहुत कर्मों को साथ लेकर मनुष्य भव में आया हो एवं फिर घर छोड़ दीक्षा लेकर तपस्वी बन जाए, तीव्र तपस्या कर तीव्र वेदना सहे कुछ ही समय में सर्व कर्म क्षय करे, दा.त. गजसुकुमाल।

3. उपरोक्त प्रमाणानुसार ही सामग्री - दीर्घकाल तक दु:खों का अंत करने में समय निकालें - दा.त. सनतकुमार चक्रवर्ती (चौथे चक्रवर्ती) थे। महातपस्वी थे।

4. अल्प कर्म वाले जीव हो, दीक्षा लेकर दीर्घ तपस्या भी न करे, वेदना भी न सहे, फिर भी अल्प समय में सर्व दु:खों का अंत कर मोक्ष जाए। दा.त. मरुदेवी माता।

* कर्म का समूल विनाश किस प्रकार होता है ?

<u>विवेक द्वारा कर्म का उच्छेद हो सकता है।</u>

* असत्य को असत्य रूप में और सत्य को सत्य रूप में जानना वह ज्ञान विवेक।

* असत्य को असत्य रूप में मानना, सत्य को सत्य रूप में माना और जीवन में उसी प्रकार अपनाने का उतावला पन वह दर्शन विवेक।

* असत्य को असत्य रुप में मानकर उसका त्याग करना और सत्य को सत्य रूप में मान कर जीवन में उसका आचरण करना वह चारित्र विवेक है।

जानना : श्रद्धा बढ़ाओ, पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ विवेक। विवेक कहाँ से मिलता है ?

अरिहंत के आप्तवचनों से ही मिलता है विवेक। आप्त-अर्थात् जिन्होंने सर्वांश रूप में (सर्वथा निर्दोष युक्त हैं ऐसे आप्त अरिहंत ही हैं।)

जैन शासन की अद्भुत व्यवस्था,

श्रावक-श्राविका संघ के ऊपर, श्रमण संघ (साधु)
श्रमण संघ के ऊपर आचार्य,
आचार्य के ऊपर तीर्थंकर - गणधर - पूर्वाचार्यों के शास्त्र।

* श्री आचारांग सूत्र के चौथे अध्ययन 'सक्यक्त्व' में बताया है -

से बेमि जे य अईया जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा,

अरहंता भगवंतों ते सव्वे एवमाइवखंति ।।

''भूतकाल में अनंत तीर्थंकर हो गए, भविष्य में अनंत तीर्थंकर होंगे एवं वर्तमान समय में जो तीर्थंकर विचरण कर रहे हैं वे अरिहंत भगवंत इस प्रकार फरमाते हैं, यह कहकर भगवान महावीर ने भी यही कहा जो उन अन्य तीर्थंकरों ने कहा व कहने वाले हैं।''

परमात्मा की महानता छत्र-चामर, तीन गढ़, इन्द्र, धर्मचक्र आदि संपदा ऋद्धि से नहीं किन्तु यथार्थवादिता के कारण ही बताई है। आचार्य तपस्वी हैं बहुत शिष्य हैं, बहुत सा भक्त वर्ग है। ज्ञान और विद्वता है इस कारण नहीं परन्तु उनके पास 'शुद्ध प्ररुपणा' नामक गुण है इसलिए वे महान हैं।

* चंदन की लकड़ी के बोझ को ढोने वाला गधा चंदन के भार का भागीदार बना लेकिन चंदन के या चंदन से प्राप्त सुख को प्राप्त नहीं कर सका, क्योंकि उसमें योग्यता ही नहीं थी। मिथ्यात्व की गहरी छाया के हिसाब से अवगुण बुरे नहीं लगते हैं।

* सब करने दौड़ो मत । कम मगर ध्यान से करो । वैसे दश स्थान पर खड्डे खोदो तो भी पानी नहीं निकलता ।

मास-तुष मुनि :- नित्य प्रतिदिन सुबह, दोपहर, शाम बस एक ही रटन थी ''मा तुष मा रुष' अर्थ से आत्मा को भावित करते 12 वर्ष तक नित्य 5 प्रहर यही शब्द रटते रहते ।

हीरे का व्यापारी हीरे का चयन करते हैं तब कैसी स्थिरता होती है ? नोट गिनते हैं तब कैसी स्थिरता होती है ? ऐसी ही स्थिरता वांचना लेते, शब्द शब्दों के अर्थ में, रहस्य में, गहराई में, अंतरंग ध्वनि में - सभी में आंतरिक रुप से जुड़े रहना होता है ।

* तालाब का पानी पीने की छूट सभी को है, किन्तु उसे गंदा करने की नहीं, प्रश्न विवेक से पूछना चाहिए, सभा में खलल न पड़े इसका ध्यान रहे ।

* नमस्कार 3 प्रकार के होते हैं :-

तारक तीर्थंकर को किए नमस्कार की शक्ति अपनी कल्पना से बाहर है ।

1. इच्छायोग का नमस्कार सातिचारी चारित्रीय का नमस्कार । *

2. शास्त्रयोग का नमस्कार, छट्ठे या सातवे गु. रहे हुए निरतिचारी को हो सकता है ।

3. सामर्थ्य योग का नमस्कार क्षपक श्रेणि महात्माओं को हो सकता है ।

* श्रुत शास्त्र में कहे अनुसार करने की इच्छा वाले ज्ञानी को भी प्रमाद के कारण जो संपूर्ण धर्मयोग हो - उसे इच्छा योग कहते हैं ।

* शास्त्र शिरोमणी आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म.सा. ने 'योग बिन्दु' में लिखा है -

भिन्न ग्रन्थेस्तु यत्प्रायो मोक्षे चित्तं भवे तनुः ।

जिसने राग द्वेष की ग्रंथि को तोड़ डाला है उसका तन भले ही संसार में हो किन्तु मन तो पूरी तरह मोक्ष में ही रहता है ।

जो 'प्रियधर्मी' हैं, उसको परिवार, पत्नी, स्वजन, संसार की प्रवृत्ति, पहनना, ओढ़ना, आभूषण-बंगला-बगीचा ये सब अच्छा नहीं लगता, प्रियधर्मी को तो सिर्फ धर्म ही अच्छा लगता है ।

नोट की गड्डी गिनते समय भी उसके मन में यही रहता है कि - नवकार वाली कब गिनूं। उसको 'आराधना' बहुत अच्छी लगती है। अनेक बार करने के बाद भी उसे बार-बार करने की इच्छा होती है। मन उसका उसी में रमता है। ऐसा है 'प्रियधर्मी'।

जिसको जिसमें रस होता है उसको वही अच्छा लगता है। पैसे में रस होता है, उसको 50 किलो वजन भी उठाना पड़े हो तो बुरा नहीं लगता। ठंड की आधी रात को भी जाना है तो जाएगा। मूसलाधार बारिश में भी जायेगा, क्योंकि पैसे की कमाई हो रही है। लक्ष्य उसका 'पैसा' ही है। यदि 'धर्म' का लक्ष्य हो जाए, तो 'धर्म' ही अच्छा लगेगा।

गुरु भगवंत को पूछते हैं ''स्वामी शाता छेजी ?'' तो क्या उत्तर मिलता है ? ''देव-गुरु-पसाय।''

साधु जीवन जैसा 'निबंध' अवस्था संसार में कहीं नहीं है, इसलिए चक्रवर्ती राजा, धन्नाजी, शालीभद्रजी जैसे परम-श्रीमंत-श्रेष्ठियों ने संसार का त्याग किया आज भी कर रहे हैं।

अभवी की धर्मसाधना इससे बिलकुल अलग है। वहाँ मोक्ष का लक्ष्य ही नहीं है। प्रियधर्मी, दृढ़धर्मी आदि की चउभंगी बताई गई है, उसमें प्रियधर्मी भी हो और दृढ़धर्मी भी हो। ये तीसरा भांगा स्वीकार्य माना गया है। आगम की वांचन योग्यता के लिए।

प्रियधर्मी पुणिया श्रावक को राजा श्रेणिक 1 सामायिक के लिये पूरा मगध राज्य देने के लिए तैयार थे, जिस राज्य में धन्ना, शालिभद्र रहते थे। एक के पास चिंतमाणि रत्न था, तो दूसरे के यहां देव द्वारा नित्य धन की 99 पेटियाँ उतरती थी। जिस नगरी में 99 करोड़ नगद सौनेया का मालिक ऋषभदत्त सेठ रहता था, जहाँ 500-500 पत्नियों का मालिक सुबाहुकुमार रहता था। ऐसी समृद्धिशाली नगरी की कल्पना ही करने की रही - चूंकि मगध देश में ऐसी कई नगरियाँ थी।

पुणिया श्रावक का उत्तर था ''महाराज, ये संभव ही नहीं कि मगध के साम्राज्य के बदले मैं मेरी सामायिक की समृद्धि बेच सकूं।' विवेकपूर्वक मना कर दिया गया। श्रेणिक राजा ने पूछा - 'तुम्हें क्या दिक्कत है ?'

उत्तर - 'महाराज ! राज्यं नराकान्तम् सामायिकम् तु मोक्षान्तम्' राज्य का फल नरक है और सामायिक का फल मोक्ष है। मैं मोक्ष को बेचकर नरक की खरीदी कैसे करूं ?'

पुणिया श्रावक का संवेग कितना तीव्र होगा।

सुरनर सुख जे दु:ख करी लेखवे, वंछे शिवसुख एक।

यह पंक्ति पुणिया श्रावक के जीवन के अंग-अंग में रम गई थी।

* अयोग्यता को दूर किए बिना योग्यता प्रगट नहीं होती।

अनादिकाल का मिथ्यात्व एवं मिथ्यात्व की वासना प्राणी के दिल-दिमाग पर कब्जा जमाकर बैठी है। सिर्फ सुनने से काम नहीं चलता, सुने हुए को हृदय में उतारे तो ही काम का है। ''सुणी-सुणी ने फूट्या कान, तो ईन आव्यो हृदये ज्ञान' । इस जन्म से पहले अनेक बार सुना होगा, अध्ययन भी किया होगा, अध्यापन भी किया होगा, आचार्यों एवं हो सकता है साक्षात् तीर्थंकरों के पावन मुख से भी सुना होगा। फिर भी मोह को नहीं पहचाना, मिथ्या मत को नहीं पहचाना। चित्त में भगवान को स्थापित ही नहीं किये।

विवेक आदि दर्शनवाद की चर्चा

श्री सूयगडांग सूत्र (सूत्र कृतांग सूत्र)

* दर्शनवाद की चर्चा। आत्मा बंधनों से कैसे बंधती है ?

सूयगडांग सूत्र में दो श्रुत स्कंध हैं :-

1. 'गाथा षोडश' - 16 अध्ययन, कुल 26 उद्देशा है।

2. श्रुतस्कंध में 7 अध्ययन हैं, सुयगडांग सूत्र में मुख्य अधिकार द्रव्यानुयोग का बताया है। यह महान् आगम ग्रंथ सम्यगदर्शन की विशुद्धि करने वाला है।

बुज्झिज्ज किट्टिज्जा बंधणं परिजाणिया।
किमाह बंधणं वीरो किं वा जाणं किट्टई ।।

सुधर्मास्वामी कहते हैं - 'बोध को प्राप्त कर ! अपने चारों ओर के बंधन को समझ ! बंधन को तोड़ डाल।

जंबुस्वामी कहते हैं - 'प्रभु महावीर ने बंधन किसको कहा है ? क्या जानकर इसको तोड़ा जा सकता है ?'

सूयगडांग सूत्र के गंभीर अर्थ का प्रकाशन 14 पूर्वधर युगप्रधान पू. आ. भगवंत श्री भद्रबाहुसूरिजी के निर्युक्ति ग्रंथ की रचना की और पू. आ. श्री शीलांकसूरिजी महाराज ने

मूलसूत्र व निर्युक्ति दोनों के अर्थ को विस्तृत समझने के लिए संस्कृत टीका की रचना की है।

आगम के मूल अर्थ को समझने के लिए भाषा, निर्युक्ति, चूर्णि, टीका का सहारा लेना अनिवार्य होता है । इन चार वस्तुओं के साथ मूल ग्रंथ को 'पंचांगी' कहा जाता है । हम पंचांगी के आराधक हैं ।

तीर्थंकर एवं गणधरों का महान उपकार :- श्री आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासक दशांग, अंतगढ़दशांग, अनुत्तरोववाई दशांग, विपाकसूत्र, प्रश्नव्याकरण, दृष्टिवाद ।

आलोयणा - आलोचना :- शुद्धिकरण के लिए प्रायश्चित ।

भोजन में अच्छी वस्तुएँ बनी, जीमने गए, किन्तु थाली झूठी हो और उसमें परोसकर लावे तो सामने वाला कैसे खाएगा । चारों तरफ झूठन पड़ी हो तो बैठने वाले को न तो बैठना अच्छा लगेगा और न ही खाना अच्छा लगे ।

इसी प्रकार आज तक किए पापों का अंत:करण से पश्चाताप कर, गुरु के सामने नियम लेकर, गुरु द्वारा दी हुई प्रायश्चित विधि द्वारा स्वयं की आत्म-शुद्धि न करें तो परिणाम प्राप्त नहीं होते ।

''ईहाभिमुख्येन गुरु : आत्मदोष प्रकाशनम् - आलोचना''

प्रस्तुत विषय में गुरु के सम्मुख स्वयं के दोषों का प्रकाशन कर आलोचना करना है ।

बाहर जाकर आने के बाद इरियावहि करना चाहिए । आलोचना का भाव हो, ऐसा प्रयत्न हो रहा हो एवं आलोचना किए बिना यदि आयुष्य पूर्ण होकर मर जाय तो भी वह जीव आराधक ही कहलाता है; ऐसा 'संबोध प्रकरण ग्रंथ' में बताया है । (पू. आ. श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज)

जह बोलो जंपंतो, कज्जमकज्जं च उज्जयं भणई ,

तं तह आलोईज्जा, मायामयविप्प मुक्कोय।

जैसे बालक बोलते-बोलते कार्य-अकार्य सभी सरलता से कह देता है, उसी प्रकार

आलोचना करने वाला माया और मान का त्याग करके जैसा हुआ, किया वह सब गुरु के सामने कह देना चाहिए।

जो विधिपूर्वक आलोचना करता है वह नि:शल्य हो जाता है। (माया शल्य, नियाणा शल्य, मिथ्यात्व शल्य)

प्रशस्त क्षेत्र एवं तिथियाँ

* प्रशस्त 6 क्षेत्र :-

1. शेरड़ी का वन (गन्ने का वन), 2. डांगर का वन, 3. पद्म सरोवर, 4. खिले हुए फूलों का बगीचा, 5. गंभीर एवं आवाज करता हुआ दक्षिणावर्त पानीवाला सरोवर (तालाब), 6. जिनेश्वर देव का मंदिर। इन क्षेत्रों में आगम सूत्र का वांचन (अध्ययन) हो सकता है।

दिशा :- आगम का अध्ययन, स्वाध्याय करना हो तब पूर्व दिशा, उत्तर दिशा या जिस दिशा में प्रभु प्रतिमा हो वह दिशा एवं जिस दिशा में जिन मंदिर हो वह दिशा भी श्रेष्ठ होती है। इन दिशाओं सन्मुख बैठकर अध्ययन करना चाहिए।

वांचना देने वाले दिशा सन्मुख रहकर वांचना दे एवं वांचना लेने वाले भी गुरु सम्मुख (सामने) बैठकर वांचना लें।

जब स्वाध्याय मांडाला में बैठकर करने का हो तो स्वाध्याय कराने वाले दिशा सम्मुख रहे और सभी मंडलाकारे बैठकर स्वाध्याय करें।

काल :- दिन का और रात का पहला और अंतिम प्रहर - यानि दिन के दो और रात्रि के दो कुल 4 प्रहर में ग्रंथ कंठस्थ करने का नियम है। चूर्णिकार महर्षि द्वारा बताए गए दिशा और काल कहे गए हैं।

तिथियाँ - प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी एवं त्रयोदशी आगम की वांचना का प्रारंभ होता है।

चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, द्वादशी इन तिथियों में वांचना नहीं दी जाती।

* अद्य का तिथि : ? किं कल्याणकादिकम् ?

आज क्या तिथि है ? आज कल्याणक आदि क्या है ? यह विचार श्रावक प्रात: काल उठते ही करता है - ऐसा 'श्रीश्राद्ध विधि' ग्रंथ में बताया है।

पर्व तिथियों का पालन महाफल देने वाला है, क्योंकि - इससे शुभ आयुष्य का बंध होना है आदि लाभ मिलता है।

श्री गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा कि - हे भगवन् ! बीज आदि पांचों तिथियों में किया गया धर्मानुष्ठान का क्या फल होता है ?

उत्तर - हे गौतम ! बहुत फल होता है। इन तिथियों में जीव प्राय: पर भव का आयुष्य उपार्जन करता है।

पूनम, अमावस, पक्ष-संधि की और मास-संधि की तिथियाँ हैं। उसी प्रकार तीन चौमासी पूनम आती है, इसलिए पूनम कब है यह जानना जरूरी है।

नित्य प्रभु पूजा करने वाले को पांचों तिथियों के कल्याणक तिथि का ज्ञान रखना आवश्यक है। जिस गांव में रहता हो वहां के जिन मंदिर के मूलनायक कौन हैं, उन भगवान के कल्याणक तिथि का ज्ञान भी रखना जरूरी है।

पंचांग किसको कहते हैं ?

तिथि-नक्षत्र-करण-योग एवं वार। ये पांच अंग जिसमें आते हैं वह पंचांग है।

श्रोता प्रथम क्रमांक में आलोचना करके विशुद्ध बनता है और दूसरे क्रमांक पर विनीत होना चाहिए।

विनीत श्रोता किसको कहते हैं ? - जिसमें निम्न सात योग्यता हो।

1. गुरु के प्रति अनुरागी, 2. गुरु के प्रति भक्तिवंत, 3. गुरु का कभी त्याग न करे, 4. गुरु का अनुसरण करने वाला, 5. विशेषज्ञ (धार्मिक ज्ञान में) हो, 6. उद्यमी हो, 7. अपने सद् कार्यो से कभी बोर न हो।

तीसरे क्रमांक में - वांचना के अनुकूल क्षेत्र हो। चौथा क्रमांक - दिशा अनुकूल हो। पांचवा क्रमांक - काल अनशन हो।

* <u>चरणकरणानुयोग</u> :- आचारांग सूत्र में चारित्रिक क्रिया, चारित्र की साधना और आराधना का विस्तृत वर्णन।

* <u>द्रव्यानुयोग</u> :- सूयगडांग सूत्र में द्रव्यानुयोग की मुख्यता है। द्रव्य की व्याख्या - विश्व के छः द्रव्यों का विवरण।

अन्य दर्शनों की एकांत दृष्टि, खंडन, अपूर्णता, न्यूनता। जैन दर्शन की हितकारिता, मिथ्यात्व को नष्ट करती है।

* <u>गणितानुयोग</u> - चंद्रज्ञप्ति, सूर्यज्ञप्ति, ज्योतिष करंडक ग्रंथ में गणित की प्रधानता है।

* <u>धर्मकथानुयोग</u> :- ज्ञान धर्मकथा, उपासक दशांग ग्रंथ में - धर्मकथाएँ हैं।

चारों अनुयोग में श्रद्धा की स्थिरता के लिए द्रव्यानुयोग की मुख्यता है। आराधना साधना के लिए चरण करणानुयोग के आगम उपयोगी हैं। विश्व के पदार्थों की पहिचान के लिए गणितानुयोग के आगम और आराधना में उत्साह लाने के लिए धर्मकथानुयोग की आवश्यकता है।

12 अंग :- तीर्थंकर और गणधरों का महान उपकार ....

1. आचारांग 2. सूयगडांग 3. ठाणांग, 4. समवायांग, 5. भगवती सूत्र, 6. ज्ञाता धर्मकथा, 7. उपासक दशांग, 8. अंतगढ़ दशांग, 9. अनुत्तरोववाई दशांग, 10. विपाकसूत्र, 11. प्रश्नव्याकरण, 12. दृष्टिवाद।

दिन में तथा रात्रि में 'मौन' का पच्चक्खाण लेने की बुद्धि मिले ....

द्रव्य से, घर में, ऑफिस या दुकान में, जितने भी स्थान हों उन सभी स्थानों का आरंभ समारंभ का आगार (छूट) रखकर, 'संवर' भाव रखने से बाकी 14 राजलोक में होने वाली क्रियाओं की हिंसा-पाप आदि से बच जाएँगे। ये करने की शक्ति प्राप्त हो।

क्षेत्र से जहां तक दृष्टि पहुंच सके वहां तक का आगार,

उसके अलावा सभी का प्रत्याख्यान,

काल से (5) नवकार मंत्र गिनकर पारूं,

नहीं वहां तक के प्रत्याख्यान,

भाव से उपयोग सहित

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग

सेवन के प्रत्याख्यान लेते-लेते।

तस्स भंते पडिक्कमामि - अप्पाणं वोसिरामि ...

<u>अंत समय</u>

हे प्रभु ! कितनी जल्दी संसार से मुक्ति मिले,

चारित्र मार्ग को स्वीकार करूं

सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, बोधि बीज की प्राप्ति हो।

कर्म का क्षय, भव निर्वेद और समाधि मरण प्राप्त हो।

मेरी मृत्यु समय मेरे सभी पुद्गलों को वोसिराता हूँ

त्रिविधे-त्रिविधे

वोसिरामि .... वोसिरामि .... वोसिरामि ....।

विभाग – १३

“परिशिष्ट”

“श्रद्धांध” की अरजी सह, मन का निचोड़

3 कृतियाँ

- व्याख्याएँ 422
- परिषह - 22 भेद 426
- संयम - 27 भेद 428
- संवर - 57 हेतु द्वारा 429
- संवर - 6 कारण, धर्म - 10, अनुप्रेक्षा - 12 430
- चरित्र - 5, बाह्य - अभ्यंतर तप : 6 431
- शुभगति - आराधना के 10 अधिकार 433
- गुण स्थान - 14 433
- आगम के मोती - असंख्य 443

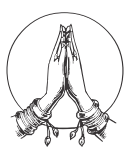

अरजी

व्हाला सीमांधर स्वामी, अरजी आ मारी,
सुणजो अंतर्यामी

ओ महाविदेहना वासी, मार्ग बतावो,
केम करी आवुं नासी ?

विरति हो के अविरति प्रभु, भावना भावुं भवोनी
जन्मो मले अरिहंतना क्षेत्रे, उत्तम जैन कुल योनि
प्रव्रज्या ग्रहूँ आठ वर्षे, तम निश्रामां,
आत्म गति मोक्ष गामी

व्हाला सीमंधर स्वामी, आशा करजो
पूरी अंतर्यामी ...

दूर-दूर वसीयो छुं क्षेत्रे, ना वैभवनी ज्यां खामी,
'गारव-त्रिक' ना समरांगणमां, यत्न छतां रहूं कामी ।
'श्रद्धांध' नी सुणजो अरजी, पंथ उजालो,
झंखी रह्यो शिरनामी ..... व्हाला ....

'श्रद्धांध'
जुलाई 2008

निगोद – मुक्ति

(राग – राखनां रमकड़ाने .....)

वासनानी वाटमां, विचारोना विकार छे,
वातो करीए डाही डाही, शून्य समो आचार छे ... वासनानी
विषयोंनी संताकूकड़ी, रमवामां मनडूं म्हाले,
स्नेह, काम, दृष्टिनी राग त्रिके जीव नाचे ताले रे ... वासनानी
देह अने आत्मानां मिलन, माथे कर्मोंना पडल छवाया
भवों अनंता वित्यां, अविरतीना रंगे रंगाया रे ... वासनानी
दस दृष्टांते दुर्लभ मानव-भवने सार्थक करीए,
पद निर्वाणने पामी, ऋण निगोद मुक्तिनुं भरीए रे ... वासनानी

"अरि"

क्यांथी आव्यो, क्यां छे जवानो,
खबर नथी कई आ जीवनी ।
अय खबर नथी हूँ कोण छूं ?
चिंता धरजे एक 'शिव' नी ।। क्यांथी ...
ज्ञानी कहे छे, एकलो आव्यो, एकलो तू छे जवानो,
मानव जन्म छे, ममता अने, आसक्ति अरि हणवानो ।
वीतराग प्रणीत बार भावना, जीवनी संजीवनी ।। क्यांथी ...
'सव्वे जीवा कम्म वस्स' ना, मंत्रे द्वेष सहु टलशे ।
बार भावनानां चिंतन थी, राग बधो ये गलशे ।
'श्रद्धांध' चहे अरिहंत आशीष मलजो 'अरि' थी मुक्ति ।। क्यांथी ...

व्याख्याएँ

मोक्ष का स्वरुप समझें :- मोक्ष का स्वरुप समझने के लिए संसार का स्वरुप समझना पड़ता है।

अव्याबाध सुख :- मन, वचन, काया की पीड़ा रहित स्थिति। 'व्याबाध' अर्थात् संसार में जिसको दु:ख समझते हैं, वे सभी दु:ख सहित की स्थिति।

मिथ्यात्व :- जहां भवाभिनंदीरुप एवं हठाग्रह द्वारा मन में विपरीत श्रद्धा प्रगट होती रहे, तत्वों के प्रति अश्रद्धा वह मिथ्यात्व।

तत्व :- मोक्ष का सहज रुचिभाव जिससे उत्पन्न होता रहे वह तत्व

जिसका चिंतन सकाम निर्जरा कराता है, वह अपुनर्बंधक अवस्था :-

- तात्विक वैराग्य तथा सत्य शोधकता के गुणों से प्रगट होती जीव की स्थिति।
- जिस स्थिति के प्राप्त होने पर 'मुक्ति का अद्वेष' गुण प्रकट हो वह अवस्था।
- मुक्ति के लिए प्राथमिक योग्यता।
- मोहनीय आदि कर्मों की उ. स्थिति पुन: न बांधने वाला जीव इस अवस्था में गिना जाता है।
- उत्कृष्ट स्थिति वाले कर्म बंध समूल नष्ट करे वह अवस्था।

इस अवस्था के बिना अध्यात्म का एक्का (पहला अंक) की शुरूआत ही नहीं हुई, कारण अभी तक 'मुक्ति का द्वेष' है।

चरमयथा प्रवृत्तिकरण :- यथा - सहज रुप से, प्रवृत्त : आया हुआ, करण: अध्यवसाय, अपुनर्बंधक अवस्था प्राप्त होने के बाद जीव 1 क्रो. क्रो. सा. से न्यून कर्मबंध की योग्यता तक पहुंचे और स्थिति बंध की योग्यता तोड़ डाले वह।

चरम यथा प्रवृत्तिकरण - यानि अपूर्व करण। संसार में रहकर समकित प्राप्त करे या न करे परन्तु कभी भी 1 क्रो. क्रो. सा. से अधिक की स्थिति न बांधे।

उच्च से उच्च संसारी सुख, दु:ख रुप लगे, चक्रवर्ती इसी कारण वैरागी बन जाते हैं।

तत्व का द्वेषी :- भौतिक सुख में एकांत सुख मानने वाला जीव, मोक्ष की भूमिका में कृत्रिम राग वाला होता है।

क्षयोपशम भाव :- जिस भाव के द्वारा आत्मा के गुणों का संवेदन होता है।

औदायिक भाव :- जिस भाव के द्वारा संसार में सुख का संवेदन होता है। वे हैं - नींद, नशा, स्पर्श, रस, वर्ण, गंध, शब्द।

गुणस्थानक :- पुद्गल में सुख नहीं, आत्मा में सुख है।

- ऐसा अनुभव पूर्वक निर्णय कराने वाली अवस्था।
- सकाम निर्जरा कराने वाली अवस्था।
- पुण्यानुबंधी पुण्य का हेतु साधने वाली अवस्था।

संपूर्ण अहिंसा - सिद्धदशा में रहे हुए जीव की शक्ति, जो सभी जीवों को अभयदान देती है। ऐसी कोई जड़ वस्तु वर्तमान में दिखाई देती हैं वह भूतकाल के किसी जीव का कलेवर है।

सत्य :- प्रकृति के हितकारी नीति-नियमों का अनुसरण करना उसका नाम सत्य। पुद्गल (देह) को अपना समझना (देह) यह असत्य, वचन और काया से केवलज्ञानी को भी होता है।

चरमावर्त काल :- जिस समय में गुण का अद्वेष वर्त रहा हो।

पहला गुण स्थान :- जिस दशा में जीव का तात्विक प्रवेश होता है, अपुनर्बंधक अवस्था, योग की प्रथम भूमिका, मुक्ति का अद्वेष भाव प्रारंभ होता है।

1. अपूर्व प्राप्ति का आनंद , 2. क्रिया मार्ग में सूक्ष्म आलोचना, 3. भव का तीव्र भय, 4. विधि का तात्विक बहुमान।

मुक्ति की तात्विक जिज्ञासा :- चरम यथा प्रवृत्तिकरण का भाव।

मुक्ति की तात्विक इच्छा :- बोधिबीज की प्राप्ति, प्रथम योग दृष्टि।

तत्व का अज्ञान :- मोह का शरीर जिसकी करोड़ रज्जु (बंधन) 18 पाप स्थानक हैं।

तत्व का ज्ञान :- चारित्र धर्म का शरीर, तत्वज्ञान के बिना संसार से छुटकारा नहीं हो सकता।

स्थितप्रज्ञ :- अनुकूलता और प्रतिकूलता में समभाव से रहना, यह पहले तत्व का निर्णय फिर तत्व का पक्षपात, यही सम्यग्दर्शन, पश्चात् हेय - उपादेय का सेवन।

माध्यस्थ भाव :- राग-द्वेष रहित भाव।

औदासिन्य :- राग-द्वेष रहित, माध्यस्थ भाव।

औद्यदृष्टि :- परभाव दशा, पुदगल के सुख की अपेक्षा, अनन्त, जन्म मरण।

योगदृष्टि :- स्वभाव दशा, गुणों के सुख की अपेक्षा, शैलशी अवस्था, मोक्ष।

मिथ्यात्वी जीव :- मित्रा (तृण), तारा (गोयम), बला (काष्ठ), दीप्ता (दीप), दृष्टिवाला जीव।

समकिती जीव :- 5वीं दृष्टि-स्थिरादृष्टि, चौथा गुणस्थानसवाला जीव,

भौतिक अनुकूलता :- घाती कर्मों का क्षयोपशम और शुभ अघाती कर्मों का उदय।

भौतिक प्रतिकूलता :- घाती कर्मों का उदय एवं अघाती अशुभ कर्मों का उदय।

* नव तत्व :- जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष।

जैन दर्शन को समझने के लिए (संक्षिप्त रुप में) नव तत्व बहुत उपयोगी है। इन को समझने के बाद जीवन के उपयोगी योग्य मार्ग को समझाया जा सकता है। ये नव तत्व ही जगत के सत्य तत्व रूप हैं। जीवन के उत्कर्ष के लिए निश्चित रुप से ये मार्गदर्शक हैं। इस प्रकार नव तत्व दोनो गुणों को धारण करने वाले हैं।

(1) जगत का स्वरुप (2) जीवन मार्ग। इसलिए इनको तत्व कहा गया है। नव तत्व अत्यन्त महत्व की वस्तु हैं। ऐसी स्पष्ट या अस्पष्ट समझ रुप श्रद्धा को सम्यक्त्व कहा है। सम्यक्त्व के स्पर्श के बाद जीव कर्तव्य की ओर उन्मुख होकर कुछ ही समय में मोक्ष सुख तक पहुँच जाता है।

* संवर तत्व :- समइ गुप्ती परिसह, जई धम्मो भावणा चरित्ताणि।
पण ति दुवीस दस बार - पांच भेणहिं - सगवन्ना॥

जईधम्मो : यति धर्म, पण : 5 भेद, भेणहिं : इन भेदों के द्वारा, सगवन्ना : सत्तावन (भेद)।

* आते कर्म को रोकना वह – संवर।

* <u>सम्</u> – सम्यक् प्रकार से, उपयोग–यत्नपूर्वक। इति– गति चेष्टा।

* <u>गुप्यते</u> – जिससे रक्षा होती है, संसार में डूबते प्राणी की रक्षा – वह गुप्ति।

* <u>सह</u> – सहन करना।

* <u>परि</u> – सभी तरफ से सम्यक् प्रकार से, उपसर्ग आए तो चलायमान नहीं होने देना।

* <u>यति धर्म</u> – मोक्ष मार्ग में जो प्रयत्न करे वह यति, उसका धर्म वह यतिधर्म।

* <u>भावना</u> – मोक्ष मार्ग के प्रति भावना की वृद्धि हो ऐसा चिंतन।

* <u>चय</u> – आठ कर्मों का संचय, संग्रह।

* <u>रित्त</u> – रिक्त (खाली), करे वह चारित्र।

* <u>सावद्य योग</u> – दोष सहित का व्यापार।

* <u>निर्वद्य</u> – दोष रहित का व्यापार।

* <u>समिति गुप्ति</u> – सम्यक् प्रकार से उपयोगपूर्वक जो प्रवृत्ति होती है, वह समिति और सम्यक् प्रकार से उपयोगपूर्वक निवृत्ति तथा प्रवृत्ति हो वह गुप्ति।

* <u>मनोगुप्ति</u> – सावद्य मार्ग के विचार में से रोकना एवं मन को सम्यक् विचारों में प्रवृत्त करना वह मनोगुप्ति।

आर्तध्यान, रौद्रध्यान से रोकना। धर्मध्यान एवं शुक्ल ध्यान में प्रवृत्त करना, केवली भगवंत को मनोयोग का पूर्णतः निरोध होता है। वह योग निरोध रुप मनोगुप्ति उत्कृष्ट प्रकार है।

* <u>वचन गुप्ति</u> – त्यागपूर्वक मौन, मुंहपत्ति रखकर बोलना।

* भाषा समिति एवं वचन गुप्ति में अंतर :–

* <u>वचन गुप्ति</u> – पूर्ण रुप से वचन, निरोध एवं निरवद्य वचन बोलने रुप एक ही प्रकार की। <u>भाषा समिति</u>–निरवद्य, वचन बोलने रुप एक ही प्रकार की। <u>कायगुप्ति</u>–काया को सावद्य मार्ग से रोकना, निरवद्य क्रिया में जोड़ना एवं उपसर्ग आए तब चलायमान नहीं होने देना।

परिषह के 22 भेद

परिषह :- 22 परिषहों में दो धर्म का त्याग नहीं करने के लिए हैं। दर्शन परिषह (श्रद्धा, सम्यक्त्व) एवं प्रज्ञा परिषह। शेष 20 कर्म की निर्जरा के लिए।

1. क्षुधा :- सभी अशातावेदनीय से अधिक क्षुधा वेदनीय है। अशुद्ध आहार ग्रहण नहीं करना और न मिलने पर आर्तध्यान नहीं करना।
2. पिपासा :- प्यास (तृषा)।
3. शीत परिषह :- अति ठंड।
4. उष्ण परिषह :- अति गर्मी, वस्त्र से हवा करने का विचार न करें।
5. दंश परिषह :- डांस, मच्छर, जूं, मकोड़ा आदि का दंश।
6. अचेल परिषह :- वस्त्र न मिले, या जीर्ण (पुराने) मिले, जीर्ण वस्त्र धारण करना परिग्रह है ऐसा कहने वाले असत्यवादी हैं; कारण संयम निर्वाह के लिए ममत्व रहित धारण करने में परिग्रह नहीं कहा जा सकता यह जिनेश्वर देव के वचन का रहस्य है।
7. अरति - परिषह :- अरति, उद्वेग भाव।
8. स्त्री परिषह।
9. चर्या परिषह :- विहार करना, मुनि को 9 कल्पी विहार करने का है।
   1. वर्षाकाल, 8. शेषकाल।
10. नैषेधिक परिषह :- शून्य, गृह, स्मशान, सर्पबिल, सिंह गुफा, स्त्री, पशु, नपुंसक रहित स्थान में रहना, पाप एवं गमनागमन का जिसमें निषेध है, वे स्थान नैषेधिक कहे जाते हैं।
11. शय्या - प्रतिकूल शैय्या से उद्वेग नहीं करना।
12. आक्रोश-परिषह :- अज्ञानी तिरस्कार करे तो मुनि उसके प्रति द्वेष न करे।
13. वध परिषह :- पूर्व भव के कर्मों से वध हो, प्रहार आदि हो तो समभाव से सहे।
14. याचना परिषह :- साधु कोई भी वस्तु मांगे बिना ग्रहण न करे, लज्जा एवं मान रहित भिक्षा मांगना।

15. <u>अलाभ परिषह :-</u> भिक्षा न मिलने पर लाभांतराय कर्म का उदय समझना कोई बात नहीं तप वृद्धि हुई यह मानना।

16. <u>रोग-परिषह :-</u> बुखार, अतिसार (दस्ते) आदि रोग को कर्म विपाक सोच कर निरवद्य चिकित्सा करावें।

17. <u>तृण स्पर्श :-</u> डाभ आदि घास का 2।। (ढाई) हाथ प्रमाण का संथारा या वस्त्र का संथारा करे।

18. <u>मल परिषह :-</u> स्नान की इच्छा न करना।

19. <u>सत्कार परिषह :-</u> मान, सत्कार से हर्ष नहीं करना।

20. <u>प्रज्ञा परिषह :-</u> स्वयं बहुश्रुत ज्ञानी होने पर गर्व न करे।

21. <u>अज्ञान परिषह :-</u> आगम तत्व न जानने पर अज्ञान का उद्वेग न करे।

22. <u>सम्यक्त्व परिषह :-</u> अनेक कष्ट, उपसर्ग प्राप्त होने पर भी धर्म श्रद्धा से चलायमान न होना।

❊ किसी कर्म के उदय से कौन सा परिषह उदय आता है -

परिषह	किस कर्म के उदय से	किस गुण स्थानक तक
क्षुधा - पीपासा - शीत - उष्ण	अशाता वेदनीय	1 से 13
दंश-चर्या-शय्या-मल-वध	अशाता वेदनीय	1 से 13
रोग-तृण स्पर्श यह 11	अशाता वेदनीय	1 से 12
प्रज्ञा परिषह	ज्ञानावरणीय	1 से 12
अज्ञान परिषह	ज्ञानावरणीय	1 से 12
सम्यक्त्व परिषह	दर्शन मोहनीय	1 से 9
अलाभ परिषह	लाभांतराय	1 से 12
आक्रोश, अरति, स्त्री-निषेधा	चारित्र मोहनीय	1 से 9
अचेल-याचना-सत्कार यह ?		

स्त्री, प्रज्ञा और सत्कार परिषह ये 3 अनुकूल परिषह हैं एवं शेष प्रतिकूल हैं। स्त्री तथा सत्कार परिषह ये दो शीतल परिषह हैं और शेष 20 उष्ण हैं।

* जीव को शांति उत्पन्न करने वाले, जीव को अशांति उत्पन्न करने वाले परिषहों की गुण स्थानकों में विचारणा की (तत्वार्थ)।

12वें गुण स्थानक तक - 14 परिषह संभव हैं।

13वें गुणस्थानक तक - 11 परिषह संभव है।

9वें गुणस्थानक तक - 22 परिषह संभव है।

परिषह 22 : सयोगी केवली को 11 परिषह संभव है। विहार में प्रतिकूलता सहन करे, क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमंशक, चर्या (विहार), शय्या, वध, रोग, तृण स्पर्श, मल, निमित रुप, पर द्रव्य की उपस्थिति होने का अहसास कराने ही ऐसा कहा है। जिनेश्वर अनंत पुरुषार्थ मय होने से परिषह दु:खमय नहीं होते।

संयम 27 भेद

1. जीव हिंसा का सर्वथा त्याग।
2. असत्य का सर्वथा त्याग।
3. चोरी का सर्वथा त्याग।
4. मैथुन का सर्वथा त्याग।
5. परिग्रह मात्र का त्याग।
6. रात्रि भोजन तथा रात को पानी पीने का सर्वथा त्याग।
7. पृथ्वीकाय जीवों की रक्षा।
8. अपकाय जीवों की रक्षा।
9. अग्निकाय जीवों की रक्षा।
10. वायुकाय जीवों की रक्षा।
11. वनस्पति के स्पर्श का त्याग।
12. त्रसकाय जीवों की रक्षा।
13. स्पर्शेन्द्रिय के भोग से दूर

14. रसनेन्द्रि की लौलुपता का सर्वथा त्याग।

15. घ्राणेन्द्रिय के भोग का त्याग।

16. आंख-इन्द्रिय के भोग का त्याग।

17. ज्ञानेन्द्रिय के भोग से दूर।

18. लोभ दशा का निग्रह (लोभ)।

19. चित्त की निर्मलता (माया)।

20. वस्त्रादिक प्रतिलेखना (मान)।

21. अष्ट प्रवचन माता का पालन।

22. क्षमा को धारण करना (क्रोध)।

23. अकुशल मन का त्याग।

24. अकुशल वचन का त्याग।

25. अकुशल काया का त्याग।

26. परिषह - उपसर्ग आदि सहन करना।

27. मरणांत - उपसर्ग भी सहन करना।

संवर 57 हेतु द्वारा

3. गुप्ति, 5 समिति, 22 परिषह, 10 यति धर्म, 12 भावना, 5 चारित्र

* 3 गुप्ति - (1) काय गुप्ति :- काया के व्यापार को कार्योत्सर्ग से रोको (निवृत्ति भाव से अष्ट प्रकारी पूजा में प्रवृत्ति करना)

2. वचन गुप्ति :- मौन रखना, निवृत्ति। शास्त्रोक्त विधि अनुसार स्वाध्याय, चर्चा सत्संग के कार्य (प्रवृत्ति)।

3. मन गुप्ति :- क्रोध आया और रोका (निवृत्ति)। सामायिक लेकर मन को धर्म में लगाया (प्रवृत्ति)।

✻ <u>5 समिति</u>

<u>ईर्या</u> :- सूर्य प्रकाश में भूमि देखकर विहार करना।

<u>भाषा</u> :- प्रत्येक माह स्वाध्याय में आओ, सत्संग में भाग लो एवं आत्मा का कल्याण करो (स्व और पर के हितकारी वचन, गुणों से युक्त वह भाषा समिति)

<u>ऐषणा</u> :- गुरु महाराज को उत्कृष्ट भाव से वहोराना (दोष रहित आहार को देखकर उत्कृष्टता से ग्रहण किया वह ऐषणा समिति)

<u>आदान निक्षेप</u> :- सामायिक में आसन बिछाते समय प्रथम चरवला से भूमि प्रमार्जन कर फिर स्थान ग्रहण करना।

उत्सर्ग :- आचार्य ने शिष्य को भूमि प्रमार्जन कर मल-मूत्रादि परठने को कहा।

संवर : 6 कारण - धर्म : 10 - अनुप्रेक्षा : 12

(1) 3 गुप्ति, (2) 5 समिति, (3) 10 धर्म, (4) 12 अनुप्रेक्षा, (5) 22 परिषह जय और (6) 5 चारित्र।

योग से बंध होता है एवं योग से ही संवर-निर्जरा होती है। इस सिद्धांत आदि को ज्ञान-श्रद्धायुक्त निग्रह (निवृत्ति) प्रवृत्ति वह गुप्ति। समिति में सम्यक् प्रवृत्ति ही आती है (शास्त्रोक्त, विधि अनुसार)

ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान निक्षेप, उत्सर्ग।

<u>10 धर्म</u> - उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच (अनासक्ति), सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य (ममत्व का अभाव), ब्रह्मचर्य।

17 प्रकार का संयम :- 5 अव्रतों का त्याग, 5 इंद्रियों पर विजय, 4 कषाय त्याग, मन, वचन, काया से निवृत्ति (3)

12 अनुप्रेक्षा :- अनु = आत्मा का अनुसरण, प्रेक्षा = देखना।

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ, धर्म स्वाख्यात।

धर्म स्वाख्यात भावना : सम्यगदर्शन आदि विचारणाओं का चिंतन । श्रद्धा, गुण प्रगटे, प्रकट हुई श्रद्धा विशुद्ध बने, मोक्ष मार्ग से गिरने का डर दूर हो, उल्लास बढ़े ।

12 भावनाओं का चिंतन, यही प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना एवं समाधि ।

उत्तम धर्म पालन, परिषहों को जीत लेती है ।

बोधि दुर्लभ भावना :-

निगोद से मोक्ष की यात्रा का मंथन ।

दुर्लभ ऐसा मनुष्य भव ।

दुर्लभ ऐसी जिनवाणी का श्रवण ।

***

निगोद	व्यवहार राशि	अव्यवहार राशि
	निगोद	निगोद
	पृथ्वीकाय आदि	सम्पूर्ण ब्रह्मांड में है ।

कारण :- साधारण नाम कर्म का उदय, द्रव्य इंद्रिय 1, भाव इंद्रिय 5, अंतमुहुर्त में 66,336 भव कर चुके ।

नित्य निगोद :- अभी तक बेइन्द्रिय नहीं हुए ।

ईतर निगोद :- निगोद में से बाहर आकर फिर निगोद में जाने वाला जीव ।

चारित्र : 5 - बाह्य आभ्यंतर तप : 6

5 चारित्र :- सामायिक, छेदोपस्थाप्य, परिषह-विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात, चारित्र ।

6 बाह्य तप - अनशन, उणोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, संलीनता, काय क्लेश ।

6 आभ्यंतर तप :- प्रायश्चित (9 भेद), प्राय: अपराध, चित्त-विशुद्धि।

विनय (4 भेद) : गुण और गुणी का बहुमान !

वैय्यावच्च (10 भेद) : सेवा।

स्वाध्याय (5 भेद) : श्रुत अभ्यास

व्युत्सर्ग (2 भेद) : साधना में बिना जरूरी वस्तुओं का त्याग।

ध्यान (4 भेद) : चित्त की एकाग्रता।

ध्यान :- किसी एक विषय में चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहा जाता है। इस प्रकार का ध्यान, उत्तम संघयण, वज्रऋषभनाराच संघयण वाले को होता है, मन की वृत्तियों को अन्य क्रियाओं से खींचकर एक ही विषय में केन्द्रित करना यह चिंता निरोध है, ध्यान है।

उत्तम संघयण 4 हैं :- वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, निरंतर ध्यान अंतर्मुहूर्त तक ही रहता है।

ध्यान के 4 भेद :- आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान, शुक्ल ध्यान।

4 आर्तध्यान :- वेदना का वियोग, अनिष्ट का संयोग, ईष्ट का वियोग, भविष्य में विषयों को निदान के प्रति सर्वविरति।

दु:ख से जन्मे, दु:ख का अनुबंध करावे।

रौद्र ध्यान - हिंसा, असत्य, चोरी, विषय, संरक्षण, 4 भेद। अविरति एवं देश विरति जीवों को हो सकता। (4-5 गुण स्थानक)

शुभगति आराधना के 10 अधिकार

1. अतिचार आलोचना।
2. व्रत (गुरु की साक्षी से)।
3. क्षमा (84 लाख योनि के साथ क्षमा याचना का भाव)।
4. 18 पाप स्थानक वोसिराना।
5. चार शरणों का नित्य अनुसरण।
6. दुराचार की निंदा - गर्हा।
7. शुभ का अनुमोदन।
8. मन के शुभ अध्यवसाय।
9. अवसर आने पर अनशन।
10. नवपद का जाप।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्याचार के इस भव एवं पर भव के अतिचारों की आलोचना।

गुण स्थान 14

1. मिथ्यात्व :- सर्व दु:खों का मूल कारण।
2. गुण स्थान का आधार - बाह्य धर्म क्रिया पर है ? True or False ? False, आधार अंतर के परिणाम पर है।
3. शुद्ध मान्यता की क्या जरुरत है ? इसके बिना गुणों का स्वरुप सही रुप से नहीं समझा जा सकता। शुद्ध उपयोग नहीं होता।
4. शुद्ध मान्यता अर्थात् क्या ? जीव की जड़ता, परद्रव्य के मोह के कारण है।

दा. त. जेब में 100 डालर स्वयं के हो तो गर्मी रहती है ना ? बैंक वाले के 10 लाख डालर हमेशा गिनकर घर आते हैं तब मुंह पर पॉवर क्यों दिखाई नहीं देता ? क्योंकि वह पराया धन - दूसरे का अधिकार समझा जाता है।

पुण्य के उदय से मिली संपत्ति का मालिक 'औदयिक भाव है' ऐसा समझे तो जीव कर्म से लिप्त नहीं होता।

धर्म अनुष्ठान भोग, सामग्री से, आरंभ-समारंभ से दूर होने के लिए है।

दा. त. मंदिर में जाकर नियाणां करें तो आरंभ ही होता है। दान का भाव कर इच्छा करें तो आश्रव होता है; दान, मोह की वृत्ति छोड़ने का भाव करना है, मोह कम यानि जीव की जड़ता कम, त्याग के सुख में रस है।

दा. त. व्यसनी जीव कहता है - मुझे कंदमूल में रस है, संग्रह किया हुआ सामान भी काम आता है। मोहांध दशा है।

ज्ञान दशा रुपी दर्पण में देखने से जीवन के कचरे रुपी दोष दिखते हैं, गया तो गया :-

प्राप्ति, संरक्षण एवं वियोग तीनों में दु:ख, त्याग, वस्तु का नहीं ममत्व का करना है।

गुणस्थान : आत्मा का क्रमिक विकास, आत्मा के गुणों का विकास, यथा योग्य क्रमशः श्रेणियों में होता है। प्रथम श्रेणि से ज्यादा दूसरी श्रेणि के जीव आगे बढ़े हुए होते हैं। उत्तरोत्तर इस प्रकार प्रथम गुण स्थान से चौथा एवं उत्तरोत्तर विकास अनुसार गुण स्थानक चढ़ते जाते हैं।

आत्मबल मोक्ष महल में पहुँचने की सीढ़ी है।

मुख्य 11वें गुण स्थान से, जो प्रमाद से सचेत हो गए, वे तिर गए। जितनी आत्मा की परिणति उतने गुण स्थान, प्रवाह के समान आत्मा की स्थितियाँ जुड़ी हुई हैं।

1. मिथ्यात्व :- (कर्तव्य - अकर्तव्य के विषय में आत्मकल्याण के मार्ग में विवेक का अभाव)।

सत्य दृष्टि न हो, अज्ञान, भ्रम, छोटी-सी चींटी से लगाकर बड़े पंडितों, तपस्वियों एवं राजा भी मिथ्यात्व की श्रेणि में हो सकते हैं।

हरिभद्राचार्य के 'योगदृष्टि समुच्चय' ग्रंथ में योग की आठ दृष्टियाँ बताई हैं - मित्रा, तारा, बला, दिप्ता, स्थिरा, कान्ता, प्रभा, परा दृष्टि में चित्त की मृदुता, अद्वेषवृत्ति,

अनुकंपा, कल्याण-साधना की स्पृहा (चाह) जैसे प्राथमिक गुण प्रकट हो, तब प्रथम गुण स्थान प्राप्त होता है । सद्गुण आने के बाद भी 'मिथ्यात्व' स्वरुप में ही पहिचान होती है । कारण - यथार्थ सम्यग्दर्शन नहीं होता । मंद मिथ्यात्व होने से मिथ्यात्व से ही पहिचान होती है ।

जिन जीवों ने मित्रा दृष्टि को नहीं अपनाया वे पूर्णत: मिथ्यात्व-गुणस्थानक द्वारा पहिचाने जाते हैं, क्योंकि - गुण का उत्थान यहीं से होता है । 'मिथ्यात्व' गुण स्थानक दर्शन मोहनीय कर्म के आवरण के कारण भुक्तान करना पड़ते हैं ।

2. सासादन, सास्वादन गुण स्थान :-

सद्धातु :- शिथिल करना, शिथिल हो जाना,

सादन :- शिथिल करने वाला, आ+सादन, अधिक शिथिल करने वाला । सम्यक्त्व से विचलित होने वाले जीवों की स्थिति - वह 'सासादान' । वमन (कै) कराते सम्यक्त्व के आस्वादन से युक्त वह - सास्वादन ।

जब अनंतानुबंधी - परम तीव्र कषायों के उदय होने पर सम्यक्त्व से विचलित होने का समय आता है । अज्ञान, मोह में या मिथ्यात्व में अनुरक्त होने रुप अवस्था 'उपशम' समकित से चलित होने वाले के लिए यह गुण स्थान है ।

3. मिश्र गुण स्थान :-

आत्मा के विचित्र अध्यवसाय का नाम जो मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व का मिश्रण रुप है ।

किसी को सत्य का दर्शन होता है और उसके पूर्व संस्कार से पीछे खींच लेते हैं । सत्य का दर्शन आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है । ये अवस्था झूले जैसी हो जाती है । यहाँ न तो अनंतानुबंधी कषाय होता है और ना ही पूर्ण विवेक की प्राप्ति - अर्थात् सन्मार्ग के विषय में श्रद्धा भी नहीं और अश्रद्धा भी नहीं, यह 'डांवाडोल' की स्थिति होती है ।

4. अविरत सम्यग्दृष्टि :- भव भ्रमण का समय निश्चित करने वाली आत्मा की अवस्था, आत्म विकास की मूल आधार भूमि ।

अविरत सम्यग्दृष्टि : बिना विरति की सम्यग् दृष्टि ।

सम्यक्त्व अर्थात् सत्य अथवा निर्मलता, दृष्टि की सच्चाई । आत्म कल्याण के प्रति तत्वदृष्टि, कल्याण दृष्टि के योग से धर्मांधता, मत-दुराग्रह, संकुचित सांप्रदायिकता दूर होती है। कषाययुक्त भावावेश शांत हो जाता है ।

सम्यक्त्व अथवा सम्यग् दर्शन :- अर्थात् सच्ची श्रद्धा, विवेकपूर्ण श्रद्धा, कर्तव्य, अकर्तव्य या हेय, ज्ञेय, उपादेय विषयक विवेक, दृष्टि का बल जो कल्याण साधन में निश्चय श्रद्धा, अटल विश्वास रुप है ।

सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर किंचित ज्ञान, अल्प श्रुत ज्ञान, साधारण बुद्धि या परिमित पढ़ाई (पठन), सम्यग्ज्ञान बन जाता है । ज्ञान की सम्यकता, सम्यग्दर्शन पर अवलंबित है । ज्ञान से वस्तु का ज्ञान है, इसमें विवेक दृष्टि पवित्रता लाती है । ये दोनों के आधार पर चारित्र तैयार होता है ।

इसीलिए कहा है :- 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:'

ज्ञान या बुद्धि का विकास चाहे जितना महान हो किन्तु दृष्टि का महात्म्य उससे भी अधिक है, 'दृष्टि जैसी सृष्टि' उचित कथन है ।

✻ जिन भगवान की वाणी :-

1. परलोक है, सुख दु:ख शुभाशुभ कर्म के अधीन है ।
2. संसार दु:ख रुप है, संसार का सुख क्षणिक है, सच्चा सुख मोक्ष स्वरुप में ही है ।
3. मोक्ष प्राप्त करने जिनेन्द्र देव के कहे हुए 5 महाव्रतों को स्वीकार कर त्याग मय जीवन जीना चाहिए । इन तीनों में दृढ़ श्रद्धा ही सम्यक्त्व है ।

मिथ्यादृष्टि एवं अविरत सम्यग्दृष्टि के बीच का अंतर :- धार्मिक भावना का अभाव । सभी आत्माओं के साथ एकता का अनुभव करने की सद्वृत्ति का अभाव । अन्य के साथ स्वार्थ या बदला लेने की वृत्ति । अनुचित करने के बाद पश्चाताप या दर्द का अभाव । पाप को पाप न गिने, पुण्य पाप का भेद अग्राह्य है । स्वार्पण का सात्विक तेज नहीं होता ।

5. देश विरति : मर्यादित विरति - गृहस्थ धर्म व्रतों का नियम से पालन करना यह देश विरति है, अंशत: दृढ़ता के साथ पापयोग से विरत होना यह देश विरति ।

श्रावक के धर्म - 5 अणुव्रत।

1. स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत :

प्राण का अतिपात :- 10 प्राण :- मन, वचन, काया, 5 इन्द्रिय, आयुष्य एवं श्वासोच्छ्वास, प्रमाद या दुर्बुद्धि से प्राण को मारने के लिए तकलीफ पहुंचावे, यह हिंसा है।

<u>प्रमत्त योगात् - प्राणव्यपरोपणं हिंसा (तत्वार्थ 7-8)</u>

प्रमाद से अर्थात् राग-द्वेष वृत्ति से प्राणि के प्राण लेना हिंसा है। प्रमत्तयोग यह भाव हिंसा है, प्राण का नाश, द्रव्य हिंसा है। संकल्प से निरपराधी, आरंभ से, उद्योग से, विरोधी का वध हिंसा, ऐसे 4 प्रकार की हिंसा स्थूल प्रकार की गिनी जाती है।

2. स्थूल मृषावाद विरमण - विश्वासघात तथा गलत सलाह देना महापाप कहा है।

3. स्थूल अदतादान विरमण, 4. स्थूल मैथुन विरमण, 5. परिग्रह परिमाण, 6.दिशाव्रत, 7. भोगोपभोग परिमाण, 8. अनर्थदंड विरमण, 9. सामायिक व्रत, 10. देशावगासिक व्रत, 11. पौषधव्रत, 12. अतिथिसंविभाग।

<u>6. सर्वविरति - प्रमत्त संयत</u> :- महाव्रतधारी साधु जीवन के लिए यह गुणस्थान है। सर्व विरति होने पर भी प्रमाद है।

उचित भोजन, उचित निद्रा, मंद कषाय प्रमाद में नहीं गिना जाता। तीव्रता धारण कर लेती है ये स्थितियाँ तब प्रमाद गिना जाता है। चौथा गुण स्थान, चारित्र मोह को निर्बल बनाना पड़ता है। छटठे गुण स्थान के जीव संसार त्यागी होते हैं।

<u>7. अप्रमत संयत</u> :- साधु जब अप्रमत्त बनते हैं, तब 7वें गुणस्थान में आते हैं। स्थूल प्रमाद पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। सूक्ष्म प्रमाद (विस्मृत, अनुपयोग आदि) अभी तक बाधक होता है। उस पर विजय प्राप्त कर एवं पतित होते हुए छट्ठे गुण स्थानक पर आ जाता है, इस प्रकार उतार - चढ़ाव अवगेह चलता रहता है।

साधुरुप योद्धा प्रमाद रुप शत्रु के साथ जय-पराजय करता रहता है।

<u>8. अपूर्वकरण</u>:-पूर्व में न किए ऐसे करण, अध्यवसाय सावधान रहकर अधिक अप्रमत्त बनते हुए 8वें गुण स्थान में चढ़ जाते हैं। इस गुण स्थान से आत्मा, विशुद्ध अध्यवसायों के

बल से स्थितिघात, रसघात, गुण श्रेणि, गुण संक्रम, स्थिति बंध ये पांच पूर्व में न किए हों वैसे करता है।

चारित्र मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय यहाँ से प्रारंभ होता है।

9. <u>अनिवृत्तिकरण</u> :- यहां से जीव दो विभाग में हो जाता है। क्षपक एवं उपशमक। 9वें गुण स्थान में आत्मा, सुक्ष्म लोभ के अतिरिक्त मोह को क्षय या उपशम कर देती है।

इस गुण स्थान में एक समय में चढ़े हुए सभी जीवों के अध्यवसायों की शुद्धि में निवृत्ति-तरतमता नहीं होती अर्थात् सभी जीवों के अध्यवसाय समान होते हैं।

इसलिए इसे अनिवृत्ति बादर संपराय गुण स्थान कहा है, साथ बादर शब्द जोड़ दिया, स्थूल कषायों को निर्देश करने के लिए।

10. <u>सूक्ष्म संपराय</u> - संपराय : कषाय। आत्मा में जब मोहनीय कर्म उपशांत या क्षीण होते हैं, सिर्फ एक लोभ (राग) के सूक्ष्म अंश रह जाता है तब उस स्थिति का गुण स्थान 'सूक्ष्म संपराय' कहलाता है।

11. <u>उपशांत मोह</u> :- मोह का संपूर्ण उपशमन। दबे हुए शत्रु के समान मोाह शांत होता है। बल मिलते ही दबा हुआ मोह पुन: आत्मा को गिराता है। कालक्षय से यदि नीचे आती है तो 7वें गुणस्थान पर आती है। फिर 6-7 गुणस्थान में उतार-चढ़ाव चलता है। उससे नीचे अंत में पहले गुणस्थान में भी आ सकती है। भव क्षय से गिरे तो देवलोक में उत्पन्न होने से 11वें गुणस्थान से सीधी चौथे गुणस्थान में पहुंच जाती है।

12. <u>क्षीण मोह</u> :- चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय होने पर आत्मा की स्थिति इस गुण स्थान पर पहुंचती है। समभाव पूर्ण स्थायी है। मोह के समस्त (राग) पुंज उदित होने पर अटक जाता है और आत्म प्रदेशों में फिर उदित होती है। वह उपशम और केवलज्ञान प्रकट होते ही क्षय हो जाता है। इस गुण स्थान में मोह का क्षय होने पर फिर उद्भव नहीं होता। शुक्ल ध्यान समाधि की अवस्था है। 10वें गुण स्थान से 12वें गुण स्थान में चढ़ता है।

13. <u>सयोगी केवली</u> :- (शरीर धारी योगमुक्त केवली)

धाती कर्मों का संपूर्ण क्षय, केवल ज्ञान 13वां गुणस्थान प्रकट होता है। तीन काल के

सभी पदार्थों का ज्ञान रहता है, सयोगी केवली पांच ह्रस्वाक्षर जितने प्रमाण में बाकी रहता है - वहाँ तक 12वां गुण स्थान रहता है। मन, वचन, काया के योग की प्रवृत्ति चालू रहती है। उपदेश विहार आदि क्रियाएँ चालू रहती हैं।

<u>गुणस्थान समारोह संबंधी प्रक्रिया</u> : 7वाँ गुणस्थान (अप्रमत्त संयत)। यहाँ वीर्यवान साधक की आंतरिक साधना अत्यंत सूक्ष्म बन प्रखर प्रगतिमान बनती है।

मोहनीय कर्म सरदारी धारण करता कर्म है

दर्शन अर्थात् दृष्टि मोहनीय	चारित्र मोहनीय
(कल्याण भूत तत्व श्रद्धा)	चारित्र को रोके वह
रोके वह दर्शन मोहनीय	चारित्र मोहनीय

जो जीवन के अंतर्मुहूर्त में दर्शन मोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व के पुद्गलों का उदय इतने समय तक रुक जाए एवं उस जीवन का वह अंतर्मुहूर्त सम्यक्त्व संपन्न बने वह सम्यक्त्व 'उपशम' समकित है। इस सम्यक्त्व के प्रकाश में जीव सम्यक्त्व के अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण के बाद उदय में आने वाला दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व) पुद्गलों के संशोधन का काल काम करता है, ये तीन पुंज करते हैं :-

1. शुद्ध पुद्गलों का पुंज - सम्यक्त्व मोहनीय कर्म।
2. शुद्ध - अशुद्ध मिश्र पुंज - मिश्र मोहनीय कर्म।
3. अशुद्ध पुंज - मिथ्यात्व मोहनीय कर्म।

उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होते ये तीन पुंज में से जिसका उदय होता है उस अनुरूप आत्मा की परिस्थिति बन जाती है। अर्थात् - सम्यक्त्व मोहनीय पुंज का उदय होता है तो आत्मा 'क्षयोपशम' समकित धारण करती है। मिश्र मोहनीय पुंज का उदय होता है तो आत्मा की स्थिति डांवाडोल हो जाती है। मिथ्यात्व मोहनीय पुंज का उदय होने पर आत्मा मिथ्यात्व के आवरण में ढंक जाती है।

दर्शन मोहनीय के तीन पुंज + 4 अनंतानुबंधी कषायों के उपशम से प्रकट होने वाला उपशम सम्यक्त्व उपशम श्रेणि अवस्था में जीव को रख देती है।

*** उपशम सम्यक्त्व –** मिथ्यात्व का i.e. दर्शन मोहनीय का कोई पुद्गल का विपाकोदय या प्रदेशोदय, कोई भी उदय नहीं होता। (विपाकोदय : फलप्रद उदय, प्रदेशोदय : उदय से आत्मा पर प्रभाव नहीं होता) यह शुद्ध आत्म परिणाम रूप है।

*** क्षयोपशम सम्यक्त्व –** प्रदेशोदय गत पुद्गलों का क्षय एवं उदय में नहीं आए हुए ऐसे पुद्गलों का उपशम। इस प्रकार क्षय एवं उपशमन दोनों प्रकार का समकित है। यहाँ सम्यक्त्व मोहनीय पुद्गलों का विपाकोदय होता है।

जब तीन दर्शन मोहनीय एवं 4 अनंतानुबंधी कषाय, इन 7 पुद्गलों का क्षय होता है, तब क्षायिक समकित प्रकट होता है।

*** चारित्र मोहनीय के 25 प्रकार –** क्रोध, मान, माया, लोभ (4-4)

अनंतानुबंधी – अति तीव्र कषाय, अनंत दुःख रुप, मिथ्यात्व के उद्भावक।

अप्रत्याख्यानी – अ = अल्प, अल्प प्रत्याख्यान को रोकने वाला कषाय, वह अप्रत्याख्यानावरण, देश विरती को रोकता है।

प्रत्याख्यानी – प्रत्याख्यानी को रोकने वाला कषाय, सर्वविरति को रोके।

संज्वलन – वीतराग चारित्र को रोकने वाला कषाय।

9 नोकषाय – हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा (घृणा), स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद।

त्रिविधि दर्शन मो.+अनंतानुबंधी 4 कषाय का उपशम = उपशम सम्यक्त्व।

त्रिविध दर्शन मो. + अनंतानुबंधी 4 कषाय का क्षय = क्षायिक सम्यक्त्व।

जीव 8वें, 9वें गुणस्थान में, शेष 21 में से 20 मोहनीय कर्म प्रकृतियों को उपशम कराती है अथवा क्षय करते हैं।

10वें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ को – उपशमाकर 11वें गुणस्थान में आती है।

10वें गुणस्थान में सूक्ष्म लोभ को – क्षय कर 12वें गुणस्थान में आती है।

आत्मा जैसे-जैसे विकास प्राप्त करती है वैसे-वैसे क्रमशः कर्मबंध के हेतु कम होते जाते हैं – मिथ्यात्व, अवरिति, प्रमाद, कषाय, योग।

1ले गुणस्थान में मिथ्यात्व और अविरति दोनों होते हैं (प्रमाद कषाय-योग होते हैं)

2,3,4 गुणस्थान में अविरति है किन्तु मिथ्यात्व नहीं (प्रमाद - कषाय योग होता है)

5,6 वें गुणस्थान में देश विरति एवं फिर अविरति नहीं (प्रमाद-कषाय-योग होता है)

7वें गुणस्थान में प्रमाद रुक जाता है (कषाय एवं योग भी होता ही है)

8,11,12 कषाय 12वें में रुक जाता है, योग ही बाकी रहता है।

13, 14 सयोगी में अयोगी होने पर योग भी क्षय हो जाता है। योग का निरोध यही योग का संवर है।

14. <u>अयोगी केवली</u> :- सर्व व्यापारी रहित, क्रिया रहित, केवली अयोगी होते ही शरीर छूट जाता है एवं परमात्मा, अमूर्त, अरुपी, केवल ज्योति स्वरुप केवल्यधाम को प्राप्त हो जाती है।

* गुण - आत्मा की चेतना - सम्यक्त्व, चारित्र, वीर्य आदि शक्तियाँ।

* स्थान - अवस्थाएँ, शक्तियों की शुद्ध रुप तरतम भाव वाली स्थितियाँ।

गुण स्थान की कल्पना मुख्य रुप से मोहनीय कर्म की विरलता एवं क्षय के आधार से करने में आयी है।

<u>मोहनीय कर्म की दो मुख्य शक्तियाँ</u> :- 1. दर्शन मोहनीय - आत्मा के सम्यक्त्व गुण को आवृत (आवरण-ओट में) करने वाला (तत्व रुचि या सत्य के दर्शन न हो)।

2. चरित्र मोहनीय - आत्मा के चरित्र गुण को रोके (सक्यक्त्व के अनुसार प्रवृत्ति करे किन्तु स्वरुप का लाभ न होना।

दर्शन मोहनीय का बल कम होने के बाद ही चारित्र मोहनीय क्रमश: निर्बल हो जाता है, जब तक मोहनीय शक्ति तीव्र हो तब तक दूसरे आवरण भी तीव्र रहते हैं।

1. मिथ्यादृष्टि : सत्य विरुद्ध की दृष्टि।

दर्शन मोहनीय की प्रबलता के कारण तत्व रुचि प्रकट ही नहीं होती।

2. 11वें गुण स्थान से पतन होती आत्मा प्रथम गुणस्थान पर जाते हुए मध्य में बहुत कम समय के लिए तत्व रुचि का किंचित आस्वादन होने से सास्वादन गुण स्थान कहा है।

3. झूले में झूलने जैसी डांवाडोल स्थिति।

सर्वथा सत्य दर्शन नहीं, मिथ्या दृष्टि नहीं, संशयात्मक स्थिति वाली आत्मा।

4. यहां दर्शन मोहनीय या तो लगभग शमन हो जाता है या क्षीण हो जाता है। आत्मा सम्यग्दर्शन कर सकती है। चारित्र मोहनीय की सत्ता सविशेष होने से विरति (त्यागवृत्ति) उदय नहीं होती (इस कारण से इस अवस्था को 'अविरति सम्यग्दर्शन' कही है)

5. देश विरति (संसारी) : सत्यदर्शन के बाद अल्प अंश में भी त्यागवृत्ति का उदय। चारित्र मोहनीय की सत्ता घटती जाती है।

6. सर्वविरति (साधु) : - त्यागवृत्ति संपूर्ण रुप में हो, परंतु बीच में प्रमाद (स्खलन) संभव है।

7. अप्रमत्त संयत :- जहां प्रमाद किंचित भी संभव नहीं हो वह अवस्था। विस्मृति, सूक्ष्म प्रमाद, अनुपयोग होता है।

8. अपूर्वकरण या निवृत्ति बादर : पूर्व में नहीं अनुभव की हुई आत्म शुद्धि। अपूर्व वीर्योल्लास।

9. अनिवृत्ति बादर :- चारित्र मोहनीय कर्म के शेष अंशों को शमन करने का काम चालू रहता है।

10. सूक्ष्म संपराय :- लोभ रुप में उदित मोहनीय कर्म का सूक्ष्म अंश।

11. उपशांत मोह :- सूक्ष्म लोभ रुप पूरा ही शमन हो जाए। मोहनीय का सर्वांश उपशम या दर्शन मोहनीय का क्षय संभव है किन्तु चारित्र मोहनीय का उपशमन ही होता है। इसीलिए मोह का पुन: उद्रेक होते ही पतन - प्रथम गुणस्थान तक।

12. क्षीण मोहनीय :- दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय का संपूर्ण क्षय। यहां से पतन संभव नहीं। सर्वज्ञता प्रकट होती है।

13. सयोगी केवली :- सर्वज्ञता होने पर भी मन, वचन, काया का व्यापार अभी चालू है।

14. अयोगी केवली :- मन, वचन, काया की प्रवृत्तियों का अभाव। यहां गुणस्थान से ऊपर विदेहमुक्ति प्राप्त होती है।

आगम के मोती - असंख्य

बा. ब्र. पूज्य श्री नम्र मुनि म.सा.

1. विनय :- गुरु छद्मस्थ हो और शिष्य सर्वज्ञ बन जाए, एक सरागी, एक वीतरागी, एक अल्पज्ञ और एक सर्वज्ञ, फिर भी केवल ज्ञानी शिष्य छद्मस्थ गुरु को वंदन करे यह वीर प्रभु के शासन में, कितना उत्कृष्ट विनय !!
2. एक सुई की अणी (नोक) जितने क्षेत्र में मन सहित के पंचेन्द्रिय जीव असंख्य संख्या में रह सकते हैं एवं क्रोड़ पूर्व तक भी जीवित रह सकते हैं ? महावीर का - Microscope ऐसा देख सकते हैं। (भगवती सूत्र : शतक - 24)
3. वे वृक्ष नीचे बैठ कर सामायिक करता सिंह मिलें ? हाँ, असंख्य गाय, सिंह, बंदर, पक्षी, मछलियाँ, वर्तमान में मिले, एक-दो नहीं असंख्य-असंख्य मिलते हैं (आवश्यक सूत्र)
4. प्रथम नरक के नारकियों की कितनी संख्या ? दूसरी, 3, 4, 5, 6वीं नरक के नारकियों की गणना करने पर जो संख्या आती है, उससे असंख्य गुणी (पन्नवणा सूत्र - पद 3)
5. 9 ग्रैवेयक :- 9 ग्रैवेयक के कुछ 318 विमान हैं; प्रत्येक विमान असंख्याता योजन के विस्तारवाला है, प्रत्येक विमान में असंख्यात देव होते हैं। प्रत्येक विमान में असंख्य अभवी देव भी होते हैं। (भगवती सूत्र : शतक 13, उ.1)
6. इस विश्व में कितने ही अनंत दुर्भागी, कर्मभागी जीव हैं कि - अनादि काल से आज तक के अनंत काल में उसने कभी न मुख से खाया न आंख से देखा, न कान से सुना है। ऐसी 'निगोद' अवस्था को सर्वज्ञ के बिना कोई भी नहीं जान सकता (भगवती सूत्र : श.24)

7. तीर्थंकर की देशना सुनकर 1000 व्यक्ति दीक्षा के लिए तैयार होते हैं तो 1000 रजोहरण (ओघा) एवं 1000 पात्र की जोड़ तैयार मिले इसका रहस्य 'कृत्रिकापन' । कुः पृथ्वी, त्रिका : तीन, आपन : दुकान । तीन लोक में उपलब्ध ग्राह्य वस्तु वहाँ से मिल जाती है - Spiritual Department Store कल्पवृक्ष? (ज्ञाता धर्म कथा सूत्र : अ. 1)

8. जीव एक मुहूर्त मात्र यदि कषाय रहित बन जाए तो केवलज्ञान हो जाए उस जीव को (भगवती सूत्र : श. 6, उ. 4)

9. अनंत सिद्धों से अनंत गुणी जीव ऐसे हैं जिसने कभी भी अंतमुहूर्त से अधिक i.e. 48 मिनिट से ज्यादा बड़ा भव नहीं किया । एक घंटा भी पूरा जीने के लिए जिसको नहीं मिला वे निगोद के जीव । (भगवती सूत्र : श. 24)

10. रे मोही .... समझ, बस इतना समझ !!

एक बार प्रबल वैरागी 'संभूति मुनि' भोग में ललचाते मन को विचलित किया । ब्रह्मदत्त चक्री बने। 700 वर्ष का आयु भोग कर 7वीं नरक के 33 सा. के दुःख मिले । एक मिनिट के भोग के पीछे करोड़ों पल्योपम का महाभयंकर दुःख पाया । धन्ना अणगार को नौ महीने भोग का त्याग कर एक मिनिट के मोह त्याग में अरबों पल्योपम का सर्वार्थ सिद्ध देव का सुख मिला (अनुत्तरो ववाई सूत्र)

11. भव्य जीव की अंतर्धारा को भिगोने वाले 4 प्रकार के बादल का स्वरुप बताते हुए प्रभु महावीर ने ज्ञान की वर्षा की है ।

1. पुष्करावर्त मेघ :- 1 बार बरसता है, 10,000 वर्ष तक भूमि फलफूल युक्त रहती है।
2. पर्जन्य मेघ :- 1 बार बरसता है, 1000 वर्ष तक अनाज उगता रहता है ।
3. जीमुर्त मेघ :- 1 बार बरसता है 10 वर्ष तक अनाज उगता रहता है ।
4. जित्म मेघ :- जिसके बरसने से अन्न उगे भी और न भी उगे ।

सब से श्रेष्ठ महावीर मेघ, जिनकी वर्षा आत्म धारा पर बरसे तो अनंतकाल तक आत्म गुणों का अन्न उगता रहता है । (ठाणांग सूत्र : स्थान - 5)

12. देवलोक में भी पुस्तकें होती हैं, 'पुस्तकें रत्न की ओर पुट्ठे-रिष्ट रत्न के, बांधने के डोरे सोने के, कागज-अंक रत्न के, स्याही-रिष्ट की, कलम-वज्र की, अक्षर-रिष्ट रत्न के। पुस्तकें शाश्वत होती हैं (जीवाभिगम सूत्र)

13. महावीर प्रभु का केवलज्ञान : एक्स-रे से भी सूक्ष्म। मानव, स्त्री के उदर में उत्पन्न जीव गर्भ में अधिक से अधिक 24 वर्ष जी सकता है, कम से कम अंतर्मुहुर्त। तिर्यंच नारी (मादा पक्षी-पशु) के उदर में उत्पन्न जीव गर्भ में उ. 16 वर्ष। एक बालक के 1 भव में अधिक से अधिक प्रत्येक 100 पिता हो सकते हैं (लगभग 900) और एक पिता के एक भव में उत्कृष्ट प्रत्येक लाख पुत्र हो सकते हैं (भगवती सूत्र : शा.1)

14. चक्रवर्ती सम्राट :- 6 खंड के स्वामी, संपूर्ण भरत क्षेत्र के अधिपति, देवलोक के 16,000 देव उसके अधिनस्थ, 64000 रानियाँ, 32000 मुकुट बंध राजा के स्वामी, 84 लाख हाथी, 84 लाख घोड़े, 96 करोड़ पैदल सेना, 9 निधि, 14 रत्नों के स्वामी, इसीलिए इनको नरदेव कहा जाता है। (जंबूद्वीप पन्नति सूत्र)

15. चक्रवर्ती के 14 रत्नों का वैभव :- चक्र रत्न रथ के पैये जैसा, नाभि वज्र की, और आरा लोहिताक्ष रत्न के, परिधि-जांबुनंद रत्न की 1000 यक्ष देवों से अधिष्ठित। चक्रवर्ती के कुल के अतिरिक्त, अन्य किसी पर फैंका जाए तो सिर छेदन कर के ही पुनः आता है। आकाश में चलता है, खंड साधने का मार्ग बताता है। (जंबू द्वीप पन्नति सूत्र)

16. तीर्थंकर परमात्मा का जन्माभिषेक, शकेन्द्र आदि 64 इन्द्र, भगवान को गोद में बैठाकर स्नान कराते हैं। एक शक्रेन्द्र महाराज स्वयं के एक भव में असंख्य तीर्थंकरों का जन्माभिषेक करते हैं। (जंबूद्वीप पन्नति सूत्र)

17. अच्छेरा :- मल्लिनाथ भगवान स्त्री तीर्थंकर हुए। ऐसे अच्छेरे भूतकाल में अनंत बार हुए हैं। स्त्री तीर्थंकर भी अनंत बार हुए और अनंत युगलिक आयुष्य पूर्ण कर नरक में गए। (ठाणांग सूत्र : स्था. 10.)

18. मनुष्य कम से कम 2 माह के आयुष्य वाला ही नरक में जाता है (भगवती सूत्र : श.24)

19. सभिन्न श्रोत लब्धि :- इस शक्ति के द्वारा किसी भी इन्द्रिय से अन्य इन्द्रिय के विषयों को जाना जा सकता है। आंख से सुनते हैं, जीभ से देखते हैं, अंगुली से सुनते हैं। (उववाई सूत्र)

20. तंदुलिया मच्छ बार-बार 7वीं नरक का आयुष्य बांधता है, जीता-मरता है। (भगवती सूत्र : श. 28)

21. अनंत काल चक्र बीत गए।

 1 काल चक्र में 20 करोड़ x 1 करोड़ सागरोपम।

 1 सागर में 10 करोड़ x 1 करोड़ पल्योपम।

 1 पल्योपम में असंख्य 3 खंड के वासुदेव नरक में चले जाते हैं।

प्रत्येक पल्योपम में असंख्य साधु, चारित्र पाल कर प्रचंड पुण्य उपार्जन कर मोह और द्वेष के वश होकर विभाव में वासुदेव बनने का नियाणा कर बैठते हैं। स्वयं चल कर असंख्य काल के नरक के अनंत दुःखों को निमंत्रण देते हैं। (ठाणांग सूत्र)

22. जीव 5 मार्ग से शरीर में से बाहर निकलता है।

 1. आत्मप्रदेश पांव में से निकले तो नरक में जाए
 2. आत्मप्रदेश सीने (छाती) के नीचे से निकले तो तिर्यंच में जाए,
 3. आत्मप्रदेश सीना (छाती) के भाग से निकले तो मनुष्य में जाए,
 4. आत्मप्रदेश गले के ऊपर के भाग से निकले तो देवलोक में जाए।
 5. आत्मप्रदेश पूरे शरीर में से निकले तो मोक्ष में जाता है। (ठाणांग सूत्र : स्था. 5)

23. अनुत्तर विमान की देव शय्या पर 'लवसप्तम' देव जिनके 7 लव का ही समय कम पड़ा हो - श्रमण रुप में यह समय मिला होता तो सर्व कर्म क्षय कर सकते थे। 7 लव : साढ़े 4 मिनिट। 7 लव का समय खो दिया (आयुष्य के कारण) भव बढ़ गया। (भगवती सूत्र, सूयगडांग सूत्र : अ. 6)

24. अनंतकाल तिर्यंच रुप में, असंख्य काल नरक में, देव रुप में भूतकाल में व्यतीत कर दिया। फिर वर्तमान का संख्यात काल मानव भव का मिला है। 'दुल्लहे खलुमाणुसे भवे' 'मानव भव निश्चित रुप से दुर्लभ है।' (भगवती सूत्र)

25. ऐसे भी जीव हैं कि जो 48 मिनिट में, 12,824 शरीरों को छोड़ते हैं, पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय के जीव, 48 मिनिट में 12,824 बार जन्म मरण करते हैं। प्रत्येक वनस्पतिकाय 32,000 शरीर को धारण कर छोड़ती है, साधारण वनस्पतिकाय 65,536 शरीर धारते हैं, छोड़ते है'। अंतर्मुहूर्त में छ:काय के जीव कितने ही भव कर लेते हैं। (ग्रंथ के आधार से)

26. 16,383 हाथी प्रमाण स्याही से लिखा जाए इतना 14 पूर्व का ज्ञान, ज्ञानी अणगार स्वयं को प्राप्त लब्धि से अंत:मुहूर्त में देखकर पढ़ लेते हैं। (ग्रंथ के आधार से)

27. एक समय में असंख्य जीवों का जन्म-मरण होता है। (जीवाभिगम सूत्र)

28. देवशक्ति की दिव्यता के दर्शन, निरीक्षण, भुवनपति देव जंबूद्वीप को उठाकर मेरु पर्वत पर छत्राकार में रख सकते हैं, इतने शक्तिशाली होते हैं। आसक्ति के पाप में पृथ्वी, पानी, वनस्पति, में उत्पन्न होते हैं। (पन्नवणा सूत्र)

29. वायुकुमार इन्द्र वैक्रिय वायु फैलाकर एक झपट्टा मारे तो पूरे जंबू द्वीप को भर दे। स्तनीत कुमारेन्द्र शब्दों के सम्राट, गर्जना के द्वारा पूर्ण जंबूद्वीप के मनुष्यों को बहराकर दे। नागकुमार धरणेन्द्र सुवर्णकुमारेन्द्र स्वयं के शरीर के एक भाग से पूरे जंबूद्वीप को प्रकाशमय कर दे। विद्युत कुमारेन्द्र बिजली की चमक से जंबूद्वीप को रोशनीमय कर दे। अग्नकुमार अग्नि ज्वाला से जंबूद्वीप को जला दें। द्वीपकुमारेन्द्र हथेली में जंबू द्वीप को उठाले। उदधिकुमार जंबू द्वीप को जल तरंगों से जल द्वारा भर दे (पन्नवणा सूत्र) देव इतने शक्तिशाली होते हैं।

30. 'जहाँ आसक्ति वहाँ उत्पत्ति' :- लाखों वर्ष, पल्योपम ओर सागरोपम तक दिव्य काम भोगों को भोगने वाले होने पर भी अतृप्ति एवं आसक्ति के कारण प्यासे ही रहते हैं। देवलोक की समृद्धियाँ, वन, उद्यान, फूलों में पिरोया हुआ ये जीव एक छोटे से फूल में उत्पन्न हो जाता है। फूल के न नाक, न कान, न आंख। देव अब दु:खी ही दु:खी। (पन्नवणा सूत्र)

31. गर्भ में रहा हुआ बालक माता के धर्मानुरागी होने से वह भी धर्मानुरागी होता है और गर्भ में ही आयुष्य पूरा हो जाय तो देवलोक में जाता है। (भगवती सूत्र)

32. बालक, रानी के गर्भ में - शत्रुराजा लड़ाई करने आया है, ऐसे शब्द सुनकर स्वयं वैक्रिय लब्धि धारक होने से शत्रु राजा की सेना को अपनी लब्धि द्वारा चतुरंगी सेना चारों तरफ फैला दें, कषाय और क्रूरता के कारण 2-3 माह का यह बालक यदि गर्भ में आयुष्य पूर्ण करे तो नरक में जाए - (भगवती सूत्र : श.1, उ. 7

33. सबसे श्रेष्ठ भौतिक सुख के स्वामी की 1 हाथ की काया, आयु सागरोपम का होते हुए वहाँ अनुत्तर विमान में न वस्त्र न आभूषण या अन्य भौतिक सामग्री।(जीवाभिगम सूत्र)

34. नरक में जाने वाले को साथ नहीं ढूँढना पड़ता। एक समय में जंबूद्वीप को राई के दाने से भर दो इतने दाने चाहिए उससे भी अधिक जीव नरक में जाते हैं। (भगवती सूत्र श.20)

35. 6 विषय ऐसे हैं जिसमें अनेक लब्धियों के स्वामी, विशिष्ठ शक्तियों के धारक देव, अनंत शक्ति धारक अरिहंत भी कुछ नहीं कर सकते।

    1. जीव को अजीव नहीं कर सकते।
    2. अजीव को जीव नहीं कर सकते।
    3. एक समय में दो भाषा नहीं बोल सकते।
    4. कर्म इच्छानुसार नहीं भोग सकते।
    5. परमाणु को छेदन-भेदन नहीं कर सकते।
    6. लोक के बाहर गमन नहीं कर सकते। (ठाणांग सूत्र : स्थानक - 6)

36. प्रत्येक समय - 256 जीव में से 1 जीव तो अवश्य आयु कर्म बांधता है और 255 जीव नया आयुष कर्म नहीं बांधते। (पन्नवणा सूत्र : पद - 3)

37. परमाधामी देव असंख्य, परन्तु नारकी उससे भी असंख्य गुना अधिक है। कभी नरक के जीव इकट्ठे होकर मिलकर परमाधामी देव को एकाध प्रहार कर देते हैं। (भगवती सूत्र : 16, उ. 4)

38. एक तिर्यंच पंचेंद्रिय अन्य तिर्यंच का सत्कार करता है, सन्मान करता है, लेने जाता है, पहुंचाने भी जाता है, दो हाथ जोड़ता है। तिर्यंच में भी ऐसा सभ्य व्यवहार होता है। (भगवती सूत्र : श. 14. उ. 3)

39. देव पत्थर में प्रवेश करता है तब पृथ्वीकाय अप्काय यानि 24 दंडक के जीवों को देव छू सकता है और अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करा सकता है। इसको यक्ष प्रवेश उन्माद कहते हैं। दूसरा मोहनीय कर्म का उन्माद भी होता है। देव पृथ्वीकाय-पत्थर में प्रवेश करें तो पत्थर भी चलने और नाचने लगता है। वनस्पति काय में प्रवेश करें तो वनस्पति काय का रंग, आकार बदल जाते हैं। माना T.V. का Remote Control।

40. कंदमूल में कितने जीव हैं हो।

प्रत्येक को एक राई के दाने जितना बड़ा कर दें तो पूरा लोक भर जाए तो भी न समाए। 14 राजलोक ही नहीं , ऐसे अनंत राजलोक में भी न समाए। (जीवाभिगम सूत्र)

41. सिद्ध क्षेत्र प्राप्त करने का पासपोर्ट कौन सा है ? <u>समकित -</u>

सम्यग्दर्शन सिद्धक्षेत्र में Reservation करा देता है। परन्तु पुरुषार्थ के बिना परमात्मा नहीं बना जाता। प्रबल पुरुषार्थ से अंतर्मुहूर्त में सिद्ध हो जाता है और उ. काल अर्ध पुद्गल परावर्तन काल भी हो सकता है। यदि सिद्धत्व के पुरुषार्थ में प्रमाद हो जाऐ तो। (पन्नवणा सूत्र : पद - 18)

42. शकेन्द्र देवराज का दूत 'हरीणगमैषी देव' देवलोक में डॉक्टर के समान देव है। एक माता के गर्भस्थ जीव को बाहर निकाल कर दूसरी माता के गर्भ में रखना, ऐसा करने में पेट की चीर फाड़ नहीं होती; माता को या गर्भस्थ जीव को मालूम तक नहीं पड़ता। अरे ! गर्भ को, माता के नख या रोमराजी से भी बाहर निकाल ले तो वह जरा भी वेदना के बिना ही होता है। (पन्नवणा सूत्र : पद - 18)

43. नरक और नरक के जीव :- असह्य दु:ख, 10 प्रकार की क्षेत्र वेदना, नरक के जीवों

को 3 प्रकार की वेदना : क्षेत्र वेदना, परमाधामी कृत वेदना, अन्य नारकी जीवों द्वारा करने में होती वेदना ।

क्षेत्र वेदना – दुनिया भर के पानी पिला दो तो भी प्यासे रहे, संपूर्ण लोक का आहार दे दो तो भी भूखे ही रहते हैं, फिर भी आहार नहीं मिलता । मिले तो अल्प रुप में और पानी तो मिले ही नहीं । नारकी जीव को भट्टी में डालते हैं तो उनको शांति का, सुख का और शीतलता का अनुभव होता है । क्षणवार में निद्राधीन हो जाते हैं । ए.सी. का अनुभव करते हैं । नरक में भट्टी से अनंत गुणा गर्मी होती है । 1-3 नर्क में उष्ण वेदना, 4-5वाँ में शीतोष्ण वेदना, 6-7 में शीत वेदना हिमालय के शिखर पर की हिमशिला से अनंतगुणा ठंडी नरक में सतत भोगते हैं । 33 सा. तक (जिवाभिगम सूत्र)

44. देवों के बीच युद्ध होते हैं । असुर कुमार आदि भुवनपति देव नीचे गिने जाते हैं । वैमानिक देव उच्च । कभी भुवनपति - वैमानिक का युद्ध होता है । तब वैमानिक देवों को शस्त्र बनाने नहीं पड़ते, वे जिसका स्पर्श करते वे शस्त्र बन जाते हैं । पत्ता तीक्ष्ण तलवार समान, शत्रु को काट डालते हैं, छोटा सा कंकर शत्रु को बहुत बड़ी शिला जैसा अहसास कराता है । (भगवती सूत्र : श. 18, उ. 7)

45. प्रत्येक 256 जीव में 16 जीव शाता वेदना वाले अनंत जीव की अनुपात प्रत्येक 16 जीव मात्र 1 को शाता का उदय होता है । (पन्नवणा सूत्र : पद – 3)

46. सब के साथ संबंध बनाकर आया । वर्तमान के मिलते एक भी मनुष्य ऐसा नहीं कि जिसके साथ भूतकाल में अनंत काल तक न रहा हो (भगवती सूत्र : श. 1)

47. आसक्ति बहुत करी, पुण्य का खर्च उससे कहीं अधिक किया - जैसे नीच कुल के व्यक्ति के पास पैसा आता है तो उसे वापरते समय नहीं लगता; उसी प्रकार समझदार होकर भी जो विवेक से न वापरे तो क्या हो ? जितना पुण्यधन अनुत्तर देव 5 लाख वर्ष में क्षय करते हैं उतना पुण्य धन व्यंतर देव 100 वर्ष में क्षय कर देते हैं । (भगवती सूत्र : श. 18, उ.7)

48. पूर्वधारी (14 पूर्व) मुनि 1 हाथ का आहारक शरीर बना लेते हैं (स्वयं के शरीर में से आत्म प्रदेश बाहर निकालकर) क्षण मात्र में महाविदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी से शंका समाधान करने पहुंच जाते हैं और यहाँ बैठे-बैठे शंका-समाधान के जवाब भगवान को देते हुए सुनते हैं। (पन्नवणा सूत्र : पद - 21)

49. पूर्व धारियों की लब्धियाँ :-

1 घड़े में से 1000 घड़ा बना सके।

1 वस्त्र में से 1000 वस्त्र बना सके।

1 रथ में से 1000 रथ बना सके।

1 दंड में से 1000 दंड बना सके।

इस लब्धि को 'उत्कारिका भेद लब्धि' कहते हैं। भगवती सूत्र : श 5,3.5)

50. वैक्रिय लब्धि : क्षण में विविध रूप करे। Engineer Contractor, Architect बिना मजदूर आदि की सहायता के खाली मैदान में क्षण भर में बहुत बड़ी नगरी बसा दे। मकान में बंद कर दे तो दिवाल में से बाहर निकल सकते हैं। ऐसी वैक्रिय लब्धि तुम को कितनी बार मिली ? अनंत बार ! अरे मानव भव में भी मिली थी (भगवती सूत्र : श. 12, उ. 7)

51. असंख्य देवा में से 1 देव को मनुष्य जन्म मिलता है, प्रबल पुण्योदय के बिना मानव भव मिलना सहज नहीं है। (भगवती सूत्र : श. 20 उ. 10)

52. अढ़ी द्वीप के बाहर सूर्य चंद्र नहीं घूमते। अनादिकाल से स्थिर है। इससे अनंत काल से कितने ही क्षेत्र ऐसे हैं जहां दिन-रात का अनुभव ही नहीं किया (जिवाभिगम सूत्र)

53. जंबूद्वीप में दो सूर्य, दो चंद्र हैं। अढ़ी द्वीप में 132 सूर्य हैं एवं 132 चंद्र हैं। (जीवाभिगम सूत्र)

54. सिर्फ काया से कर्म बंध करने वाला, हजारों मछलियों को खाने वाला मगरमच्छ प्रथम नरक एवं तंदुलिया मत्स्य मन और काया से कर्मबंध करके सातवीं नरक में जाता है। (भगवती सूत्र : श. 24)

55. ज्ञात है कि पुद्‌गल द्रव्य सदा परिवर्तित होता है ? प्रत्येक औदारिक पुद्‌गल असंख्य काल में अन्य पुद्‌गल बन जाता है। वैक्रिय पुद्‌गल अन्य वर्गणा रुप बनते हैं। ये स्याही के पुद्‌गल एक बार कर्म रुप में तुम्हारी आत्मा पर चिपके हुए थे। (भगवती सूत्र : श. 12)

56. सर्वश्रेष्ठ स्थान सिद्ध क्षेत्र, सर्व अधम 7वीं नरक। असंख्यात वर्षों में जितने सिद्ध होते हैं उससे अधिक 1 समय में नर्क में जाने वाले मिलते हैं। (पन्नवणा सूत्र)

57. श्वांस के बिना जीवन संभव है ?

अनंत जीवों ने अनंतकाल तक श्वास ग्रहण किया ही नहीं और मृत्यु को प्राप्त हो गए। वनस्पतिकाय जीवों में ऐसे अनंत जीव हैं जो श्वांस पर्याप्ति बनाते-बनाते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसा अनंत बार अनंत भवों में करते हैं। (भगवती सूत्र : श. 24)

58. सागर का पानी कैसा होता है ? खारा ना ? नहीं ! असंख्या सागर हैं, उसमें लवण समुद्र आदि 7 समुद्रों के अलावा शेष जितने भी समुद्र हैं सभी का पानी गन्ने के रस के जैसा स्वाद वाला है। कालोदधि, पुष्कर, स्वयं भू रमण समुद्रो का पानी सादे पानी जैसा होता है।

वारुणी समुद्र :- मदिरा (शराब) के समान है।

धृत समुद्र :- घी के समान (जिवाभिगम सूत्र)।

59. असंख्य निगोद के शरीर जितनी काया 1 वायु काया की,

असंख्य वायुकाय शरीर जितनी काया 1 तेउकाय की,

असंख्य तेउकाय शरीर जितनी काया 1 अप्‌काय की

असंख्य अप्काय शरीर जितनी काया 1 पृथ्वीकाय की

अणी पर असंख्य रहे इतना। (भगवती सूत्र : श. 19)

60. आकाश प्रदेश कितना होता है ?

एक छोटे से बिन्दु मात्र लिखने में असंख्य आकाश प्रदेश जगह देते हैं। प्रत्येक समय में ये प्रदेश बाहर निकलते असंख्य वर्ष, पल्योपम, सागरोपम, अरे ! असंख्यकाल चक्र बीते तो भी सब प्रदेश बाहर नहीं आते । (नंदी सूत्र)

61. 14 पूर्व का ज्ञान विशाल, विपुल, लक्ष्ण, बुद्धि के स्वामी को होता है। आश्चर्य तो यह है कि 9 वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण करने वाले बाल मुनि को भी हो सकता है। अल्प काल में 14 पूर्व सीख लेते हैं। इन बाल अणगार को 4 ज्ञान प्रकट हो सकते हैं और आहारक शरीर भी बना सकते हैं। (भगवती सूत्र : श. 24.)

।। जैन जयति शासनम् ।।

परिचय

विजय दोशी, शार्लोट, नोर्थ केरोलीना, यू.एस.ए.

1967 में **Structural Engineering** के अभ्यासार्थ अमेरिका जाने के बाद 1983 में भारत, स्थाई निवास हेतु पुनः आना हुआ। लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात् पुनः यू.एस.ए. जाना हुआ। निमित्त बलवान हैं। शार्लोट में 1971 से आज तक जीवन व्यतीत हो रहा है। जैन धर्म के प्रति रूचि पूर्व से ही थी, जो कि उत्तरोत्तर अभिवृद्धि प्राप्त करती गई। तत्वार्क्ष सूत्र, कर्म ग्रंक्ष तथा अन्य जैन सिद्धांतों का स्वाध्याय जीवन को आध्यात्म संवर करता रहा। आपके समक्ष 'श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके' पुस्तक प्रस्तुत करते एक स्वप्न की पूर्णता सम आनंद उल्लास की अनुभूति हो रही है। 'जैनम् जयति शासनम्''

"श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके"

परम पूज्य गुरुदेव श्री हरिशभद्र विजयजी महाराजा सा. के शब्दों में,

श्रुत – अर्थात् सम्यग्ज्ञान। मोक्ष मार्ग का परिचय।

भीनी आँखों – ज्ञान का अध्ययन करने वाले के नेत्र, जनम–मरण सुधारने के लिए भीनी (भीगे) होवे, वह अत्यन्त आवश्यक है

बिजली चमके – मेघ–वर्षा का आगमन, बिजली की चमक से समझ सके वैसे ज्ञान के अनुभव से, मनन, चिंतन से जीवन में जागृति आए और आत्मा परमात्म पद की अधिकारी बने वह निश्चित हैं

इन शुभभावों के सृजन रूप प्रस्तुत ग्रंथ वर्ग के सर्व जीवों को शुभानुबंध का निमित्त बने यही अंतर की अभ्यर्थना ....

श्रुत भीनी आँखों में बिजली चमके
वीतराग की वाणी का झांझर झमके ।।